॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

९८



महाकविश्रीत्रिविक्रमभट्टविरचिता

# नलचम्पूः

अथवा

## दमयन्ती-कथा

प्राग्वाटवंशीयश्रीचण्डपालकृत-

'विषमपदप्रकाश' संस्कृतव्याख्यासहिता

सम्पादक, हिन्दीव्याख्याकारः —

श्री कैलाशपति त्रिपाठी

एम. ए., व्याकरण-साहित्याचार्य, लब्धस्वर्णपदक,

प्राध्यापक : संस्कृत विभाग

भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

( १-२ उच्छ्वास )



चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० १३९

जडाव भवन के ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी ( भारत )

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय, वि० संवत् २०३३
मूल्य : १–२ उच्छ्वास ६–००, सम्पूर्ण




हमारे प्रकाशनों की एकमात्र वितरक संस्था :—
**चौखम्भा ओरियन्टालिया**
प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक तथा विक्रेता
पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० ३२
गोकुल भवन, के ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ ( भारत )
टेलीफोन — ५२९३९, ६२६९५, ६३०२२

प्रधान शाखा :—
**चौखम्भा विश्वभारती**
चौक ( चित्रा सिनेमा के सामने ) वाराणसी
फोन नं० ६५४४४

THE

KASHI SANSKRIT SERIES



98

THE

# NALACHAMPŪ

OR

# DAMAYANTĪ-KATHĀ

OF

## ŚRĪ TRIVIKRAMA BHAṬṬA

WITH

*The Viṣamapada Prakāśa Sanskrit Commentary*

BY

ŚRĪ CHANḌAPĀLA

( 1260 A. D )

*Edited with his own commentary*

By

Prof. KAILĀSPATI TRIPĀṬHĪ

M. A., Vyākarana-Sāhityāchārya, Gold Medalist, Lecturer in Sanskrit, Bhagalpur University, Bhagalpur-7

( 1-2 Chapters )

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN

*Publishers and Book Sellers*

P. O. Chaukhambha, Post Box No 139

Jadau Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandi. Lane

VARANASI ( INDIA )

*Also Can be had of —*
CHAUKHAMBHA VISVABHARATI
Chowk ( Opposite Chitra Cinema )
VARANASI-221001
Phone . 65444



**Third Edition 1976**
**Price : 1-2 Chapters Rs. 6-00**
**Complete Rs [redacted]**

*Sole Distributors .—*
CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
P. O Chaukhambha, Post Box No 32
Gokul Bhawan, K 37/109, Gopal Mandir Lane
VARANASI-221001 ( India )
Telephones — 52939, 62695, 63022.




# निवेदन

प्राग्वादित्रपुरीहेतोरद्यापि त्रिविक्रमः ।
निर्मलं विमलं व्योम्नि यस्य पदममुनामपि ॥

संस्कृत वाङ्मय के चम्पू साहित्य में नलचम्पू समय और काव्य-गौरव दोनों दृष्टियों से प्रथम है। मधुरतर श्लेषविन्यास तथा अद्भुत भावसृष्टि के कारण इस ग्रन्थ ने सहृदय समाज में अप्रतिम ख्याति अर्जित की है। भाव-सवलित कलाप्रौढ काव्यों में इसका बड़ा श्लाघनीय स्थान है। प्रसिद्ध राजाश्रय में रहने के कारण त्रिविक्रम शास्त्र ही की तरह लोकविद्या में भी निष्णात हो गये थे। उनके ग्रन्थ में काव्यकला के साथ ही लोकविद्या तथा इतिवृत्त-तत्त्वों की भी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है, किन्तु सहृदयसंवेद्य तत्त्वों के इस विपुल भाण्डार को बहुविध श्लेषों के कारण उन्होंने सर्वसुलभ नहीं रहने दिया है। इसकी श्लेषबहुल शब्दार्थप्रौढि को ध्यान में रखकर ही विभिन्न विश्वविद्यालयों ने इसे एम० ए० तथा साहित्याचार्य की परीक्षाओं में पाठ्य-ग्रन्थ के रूप में निर्धारित किया है।

सम्प्रति संस्कृत में इस ग्रन्थ पर दो टिप्पणियाँ उपलब्ध हैं—श्री चण्डपाल का विषमपदप्रकाश और पं० नन्दकिशोर शर्मा जी की भावबोधिनी। निर्णय-सागर से प्रकाशित संस्करण में केवल विषमपद-प्रकाश छपा है और काशी संस्कृत सीरीज संस्करण में विषमपदप्रकाश के साथ भावबोधिनी भी मुद्रित है। ये दोनों ही टिप्पणियाँ क्लिष्ट-ग्रन्थियों को शिथिल करने में बहुत सहायक हैं किन्तु कठिनाई यह है कि ये ग्रन्थ के समग्र अंश पर नहीं लिखी गयी हैं। कतिपय क्लिष्ट या भावप्रधान पदों तथा अनुच्छेदों तक ही सीमित हैं। अतः संस्कृत में भी कोई ऐसा विश्लेषण उपलब्ध नहीं है जो ग्रन्थ के समग्र अंश पर प्रकाश डाल सके।

विभिन्न सूचीपत्रों से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ पर और भी कई व्याख्याएँ कभी की गई थीं। आचार्य चण्डपाल ने अपने विषम-पद-प्रकाश में एक विवृति

नामक टीका का उल्लेख किया है।[1] डा० हीरालाल जी ने अपने सूचीपत्र संख्या २१४७ में पाँच टीकाओं से युक्त 'दमयन्तीकथा' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। ये कौन पाँच टीकायें थी, किसने की थी इसका कुछ पता नहीं है, क्योंकि उक्त सूचीपत्र में इस सम्बन्ध में और कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।

निर्णयसागर संस्करण वाले नलचम्पू की भूमिका में एक 'बृहट्टीका' का संकेत है जो कभी जयपुर-राजगुरु नरहरि शर्मा जी के पास थी। डा० बर्नेल सूचीपत्र—१५९ (a) में नागदेव कृत एक टीका का उल्लेख है किन्तु इस सम्बन्ध में वहाँ और कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। आर्पेट सूचीपत्र—२११ में भी इसकी एक टीका का उल्लेख है। उसके कर्ता का नाम वहाँ नहीं लिखा है। निर्णयसागर संस्करण वाले नलचम्पू की भूमिका से एक और टीका का संकेत मिलता है जिसके कर्ता दामोदर थे। यह टीका भी कभी जयपुर-राजगुरु नरहरि शर्मा जी के पास थी। गुणविनय गणि ने दमयन्ती-चम्पू-वृत्ति नामक टीका लिखी थी।[2] मालूम पड़ता है चण्डपाल के विषमपदप्रकाश ने जिन पदों का विश्लेषण छोड़ दिया था उन्ही की व्याख्या इसने की गयी थी।[3]

भावबोधिनी और विषमपदप्रकाश को छोड़कर उपर्युक्त टीकाओं में से एक भी उपलब्ध नहीं है। विभिन्न सूचीपत्रों में इनका केवल संकेत भर मिलता है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ अति प्राचीन काल से लोकप्रिय रहा है। बहुत से विद्वानों ने इस पर यथासमय व्याख्यायें लिखी जो दुर्दैववश काल-ग्रस्त हो गयीं, आज उपलब्ध न रहीं।

सम्प्रति विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रस्तुत ग्रन्थ के पाठ्य पुस्तक रूप में निर्धारण से प्राक्तन सांस्कृतिक तत्त्वों के अनुसन्धित्सुओं की इस ग्रन्थ की ओर उत्सुकता से इसके एक नये संस्करण का अभाव बहुत दिनों से खटक रहा था।

---

१ नलचम्पू—विषमपदप्रकाश, पृ० २८९

२ प० नन्दकिशोर शर्मा—नलचम्पू उपोद्घात, पृ० ९

३ श्री चण्डपालोऽत्र कियत्पदानां यद्यप्यनिन्द्यां विवृतिं चकार।
तथाऽपि तच्छेष पदार्थ सार्थ-प्रकाशनात्ता विवृणोमि चम्पूम्॥
टीका का प्रारम्भिक पद्य। का० सं० सी० संस्करण, नलचम्पू उपोद्घात, पृ० ११ में उद्धृत।

इस संस्करण में मूल ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद तथा सापेक्ष विश्लेषण के साथ चण्डपाल विषमपदप्रकाश भी सम्पादित है। मूल ग्रन्थ तथा विषमपद-प्रकाश के पाठों को भी यथासम्भव शुद्ध करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी अनुवाद में मूल भावों के साथ मघटना-सौन्दर्य की सुरक्षा का ध्यान रखा गया है। भावसौन्दर्य के साथ बन्धसौन्दर्य का भी आस्वाद पाठकों को मिल सके, इस लक्ष्य से हिन्दी अनुवाद तथा विश्लेषण लिखा गया है। ऐसा करने में कहीं-कहीं हिन्दी की अबहुप्रचलित शैली का अवलम्ब लेना पड़ा है।

*हिन्दी में श्लिष्ट पदबन्धों को प्रस्तुत करते समय या विश्लिष्ट करते समय* हिन्दी की प्रचलित शैली से कोई भिन्न मार्ग अपनाना स्वाभाविक हो जाता है, क्योंकि संस्कृत के विभक्तिश्लेष, प्रत्ययश्लेष आदि प्रकारों को हिन्दी के सीमित शब्दों में विश्लिष्ट करना मुश्किल हो जाता है। ऐसे स्थलों को व्याकृत करते समय अनुवाद वाले कथाप्रसङ्ग के प्रवाह के साथ कहीं-कहीं कोष्ठकबद्ध विश्लेषण के कतिपय अनुच्छेदों को भी जोड़ना पड़ा है। श्लेष के इन विचित्र तालों को खोलने के लिये ये वक्राकार कोष्ठक कुञ्जियां बहुत आवश्यक प्रतीत हुईं। मुद्रण में इन कोष्ठकों का कहीं-कहीं अनुचित विन्यास हो गया है। इनके यथासम्भव मार्जन के लिये ग्रन्थ के अन्त में एक शुद्धिपत्र लगा दिया गया है। सहृदय पाठकों से निवेदन है कि असमञ्जस के इन स्थलों पर शुद्धि पत्र का उपयोग करलेंगे।

१९५९ में जब मैं वाराणसेय बिरला संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी के साहित्य विभाग में अध्यापक था, इस ग्रन्थ पर एक विश्लेषण तथा एक समीक्षा लिखने के लिये सोचा था, किन्तु यह कार्य वाराणसी में न होकर भागलपुर में पूर्ण हुआ। इस ग्रन्थ के छपने समय मैं अपने शोध कार्य में व्यस्त था। प्रूफ देखने की व्यवस्था मुद्रणालय की ओर से की गयी थी। जहां कहीं मुझे असंगति प्रतीत हुई उसका संयोजन मैंने शुद्धिपत्र भाग में कर दिया है।

भूमिका भाग में त्रिविक्रम भट्ट के समय, निवास तथा कृति के साथ चम्पू-काव्यलता, कथावस्तु, समाज-विधान तथा भौगोलिक स्थलों का भी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इस कार्य में साक्षात् या परम्परया जिन विद्वानों की कृतियों से मुझे सहयोग मिला है मैं उन सबका आभार मानता हूँ। अनुवाद तथा विश्लेषण भाग में

चण्डपाल तथा प० नन्दकिशोर शर्मा एवं भूमिका के भौगोलिक विवरण वाले खण्ड में डा० भगवत शरण उपाध्याय जी से मुझे बहुत सहायता मिली है। मैं इन सभी विद्वानों का परम कृतज्ञ हूँ।

वाराणसेय बिरला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी के प्रधानाचार्य गुरुवर्य पण्डित रामानुज जी ओझा, न्याय-व्याकरण-साहित्याचार्य का मैं सर्वाधिक कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य में प्रवृत्त किया और इसकी पूर्णता के लिये सदा प्रेरित करते रहे। चौखम्बा विद्याभवन के व्यवस्थापक श्री मोहनदास जी गुप्त को साधुवाद देता हूँ जिन्होंने बड़ी तत्परता से इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है।

भागलपुर विश्वविद्यालय<br>गणतन्त्र दिवस १९६५

—कैलासपति त्रिपाठी

# नलचम्पू : कथावस्तु

## प्रथम उच्छ्वास

चन्द्रशेखर भगवान् शङ्कर तथा अमृतवर्षी कवियों के वाग्विलास की प्रशंसा में ग्रन्थ का आरम्भ हुआ है। यशस्वी कवियों के वाग्वैभव के साथ ही जगत् के वक्षःस्थल काम तथा तरुणियों के नेत्रविभ्रम की सर्वोत्कृष्टता समर्थित की गयी है और विद्वानों के आनन्दमन्दिर, सरस्वती के मधुर प्रवाह को नमस्कार किया गया है। तदनन्तर असत् उक्तियों तथा अभद्र गोष्ठियों की निन्दा और सूक्तियों तथा सत्कवियों की प्रशंसा की गयी है। मुख्यतः वाल्मीकि, व्यास, गुणाढ्य तथा बाण का बड़े आदर के साथ स्मरण किया गया है।

इन महान् कवियों की कृतियों के समक्ष अपनी बातों के सम्मान के सम्बन्ध में कवि को बड़ा सन्देह होता है, फिर भी वह काव्यनिर्माण का साहस इसलिये करता है कि विद्वान् लोग सर्वविध उक्तियों का समादर करते हैं। सभङ्गश्लेष से सम्पन्न उक्तिवैचित्र्य की ओर अपनी प्रवृत्ति का संकेत करता हुआ वह अपने वंश का परिचय देता है।

श्री त्रिविक्रम भट्ट ने अपने आप को महर्षि शाण्डिल्य के वंश में उत्पन्न श्रीधर का पौत्र तथा देवादित्य का पुत्र बताया है। इस परिचयात्मक आमुख के बाद वर्ण्यवस्तु का वर्णन प्रारम्भ होता है—

सम्पूर्ण भूमण्डल की शोभा में नवीनता उपस्थित कर देने वाला, गङ्गा तथा चन्द्रभागा जैसी नदियों से अलङ्कृत, पुण्यपुरुषों से समाश्रित, स्वर्गवासियों को भी लुभा लेने वाला आर्यावर्त नाम का देश है। वहाँ निषधा नाम की नगरी है। उसकी गगनचुम्बी प्राकारभित्ति इन्द्रनीलमणि से बनी है। उससे निकलती हुई सहस्रों किरणों की श्रेणियाँ नवीन तृण के अङ्कुरों की तरह प्रतीत होती हैं। भवनों के प्राङ्गण स्फटिक मणि की शिलाओं से निबद्ध हैं। वहाँ घूमती हुई स्त्रियों के लाक्षारञ्जित पैरों के प्रतिबिम्ब को कमल समझ कर भ्रमरमण्डल ठगा जा रहा है। नगरी के अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग भाग अपेक्षित समस्त सामग्रियों से मण्डित होने के कारण स्वर्ग की सुषमा से स्पर्धा करते हैं।

इसी नगरी में महाराज नल रहते हैं। उन्होंने अपने बाहुबल से विपक्ष-मण्डल को नष्ट कर दिया है। शत्रुपत्नियों के नेत्रकमल से गिरती हुई अश्रुधारा में उनका प्रताप राजहंस तर रहा है। समुद्रान्त पृथ्वी की रक्षा करता हुआ उनका कीर्तिस्तम्भ सम्पूर्ण भूमण्डल को अलङ्कृत कर रहा है।

उनके मन्त्री का नाम श्रुतिशील है। वह समस्त विद्याओं का आधारस्तम्भ है। नल का द्वितीय प्राण है। उसकी मन्त्रणा से होने वाले प्रशासन से प्रजामण्डल अत्यन्त सन्तुष्ट है। उसके मन्त्री पद पर रहने से नल को राज्य-व्यवस्था की चिन्ता बहुत कम करनी पड़ती है। अत विहार, आखेट, विनोद-गोष्ठी आदि में ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होता है।

एक समय जब कदम्ब की डालियों पर भौंरे मड़रा रहे हैं, कामदेव के अट्टहास की तरह बादलों की ध्वनि से आकाश मुखरित हो रहा है, पके हुए जामुन के फलों से वन की आभ्यन्तरिक शोभा नितान्त श्यामल हो चली है, राहियों को उत्कण्ठित कर देने वाली मयूरों की मधुर ध्वनि चारों ओर गूँज उठी है। वर्षाकाल ने वनश्री की मादकता में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया है, एक वन-पालक राजा को यह सूचना देता है कि उनके विहार-वन में एक भयंकर जङ्गली सूकर आ गया है। उसके दाँत बड़े चमकीले हैं। काला तो वह इतना है कि अञ्जन पर्वत या जलराशि से मेदुर मेघ की भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है। अपनी मस्ती में किसी की चिन्ता नहीं करता। लीला सरोवर को मथ कर अस्त व्यस्त कर दिया है। क्रीडारण्य में अकाण्ड-ताण्डव प्रस्तुत कर दिया है।

इस उद्दण्ड एवं विप्लवकारी सूकर के आगमन की सूचना पाते ही राजा उस वनस्थली को देखने के लिये उत्कण्ठित हो उठता है जो तोते के पखों की तरह हरित घासों से मण्डित हो गयी है तथा जलाशयों का जल दूध की तरह मांसल हो गया है।

राजा की आज्ञा से सेनापति बाहुक शिकार की सारी सामग्री प्रस्तुत कर देता है। नल एक प्रशस्त अश्व पर आरूढ हो जाता है। जाल आदि शिकार की सामग्रियों से सज्जित व्याधों का समूह राजा के पीछे यमराज के दूतों की तरह चल रहा है। वन में घुसते ही व्याधों ने सारी वनस्थली को व्यथित कर दिया है। हाथियों का दल चिग्घाड़ने लगा है। मृगों का दल व्याधसैन्य के क्रूर कोलाहल से ही निष्प्राण होने लगा है। बाणों के आघात से घूर्णित भैंसे पृथ्वी पर धड़ाधड़ लोटने लगे हैं। अपने वेग से अश्वों को भी नीचा दिखा देने वाले कुरङ्ग लम्बी छलाँग भरते हुए मानो आकाश में ही तैर रहे हैं। इसी बीच नासिका को टेढ़ा कर बादल की तरह गड़गड़ाता हुआ, पूँछ के गुच्छे को हिलाता

हुआ, एक प्रज्वलित अरण्य पर दावानल से जलते हुए पर्वत की तरह एक सूअर दिखायी पड़ जाता है।

उसे देखते ही राजा सावधान हो जाता है। विविध पत्रों से भरित बाणों की वर्षा उस सूअर पर वैसे ही करने लगता है जैसे एक बार राघव रामचन्द्र रावण पर कर रहे थे। दर्शकों को यह पता नहीं चलता कि युद्धकौशल में निपुण उस अश्व सवार अत्यन्त चञ्चल हाथों से शीघ्रतापूर्वक बाणों को बरसाते हुए उस राजा और वीररस के शरीर उस सूअर में से किसको उत्कृष्टतम माना जाय।

उन दोनों के द्वन्द्वयुद्ध ने पृथ्वी में कम्पन उत्पन्न कर दिया है, पर्वतों में चञ्चलता ला दी है। भगवान् सूर्य ने भी उनके इस शौर्य प्रदर्शन को देखने के लिये कुछ समय के लिये अपने घोड़े मानो खड़े कर दिये हैं। चिरकाल तक युद्ध में पराक्रम प्रदर्शन के बाद उस सूकर सम्राट पर नरेन्द्र नल की विजय होती है।

विजय के बाद आखेट की परेशानियों से थक कर राजा विश्राम के लिये एक शालवृक्ष के नीचे बैठता है। वनपल्लवों तथा लताओं को कम्पित करती हुई, कुञ्ज एवं कदम्ब के मकरन्द बिन्दुओं से बोझिल हवा के मधुर स्पर्श से उसकी आँखें झपकी ले रही हैं। परिजन वर्ग अभी मृगपशुओं को वैधव्य दीक्षा देने में ही लगा हुआ है। मृगों के विनाशमूलक शोक में वनदेवताएँ दोपहर के समय पुष्प लोचनों से गरम-गरम मकरन्दों के बहाने आँसू बरसा रही हैं। तरु मञ्जरियों के लुप्त हो जाने के कारण भ्रमरमण्डल नैराश्य लिये दूसरे वनों की ओर प्रस्थित हो रहा है।

इसी बीच एक राही उसी शालवृक्ष के पास आता है। लता की छाल से उसने अपने पके बालों को बाँध रखा है। कन्धे पर एक डण्डा लिये है। गले में मिट्टी की गोलियों से बनी माला पहने है। गेरुए रङ्ग का एक कौपीन लगाये है। पैरों में फटा चिथड़ा बाँधे है और हाथ में एक काठ का भिक्षापात्र लिये है। वह शरीर से अत्यन्त दुर्बल दिखायी पड़ता है।

राजा के अलौकिकासामान्य सौन्दर्य को ही देख कर उसे यह मालूम पड़ जाता है कि निश्चय ही यह कोई महापुरुष है। इस निश्चय के अनुसार वह आगे बढ़ कर कहता है—' कामविजयिन्, आपका मङ्गल हो।'

राजा भी आश्चर्य से सिर उठाता है और बड़े आदर के साथ पथिक का अभिनन्दन करता हुआ बोलता है—

' कहिये कहाँ से आपकी सम्भावना की जाय ? मार्ग का कितना अंश अवशिष्ट रह गया है ? आइये, बैठिये, थोड़ा विश्राम कर लीजिये तो जाइयेगा। अनेक

विदेशों में भ्रमण करने वाले लोग विविध आश्चर्यों को देखते रहते हैं। बहुत सी अद्भुत बातें उनकी जानकारी में रहती है। आप भी ऐसे व्यक्तियों में से ही हैं। कुछ सुनाइये। प्रथम परिचय के कारण आप से स्पष्ट स्नेह है, ऐसी आशङ्का नहीं कीजियेगा। प्रथम दर्शन होने पर भी मणि अपनी कान्ति नहीं छिपाते।"

पथिक भी राजा की जिज्ञासा को सम्मानित करता हुआ बोलता है—

"सम्पूर्ण संसार में अपनी दर्शनीयता के लिये प्रसिद्ध, दक्षिण दिशा में भगवान् शङ्कर के पवित्र चरणों से अधिष्ठित, श्रीशैल नाम का पर्वत है। वहाँ आकर्षक फूलों एवं फलों से सम्पन्न गोदावरी के तट पर देवों और दानवों की गोष्ठी में समान-रूप से पूजे जाने वाले भगवान् कार्तिकेय के दर्शन के लिये मैं गया था।

वहाँ से लौटते समय लम्बा रास्ता तय करने के कारण थक कर एक विशाल बरगद के पेड़ के नीचे विश्राम करते समय मैंने जिस एक आश्चर्य को देखा उसे कृपया आप सुनें—

एक राजा की अद्भुत सुन्दरी लड़की उसी पेड़ के नीचे आयी। वह अपने मधुमय पद विन्यास से गजेन्द्रवधू के भी गतिविलास को मात कर रही थी। चारों ओर से सहेलियों से घिरी हुई थी। डुलाये जा रहे चँवर की हवा से उसकी अलकवल्लरी स्पन्दित हो रही थी। वह सुधा माधुरी में भी स्पर्धा करने वाली गीत-ध्वनि में कान लगाये थी। मुझे तो उसे देखकर ऐसा लगा कि नारायण के वक्ष-स्थल से विलग होकर लक्ष्मी ही आ गयी हैं। उसका मुख चन्द्रमा की आह्लादकता प्रस्तुत कर रहा था। आँखें कमल से स्पर्धा कर रही थीं। अपनी यौवनलक्ष्मी के अद्भुत विलास से वह कामदेव की विजयवैजयन्ती बनी हुई थी। युवकों के मानस को तो वह अनायास ही उद्वेलित कर रही थी। उसके सौन्दर्य तथा अतिमानव सौभाग्य को एक-एक कर वही वर्णन कर सकता है जिसे शेषनाग की तरह सहस्र जिह्वायें हों।

जैसे आप मुझसे पूछ रहे हैं वैसे ही वह भी दक्षिण दिशा के लिये प्रस्थित एक उत्तर दिशा के पथिक से कुछ पूछती हुई वहाँ कुछ समय तक ठहरी।

उत्तर देश के किसी प्रशंसनीय गुण वाले राजा के सम्बन्ध में बातें चल रही थीं। मैं भी उस वाग्विनोद के सारस्वतप्रवाह से वञ्चित न रहा। वह कह रहा था—

'वे आँखें धन्य हैं जो उस कामविजयी राजा के मुखमण्डल को देख कर तृप्त होती हैं। तुम कामदेव की मञ्जरी हो और वह युवक उसका आस्वादक भ्रमर है। तुम्हारे ही लिये वह उपयुक्त है। तुम दोनों के मिलन से ब्रह्मा की कला साकार हो उठेगी।'

मालूम नहीं वह कौन पुण्यात्मा है जिसके विषय में सुनने मात्र से उसे रोमाञ्च हो गया। आश्चर्य के मारे मेरा भी विवेक समाप्त हो गया था। इसीलिये मैं पूछ नहीं सका कि वह किसकी लड़की थी। कहाँ और किस स्थान में आयी थी। आकस्मिक विह्वलता की बहुलता से इन्द्रियों के समस्त बाह्य व्यापार शान्त हो गये थे। स्तब्ध होकर बहुत दूर तक चुप बैठा रहा। अब मैं यही सोचता हूँ कि सम्पूर्ण संसार की सर्वोत्तम सुन्दरी उस राजपुत्री को देखकर उस दिशा की मेरी यात्रा सफल रही। अब भी आप जैसे अतिमानव सौन्दर्य की मूर्ति को देख कर मैं कृतकृत्य हो गया। देशाटन का प्रयास सफल हो गया। अच्छा, आज्ञा दीजिये, मैं अपना रास्ता तय करूँ।"

पथिक की बातें सुनकर राजा सोचने लगता है—"निश्चय ही वह देश स्त्री-रत्नों का अक्षय खजाना है। यह पथिक भी यथार्थ वक्ता है। ब्रह्मा का निर्माण-कौशल बहुविध आश्चर्यों को संसार में प्रस्तुत किया करता है। उसके लिए क्या सम्भव नहीं है। खेद यही है कि मैंने उस सौन्दर्य की प्रतिमा, रमणीरत्न को नहीं देखा। बड़े आश्चर्य की बात है, केवल सुनने मात्र से ही मेरा यह मनोवक गिरता जा रहा है। मैंने अपनी नेत्राञ्जलि से उसकी रूपसुधा का पान नहीं किया, उसके नाम पल्लव का अपने कानों का भूषण नहीं बनाया, फिर भी चुम्बक की तरह उसकी लावण्यकान्ति मुझे खींचती जा रही है। मन धैर्यद्वार को तोड़ कर उसी की ओर भागा जा रहा है।

*अप्राप्य वस्तु में पुरुषों का अनुराग हुआ ही करता है। मुझ तो उसे सुनते ही बिना ज्वर का अस्वस्थता आ गयी है। बिना बुढ़ापा आये ही अकड़ना आ गयी है। कानों के रहते बहरा हो गया हूँ। नमस्कार है उस मनोजन्मा काम-देव को जो सज्जनों का भी दुर्जन में परिवर्तित कर दिया करता है।"*

इस तरह सोचता हुआ राजा उस पथिक को विविध उपहारों से सम्मानित कर विदा देता है और स्वयं भी व्याध परिजनों के साथ घर के लिये चल देता है। घर पर उसके मन की उदासी बढ़ जाती है। उसके चेहरे को देख कर इस बात का पता चल जाता है कि उसके मानस के लताकुटीर में कहीं काम की चिनगारी सुलग चुकी है। उसके वर्षाकालीन वे दिन पथिकों से उस राजपुत्री-विषयक समाचार पूछने में ही बीतते हैं।

## द्वितीय उच्छ्वास

वर्षा का समय समाप्त हो रहा है। शरद् के आगमन के उपलक्ष्य में भ्रमर एवं हंसों ने स्वागत-गान शुरू कर दिया है। नल एक निकटवर्ती वन में विहार कर

रहा है। किन्नर-मिथुन अत्यन्त ललित स्वर में कुछ श्लोक गा रहे हैं। उनकी गीतलहरी नल की उत्कण्ठा को और उद्दीप्त कर देती हैं। इस बीच कुछ वनपालिकायें आती हैं और वन के विविध दृश्यों को दिखाती हुई सभी पदार्थों का वर्णन श्लिष्ट शब्दों में करती हैं। उनकी उक्तिवक्रता पर वह बहुत सन्तुष्ट होता है और अङ्गों के भूषणों को देकर बड़ी खुशी के साथ उन्हें विदा करता है।

अभ, मनोविनोद के हेतु घूम ही रहा है तब तक उसके सामने ही अपने सफेद पंखों से धरती को मण्डित करती हुई हंसों की एक अत्यन्त सुन्दर मण्डली आ गिरती है जो भूख की तृप्ति के लिये कमलनाल को तोड़ने लगती है। कौतुक वश नल उन्हें पकड़ने का यत्न करता है। अन्ततः एक को पकड़ ही लेता है। लाल कमल के मध्य भाग की तरह सुन्दर उसके करपल्लव पर वह हंस पद्मरागमणि की शुक्ति पर रखे गये सफेद कमल की तरह प्रतीत होता है या उदयाचल की लाल मणियों की चोटी पर चन्द्रमा की तरह लगता है। हाथों में आते ही वह चाँदी की झांझ की तरह मधुर ध्वनि में अत्यन्त विस्पष्ट शब्दों में राजा को आशीर्वाद देता है।

हंस की निर्भीकता तथा वाङ्माधुरी उसे आश्चर्य के साथ उत्कण्ठा का एक झोंका और लगा देती हैं। मन ही मन वह सोचने लगता है कि निश्चय ही पक्षी के वेष में यह कोई देवता है। मन से भी किसी प्राणी का अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि कार्य से, इच्छा से या शाप से आश्चर्यजनक प्राणी अपना रूप छिपाकर घूमते फिरते हैं। ऐसा सोचकर वह बड़े स्नेह के साथ हंस का स्वागत करता है। "आपके दर्शन से ही तृप्त हूँ।" यह कह कर हंस राजा को और अनुरागसम्पन्न कर देता है। इसी बीच अपने सहचर को पकड़ा गया देख कर हंस वधू आंसू गिराती हुई राजा के सम्मुख आती है और श्लेषभरी वाणी में बहुत तरह की उलाहनायें सुनाती है। नल भी श्लिष्ट उक्तियों में ही उसका उत्तर देता है। हंस नल से निवेदन करता है कि वह उसकी पत्नी को अपने कटु व्यङ्ग्यों से नाराज न करे। अभी इन तीनों का वाग्विनोद चल ही रहा है तब तक आकाशवाणी होती है—"राजन्, इस हंस को छोड़ दो। यही दमयन्ती को तुम्हारी ओर आकृष्ट करने में सहायक होगा और दूत कार्य करेगा।"

'दमयन्ती' नाम सुनते ही नल रोमाञ्चित हो जाता है और "यह कौन सी दमयन्ती? कौन सा यह आश्चर्यमय पक्षी? कौन यह आकाशवाणी? विस्तार से जानने लायक ये सब चीजें हैं।" यह सोचता हुआ एक छायादार लतामण्डप में बैठकर हंस से कहता है—"कल्याणमित्र! यह दमयन्ती कौन है? क्या इसकी उत्पत्ति है? कैसी सौन्दर्य-लक्ष्मी है?"

राजा की उत्कण्ठा भरी जिज्ञासा को जानकर 'शृङ्गार के स्वर्णकलश ! यदि जानना ही चाहते हैं तो लीजिये, दमयन्ती के रमणीयतम परिचय-पल्लव को अपने कानों का अलङ्कार बनाइये।" हंस ने कहा—

"गङ्गा और गोदावरी के अत्यन्त पवित्र प्रवाह से दुरित दावानल को मूलतः शान्त कर देने वाला सब देशों में सर्वाधिक महत्त्वशील दक्षिण देश है। उसी देश के महत्त्वपूर्ण भाग में वैदर्भमण्डल को अलङ्कृत करने वाला कुण्डिन नाम का नगर है। वहाँ के राजा महाराज भीम हैं। उनकी पटरानी प्रियङ्गुमञ्जरी अपने सौन्दर्य के लिये विश्वविख्यात हैं। पहले इन्हें कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन वनविहार करते समय एक बन्दरी के बच्चे को देख कर इन दम्पती को अपनी सन्तानहीनता के कारण बड़ा दुःख हुआ। रानी प्रियङ्गुमञ्जरी तथा महाराज भीम अभी विचार ही कर रहे थे तब तक अंधेरा हो गया। अन्त में भीम ने पत्नी को यह युक्ति बतायी कि वह कामवर्षी भगवान् शङ्कर की आराधना करे। पति की आज्ञा से सन्ध्याकाल में भगवान् शङ्कर की उपासना के लिये वह देवी समाधिस्थ हो गयी।



॥ श्री ॥

# नलचम्पू:

## संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता

### प्रथम उच्छ्वासः

जयति गिरिसुतायाः कामसन्तापवाहि-
न्युरसि रसनिषेकश्चान्दनश्चन्द्रमौलिः ।
तदनु च विजयन्ते कीर्तिभाजां कवीना-
मसकृदमृतबिन्दुस्यन्दिनो वाग्विलासाः ॥ १ ॥

सर्वप्रबन्धे चतुराननस्य भावानशेषानखिलसद्विशेषान् ।
विभूषयती स्वेन वचश्च येन स्याद्भारती बोधविधूदये च ॥

शक्तित्रिविक्रमस्येव श्रीवाग्जोक्तिविस्तृता ।
दमयन्तीप्रबन्धेन सदा कलिमनोदिता ॥

त्रैविक्रमाणि विषमाणि पदानि यानि
तेषां महार्थमभिनन्दति चण्डपालः ।
य स्यादिमावघटनात्पदुहृष्टिमाक्
समाप्य विश्रान्तितरो रसनिर्भरत्वम् ॥

मङ्गलेर्थनिबन्धा स्तुतिगिर सद्धर्मन्दिरम् ।
सम्प्रत्यर्थनिश्चिते निबन्धोऽयं विधीयते ॥

प्रथममुपमेयमस्मिन्नुपमानमतो विचार्यते सम्यक् ।
अविरोधविरोधावपि यस्यादेव क्रमेणैव ॥
क्वचन विशेषेण मया यथोचितसमासकारकप्रभृति ।
सुगमत्वाच्च यदुक्तं तन्मविमर्द्धि स्वयं सेयम् ॥
सुधमार्थो मत्सुरिच्यन्ते कृपाप्राप्तधिया स्वतः ।
तद्व्याकर्योपेक्षिता प्राय संक्षेपाय ततो मया ॥

सकलमङ्गलकारणं दुरितनिवारणमभिधेयाद्युपयोगि चाचरणमेव शास्त्रादौ कविना किमपि ग्रन्थे तदेतन्मनसि कृत्वाभीष्टदेवताप्रणतिपूर्वकमेव समारब्धव्यमिति पूर्वाचार्यप्रणीतसमाचारमर्यादानुवर्तन सूक्तजलनिधिरपि चन्द्रैरलब्धमध्यो विचित्रपदपङ्क्तिमरित्साधोवीचिभट्ट श्रीत्रिविक्रमभट्ट प्रतिपादनीयसर्वरमकथोपक्रमे सदा-

शृङ्गारत्वादिन्द्रादीनेकान्तशान्तत्वाद्वीतरागप्रभृतीनपहाय सर्वरसात्मकं परमेश्वरं शंकरमेव प्रणुवन्नाह—जयतीत्यादि॥ हैमवत्याः संबन्धिनि कामसन्तापवाहिनि कदर्प-देवपीडां दधाने उरसि चान्दनो रसनिषेक इव सन्तापापहरणाद्रोहणद्रुमरसाभिषेक इव योऽसौ भगवांश्चन्द्रमौलिः सुधांशुशेखरः स जयति सर्वोत्कृष्टो भवति। 'सर्वोत्कृष्टश्च सर्वेषां नमस्यः स्यात्' इति नमस्कारः प्रतीयते। नमस्कारेण च प्रबन्ध-कर्तृव्याख्यातृश्रोतॄणामिष्टफलमपचि। रसा निषिच्यन्तेऽस्मिन्निति रसनिषेको रसाधार इत्यप्येकदेशेन प्रतिपत्तव्यम्। रसाश्च शृङ्गारादयः। तांश्च कवय एव व्यक्ती-कर्तुं प्रभवन्ति। अतस्तदनु रसाधारस्य भगवतः पश्चाद्रसव्यक्तिनिमित्तानां कवीनां वाल्मीकिव्यासकालिदासप्रभृतीनां निरन्तररसाविष्कारिणो वाग्विलासा विजयन्ते॥ अत्र च पूर्वार्धेन वक्ष्यमाणप्रबन्धार्थोऽपि सूच्यते। गिरिर्भीमनृपः। 'गिरिर्भीमनृपे सूर्ये स्वभावे पर्वते जले' इत्युक्ते। तस्य सुतायाः दमयन्त्या दुर्वार-स्मरविकारमनस उरसि नलश्चन्दनरसनिषेको भविष्यति। स च चन्द्रवंशानां मौलिर्मुकुटायमान इति॥ १॥

पर्वत पुत्री (पार्वती) के काम-सन्तप्त वक्ष स्थल पर चन्दन रस के सिंचन सदृश (शीतल लगने वाले) चन्द्रशेखर (भगवान् शिव) सर्वोत्कृष्ट हैं। इसके बाद यशस्वी कवियों के निरन्तर सुधा-बिन्दु बरसाने वाले वाणी के विलास भी उत्कृष्टताशाली हैं।

[ "ज्ञानमिच्छेत्तु शङ्करात्" ज्ञान की कामना तो भगवान् शंकर से करनी चाहिये। इस नियम के अनुसार कवि समस्त मङ्गलों के मूल तथा समस्त रसों के निकेतन भगवान् चन्द्रमौलि को नमस्कार करता है। इसके बाद यशस्वी कवियों के वाग्विलास के प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है। वाग्विलास पद से उक्ति-वैचित्र्य की ओर संकेत किया गया है। किन्तु केवल वाणी की वक्रता ही कवि को ईप्सित नहीं है। वह वैसे वाग्वैचित्र्य की प्रशंसा करना चाहता है जिससे निरन्तर सुधा-माधुरी की वर्षा होती रहती है।

"जयति' पद का अर्थ "सर्वोत्कर्षेण वर्तते" किया जाता है। जिस व्यक्ति में सर्वोत्कृष्टता आ जाती है वह अनायास ही प्रणम्य बन जाता है। इसीलिये प्रणाम के अर्थ में यह पद प्रयुक्त हुआ करता है।

प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्ध भाग में वर्णयिष्यमाण कथातत्त्व की ओर भी संकेत किया गया है।

"गिरिर्भीमनृपे सूर्ये स्वभाव पर्वत जल" इस उक्ति के आधार पर गिरि शब्द का "राजा भीम" अर्थ भी होता है। चन्द्रमौलि शब्द का दूसरा अर्थ नल भी है, क्योंकि नल चन्द्र (चन्द्रवंशियों में) मौलि (श्रेष्ठ) था।

अर्थात् राजा भीम की पुत्री दमयन्ती के काम-सन्तप्त वक्ष स्थल पर चन्दन-रस के सिञ्चन-सदृश नितान्त शीतल प्रतीत होने वाले चन्द्रमौलि नल सर्वोत्कृष्ट हैं॥ १॥

जयति मधुसहायः सर्वसंसारवल्ली-
जननजरठकन्दः कोऽपि कन्दर्पदेवः।
तदनु पुनरपाङ्गोत्सङ्गसंचारितानां
जयति तरुणयोषिल्लोचनानां विलासः॥ २॥

किंसहायः किंमूलः किमुत्करश्च कामो यो जगतः सिवतानिर्माणं निवारयन्नपि स्वीकृत इत्याह—जयतीति। कोऽप्यद्भुतवैभवः कंदर्पदेवो जयति। किंभूतः। मधुसहायो वसन्तसखः। नहि सहायमन्तरेण कश्चिन्महाकार्यकरणाय प्रवर्तते। तथा सर्वस्याः संसारवल्ल्याः उत्पादनाय कठिनकन्दः। कठिनकन्दाद्यथा वल्लीवृद्धिः। कंदर्पदेवादनन्तरं पुनःपुनर्नेत्रापाङ्गप्रदेशक्रोडे कामुकजनवशीकरणाय प्रवर्तितानां नववयःसुन्दरीनेत्राणां कटाक्षादिविभ्रमो जयति॥ २॥

सम्पूर्ण संसाररूप लता को उत्पन्न करने में कठिन कन्द, वसन्त ( जैसे ) मित्रवाले अलौकिक शक्ति-सम्पन्न कामदेव उत्कृष्टताशाली हैं। तदनन्तर तरुणियों के नेत्रप्रान्तरूप क्रोड से सचालित होनेवाले आँखों के ( कटाक्ष आदि ) विलास सर्वोत्कृष्ट हैं।

[ जैसे कठिन कन्द होनहार लता को उत्पन्न करता है। वैसे वसन्त की सहायता प्राप्त किया हुआ अलौकिक महिमावाला कामदेव इस होनहार संसार को उत्पन्न करता है। इसीलिये उसे संसाररूप लता को उत्पन्न करनेवाला कठिन कन्द कहा गया है। कटाक्ष आँखों का विलास है। वह नेत्रों के प्रान्त भागरूप गोद में उत्पन्न होता है। और वहीं विलसित होता है। बच्चे जैसे जननी की गोद में खेलते हैं वैसे आँखों से उत्पन्न होने वाले कटाक्ष अपनी जननी आँखों के अपाङ्ग रूप गोद में खेल रहे हैं। अर्थात् कामुक जनों को लक्ष्य कर छोड़े गये कामिनियों के कटाक्ष भी उत्कृष्टताशाली हैं॥ २॥ ]

अगाधान्तःपरिस्पन्दं विबुधानन्दमन्दिरम्।
वन्दे रसान्तरप्रौढं स्रोतः सारस्वतं महत्॥ ३॥

अथ यद्यपि 'तदनु च विजयन्ते वाग्विलासाः' इति तद्गुणानेव श्लोकत्रयेणाह—अगाधेति॥ सरस्वती भारती नदीविशेषश्च। तस्या इदं सारस्वतम्। स्रोतः प्रवाहं वन्दे नमस्कुर्वे स्तुवे वा। नदीपक्षे प्रवाहस्य तद्धर्मत्वाच्च किंचिद् दुर्घटम्। परं भारतीपक्षेऽन्यधर्मस्यान्यत्रारोपलक्षणमलाधिना गिरां नैरन्तर्येऽपि स्रोतः शब्दः। यथा 'उन्मिमील कमलं सरसीनां कैरवं च निमिमील मुहूर्तात्' इत्यत्रो-न्मीलननिमीलने नेत्रधर्मावपि कमलकुमुदयोरारोपिते किं कुर्वत्। बहुप्रवर्तमानम्। पक्षे भ्रमरत्। तथा अगाधो महार्थतयालक्ष्यमध्योऽन्तर्मध्ये प्रकरणान्मनसि परिस्प-न्दचमत्कारी स्फूर्तिविशेषो यस्य। पक्षेऽगाधो गम्भीरोऽन्तर्मध्ये परि समन्तात्स्प-न्दचलनमावर्तविशेषो यस्य तथा। विबुधानां देवानां पण्डितानां वा हर्षस्थानम्

भारतीविलासेन हि सुराणामपि प्रमोदः सपद्यते। पक्षे वीनां पक्षिणां मध्ये बुधा राजहंसास्तेषां हर्षस्थानम्। तथा रसानां शृङ्गारादीनामन्तरेण विशेषेण प्रौढं प्रगल्भम्। पक्षे रसाया भूमेरन्तरे मध्ये प्रवहति स्म। कर्तरि च। सरस्वती किल म्लेच्छदेशे न्यग्भूय तदन्ते पुनरुद्भवतीति लोकश्रुतिः ॥ ३ ॥

सरस्वती नदी पक्ष—अथाह गहराई के बीच तरङ्गित होने वाले, देवताओं के आनन्द के निकेतन रसान्तर (पृथ्वी के बीच) में बड़ी प्रगल्भता से बहने वाले सरस्वती नदी के प्रवाह को नमस्कार करता हूँ।

वाणीपक्ष—हृदय में विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न करने वाले, विद्वानों और देवताओं के हर्षस्थान (शृङ्गार आदि) विभिन्न रसों की विविधताओं से समृद्ध सरस्वती (वाणी) के विकसनशील प्रवाह को प्रणाम करता हूँ।

[सरस्वती नदी देवताओं को अधिक प्रिय है इसका प्रवाह पृथ्वी के भीतर ही है। वह प्रत्यक्ष नहीं है। कहा जाता है कि प्रयाग में सरस्वती और यमुना गंगा से मिलती है। यमुना की धारा तो प्रत्यक्ष है किन्तु सरस्वती परोक्ष रूप में ही मिली हुई है।

नदीपक्ष के श्लिष्ट शब्द—अगाधान्त परिस्पन्द (अथाह गहराई के बीच तरङ्गित होने वाले), विबुधानन्दमन्दिर (देवताओं के आनन्द-निकेतन), रसान्तरप्रौढ (रसा-पृथ्वी-के भीतर प्रौढ) बहते हुये सारस्वत (सरस्वती नदी के) प्रवाह (धारा) को प्रणाम करता हूँ।

वाणीपक्ष—अगाधान्त परिस्पन्द (हृदय में विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न करने वाला), विबुधानन्दमन्दिर (विद्वानों के आनन्द का निकेतन), रसान्तर-प्रौढ (शृङ्गार आदि विभिन्न रसों की विविधताओं से समृद्ध) सरस्वती के विकसनशील प्रवाह को प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः।
भवन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः ॥ ४ ॥

प्रसन्ना इति ॥ कीदृश्यो वाचः। नानानेकधा प्रसन्नाः प्रसादगुणोपेताः। शब्दगुणः प्रसाद ओजोमिश्रितशैथिल्यात्मा। अर्थगुणस्तु प्रसादो वैमल्यं झटित्यर्थबोधगोचरत्वम्। तथा च काव्यप्रकाशकारः—'श्रुतिमात्रेण शब्दानां येनार्थप्रत्ययो भवेत्। साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणः स्मृतः' ॥ इति। यद्वा प्रसन्ना समासरहिताः उक्तं च—'माधुर्यमभिवाञ्छन्तः प्रसादं च सुमेधसः। समासवन्ति भूयांसि न पदानि प्रयुञ्जते ॥' इति। तथानेकधा कान्तिगुणेन हर्तुं मनो वशीकर्तुं शीलं यासाम्। शब्दगुणः कान्तिरौज्ज्वल्यम्। ग्राम्यादिभिरनभियुक्तत्वमिति यावत्। अर्थगुणस्तु कान्तिर्दीप्तरसत्वम्। तथा नाना शब्दगुणार्थगुणार्थालंकारशब्दालंकार-रूपं चतुर्विधं श्लेषं विशेषेण चक्षते या। शब्दगुणो मसृणत्वं श्लेषः। अर्थगुणस्तु श्लेषो घटना। शब्दकृतः शब्दालंकारः श्लेषः। अर्थकृतस्तु श्लेषोऽर्थालंकारः।

स्त्रियस्तु प्रसन्नाम्नोदान्विताः। तथा कान्त्या वपुषो गुणविशेषेण मनोज्ञाः। तथा नानानेकविधे स्पृष्टक-विद्धक-उद्घृष्ट-पीडन लतावेष्टक-वृक्षाधिरूढ-तिलतण्डुल-क्षीर-नीर-ऊरूपगूढ जघनोपश्लेष-स्तनालिङ्गन-ललाटिक-रूपे द्वादशविध आलिङ्गने विचक्षणा दृष्टा॥ ४॥

वाणीपक्ष—प्रसन्न (प्रसाद गुण से सम्पन्न), कान्ति गुण के कारण मनोहर तथा विभिन्न श्लेषों को प्रकट करने वाली वाणी किसी अलौकिक पुण्य से ही मुख में आती है।

स्त्रीपक्ष—प्रसन्न (पूर्ण प्रमुदित), कान्ति (सौन्दर्य) से मनोहर तथा विभिन्न श्लेषों (आलिङ्गन विधियों) में प्रवीण स्त्रियाँ किसी अलौकिक पुण्य से ही घर में आती हैं।

[ प्रसन्न, कान्ति और श्लेष शब्द प्रसाद, कान्ति एवं श्लेष गुणों की ओर संकेत करते हैं।

आचार्य वामन के अनुसार प्रसाद (शब्द) गुण वहाँ होता है, जहाँ बन्ध की गाढ़ता के साथ शिथिलता भी वर्तमान हो। गाढ़ता और शिथिलता दोनों ही विरुद्ध धर्म हैं। दोनों का एक जगह अवस्थान प्रतिकूल सा लगता है। किन्तु करुण रस के नाटकों में जैसे सुख और दुःख का अद्भुत सम्मिश्रण होता है वैसे ही प्रसाद गुण में भी ओज गुण का मिश्रण रहता है :—

करुणप्रेक्षणीयेषु सम्प्लवः सुखदुःखयोः।

यथानुभवतः सिद्धस्तथैवौजःप्रसादयोः॥ का. सू. वृ. ३. १. ६.

प्रसाद (अर्थ) गुण वहाँ होता है जिस पद से शीघ्र ही अर्थ-प्रतीति हो जाती है।

कान्ति (शब्द) गुण वहाँ होता है जहाँ रचना में उज्ज्वलता (नवीनता) होती है। कान्ति (अर्थ) गुण वहाँ होता है जहाँ रस की दीप्ति लक्षित होती है।

श्लेष शब्द गुण और अलङ्कार दोनों ओर संकेत कर रहा है। अर्थात् शब्द और अर्थ श्लेष गुण एवं शब्दश्लेषालङ्कार तथा अर्थश्लेषालङ्कार।

इन गुणों तथा अलंकारों से युक्त वाणी किसी ही भाग्यवान् के मुख में आती है।

स्त्रीपक्ष में कान्ति और प्रसन्न शब्द सामान्यतः 'सौन्दर्य एवं प्रसन्नतापूर्ण' अर्थ को व्यक्त करते हैं। श्लेष शब्द का आलिङ्गन अर्थ है। आचार्य वात्स्यायन ने बारह प्रकार की आलिङ्गन-विधियों का निर्देश किया है॥ ४॥

किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥ ५॥

तात्पर्य यह कि विद्वानों के बीच पड़ा हुआ साधारण काव्य भी उनकी आलोचनाप्रवण प्रतिभा के योग से नवीन-नवीन व्याख्याओं से सम्पन्न होकर उल्लसित हो उठता है ॥ ८ ॥

अत्रिजातस्य या मूर्तिः शशिनः सज्जनस्य च ।
क सा वै रात्रिजातस्य तमसो दुर्जनस्य च ॥ ९ ॥

अधुना सज्जनदुर्जनयोः शीलेन साम्यम् । यावन्मूल्योऽपि महदन्तरमिति निरूपयन्नाह—अत्रीति ॥ अत्रिमुनिजातस्य शशाङ्कस्य न त्रिभिर्जातस्य सज्जनस्य च या मूर्तिः सर्वाभीष्टा सा वै स्फुटं रात्रिजातस्य तमसस्त्रिजातस्य दुर्जनस्य च क । यतो दुर्जनस्य वैरा वैर प्रधाना । सज्जनस्य त्ववैरा ॥ ९ ॥

अत्रि ऋषि से उत्पन्न होने वाले ( अत्रिजात ) चन्द्रमा तथा तीन से न उत्पन्न होने वाले (अ + त्रिजात) सज्जन की ( प्रसन्न एवं कल्याणमयी ) मूर्ति कहाँ और रात्रि से उत्पन्न होने वाले ( रात्रिजात ) अन्धकार तथा वैरप्रधान ( वैरा ) एवं तीन से जन्म लेने वाले ( त्रिजात ) दुर्जन की ( अमङ्गलमयी ) मूर्ति कहाँ ?

[ चन्द्रमा की उत्पत्ति अत्रि से है इसीलिए उन्हें अत्रिजात कहा जाता है। सज्जन भी अत्रिजात हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति वैध पिता से ही हुई रहती है। किसी तीसरे व्यक्ति अर्थात् जार से उनकी उत्पत्ति नहीं होती। तात्पर्य यह कि वे वर्णसङ्कर नहीं होते।

अन्धकार और दुर्जन दोनों ही वैरात्रिजात होते हैं। अन्धकार वै + रात्रिजात ( निश्चित रूप से रात्रिद्वारा उत्पन्न ) होता है। दुर्जन की मूर्ति वैरा (वैर प्रधान) और त्रिजात (तीन से उत्पन्न) होती है। सज्जन और दुर्जन में उतना ही अन्तर है जितना प्रकाश और अन्धकार में। सज्जन और दुर्जन में स्वभावतः महान् भेद हुआ करता है। गुण में कितना भेद होता है, यह कल्पनातीत बात है ॥ ९ ॥ ]

निश्चितं ससुरः कोऽपि न कुलीनः सदैऽमतिः ।
सर्वथासुरसंबद्धं काव्यं यो नाभिनन्दति ॥ १० ॥

निश्चितमिति ॥ सुष्ठु रसाः शृङ्गारादयो यत्र तथा बद्धं रचितं काव्यं ग्रन्थं यो नाभिनन्दति स निश्चितं ध्रुवं ससुरो सखर कोऽपि । न च कुलीनः साभिमानः । सर्वथा सदैऽसाधारमति । असुरैः सबद्ध मिलितं काव्य शृणु ( ? ) यो न नन्दति स सुर देव कोऽपि । तथा स को भूम्यां लीन आश्लिष्ट स्वर्ग एव तस्यावस्थानात् । तथा मा लक्ष्मी कः काम , ताभ्यां सहितः समेतो विष्णुस्तत्र सेवनाय मतिर्यस्य । विष्णुपरोऽपि इति भावः ॥ १० ॥

काव्यपक्ष—सुन्दर ( शृङ्गारादि ) रसों से युक्त काव्यबन्ध ( काव्य-रचना ) का अभिनन्दन जो आदमी नहीं करता है वह निश्चय ही अकुलीन, मद्यप तथा सज्जन से स्नेह नहीं रखता है।

भृगुपक्ष—जो सर्वदा असुरों से सम्बद्ध काव्य ( कविपुत्र भृगुमुनि ) से सम्बन्ध नहीं रखता है वह निश्चित ही कोई सुर (देवता) है। वह कु (पृथ्वी) में लीन नहीं रहता तथा मा ( लक्ष्मी ) और ई ( कामदेव प्रद्युम्न ) के साथ रहने वाले विष्णु में मति ( विश्राम ) रखता है।

[ काव्यपक्ष—सुरस—सुन्दर रसों से सम्पन्न, बद्ध—निर्मित। ससुर—सुरा रखने वाला या सुरा पीने वाला। काव्य—कवि (शुक्राचार्य) के पुत्र भृगुमुनि। शुक्राचार्य दानवों के गुरु थे। भृगु उनके योग्य पुत्र (?) थे। असुरों से सर्वथा सम्बद्ध रहने वाले भृगुमुनि का अभिनन्दन देव लोग नहीं करते हैं। देव लोग पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते। कु ( पृथ्वी ) में लीन नहीं रहते हैं। लक्ष्मी तथा प्रद्युम्न सहित भगवान् विष्णु में ध्यान लगाये रहते हैं ॥ १० ॥

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥ ११ ॥

समनि वाग्विलासाधारानुदारान्वाल्मीकिप्रभृतीन्कतिचित्कवीन्वर्णयन्नाह—सदूषणेति ॥ अपिर्विरोधे। स स दूषणखरयोर्दोषार्थकठिनार्थकत्वे भवेत्। परिहारस्तु दूषणखरौ राक्षसौ यत्र वर्णितौ। इहानुक्तेऽपि वाल्मीकिः प्रतीयते। 'प्रौढविशेषेण-योगाद्वृत्तेऽप्यप्रतिपत्तिः' इति वचनात्। किं चासौ भरावाग्मन्यंश्लोके काव्यसृष्टि-प्रथमवेधा निरुपमरमणीयकरामायणनिर्माणप्रवीणतयैव निर्दिश्यमानः प्रकृष्यते। न पितरसाधारणसंज्ञामात्रनिर्देशेन। अत एव कवितोरुकर्षचमत्कृतेन वाक्यममार्हि प्रतीचितुमवधमेन त्रिविक्रमेण वाक्यमर्मेऽपि तस्मै नमः इति भक्तिप्रकर्षप्रकाशन-मुक्तम्। अर्थयोर्व्यासपाठे तु वर्णितदोषशंकैव न स्यात् ॥ ११ ॥

दूषणयुक्त होने पर भी निर्दोष, खर ( रूक्ष ) होने पर भी कोमल रमणीय रामायण की कथा जिसने बनायी उस ( महाकवि वाल्मीकि ) को प्रणाम है।

[ दूषण और खर शब्द आपाततः विरोध की प्रतीति कराते हैं। परिहार पक्ष में तो खर और दूषण शब्द से खर और दूषण नामक राक्षसों से तात्पर्य है। विभिन्न राक्षसों के उपाख्यानसम्बन्ध एवम् अलौकिक-दृश्य चरित्रों को चित्रित करते हुए भी काव्य की रमणीयता जिन कवि ने सुरक्षित रक्खी वह निश्चित अभिनन्दनीय है ॥ ११ ॥

व्यासः क्षमाभृतां श्रेष्ठो वन्द्यः स हिमवानिव।
सृष्टा गौरीदृशी येन मध्ये विस्तारिभारता ॥ १२ ॥

व्यास इति ॥ कृष्णद्वैपायनो वन्द्य । किंभूत । क्षान्तानां मध्येऽतिशयेन प्रशस्यः। तथा येनेदृशी सर्वत्र विख्याता विस्तरणशीलं भारतं यस्यां सा भवे संसारे गौर्वाक्सृष्टा। क इव। हिमवानिव। किंभूतः स । क्षमाभृतां भूभृतां श्रेष्ठः। तथा येन भवे शिवे रक्तानुरक्तैवंभूता गौरी सृष्टा। किंभूता। विस्तारिणी भा कान्तिर्यस्याः ॥ १२ ॥

व्यासपक्ष—क्षमाशील व्यक्तियो मे श्रेष्ठ महर्षि व्यास हिमालय की तरह वन्दनीय हैं, जिन्होने संसार मे विशाल भारत ( महाभारत ) रूप वाणी की रचना की।

हिमालयपक्ष—पर्वतो मे श्रेष्ठ हिमालय वन्दनीय है, जिसने ऐसी विकसनशील कान्ति वाली गौरी का निर्माण किया जो भगवान् शंकर मे अनुरक्त है।

[ व्यासपक्ष—क्षमाभृताम् + श्रेष्ठ—पर्वतो मे श्रेष्ठ। गौरीदृशी—गौ + ईदृशी—इस तरह की वाणी। भवे—संसार मे। विस्तारिभारता—विशाल भारत की रचना जिस वाणी मे हुई वह वाणी।

हिमालयपक्ष—क्षमाभृता श्रेष्ठ—पर्वतो मे श्रेष्ठ। विस्तारिभा—विकसन कान्तिवाली। गौरीदृशी—ईदृशी गौरी—इस तरह की गौरी। भवे—शंकर भगवान् मे। रक्ता—अनुरक्त हैं ॥ १२ ॥

कर्णान्तविभ्रमभ्रान्तकृष्णार्जुनविलोचना ।
करोति कस्य नाह्लादं कथा कान्तेव भारती ॥ १३ ॥

कर्णेति ॥ कर्णस्य राधेयस्यान्ते विनाशे सति विभ्रमेण विस्मयेन वेगंदस्य भ्रमेण वाऽनिश्चायकेन भ्रान्ता विचरितु प्रवृत्ता कृष्णपार्थंघनराङ्गा यस्याम् । केव। कान्तेव। किंभूता। श्रवणपर्यन्ते विलासेन भ्रान्ते स्फुरिते कृष्णार्जुने श्यामधवले विलोचने नेत्रे यस्या ॥ १३ ॥

भारतीकथापक्ष—( कुन्तीपुत्र ) कर्ण का अन्त ( मृत्यु ) हो जाने पर विस्मय के कारण चचल कृष्ण और अर्जुन के नेत्रो का वर्णन जिसम किया गया है वह कान्तासदृश भारती ( महाभारत की ) कथा किसको आनन्दित नहीं करती ?

कान्तापक्ष—( कटाक्ष आदि ) विलास मे चचल एव कानो तक फैले हुए कृष्ण ( नीली कनीनिकाओ ) और अर्जुन ( सफेद भागयुक्त ) नेत्रो वाली कान्ता किसे नहीं आनन्द देती ?

[ महाभारत की कथा कान्ता की तरह आनन्द उत्पन्न करती है। इस श्लोक के प्रथम और द्वितीय चरण कान्ता और कथा दोनो पक्ष मे लगते हैं। शाब्दी समानता के ही आधार पर यहाँ उपमा दी गयी है ॥ १३ ॥ ]

शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः॥ १४॥

शश्वदिति॥ बाणः कविः शरश्च। गुणाढ्यकविर्बृहत्कथाकारो गुणेन ज्यया युक्तश्च। न मदाकारं स्तब्धत्वादिरूपं धारयतीत्येवंशीलः कविः। नमदाकारं धारयतीत्येवंशीलं धनुः। रञ्जितः प्रमोदं प्रापितः। अरमत्यर्थं जितो जनः प्रतिपक्षलोकश्च॥ १४॥

कुत्सित (मदाकार) को न धारण करने वाले (महाकवि) बाण को भी सदा द्वितीय स्थान देने वाले (कविवर) गुणाढ्य ने सब लोगों को रञ्जित (अनुरञ्जित) किया—जैसे।

धनुपक्ष—सदा बाण को अपने साथ रखने वाले, नमित हुई आकृति (नम्राकार) धारण करने वाले, गुण (प्रत्यंचा) से आढ्य (मजबूत) धनुष सम्पूर्ण प्रतिपक्षियों को पूर्ण रूप से जीत लेता (अरम्+जित) है।

[ मद विभिन्नता ला देता है। विवेक शक्ति कुण्ठित हो उठती है, लेकिन महाकवि गुणाढ्य इस दुर्गुण से दूर है। महाकवि बाण जैसा यशस्वी कवि भी जिसके सम्मुख द्वितीय स्थान प्राप्त करता है, उसने अपनी बृहत्कथा से सब लोगों को अनुरञ्जित किया है। धनुष केवल शब्दगत समानता के आधार पर गुणाढ्य का उपमान बना है।

धनुष सदा बाण द्वितीय (बाण के साथ रहना) है, नमदाकारधारी (नमित हुई आकृति को धारण करता) है और वह गुणाढ्य (गुण—प्रत्यंचा के कारण आढ्य—मजबूत) है।

निःशेषो रञ्जितो जनः—का अन्वय धनुपक्ष में निःशेष-जन अरम्-जित—करना चाहिये। अरम् शब्द का प्रयोग यहाँ पर्याप्त अर्थ में हुआ है। कवि गुणाढ्यपक्ष में निःशेषो और रञ्जित के बीच में खण्डाकार (ऽ) नहीं है। अर्थात् वह कवि सब लोगों का अनुरञ्जन करता है॥ १४॥ ]

इत्थं काव्यकथाकथानकरसैरेषां कवीनाममी
विद्वांसः परिपूर्णकर्णहृदयाः कुम्भाः पयोभिर्यथा।
वाचो वाच्यविवेकविक्लवधियामीदृग्विधा मादृशां
लप्स्यन्ते क विलासकाशमथवा सर्वसहाः सूरयः॥ १५॥

इत्थं कविवर्णनं संक्षिप्याह इत्थमिति॥ तर्हि कथाप्रबन्धप्रयत्नेन किमित्याह—अथवेति॥ १५॥

इस तरह इन (महाकवियों) की काव्य-कथा एवम् आख्यानों के रस से इन (सम्मानाधिक) विद्वानों के कान तथा हृदय दूध से भरे घड़े की तरह

भर चुके हैं। ( ऐसी स्थिति में ) वक्तव्य वस्तु के उपस्थापन में विवेकशून्य बुद्धिवाले मेरे जैसे लोगों की इस तरह की तुच्छ वाणी कहाँ स्थान पा सकेगी? (फिर भी निराश होने की कोई बात नहीं है क्योंकि) विद्वान् सबका समादर करते हैं ॥ १५ ॥

वाचः काठिन्यमायान्ति भङ्गश्लेषविशेषतः।
नोद्वेगस्तत्र कर्तव्यो यस्मान्नैको रसः कवेः ॥ १६ ॥

भङ्गश्लेषमुक्तिविशेषेण सन्नुन्वन्नाह—वाच इति ॥ यतो हेतो कवे काव्यकर्तुर्नैको रसो नैका रुचिः प्रसत्तिलक्षणा व्युत्पत्तिलक्षणाप्यस्ति ॥ १६ ॥

विशेषतः सभङ्ग श्लेष में वाणी कठिन हो जाती है ( फिर भी ) उसमें उद्विग्न नहीं होना चाहिये क्योंकि कवि के लिये एक ही रस नहीं है।

[ श्री त्रिविक्रम भट्ट जैसे कवि को श्लिष्ट काव्य-निर्माण में ही रसानुभूति होती है ॥ १६ ॥ ]

काव्यस्याम्रफलस्येव कोमलस्येतरस्य च।
बन्धच्छायाविशेषेण रसोऽप्यन्यादृशो भवेत् ॥ १७ ॥

ननु प्रसत्तिमात्रेण कोमलमेव काव्यं निबध्यताम्, किमितरेण व्युत्पत्तिमात्रेण भङ्गश्लेषकृतकाठिन्येनोद्वेगहेतुनेत्यत आह—काव्यस्येति ॥ कोमलस्य प्रसन्नस्येतरस्य व्युत्पन्नस्य काव्यस्य रचनाचारुत्वेन रसोऽपि शृङ्गारादिरसोऽप्यन्यादृशोऽन्यरूपो व्युत्पत्तिचर्वणा सोत्कर्ष इव स्यात्। कस्येव। आम्रफलस्येव। यथाम्रफलस्याकारवैसादृश्य बन्धस्य वृन्तस्य नीलपीतादिच्छायायाश्च विशेषेण यावद्रस, स्वादोऽप्यन्यादृग्भवति। बध्यतेऽनेनेति कृत्वा बन्धो वृन्तं फलारम्भकरसकणिकारूपो वा। काव्यपक्षे बन्धो रचना ॥ १७ ॥

आम्रफल की तरह प्रसादगुणसम्पन्न कोमल काव्य तथा उससे भिन्न श्लिष्ट काव्य के रस में रचना-चातुरी के वैशिष्ट्य से अन्तर आ ही जाता है।

[ प्रसाद गुण युक्त सरल काव्यों में अभिव्यक्त होने वाले रस में और श्लिष्ट काव्यों से व्यक्त होने वाले रस में पदसंघटनामूलक ( बन्धच्छाया के ) विचित्रता के कारण अन्तर पड़ जाता है। आम के फल को तोड़ कर पकने के लिये भूसा में रख कर कमरे में बन्द कर देते हैं तो उसका रस अत्यन्त मधुर हो जाता है। यदि उसी तरह के आम को खुली जगह में रख दें तो उसका स्वरूप तो दर्शक के सामने हमेशा रहेगा और कालक्रम से हवा एवं धूप के साधारण सम्पर्क से वह पक भी जायगा लेकिन उसका रस वैसा नहीं होगा जैसा भूसा आदि में बन्द कर पकाये गये आम का। ]

प्रौढ रचना के आवरण मे आवृत काव्य का रस परिपक्व हो जाता है। अतएव उसकी माधुरी भी घट जाती है। प्रसादयुक्त रचना से स्फुटता के कारण विद्वान् सहृदय के लिये आकर्षक रससम्पत्ति नही रहती ॥ १७ ॥

**अस्ति समस्तमुनिमनुजवृन्दवृन्दारकवन्दनीयपादारविन्दस्य भगवतो विधेर्विश्वव्यापिव्यापारपारवश्यादवतीर्णस्य संसारचक्रे क्रतुक्रियाकाण्डशौण्डस्य शाण्डिल्यनाम्नो महर्षेर्वंशः।**

समस्त मुनियो एव मानव-समूहों के श्रेष्ठ व्यक्तियो द्वारा वन्दनीय चरण कमल वाले, भगवान् ब्रह्मा के विश्वव्यापी व्यापार की परवशता से इस संसारचक्र में आये हुए, यज्ञ कर्म मे निष्णात महर्षि शाण्डिल्य का वंश है।

[ ब्रह्मा अपने व्यापार का विषय सबको बना देते हैं। भगवान् नारायण को भी राम-कृष्ण-वामन आदि अवतार धारण करना पड़ता है और इस संसार-चक्र में आना होता है। इसी तरह महर्षि शाण्डिल्य भी अलौकिकशक्तिसम्पन्न देवकोटि के प्राणी थे किन्तु ब्रह्मा ने उन्हें भी अपने व्यापार का विषय बना ही दिया। अतएव इस संसार मे उन्हें आना पड़ा ॥ ]

**श्रूयन्ते च यत्र श्रवणोचिताश्चन्दनपल्लवा इव केचिदनूचानाः शुचयः सत्यवाचो विरञ्चिवर्चसोऽर्चनीयाचारा ब्रह्मविदो ब्राह्मणाः। पुण्यजनाश्च न च ये लङ्कापुरुषाः, ससूत्राश्च न च ये लम्पटाः, प्रसिद्धाश्च न च ये लम्पाकाः, कामवर्षाश्च न च ये लङ्घनाः सन्मार्गस्य, नववयसोऽपि न च ये लम्बालकाः, महाभारतिकाश्च न च ये रङ्गोपजीविनः, सेविताप्सरसोऽपि न च ये रम्भयान्विताः।**

श्रूयन्त इति ॥ यत्र महर्षेर्वंशे ईदृशा ब्राह्मणाः श्रूयन्त इत्यन्वयः। कीदृशाः। श्रवण आकर्णने उचिता योग्याः। पुण्यरूपत्वात्। चन्दनपल्लवास्तु श्रवणयोः कर्णयोरवतंसीकरणाय योग्याः। पुण्यजना यातुधाना लङ्कावासिनो नेति विरोधः। पुण्याः पवित्रा जना लोका अत्यन्तमर्थं न कापुरुषा इति विरोधपरिहारेण ब्राह्मणाः प्रशस्यन्ते। एवमग्रेऽपि। तथा सूत्रेण तन्तुना सहिता अप्यत्यन्तं पटाभाववन्त। सूत्रेणोपवीतेन वेदपाठेन वा युक्ता अपि न लम्पटा व्यालसाः। तथा प्रकर्षेण सिद्धा अग्निसंस्कारे निष्ठां प्राप्ता अपि पूपाख्यास्ते कथमलं न पच्यन्ते स्म। प्रसिद्धा विख्याता न लम्पाका लम्पटाः। तथा कामवर्षिणोऽपि नालं मेघाः। अभिलषितदातारोऽपि सन्मार्गस्य लङ्घना न। तथा नवावस्था अपि नालं शिशवः। तरुणावस्था अपि न दीर्घकेशाः। अग्निहोत्रित्वात्। तथा महान्तो नटा अपि न नृपभूयुपजीविनः। महान्तो भारताध्यायका अपि नात्यर्थं गोपान्नृपाज्जीवन्ति। 'राजान्नं तेज आदत्ते' इति दोषश्रवणात्। तथा शुक्रदेवाङ्गना अपि न रम्भया युताः। सेविताधि बहुप्रधानानि सरांसि यैस्तथाविधा अपि न च येऽत्यन्तं मयान्विताः ॥

उस महर्षि वंश में कानों में चन्दनपल्लव सदृश प्रिय लगने वाले, विद्वान् (अनूचान), पवित्र, सत्यवादी, ब्रह्मतेज से युक्त, अभिनन्दनीय आचरण वाले, कुछ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण सुने जाते हैं। वे पुण्यजन हैं, व्यर्थ के कायर नही हैं। यज्ञोपवीत सहित हैं, लम्पट नही हैं। प्रसिद्ध हैं, लम्पाक ( धूर्त ) नही हैं। समस्त कामनाओं को देने वाले हैं, उचित मार्ग का अतिक्रमण करने वाले नही हैं। तरुण अवस्था के हैं लेकिन उनके बाल लम्बे-लम्बे नहीं हैं। विशाल भारत के निवासी हैं किन्तु वहाँ महान राजा (गोपरक्षक) से कुछ नही लेते। जलपूर्ण सरोवर से स्नान करते हैं, डरते नहीं हैं।

[ इस अनुच्छेद में सभग श्लेष देखने में ही चमत्कार है।

पुण्यजन ( राक्षस ) होते हुए भी लंकानिवासी नहीं हैं। विरोध।

वे पुण्य जन ( पवित्र पुरुष ) हैं और अल ( व्यर्थ के ) कापुरुष (कायर पुरुष ) नही हैं। परिहार।

आचार्य चण्डपाल ने अलं का "पर्याप्त" अर्थ किया है। इस अर्थ में आपत्ति यह दीखती है कि वाक्य का अर्थ होगा—पर्याप्त या अत्यधिक कायर नही हैं। अर्थात् कुछ कायरता तो है ही। अतः यह अर्थ प्रशंसा के बदले निन्दा की ओर संकेत करने लगता है, जो कि कवि का विवक्षित नहीं है।

ससूत्र ( तन्तुयुक्त ) हैं किन्तु उनके पास पर्याप्त ( अलम् ) पट ( वस्त्र ) नही। सूत्र से ही वस्त्र बनता है। सूत्र होते हुए भी उन्हें वस्त्र का अभाव है। विरोध।

ससूत्र ( यज्ञोपवीत तथा कटिसूत्रयुक्त ) हैं किन्तु लम्पट ( धूर्त ) नहीं हैं। इस पक्ष मे ये और लम्पट के बीच खण्डाकार ( ऽ ) की कल्पना नहीं करनी चाहिये। परिहार।

प्र + सिद्ध ( पूर्ण रूप से पक कर सिद्ध ) हो जाने पर भी लम ( पूर्ण रूप से ) पाक नही हो पाया है। विरोध।

प्रसिद्ध ( विख्यात ) हैं किन्तु लम्पाक ( धूर्त ) नही हैं। परिहार।

कामवर्ष ( यथेच्छ वरसने वाले ) हैं किन्तु अलघन ( पर्याप्त बादल ) नही हैं। विरोध।

कामवर्ष ( कामनाओं को देने वाले ) हैं किन्तु (उत्तम मार्गों का) लङ्घन करनेवाले नहीं हैं। परिहार।

नववयस्—प्रारम्भिक अवस्था वाले हैं किन्तु लम्बालक ( लम्बे-लम्बे बालों वाले ) नही हैं। तरुण अवस्था में सुन्दरता के लिए लम्बे-लम्बे बाल

होने चाहिये थे। अथवा नवीन अवस्था है फिर भी लोग जल-बालक ( पूर्ण शिशु ) नहीं हैं। विरोध।

अग्निहोत्री ब्राह्मण हैं, अतः हमेशा बालों को छिलवा दिया करते हैं। इसीलिए उनके बाल लम्बे लम्बे नहीं हैं। परिहार।

महाभारतिक ( प्रसिद्ध नट ) हैं फिर भी रङ्गोपजीवी ( रङ्गमञ्च से जीविका चलाने वाले ) नहीं हैं। विरोध।

महाभारतिक (विशाल भारत के रहनेवाले) हैं किन्तु अरम् + गोपजीवी (पूर्णतः राजा से जीविका ग्रहण करने वाले) नहीं हैं। गो शब्द का पृथ्वी अर्थ है, उसका पालन करने वाले राजा को गोप कहते हैं। राजा का अन्न तेज खींच लेता है। इसीलिये तेजस्वी ब्राह्मण राजा की दक्षिणा नहीं लेते। परिहार।

सेविताप्सरस ( देवरमणियों का उपभोग करने ) हैं किन्तु रम्भयाऽन्वित ( रम्भा नामक मुख्य अप्सरा से उनके सम्पर्क ) नहीं हैं। विरोध।

सेविताप्सरस् (जल सरोवरों का सेवन करने वाले) हैं किन्तु अरम् + भया-न्वित (व्यर्थ के भय से युक्त) नहीं हैं। अर्थात् तपस्या के उद्देश्य से निःशङ्कता-पूर्वक जलसमाधि लेते हैं। ठंढी लगने का भय उन्हें नहीं रहता। परिहार। ]

किं बहुना।

जानन्ति हि गुणान्वक्तुं तद्विधा एव तादृशाम्।
वेत्ति विश्वंभरा भारं गिरीणां गरिमाश्रयम्॥ १८॥

अधिक कहने से क्या—वैसे लोगों के गुणों का विवेचन उन्हीं के सदृश लोग कर सकते हैं, सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी ही पर्वतों के गम्भीरतामूलक भार को जानती है॥ १८॥

तेषां वंशे विशदयशसां श्रीधरस्यात्मजोऽभूद्-
देवादित्यः स्वमतिविकसद्वेदविद्याविवेकः।
उत्कल्लोलां दिशि दिशि जनाः कीर्तिपीयूषसिन्धुं
यस्याद्यापि श्रवणपुटकैः कूणिताक्षाः पिबन्ति॥ १९॥

देवेति। कूणिताक्षाः सुखात्किञ्चिन्निमीलितनेत्राः॥ १९॥

उन्हीं निर्मल यश वाले ब्राह्मणों के वंश में श्रीधर जी के लड़के देवादित्य हुए। अपनी प्रतिभा से ( ही ) वे वेद विद्या के सम्बन्ध में विशेषज्ञता प्राप्त कर चुके थे। उनके उमड़ते हुए कीर्तिसुधासागर को लोग आज भी प्रत्येक दिशा में आनन्द के मारे आँखों को निमीलित कर श्रवणरूपी अञ्जलि से पी रहे हैं॥ १९॥

तैस्तैरासमगुणैर्येन त्रिलोक्यास्तिलकायितम् ।
तस्मादस्मि सुतो जातो जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः ॥ २० ॥

अपने उन-उन अलौकिक गुणो के कारण तीनो लोको मे जो तिलक सदृश थे, उन्ही से समस्त जडताओ का पात्र मैं त्रिविक्रम जन्मा हूँ ॥ २० ॥

सोऽहं हंसायितुं मोहाद् बकः पङ्गुर्यथेच्छति ।
मन्दधीस्तद्वदिच्छामि कविवृन्दारकायितुम् ॥ २१ ॥

सोऽहमिति ॥ मोहादज्ञानाद्गतिमात्रमपि बकः स्वभावसुभगगतेर्हंसस्यापेक्षया पङ्गुः अथवा दैवात्कथंचिद्भग्नचरणत्वाद्बकः पङ्गुः ॥ २१ ॥

जैसे कोई लँगडा बगुला हंस बनना चाहता है वैसे ही मन्दबुद्धि मैं कवियो मे मुख्य बनना चाहता हूँ ॥ २१ ॥

भङ्गश्लेषकथाबन्धं दुष्करं कुर्वता मया ।
दुर्गस्तरीतुमारब्धो बाहुभ्यामम्भसां पतिः ॥ २२ ॥

भङ्गेति ॥ यथा बाहुभ्यां दुस्तरः समुद्रस्तथा भङ्गश्लेषकथाबन्धोऽपि दुष्कर इत्यौपम्याद्दृष्टान्तोऽलंकारः । 'अप्रस्तुतप्रशंसा उपमा परिकल्पकः' इति ॥ २२ ॥

भङ्गश्लेषयुक्त एक अत्यन्त कठिन ( दुष्कर ) कथाग्रन्थ की रचना करने जा रहा हूँ। यह मेरी इच्छा हाथ से अगाध एव दुस्तर सागर तैरने (के साहस) की तरह है ॥ २१ ॥

उत्फुल्लगल्लैरालापाः क्रियन्ते दुर्मुखैः सुखम् ।
जानाति हि पुनः सम्यक्कविरेव कवेः श्रमम् ॥ २३ ॥

उत्फुल्लेति ॥ दुष्टमुखैः क्रियमाणत्वादालापा अपि दुष्टा निन्दाकराः । 'वल्लापाः' इति पाठे काकुभाषितानि । दुर्मुखैः स्वैरं क्रियन्ते । गल्लशब्दो ग्राम्योऽप्यत्र दुर्मुखा-नामकवीनां ग्राम्याणां निन्दाभिधाने प्रयुक्तः समुचित एव ॥ २३ ॥

निन्दा करने वाले (दुर्मुख) लोग बडे सुख के साथ गला फाडकर (दूसरो पर कटु ) व्यङ्ग्य कसा करते हैं किन्तु कवि के ( सराहनीय ) श्रम को अच्छी तरह कवि ही समझ सकता है ॥ २३ ॥

संगता सुरसार्थेन रम्या मेरुचिराश्रया ।
नन्दनोद्यानमालेव स्वस्थैरालोक्यतां कथा ॥ २४ ॥

संगतेति ॥ रुचिरो रम्य आश्रयो नलोपाख्यानलक्षणो यस्याः सेयं मम स्वस्थैः स्वर्गस्थैरालोक्यतां विमृश्यताम् । स्वस्थे चित्ते सुहृदय सञ्चरन्ति । किंभूता । शोभनो रसः शृङ्गारादिर्यत्र तथोचितेनार्थेन सङ्गतोचिता । औचित्यं हि रसस्य परमरहस्यम् । उक्तं च—'अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम् । प्रसिद्धौचित्यबन्धो हि रसस्योपनिषत्परा ॥' तथा रम्या भङ्गश्लेषोक्तिभिर्मनोहरा । पक्षे स्वः स्वर्गे तिष्ठन्तीति कृत्वा स्वस्थैः स्वर्गवासिभिः ॥ "खर्परे शरि वा विसर्गलोपः" ॥ किंभूता । सुराणां सार्थो वृन्दं तेन संगता कृतसङ्गा । तथा मेरुः सुरगिरिश्चिरमाश्रयो यस्याः ॥ २४ ॥

सुन्दर ( शृङ्गार आदि ) रसमय वर्णों के कारण औचित्यसम्पन्न मनोहर ( नल-दमयन्ती का ) चर्चा पर आधारित नन्दनवनपङ्क्तिसदृश भरी इस रमणीय कथा को सुस्थिर चित्तवाले लोग देखें।

नन्दनवन पक्ष —इन्द्र के विहार वन का नाम नन्दनवन है। नन्दनवन माला सुर + नाथ ( देव समूह ) से सम्पन्न युक्त है। वह रमणीय एवं मरु-चिराश्रया ( मरुपर्वत पर चिरकाल से स्थित ) है। स्वस्थ (स्वर्गस्थित लोगों) द्वारा देखी जाती है।

कथा पक्ष —सुरस + अर्थ (शृङ्गार आदि सुन्दर रसमय अर्थों) से सम्पन्न ( औचित्य-सम्पन्न ) भरी रमणीय कथा को स्वस्थ (सुस्थिर चित्तवाले) लोग विचारपूर्वक देखें ॥ २४ ॥

उदात्तनायकोपेता गुणवद्वृत्तमुक्तका।
चम्पूश्च हारयष्टिश्च केन न क्रियते हृदि ॥ २५ ॥

उदात्तेति। उदात्तेन महात्मना नायकेन सहोपेता। तथौजःप्रसादादिगुणयुक्तं वृत्तं छन्दोबद्धं मुक्तकं गद्यात्मकं च यस्यां सा चम्पूर्गद्यपद्यमयी सा हारयष्टिश्च उदात्तेन महार्घेण नायकेन हारमध्यरत्नेनोपेता। तथा तन्तुमत्यो वृत्तमुक्ता वर्तुलमौक्तिकानि यस्यां सा मुक्ताहारलता च केन चित्ते वक्षसि च न क्रियते ॥२५॥

चम्पू पक्ष —उदात्तनायकोपेता ( धीरोदात्त नायक से युक्त ) गुणवद् + वृत्त मुक्तका (प्रसाद ओज माधुर्य आदि गुणों से युक्त) गद्यपद्यात्मक चम्पू।

उदात्त नायक से युक्त, ( प्रसाद, ओज, माधुर्य आदि ) गुणों से समन्वित पद्य तथा गद्य से युक्त चम्पू और उज्ज्वल मध्यमणिवाली सूत्र में ग्रथित हार-लता को कौन नहीं हृदय से लगाता।

हारलता पक्ष —उदात्तनायकोपेता-उज्ज्वल और मध्यमणि से युक्त गुणवद्वृत्तमुक्तका-तन्तु में पिरोयी हुई मोतीवाली हारलता को कौन नहीं हृदय से लगाता ॥ २५ ॥

अस्ति समस्तविदग्धजनाभोगभास्वद्धल्लीमलीलायमान समान सेव्यतया नाकलोकस्य, भाग्यकविकथारम्भ इव नीरसस्यमनोहर, भीम इव भारतालङ्कारभूत, कान्ताकुचमण्डलस्पर्श इवाग्रणी सर्व-विषयाणाम्। अनधीतव्याकरण इवादृष्टप्रकृतिनिपातोपसर्गलोपवर्ण-विकारः पशुपति जटाबन्ध इव विकसितकनककमलकुवलयोच्छलित-रज पुञ्जपिञ्जरितहंसावतंसया प्रचुरचलच्चकोरचक्रनाककारण्डव-मण्डलीमण्डिततीरया भगीरथभूपालकीर्तिपताकया स्वर्गगमनसोपान वीथीयमानरिङ्गत्तरङ्गया गङ्गया पुण्यसलिलै: प्लावितश्चन्द्रभागा-लंकृतैकदेशश्च, सारः सकलसंसारवनस्य, शरण्य पुण्यकारिणाम्,

आरामो रामायणीयककदलीवनस्य, धाम धर्मस्य, आस्पदं संपदाम्, आश्रयः श्रेयसाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम्, आचार्यभवनमार्यमर्यादोपदेशानामार्यावर्तो नाम देशः ॥

अस्तीति। 'आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्राच्च पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥' इति मनूक्तलक्षण आर्यावर्तो नाम प्रसिद्धो देशोऽस्ति। किंभूत। नीरेण धान्येन च मनोज्ञ। पक्षेऽरसिकस्य मनोज्ञ'। तथा भारतवर्षस्य मण्डनभूत। पक्षे भारतस्येतिहासस्य। तथा विषयो देशः। पक्षे इन्द्रियार्थं'। तथा न दृष्टः प्रकृतीनां निपातः स्वपदात्पतनम्, उपसर्गो धनापहारादिरुपद्रवः, लोपो देवदायब्रह्मदायाद्यपालनम्, वर्णविकारश्चातुर्वर्ण्यास्यव्यवस्था यस्मिन्। पक्षे प्रकृतयो धात्वादय, निपाताश्चादय' उपसर्गाः प्रादय लोपः प्रसक्तस्यादर्शनम्, वर्णविकारोऽक्षरविकृति'। तथा चन्द्रभागया नद्या चन्द्रखण्डेन च भूषितैकदेश ॥

आर्यों की प्रतिष्ठा के अनुकूल उपदेशो का भव्य भवन आर्यावर्त नामक देश है। वह समस्त भूमण्डल म चमकते हुए तिलक सदृश है। स्वर्ग लोक की तरह सेवनीय है। ग्राम्य ( साधारण ) कवियो के कथा-ग्रन्थ जैसे नीरस ( अरसिक ) लोगो के लिये मनोहर होता है वैसे वह भी नीर ( जल ) और सस्य ( अन्न ) से मनोहर है। भीम जैसे भारत ( महाभारत ) काव्य के अलङ्कार हैं वैसे वह भारत देश का अलकार है। रमणी का स्तन स्पर्श जैसे सभी (भोग्य) विषयो मे अग्रणी (मुख्य) है वैसे यह भी सभी विषयो (देशो) मे मुख्य है। जैसे जो लोग व्याकरण शास्त्र नही पढते उन्हे प्रकृति, निपात, उपसर्ग, लोप तथा वर्णगत विकारों का ज्ञान नहीं रहता है वैसे ही यहाँ प्रकृति (प्रजा) का निपात (पतन), उपसर्ग (उपद्रव), वेद-विहित नियमों का लोप एव चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था मे कोई विकार नहीं देखा जाता। भगवान् शङ्कर का जटाबन्धन जैसे एक अश मे चन्द्रभाग ( चन्द्रखण्ड ) से अलङ्कृत है तथा ऐसी पुण्यसलिला गङ्गा द्वारा नहलाया गया है जिसमे खिले हुए पीत एव नील कमलो के झरने हुए परागपुञ्ज से ( रग जाने के कारण ) केशरिया रगवाले हस अलङ्कारसदृश प्रतीत हो रहे हैं। पर्याप्त मात्रा मे विचरती हुई चकोर, हस, चक्रवाक और कारण्डव-मत्तक पक्षियो की मण्डली से उस ( गगा ) का तटीयभाग अलङ्कृत हो गया है। वह (गगा) राजा भगीरथ की कीर्ति-पताका है। उसकी अगडाती तरगें स्वर्ग जानेवाली सीढियो की गलियो की तरह प्रतीत होती हैं, वैसे ही इस ( आर्यावर्त का भी ) एक अश चन्द्रभागा नदी से अलङ्कृत है और गङ्गा के पवित्र जल से आप्लावित है। सम्पूर्ण भूमण्डल का एक तत्त्वभूत अश है। पवित्र कार्य करने वालो का शरण है। मनोहर कदलीवनो का उपवन है। धर्म की भूमि है। सम्पत्तियो का स्थान है। मङ्गलो का निकेतन है। सज्जनो के व्यवहाररूप रत्नों की निधि है ॥

यस्मिन्ननवरतधर्मकर्मोपदेशशान्तसमस्तव्याधिव्यतिकराः पुरुषायुषजीविन्यः सकलसंसारसुखभाजः प्रजाः। तथाहि। कुष्ठयोगी गान्धिकापणेषु, स्फोटप्रवादो वैयाकरणेषु, संनिपातस्तालेषु, ग्रहसंक्रान्तिर्ज्योतिःशास्त्रेषु, भूतविकारवादः सांख्येषु, क्षयस्तिथिषु, गुल्मवृद्धिर्वनभूमिषु, गलग्रहो मत्स्येषु, गण्डकोत्थानं पर्वतवनभूमिषु, शूलसंबन्धश्चण्डिकायतनेषु दृश्यते न प्रजासु ॥

यस्मिन्निति ॥ कुष्ठमौषधविशेषो रोगविशेषश्च । स्फुट्यते व्यज्यतेऽर्थोऽनेनेति स्फोटो वैयाकरणप्रसिद्धं शब्दब्रह्म । स च वाक्यस्फोटः पदस्फोटश्चेति द्विधा निरवद्य। तस्य प्रकर्षेण वादः कथनम् । स्फोटस्य पिटकस्य प्रवादश्च । संनिपातः उभयहस्तयोजनम् । यदुक्तम्—यस्यां दक्षिणहस्तेन तालं वामेन योजयेत् । उभयोर्हस्तयोः पातः संनिपातः स उच्यते ॥ वातपित्तश्लेष्मणामेकत्र योगो रोगविशेषश्च । ग्रहाणां सूर्यादीनां मेषादिराशौ संक्रान्तिः । ग्रहो बन्धनं तस्य संक्रान्तिश्च । मूलः प्रधानाख्यं तत्त्वं मूलप्रकृतिः । ततो महान् महतस्तस्मादहंकारः । अहंकाराच्च पञ्च तन्मात्राणि (पृथिव्यादिपञ्चतन्मात्राणि) । एवमष्टौ । तत एकादशेन्द्रियाणि पञ्च भूतानि चेति षोडश विकाराः । एवं चतुर्विंशतितत्त्वानि । पञ्चविंशस्तु पुरुषः । तथा च—'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त । षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥' इति सांख्याः । तत्रत्य तेष्वेव मूलविकाराणां वादः प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहः । पक्षे भूतस्य प्रेतस्य विकारः । क्षयः सूर्योदयकालवृत्तित्वं रोगविशेषश्च । गुल्मः स्तम्बो रुजा। गले ग्रहणं बडिशेन रोगविशेषश्च । गण्डकाः खड्गिपशवो ह्रस्वस्फोटका वा । शूलं आयुधविशेषो रोगविशेषश्च ॥

जिसमें निरन्तर धर्म एवं कर्म ( मार्ग ) के उपदेशों से सब तरह की ( आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक ) विपत्तियाँ शान्त कर दी गयी हैं। प्रजा पूर्णायु तक जीवित रह कर संसार के समस्त सुखों का उपभोग करती है। क्योंकि—

गन्धद्रव्य बेचनेवालों की दूकानों में ही कुष्ठ ( नामक औषधि ) है। (कोई प्राणी कुष्ठ रोग से पीड़ित नहीं है)। व्याकरण शास्त्र के जानकार तथा अध्येता लोग ही स्फोट ( सिद्धान्त ) का प्रवचन करते हैं। जन-सामान्य में स्फोट ( फोड़ा, फुन्सी या मतभेद ) नहीं है। (संगीत के प्रसङ्ग में) ताल देते समय ही सन्निपात (दोनों हाथों का स्पर्श) होता है। (वात, पित्त तथा कफ की विकृति से किसी को सन्निपात ज्वर नहीं होता)। ग्रहों की संक्रान्ति की चर्चा ज्योतिःशास्त्र में ही पायी जाती है। [ कोई प्राणी बन्धन से आक्रान्त नहीं होता है। ] सांख्यदर्शन में ही भूतों ( पृथ्वी, जल, तेज आदि ) की विकृति देखी जाती है। प्राणियों में भूत (प्रेत) आदि का प्रकोप नहीं देखा जाता।)

तिथियों में ही क्षय (न्यूनाधिक्य) पाया जाता है। [ कोई प्राणी क्षय रोग से ग्रस्त नहीं है। ] गुल्म ( लता ) की वृद्धि वनस्थलियों में पायी जाती है। [ कोई गुल्म ( नामक रोग ) से पीडित नहीं है। ] मछलियों के ही गले का ग्रहण किया जाता है। [ किसी प्राणी को गलग्रह नामक रोग नहीं है। ] पर्वतीय वनभूमि में ही गण्डकोत्थान ( गेंडों का उल्लास ) होता है। [ किसी प्राणी को गण्डक (फोडा-फुंसी) नहीं उठते हैं। ] शूल (अस्त्र) का सम्बन्ध चण्डी के मन्दिर में ही है, प्रजा में शूल नामक रोग नहीं है ॥

यत्र चतुरगोपशोभिताः सङ्ग्रामा इव ग्रामाः, तुङ्गसकलभवनाः सर्वत्र नगा इव नगरप्रदेशाः, सदाचरणमण्डनानि नूपुराणीव पुराणि, सदानभोगाः प्रभञ्जना इव जनाः, प्रियालपनसाराणि यौवनानीव वनानि, विटपविहिताश्चेटिका इव वाटिकाः, निर्वृतिस्थानानि सुकलत्राणीवेक्षुक्षेत्रसत्राणि, जलाविलक्षणाः पशुपुरुषा इवाप्रमाणास्तडागभागाः, कुपितकपिकुलाकुलिता लङ्केश्वरकिंकरा इव भग्नकुम्भकर्णघनस्वापाः कूपाः, पीवरोधसः सरित इव गावः, सतीव्रतापयोगाः सूर्यद्युतय इव कुलस्त्रियः ॥

यत्रेति ॥ यत्र देशे एते पदार्थाः। तद्यथा। येषु परिधिमण्डलेषु ग्रामवृद्धा उपविशन्ति ते चतुरास्तैस्तथा गोपैरुपशोभिताः। यद्वा चतुरैर्दक्षैर्गोपैः पशुपालकैर्विभिरुपशोभिताः। गोशब्दस्य पशुमात्रवाचकत्वात्। सङ्ग्रामपक्षे 'च' इति छेदनीयम्। तुङ्गान्युन्नतानि सकलानि संपूर्णानि वा भवनानि गृहा यत्र। नगास्तु तुङ्गैः पुन्नागैरुपलक्षित कलभैरिभडिम्भैः सहितं वनं यत्र। पुंनागकरियोतयुता इत्यर्थः। यद्विश्वप्रकाशः—'तुङ्ग. पुन्नागनागयोः। तुंगः स्यादुन्नतेऽन्यवत्'। पुराणि शोभनमाचरणमेव मण्डनं यत्र। नूपुराणि सर्वथा चरणभूषणानि। दानभोगाभ्यां सहिता जनाः। दानभोगा वायवः। दयितानां सकाशाल्लापेन साराणि यौवनानि। वनानि प्रियाश्च राजादनं पनसं चेयन्ति प्राप्नुवन्ति। विटपिभ्यस्तरुभ्यो हिता वाटिकाः। चेटिका दास्यस्तु विटैः विहिता वेष्टिताः। इक्षुक्षेत्रे सत्राणि दानशालाः। निर्वृत्या धृतेरभावेन स्वच्छन्दं स्थीयते यत्र। निर्वृतेः सुखस्यास्पदानि कलत्राणि। तडागभागा जलाविला जलार्थिभिः सदा सेव्यतया जलपिच्छिलाः पूर्णाः, अवताराद्वितीयप्रदेशा यत्र। यद्वा जलैरविला नीरन्ध्राः पूर्णाः पूर्णाः स्नातकानि यत्र। अगाधाः। पशुपुरुषास्तु जडा विलक्षणा अपेतलज्जाः। यद्वा अविभिर्मेण्ढैर्लक्ष्यन्ते। पशुप्रायैर्मेण्ढैर्लक्ष्यन्ते। पशुरत्कर्मधारयः प्रत्यक्षादिप्रमाणरहिताश्च। कूपा भग्नकुम्भकर्णाः स्फुटितघटकण्ठाः। घनाः प्रचुराः स्वाः स्वकीयाः पाताळमूलोत्था न तु प्रवाहादिपूरिता आपः पानीयानि येषु। यद्वा घनस्वा बहुशब्दा आपो येषु। वापीकूपादौ हि ओंकारार्थं निधिर्भवतीति श्रुतेः। किंकरास्तु भग्नः श्रीरामागमनकथनेन कुम्भकर्णस्य स्वापो घनः प्रचुरः

धम्मानावधिकः स्वादुः शयनं यैः। यावः पीवरं च तदूधश्च पीवरोधस्तस्माद् पीवरोधसो हेतोः सरित इव। यद्वा पीवरमूधः आपीनं येषाम्। अत्र 'गोशब्दो धेन्वर्थेऽपि क्षीरवल्लिङ्ग' इति स्यादिः। तत्र पुंस्त्वादनङ् न। सरितस्तु पीवरस्थूलं रोधस्तटं यासाम्। कुल्लिकः सतीव्रतेनाक्रान्ता नष्टा दोषाः कलङ्का यासाम्। सूर्यद्युतयस्तु तीव्रतापदोषेण सहिता ॥

और वहाँ च+तुरगोपशोभित ( अश्वों से अलङ्कृत ) संग्राम की तरह चतुर+गोप+शोभित ( बुद्धिमान ग्वालों से सुशोभित ) ग्राम हैं। पुन्नागों और हाथियों के बच्चों से युक्त ( तुङ्ग+सकलभ+वन ) पर्वत की तरह ( तुङ्ग-सकल+भवन ) ऊँचे-ऊँचे समस्त भवनों वाला नगर प्रदेश है।

सदा ( हमेशा ) चरण को अलङ्कृत करने वाले नूपुरों की तरह सत् ( सुन्दर ) आचरणरूप अलङ्कार से युक्त नगर प्रदेश हैं।

सदा+नभोग ( हमेशा आकाश की ओर जाने वाले ) प्रभञ्जन (वायु) की तरह लोग स+दान+भोग ( दान और भोग से युक्त ) हैं। प्रिया+लपन+सार (कान्ता के साथ बातचीत करना ही मुख्य तत्त्व है जिस अवस्था में ऐसे ) यौवन की तरह वन भी प्रियाल+पनस+सार ( प्रियाल और पनस फलों की उपलब्धि से युक्त ) हैं। विट+पिहित (धूर्तों से घिरी हुई) चोटियों की तरह वाटिकायें भी विटपि+हित ( वृक्षों को धारण की हुई ) हैं। निर्वृति+स्थान ( सुख के केन्द्र रूप ) सुन्दर पत्नी की तरह ईख के खेत में चलने वाली शर्बत की दानशालायें निर्वृति स्थान ( प्रतिबन्धरहित ) हैं। [ रस पीने वाले जब चाहते है, रस पी लेते हैं। उन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। रस की दानशालायें सदा चलती रहती है। ] जड ( जड़ ) पशुतुल्य पुरुष जैसे विलक्षण ( लक्षण-शास्त्रज्ञानशून्य ) तथा अप्रमाण ( अनुमान आदि प्रमाणज्ञानशून्य ) होते है वैसे वहाँ के तालाब जलाविल+क्षण ( जल से पिच्छिल स्थान वाले ) तथा अप्रमाण ( विशाल ) हैं।

क्रुद्ध वानरों द्वारा व्याकुल किये गये रावण के नौकर जैसे भग्न कुम्भकर्ण-स्वाप (कुम्भकर्ण की निद्रा भङ्ग कर दिये) थे वैसे यहाँ के कूप भग्नकुम्भकर्ण+स्वाप ( घड़े के मुहकड को फोड़ दिये हैं और सुन्दर जल से युक्त ) हैं। नदियां जैसे पीव+रोधस् ( विशाल तटवाली ) होती हैं वैसे यहाँ की गायें पीवर+ऊधस् ( विशाल थनों वाली ) हैं।

सूर्य की किरणें जैसे स+तीव्र+तार+दोष ,( तीव्र ज्वालारूप दोष से युक्त ) होती हैं अथवा मलीनता के कारण अपदोष ( दोषरहित ) होती हैं अथवा तीव्र होने के कारण रात्रि को समाप्त कर देती हैं। वैसे वहाँ की कुलाङ्गनायें सती+व्रत धारण करने के कारण अपदोष ( दोषरहित ) हैं ॥

**यत्र च मनोहारिसारसद्वन्द्वास्तत्पुरुषेण द्विगुना चाधिष्ठिता कादम्बरीगद्यबन्धा इव दृश्यमानबहुव्रीहयः केदाराः ॥**

यत्रेति । किम्भूताः केदाराः । मनोहारीणि सारसानां द्वन्द्वानि येषु । तथा तत्पुरुषेण तत्स्वामिना द्विगुना गोयुगयुक्तेनाधिष्ठिताः बहवोऽपि गावः सन्ति । द्विगुनेति चोपलक्षणम् । अथवा चकारोऽप्यर्थः । द्विगुनापि तत्पुरुषेणाधिष्ठिताः । तथा दृश्यमाना बहवो व्रीहयो येष्विति भूमेः सस्यसम्पदुक्ता । गद्यबन्धास्तु मनोहारिणः सारा श्रेष्ठाः । सद्वन्द्वाः द्वन्द्वसमाससहिताः । तथा तत्पुरुषेण द्विगुना च समासेनाधिष्ठिताः । तथा दृश्यमानबहुव्रीहिसमासाः । तथा च द्वन्द्वतत्पुरुषद्विगुबहुव्रीहिसमासबहुला इत्यर्थः ॥

कादम्बरी का गद्यबन्ध जैसे मनोहारि + सार + सद्वन्द्व ( मनोहर तथ्यों तथा द्वन्द्व समासों से युक्त ) है तत्पुरुष तथा उसके प्रभेद द्विगु से समन्वित है और बहुव्रीहि समास से समन्वित है वैसे यहाँ के खेत में मनोहारि + सारस + द्वन्द्व सुन्दर सारस पक्षी के जोड़े द्विगुतत्पुरुष ( अर्थात् दो गायों वाले स्वामी ) की देख रेख में है और वहाँ बहुव्रीहि ( पर्याप्त धान ) दिखायी पड़ रहा है ॥

किं बहुना ।

> नास्ति सा नगरी यत्र न वापी न पयोधरा ।
> दृश्यते न च यत्र स्त्री नवापीनपयोधरा ॥ २६ ॥

नास्ति हेति । यत्र देशे सा कापि नगरी नास्ति । यस्यां न वापी निपानम् । न पयोधरा पयःप्रधाना भूमिः । न च तरुणी पीनस्तनी स्त्री दृश्यते । यदि पुनरस्त्र्यमपि चतुर्थपादम् विशेषणीकर्तुमाग्रहस्तर्हि पयोभूम्योरेव व्याख्यायते । 'णु स्तुतौ' । नव स्तुतिमाप्नुतोऽमीक्ष्णमिति नवाविनी । तथाभूते इमयमस्ती स्वामिकले धरतीति तथोक्ता वापी । भूस्तु नव स्थमाक्षमिति वापिनः कर्षकास्तेषामिना स्वामीवहेतुत्वात्स्वामिनः । पयोधरा मेघा यस्यां तथाभूता । पश्चात्कर्मधारयश्च । अवृष्टिनिष्पाद्यसस्येति भावः । अयमर्थस्तेनाह । प्रशस्तस्वामिपयस्का वापी, अवृष्टिनिष्पादितसस्या भूमिः तरुणी पीनस्तनी च कान्ता, यस्यां दृश्यते सैव नगरी यत्र देशेऽस्तीति अथवा यत्र देशे सा नगरी नास्ति यस्यां नवापी वापी स्त्री च न दृश्यते । कीदृशी वापी । न न पयोधरा । अपि तु पयोधरा । नञ्द्वयस्य प्रकृतार्थसूचकत्वात् । स्त्री च किम्भूता । नवा तरुणी । तथा पीनपयोधरा । सर्वास्वपि नगरीषु पयोधरा वाप्यस्तरुण्यः पीनस्तन्यश्च स्त्रियो दृश्यन्त इति भावः ॥ २६ ॥

वहाँ कोई ऐसी नगरी नहीं है जहाँ पयोधरवापी ( जलपूर्ण जलाशय ) न हो और जहाँ कोई ऐसी रमणी नहीं देखी जाती जिसका पयोधर ( स्तन ) पीन विशाल न हो ॥ २६ ॥

अपि च।

भवन्ति फाल्गुने मासि वृक्षशाखा विपल्लवाः।
जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपल्लवाः॥ २७॥

भवन्तीति॥ शाखा विगतपल्लवा यत्र भवन्ति। जनस्य विपदां लवा अपि न स्युः॥ २७॥

फाल्गुन के महीने में वृक्षों की शाखायें विपल्लव ( पल्लवहीन ) हो जाती हैं किन्तु जनता पर कभी विपल्लव ( विपत्ति का अंश ) नहीं आता॥ २७॥

यत्र सौराज्यरञ्जितमनसः सकलसमृद्धिवर्धितमहोत्सवपरम्परारम्भनिर्भराः, सततमकुलीनं कुलीनाः, प्राप्तविमानमप्राप्तविमानभङ्गाः, कतिपयवसुविराजितमनेकवसवः, समुपहसन्ति स्वर्गवासिनं जनं जनाः। कथं चासौ स्वर्गोऽस्य विशिष्यते।

यत्रेति॥ यत्र जना स्वर्गिणमपि न्यक्कुर्वन्ति। कुलीना अभिजाताः। विमानना तिरस्कारः। वसु धनम्। पक्षे कु पृथ्वी तस्यां लीनः। विमानं देवयानम्। वसवोऽष्टौ ध्रुवादयः। देवस्याहङ्कारदूरत्वार्थे व्याख्येयः॥ कथं चायं स्वर्गाधिकः॥

यहाँ के लोग स्वर्गवासियों का भी उपहास करते हैं। उनका मन ( यहाँ के ) सुन्दर राज्य में अनुरक्त है। सर्वविध सम्पन्नताओं के कारण बड़े-बड़े उत्सवों के मनाने में सोल्लास लगे रहते हैं।

उपहास पक्ष—स्वर्गवासी अकुलीन हैं, ये लोग कुलीन हैं। वे ( देव ) प्राप्तविमान ( विशेष प्रकार के अहङ्कार से युक्त ) हैं और ये अप्राप्त-विमान-भङ्ग (विशेष अहङ्कारजन्य वञ्चनाओं से दूर हैं)। वे ( देव ) कुछ ( आठ ) ही वसुओं से युक्त हैं ये लोग अनेकविध वसुओं ( सम्पत्तियों ) से युक्त हैं।

वास्तव पक्ष :—स्वर्गवासी सदा अकुलीन ( पृथ्वी में लीन नहीं ) हैं, क्योंकि देवता लोग पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते हैं। ये लोग कुलीन ( विशिष्ट वंश में उत्पन्न हुए ) हैं। ( देव ) प्राप्तविमान ( देवरथ प्राप्त किये ) हैं, और यहाँ के लोग विमान ( अहङ्कार ) के कारण उत्पन्न होने वाली वञ्चनाओं से दूर हैं। देव ध्रुव आदि आठ ही वसुओं से मण्डित हैं ये लोग अनेकविध वसुओं (सम्पत्तियों) से विराजित हैं। स्वर्ग से यह क्यों न आगे बढ़ जाय—॥

यत्र गृहे गृहे गौर्यः स्त्रियः, महेश्वरो लोकः सभीका हरयः पदे पदे धनदाः सन्ति लोकपालाः। केवलं न सुराधिपो राजा। न च विनायकः कश्चित्॥

यत्रेति॥ गौर्यो गौराङ्ग्यः शुद्धोभयान्वया वा स्त्रियः। महानीश्वरोऽतिसमृद्धः। सद्धियां शोभया सभीका। हरयोऽश्वाः। धनप्रदा नृपाः। स्वर्गे त्वेकस्मिन्नेव

गृहे गौरी उमा। एक एव महेश्वरः शिवः। सलक्ष्मीको विष्णुरेक एव। न बहवः। धनदः कुबेर एकस्मिन्नेव स्थाने एक एव। केवलं परम्। अधिपिबतीत्यधिपः। सुराया मद्यस्याधिपः सुराधिपो न राजा। न च कोऽपि विरुद्धनायकः। सुरामधिपिबतीति वाक्ये लक्षणदूषणमप्रसङ्गात्। सुराधपानात्। स्वर्गे तु सुराणामधिप इन्द्रः। विनायको गणेशः॥

जहाँ घर-घर में गौरी (गौर वर्ण की) स्त्रियाँ हैं, पूरा लोक ही महेश्वर (ऐश्वर्य-सम्पन्न) है, अनेक हरि (घोड़े) श्रीयुक्त (शोभासम्पन्न) पद-पद पर धन देने वाले लोकपाल (प्रजापालक) लोग हैं, सुराधिप (मद्य का स्वामी) ही केवल राजा नहीं है और कोई विनायक (दुष्ट नेता) नहीं है।

[स्वर्ग में तो एक ही गौरी (पार्वती) हैं, एक ही महेश्वर (शिव) हैं, श्री (लक्ष्मी) सहित एक ही विष्णु हैं, धनद (कुबेर नामक) लोकपाल भी एक ही हैं, सुराधिप (देवताओं का स्वामी इन्द्र) ही केवल राजा है और विनायक (गणेश) भी हैं। स्वर्ग में तो गौरी, महेश्वर, धनद आदि एक ही हैं जब कि उस नगरी में ये चीजें अनेक हैं। इसीलिये यह स्वर्ग से भी विशिष्ट है॥]

यत्र च लतासंबन्धः कलिकोपक्रमश्च पादपेषु दृश्यते न पुरुषेषु॥

यत्रेति॥ लतासंबन्धो वल्लीयोगः। कलिकाया उपक्रमः। पक्षे 'चलतासंबन्धः' इति समुदितं पदम्। चलता लौल्यम्। कलिः कलहः। कोपः क्रुत्। तयोः क्रमः॥

और जहाँ (च) लता + सम्बन्ध (वल्लरियों का सम्पर्क) और कलिका (कलियों) का उपक्रम (उद्भव) वृक्षों में देखा जाता है। पुरुषों में चलता + सम्बन्ध (चञ्चलता का योग) और कलि + कोप + क्रम (कलह एवं क्रोध की परम्परा) नहीं दृष्ट है॥

यत्र चमरकवार्ता परमहिमोपघातश्च तुहिनाचलस्थलीषु श्रूयते न प्रजासु॥

यत्रेति॥ चमरका गोविशेषाः। परममुत्कृष्टं हिमं तुहिनम्। पक्षे मरको मरणबाहुल्यम्। परस्य महिमा माहात्म्यम्। तस्योपघातः॥

जहाँ चमरक + वार्ता (चमरी गाय की चर्चा) और परम + हिमोपघात (अत्यधिक बर्फ के कारण हानि) हिमालय में ही श्रुत है। प्रजा में (च) मरक + वार्ता (मृत्युसम्बन्धी वार्ता) और पर + महिमोपघात (दूसरे की प्रतिष्ठा का हनन) नहीं सुना जाता॥

यत्र नीतिमत्पुरुषाधिष्ठितोऽप्यनीतिः, सद्गोऽप्यपदसंकुलः, कारुपयुतोऽप्यगलरूपशोभः॥

यस्येति ॥ न विद्यते ईतिरुपद्रवोऽस्मिन्निति अनीतिः। जटा न्यग्रोधाः। अवटाः कूपादिगर्ताः। कारव शिल्पिनः। तथा न गता न भ्रष्टा रूपशोभा यस्य। अथवा कारवैः शिल्पिभिरुपशोभा यस्येति वा। अपिर्विरोधे। स च पूर्वार्धव्याख्यया। कुत्सितमीषद्वा रूपं कारूपम् ॥

जो नीतिमत् (न्यायसम्पन्न) पुरुषों से युक्त रह कर भी अनीति (अन्याय) युक्त है, विरोध। नीतिसम्पन्न पुरुषों से युक्त है और अनीति (ईति (उपद्रव) रहित) युक्त है। परिहार।

जटा (जटा) से युक्त होने पर भी अवट (वटवृक्ष से युक्त नहीं) है। विरोध, (वटवृक्ष की डालियों से जटा की तरह कुछ जड़ें (बरोह) लटकती हुई पृथ्वी तक पहुँचती हैं। [जहाँ वटवृक्ष रहेगा वहीं इस तरह की जड़ें रहेंगी। ऐसी जड़ों से युक्त होकर भी वटवृक्ष से हीन है यह कहना विरोध का बीज है।]

जटा (मूलों) से युक्त है और अवट (गड्ढे) से सम्पन्न है। [जगह-जगह पर वृक्षों के मूल हैं और स्थान-स्थान पर खाइयाँ भी दिखायी पड़ती हैं] परिहार।

कारूप + युक्त (कुत्सित रूप वाले) है फिर भी उसकी रूप शोभा नष्ट नहीं हुई है। विरोध।

कारु (शिल्पकारों) से उपयुक्त (युक्त) है इसीलिये उसकी रूपशोभा (सौन्दर्य-लक्ष्मी) नष्ट नहीं हुई है। परिहार ॥

**यत्र च गुरुव्यतिक्रमं नक्षत्रराशयः, मात्राकलहं लेखशालिकाः, मित्रोद्वेषमुलूकाः, अपत्यत्यागं कोकिलाः, बन्धुजीवविघातं ग्रीष्मदिवसाः, कुर्वन्ति न जनाः ॥**

यत्र चेति ॥ इदमेते कुर्वन्ति न जनाः। गुरुर्बृहस्पतिः। मात्रा वर्णावयवः। मित्रः सूर्यः। बन्धुजीवं बन्धूकस्य पक्षे कुसुमम्। मात्रा जनन्या सह ॥

जहाँ तारों के समूह ही गुरु+व्यतिक्रम (बृहस्पति ग्रह का परिवर्तन) करते हैं। मनुष्य गुरु+व्यतिक्रम (आचार्य परिवर्तन) नहीं करते। लेखशालिकायें मात्रा+कलह (वर्णों के सन्दर्भ में कलह) उपस्थित करती हैं कोई आदमी माता के साथ कलह नहीं करता। मित्रोद्वेग (सूर्योदय) से खिन्न केवल उल्लू करते हैं कोई आदमी मित्रोद्वेग (सुहृद् सन्ताप) व विद्रोह नहीं करता है। अपनी सन्तान का परित्याग केवल कोयलें करती हैं कोई मनुष्य अपनी सन्तान नहीं छोड़ता। बन्धुजीव (नामक पुष्प) का विनाश ग्रीष्म ऋतु ही करता है। कोई आदमी बन्धु+जीव (अपने बन्धु का जीवन) नष्ट नहीं करता है ॥

[ गुरु-व्यतिक्रम—तारे अपने बीच कभी शुक्र कभी शनि आदि ग्रहो को मुख्यता देते रहते हैं। ग्रहो की स्थिति सदा बदलती रहती है। तात्पर्य यह कि गुरु-व्यतिक्रम (बृहस्पति का परिवर्तन) तारो के ही बीच होता है। आदमी जिन गुरु को एक बार चुन लेते हैं उसे बदलते नहीं क्योकि भारतीय सभ्यता के अनुसार एक बार किसी को गुरु बना लेने के बाद उसे छोड कर दूसरे को गुरु नहीं बनाना चाहिये। वहाँ के निवासी इस नियम का यथावत् पालन कर रहे थे।

मात्रा + कलह—मातृ शब्द के तृतीया का एकवचन अर्थात् माता के साथ लोग कलह नहीं करते। लेखशालिका पक्ष मे मात्रा शब्द के साथ कलह शब्द समस्त है।

मित्रोदय—उल्लू पक्षी सूर्योदय होने पर अन्धे हो जाते हैं। इसलिये वे चाहते नहीं कि सूर्योदय हो।

अपत्यत्याग—कोयल अपना अण्डा कौवे के घोसले मे देती हैं। उसके अण्डे का पालन भी कौवे ही करते हैं। कौवे और कोयल के अण्डे मे इतनी समानता रहती है कि कौवे कोयल के अण्डे को अपना ही समझ कर पालते हैं। इसीलिये कोयल को परभृत् ( दूसरो के द्वारा पाला हुआ ) कहते हैं।

बन्धुजीव—बन्धुजीव नामक फूल ग्रीष्म ऋतु मे नष्ट हो जाता है। ]

किं बहुना।

देशः पुण्यतमोद्देशः कस्यासौ न प्रियो भवेत्।
युक्तोऽनुक्रोशसंपन्नैर्यो जनैरिव योजनैः ॥ २८ ॥

देश इति ॥ अनुक्रोशेन कृपया सपन्नैर्युक्तोऽसौ देशः सर्वस्यापि प्रियः। पक्षेऽनुक्रोशे सपन्नान्यन्नजलतृणादिभि समृद्धानि। अथवानुगता परस्परसंबद्धाः क्रोशा अनुक्रोशास्तै सपन्नानि ॥ २८ ॥

[ अनुक्रोश + सम्पन्न योजन की तरह अनुक्रोश (दया) सम्पन्न मनुष्यो से युक्त वह अत्यन्त पुण्यशाली ( तीर्थ ) स्थानो वाला देश किसे प्रिय न होगा ॥

[ अनुक्रोश सम्पन्न शब्द योजन शब्द का विशेषण है। आठ मीलो का एक योजन होता है और दो मीलो का एक क्रोश ( कोस ) होता है अर्थात् चार क्रोश जहाँ रहेंगे वहाँ एक योजन रहेगा। योजन सदा अनुक्रोश ( क्रोश-सहित ही रहेगा। अनुक्रोश-सम्पन्न-योजन-शब्द का यह भी अर्थ किया जा सकता है—प्रत्येक योजन का क्रोश अन्न, तृण, जल आदि से सम्पन्न है। अर्थात् देश का प्रत्येक भाग सम्पन्न है। देश पक्ष में योजनै शब्द को "य + जनै" इस तरह भङ्ग करना चाहिये। अर्थात् अनुक्रोश + सम्पन्न ( प्रत्येक क्रोश पर अन्न-

जल-सम्पन्न ) योजन का वह देश भी अनुक्रोश ( दया सम्पन्न मनुष्यों से युक्त है ] ॥ २८ ॥

तस्य विषयमध्ये निषधो नामास्ति जनपदः प्रथितः।
तत्र पुरी पुरुषोत्तमनिवासयोग्यास्ति निषधेति ॥ २९ ॥

तस्येति ॥ पुरुषोत्तमो विष्णुः पुंश्रेष्ठश्च ॥ २९ ॥

उस ( आर्यावर्त नामक ) देश के बीच निषध नाम का जनपद है। वहाँ नरश्रेष्ठ व्यक्ति के निवास योग्य निषध नाम की नगरी है ॥

[ पुरुषोत्तम शब्द का विष्णु अर्थ भी है। अर्थात् वह नगरी वैकुण्ठ-सदृश है अतः पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ) के निवास लायक भी है। ] ॥ २९ ॥

जननीतिमुदितमनसा सततं सुस्वामिना कृतानन्दा।
सा नगरी नगतनया गौरीव मनोहरा भाति ॥ ३० ॥

जनेति ॥ जनस्य नीत्या हृष्टमनसा सुप्रभुणा कृतहर्षा तथा न अगतनया अपि तु सन्नीतिमती। सा पुरी रम्या भाति। यत एवागतनया अतएव जनो नीतिमान्। गौरी तु नगस्य हिमाद्रेस्तनया। तथा जननी मातेति हेतोर्हृष्टमनसा। अतएव शोभनेन हर्षोच्छिताकृतिसुन्दरेण स्वामिना स्कन्देन कृतानन्दा। तथा मनसि हरो यस्याः ॥ ३० ॥

नगरी पक्ष—जनसामान्य के व्यवहार से प्रसन्न चित्तवाले, सुन्दर स्वामी से आनन्दित एवं न्याय्य सम्पन्न ( न + गत + नया ) वह नगरी नग + तनया ( पर्वतपुत्री ) गौरी की तरह मनोहर है।

पार्वती पक्ष :—जननी होने के कारण प्रसन्न चित्त वाली, अपने सुस्वामी (कार्तिकेय) से आनन्दित तथा हर ( शङ्कर भगवान् ) को मन में रखने वाली गौरी है।

[ नगरी पक्ष के विशिष्ट शब्द :—जन + नीति + मुदित + मनसा ( जन सामान्य के व्यवहार से प्रसन्न चित्तवाले ) सुस्वामिना ( सुन्दर राजा से आनन्दित और न + गत + नया (न्याय से अहीन) वह नगरी गौरी की तरह है।

पार्वती पक्ष :—जननी + इति + मुदित + मनसा, सुस्वामिना—( माता है, इसलिये प्रसन्नचित्त कार्तिकेय द्वारा ) आनन्दित नग + तनया ( पर्वतपुत्री ) गौरी है ] ॥ ३० ॥

यस्यामभ्रंलिहेन्द्रनीलशालशिखरसहस्रनिभृतांशुजालबालशाद्व-लाङ्कुराग्रग्रासलालसाः स्खलन्तः खे खेदयन्ति मध्येदिनं सादिनं रविरथतुरङ्गमाः ॥

यस्यामिति ॥ शालः प्राकारः । इन्द्रनीलमणिकिरणान्नीलतृणतुल्यांल्लिलिक्षव सहस्ररश्मिरथ्याः स्खलन्ति ॥

उस नगरी के गगनचुम्बी, नीलमणि की बनी हुई चहारदीवारी की चोटी पर उठते हुए हजारो किरणजाल उगते हुए नवीन तृणो के अकुर-सदृश प्रतीत होते हैं। उन्हे खाने की उत्कट इच्छा वाले सूर्य-रथ के घोडे दोपहर के समय नीचे खिसक कर सारथि को कष्ट पहुँचा रहे हैं ॥

[ उस नगरी की चहारदीवारी नीलमणि से बनी हुई है। उससे निकलने वाली नील किरणें नवीन तृण की तरह प्रतीत हो रही हैं। दोपहर के समय सूर्य के घोडे मानो उन किरणरूप तृणो को खाने के लिये नीचे की ओर आने के लिये जोर मार रहे है। ऐसी स्थिति मे बेचारा, सूर्यसारथि उन अश्वो को नियन्त्रित करने मे क्लेश का अनुभव कर रहा है। ] ॥

**यस्यां च स्फटिकमणिशिलानिबद्धभवनप्राङ्गणगतासु संचरद्गृहिणीचरणालक्तकपदपङ्क्तिषु पतन्ति निर्मलसलिलाभ्यन्तरतरत्तरुणारुणकमलकाङ्क्षया मुग्धमधुपपटलानि ॥**

यस्या चेति ॥ स्फटिकस्य सलिल पदन्यासे कमलमुपमानम् ॥

और जहाँ स्फटिक मणि की चट्टानो से बनी हुई आँगन की भूमि पर घूमती हुई रमणियो के अलता से रँगे गये चरणो की चिह्न-पक्तियो को निर्मल जल के भीतर तैरते हुए पूर्ण विकसित लाल कमल समझ कर मत्त भ्रमरो के यूथ मँडरा रहे हैं ॥

स्फटिक मणि से निर्मित आँगन की भूमि निर्मल जल की तरह लग रही है। रमणियो के लाक्षारञ्जित पदचिह्न पूर्ण विकसित कमल की भ्रान्ति उत्पन्न कर दे रहे हैं। लाल पदचिह्नो को कमल समझ कर भ्रमर भनभना रहे हैं। ] ॥

**यस्यां च विविधमणिनिर्मितवासभवनभव्यभित्तिषु स्वच्छासु स्वां छायामवलोकयन्त्यः कृतापरस्त्रीशङ्काः कथमपि प्रत्यानीयन्ते प्रियैः प्रियतमाः ॥**

जिस (नगरी) मे विविध मणियो से बने हुए अत्यन्त सुन्दर निवास-भवनो की स्वच्छ और सुन्दर दीवालो पर अपनी छाया देखकर अन्य स्त्री की आशङ्का से ( मानिनी बनी हुई ) प्रियतमायें प्रियो के द्वारा किसी किसी तरह लौटाई जाती हैं ॥

[ नायिकायें अपने प्रिया के साथ भवन प्राङ्गण मे घूम रही हैं। दीवाल पर अपने और पति का प्रतिबिम्ब देखकर उन्हे आशङ्का हो जाती है कि

उनका पति किसी दूसरी स्त्री के साथ भ्रमण कर रहा है। अत एव वे मान कर बैठती हैं और पति उन्हें बड़ी कठिनाई से मना पाता है। ] ॥

यस्यां च दिव्यदेवकुलालंकृताः स्वर्गा इव मार्गाः, सततमपांसुवसनाः सागरा इव नागराः, समत्तवारणानि वनानीव भवनानि, सुरसेनान्विताः स्वर्गभुव इव कूपाः अधिकंधरोद्देशमुद्भासयन्तो हारा इव विहाराः ॥

यस्यां चेति ॥ दिवि भवैरिव दिव्यैः रम्यैर्देवकुलैर्देवगृहैः पक्षे दिव्यैः स्वर्गोद्भवैः कल्पद्रुमादिभिर्देवानां कुलैरन्वयैरलंकृताः। अपांसुरेणुरहितं वसनं येषाम्। पक्षे सुष्ठु वसन्त्येष्विति सुवसनाः। 'अपाम्' इति कर्तरि षष्ठी। जलाधारा इत्यर्थः। मत्तवारणोऽपाश्रयो मत्तेभश्च। सुरसेन सुजलेन। स्वर्गभूपास्तु सुरसेनया त्रिदशानामेवेनान्विताः। अधिकमिति क्रियाविशेषणम्। धरोद्देशः पृथ्वीप्रदेशः। विहारा बौद्धालयाः। पक्षे कन्धरोद्देश इत्यधिकन्धरोद्देशम्। विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः ॥

जहाँ के रमणीय भवनों से जनकुल मार्ग कल्पवृक्ष और देववंश से समन्वित स्वर्गतुल्य हैं। निरन्तर अपांसु+वसन (धूलिहीन (निर्मल) वस्त्र वाले) नागरिक अपां+सुवसन (जल-निर्मित सुन्दर भवन) वाले सागर सदृश हैं। मतवाले हाथियों से युक्त भवन मत्त हाथियों से समन्वित वन सदृश हैं। सुरसेन+अन्वित (सुन्दर जल से युक्त) कूप (इनारा) सुरसेना (देवसेना) से अन्वित स्वर्गीय वीरों की तरह हैं, अधिकन्धरोद्देश कन्धे को सुशोभित करने वाले हार की तरह विहार (बौद्धमठ) अधिकन्धरोद्देश (धरोद्देश। भूतल को अधिक) सुशोभित कर रहे हैं ॥

[ अपांसुवसना—सागर पक्ष में अपाम् अप् शब्द का षष्ठी बहुवचन रूप है। "जल ही है सुन्दर घर जिसका" इस विग्रह मे जल शब्दवाची अप् शब्द का प्रयोग प्रथमा मे होना चाहिये। अतः यहाँ यही मानना चाहिये कि कर्ता मे षष्ठी हुई है। वहाँ के लोग धूलिहीन अर्थात् निर्मल वस्त्र धारण करते हैं और सागर अपांसुवसन अर्थात् जलमय भवनवाला है। अपांसुवसनत्व साधारण धर्म है।

सुरसेनान्वित—कूप पक्ष में सुरस शब्द का तृतीयान्त रूप सुरसेन है वह अन्वित शब्द के साथ दीर्घ सन्धि द्वारा जुड़ा हुआ है। भूप पक्ष में सुरसेना शब्द के साथ अन्वित शब्द का अन्वय है।

अधिकन्धरोद्देश—हार अधिकन्धरोद्देश (स्कन्ध स्थल) की शोभा बढ़ाता है। विहार (बौद्धमठ) भी धरोद्देश (भूतल) की अधिक शोभा बढ़ाते हैं। हार पक्ष में कन्धरोद्देशे इति अधिकन्धरोद्देशम् अव्ययी भाव समास है। विहार पक्ष में धरोद्देश शब्द एक है और अधिक शब्द क्रियाविशेषण है ॥

यस्यां च बहुलक्षणाः सुधावन्तो दृश्यन्तेऽन्तः प्रचुराः प्रासादा बहिश्च वारणेन्द्राः। सुशोभितरङ्गाः समालोक्यन्तेऽन्तः संगीतशाला बहिश्च क्रीडाकमलदीर्घिकाः। बहुधान्यनिरुद्धाः कथमप्यभिगम्यन्तेऽन्तः पण्यस्त्रियो बहिश्च क्षेत्रभूमयः। नानाशुकविभूषणाः शोभन्तेऽन्तः सभा बहिश्च सहकारवनराजयः। ससौगन्धिकप्रसारा विराजन्तेऽन्तर्विपणयो बहिश्च सहकारवनराजय। ससौगन्धिकप्रसारा विराजन्तेऽन्तर्विपणयो बहिश्च सलिलाशयाः॥

यस्यां चेति॥ क्षणो भूमिका। सुधा लेपविशेषः। पक्षे बहूनि लक्षणानि येषाम्। तथा सुष्ठु धावन्तः। रङ्गो नर्तनस्थानम्। पक्षे सुशोभितास्तरङ्गा येषु। बहुधेति भिन्नं पदम्। अन्यैर्विटैर्निरुद्धाः। पक्षे बहुभिर्धान्यैर्निरुद्धाः। आशुकविः शीघ्रकविः। पक्षे शुकाः पक्षिणः। सुगन्धीनि द्रव्याणि पण्यमेषां ते सौगन्धिका वणिजः कह्लाराणि वा। प्रसारो लघ्वापणो विस्तारश्च॥

जिस नगरी के भीतर बहुल + क्षणा (पर्याप्त भूमिवाले) और सुधावन्त (चूने से पुते हुये) बहुत से भवन हैं और बाहर की ओर बहु + लक्षण (विविध शुभ लक्षणों से युक्त) और सुधावन्ता (अच्छी तरह से दौडते हुए) हाथी हैं। भीतरी भाग मे सुशोभित + रङ्गा (सुन्दर रङ्गमञ्च से युक्त) संगीतशालायें और बाहर की ओर सुशोभि + तरङ्गा (सुन्दर तरङ्गों से युक्त) कमलों से भरे हुए क्रीडा सरोवर दिखायी देते हैं।

भीतरी भाग मे वाराङ्गनाएँ बहुधा + अन्य + निरुद्ध (अधिकांश धूर्तों द्वारा घिरी) रहती हैं अत उनके पास किसी-किसी तरह जाया जा सकता है और बाहर की ओर कृषिभूमि बहु + धान्य + निरुद्ध (अधिक धान से घिरी हुई) हैं (अत उसमें भी बडी कठिनाई से) आया जाता है।

भीतर सभी नाना + आशु + कवि (शीघ्र कविता प्रस्तुत करने वाले कवियों) से विभूषित हैं और बाहर नाना + शुक + विभूषण (विभिन्न तोतों से अलङ्कृत) आम की वनपङ्क्तियाँ हैं।

भीतर सुगन्धित द्रव्य बेचने वाले बनियों की छोटी-छोटी दुकानों से बाजार सुशोभित हो रहे हैं और बाहर सुन्दर गन्ध व्यक्त करने वाले कमलों से युक्त सरोवर हैं॥

किं बहुना।

भूमयो बहिरन्तश्च नानारामोपशोभिताः।
कुर्वन्ति सर्वदा यत्र विविधवचसां मुदम्॥ ३१॥

भूमय इति॥ बाह्ये आरामैर्मध्ये रामाभिरुपशोभिताः। यस्यां रम्यवयसां पूनां विविधपक्षिणां च मुदं कुर्वन्ति। वपुष्मतां कालकृतावस्था वयो च वय॥ ३१॥

विभिन्न रामाओं (स्त्रियों) से सुशोभित नगर के अन्तरङ्ग भाग विचित्र-वयस् (युवावस्था वाले) लोगों को हमेशा आनन्द देते हैं और विभिन्न आरामों (बगीचों) से सुशोभित उसके बहिरङ्ग भी विचित्र + वयस् (विविध पक्षियों) को सदा आनन्द देते हैं ॥ ३१ ॥

**यस्यां च भक्तभाजो देवतायतनेषु देवताः संनिधाना दृश्यन्ते हट्टेषु वणिग्जनाः। अक्षरसावधानाः कविगोष्ठीषु कवयो विलोक्यन्ते द्यूतस्थानेषु द्यूतकाराः। कान्तारागप्रियाः करिणो राजद्वारेषु संचरन्ति वेश्याङ्गणेषु भुजङ्गाः ॥**

यस्यां चेति ॥ भक्तो भक्तिमान्। भक्तम् ओदनम्। संनिधानम् नैकट्यम्। सम्यक् निहित। अक्षरं वर्णः। पक्षे अक्षः पाशकः। अक्षरसे स्थितमवधानं येषाम्। कान्तारे वने अगाः सहकारादिवृक्षास्तत्प्रियाः। पक्षे कान्ता वधूः ॥

जिस नगरी में देवताओं के आयतन (मन्दिरों) में भक्तभाज् (भक्त युक्त) देवता सन्निहित दिखायी पड़ते हैं और हट्ट (बाजार) में भक्तभाज् (अन्न बेचने वाले) बनियाँ सन्निहित दिखायी पड़ते हैं। कविगोष्ठी में कवि लोग अक्षर-विन्यास (वर्णविन्यास) में सावधान दिखायी देते हैं और जुआ खेलने की जगह पर जुआड़ी लोग अक्ष + रस (पाशा फेंकने) में अवधान (सावधान) रहते हैं। राजद्वार पर कान्तार (जंगल) के अग (वृक्षों) से प्रेम रखने वाले हाथी भ्रमण कर रहे हैं और वेश्याओं के आँगन में कान्ता + राग को प्रिय मानने वाले विट घूम रहे हैं ॥

[ भक्तभाज — भक्त शब्द के अन्न और भक्तियुक्त पुरुष दो अर्थ हैं। मन्दिरों में भक्तों (पूजकों) से युक्त देवता हैं और बाजार में भक्त (अन्न) युक्त वणिग्जन हैं। भक्त-भाक्त्व साधारण धर्म है।

अक्षर + सावधान — कवि लोग सभा में जब अपनी कविता प्रस्तुत करते हैं तब अक्षर-अक्षर पर सावधान रहते हैं कि कहीं अशुद्धि न हो जाय। जुआड़ी लोग अक्ष + रस + अवधान हैं। पाशा फेंकने में पर्याप्त सावधानी रखते हैं। अक्षरसावधानत्व साधारण धर्म है।

कान्तारागप्रिय — करी (हाथी) पक्ष में कान्तार + अग + प्रिय (जंगल के पेड़ों को प्रिय मानने वाले) और विट पक्ष में कान्ता + राग + प्रिय (रमणी स्नेह) को रमणीय मानने वाले यह अर्थ करना चाहिये। ] ॥

**यस्यां च चतुरुदधिवेलाविराजितसकलधराचक्रचूडामणौ मणि-कर्मनिर्मितरम्यहर्म्यतया सुरपतिपुरीपराभवकारिण्याम्। अव्ययभावो व्याकरणोपसर्गेषु न धनिनां धनेषु, दानविच्छित्तिरुन्मादत्करिकपोल-**

मण्डलेषु न त्यागिगृहेषु, भोगभङ्गो भुजङ्गेषु न विलासिलोकेषु, स्नेहक्षयो रजनीविरामविरमत्प्रदीपपात्रेषु न प्रतिपन्नजनहृदयेषु कूटप्रयोगो गीततानविशेषेषु न व्यवहारेषु, वृत्तिकलहो वैयाकरणच्छात्रेषु न स्वामिभृत्येषु, स्थानकभेदश्चित्रकेषु न सत्पुरुषेषु ॥

यस्यां चेति ॥ अव्ययभावोऽव्ययत्वम् । पक्षे व्ययो दानादिनोपयोगस्तदभाव. । दानविच्छित्तिर्मदशोभा स्यागविच्छेदश्च । भोगः सर्पवपुर्विलासश्च । भङ्ग आमर्दनम् । कुण्डलयाश्च बुद्धेन । एवमेकोनपञ्चाशत् । तेषा विशेषेषु कूटशब्दप्रयोग. । पक्षे कूट कपटं प्रयोगो व्यापार । वृत्ति शास्त्रविवरणम् । आजीवन च । स्थानकभेद मसुखं पराङ्मुख संपूर्णार्द्धीकरणमिति यावत् । व्याघातश्च । स्नेहस्तैलादि प्रेमा वा । प्रतिपन्नानि परस्परमनोनानि च तानि जनहृदयानि च । गीतस्य नाना क्ष्येः । एके कूटतानाः पञ्चत्रिंशत् । अन्ये च शुद्धतानस्वरूपं पाणीतनम् । ततो भागद्वयेनैकतः पतनाद्य च चरता क्रमेण ऋजु ऋजुगतद्वयपर्यायसंक्रमणानि चेति स्थितस्थानकानि पक्ष । गगनमालीढं स्थिरं त्रिभङ्गिमिं पाष्वर्याणि च चत्वारि गच्छतःस्थानकानीति । एवं च नवानां स्थानकानां भेदश्चित्रेषु । पक्षे स्थानकस्य स्वकीयनगरादेर्भेद उपघातो न सत्पुरुषेषु भवति ॥

चारो समुद्रो के तट रूप से सुशोभित सम्पूर्ण भूमण्डल में सर्वोत्तम, मणियो से निर्मित रमणीय महलो के कारण सुरपति (इन्द्र) की नगरी को भी पराजित करने वाली उस नगरी में अव्ययभाव यदि पाया जाता है तो व्याकरणशास्त्र के उपसर्गों में, धनियो के धन में नही। दान-विच्छित्ति यदि कही है तो मतवाले हाथियों के कपोलमण्डल में, त्यागियो के घर में नही। भोग की भङ्गुरता सर्पों में है, विलासी लोग में नही। स्नेहक्षय ( तेल का अभाव ) रात्रि की समाप्ति के समय बुझते हुए दीपपात्रो में है, प्रतिपन्न जन ( भक्त लोगो ) के हृदय मे स्नेहक्षय ( प्रेम का अभाव ) नही है। कूट का प्रयोग सगीत के तानो मे होता है, व्यवहार में कूट ( छल ) का प्रयोग नही होता। वृत्ति ( पाणिनि सूत्रो के अर्थ-विवेचन ) के प्रसङ्ग में वैयाकरण के विद्यार्थियो मे कलह होता है, वृत्ति (वेतन) के प्रसङ्ग मे स्वामी और नौकर के बीच कलह नहीं होता। स्थानकभेद ( किसी को सीधा, किसी को उलटा बनाना ) चित्रों मे देखा जाता है, सत्पुरुष लोग स्थानकभेद ( नगर के दर्शनीय या रक्षणीय स्थानों ) का विनाश नही करते ॥

[ व्याकरणोपसर्गेषु —व्याकरणशास्त्र के प्र परा आदि उपसर्गों मे *विभक्तिजन्य किसी तरह का विकार नहीं होता।* उनके मूल स्वरूप का व्यय नहीं होता। कवि इस बात को द्योतित करना चाहता है कि न व्यय होने की बात या स्थिति कही है तो केवल व्याकरणशास्त्रीय उपसर्गों मे, धनियो के धन मे नहीं। धनी लोग उदार हैं। उदारतापूर्वक धन का व्यय करते हैं।

दानविच्छित्ति—दानविच्छित्ति के दो अर्थ हैं—मदजल की शोभा और दान का त्याग। मदजल की शोभा से हाथियों का कपोल मण्डल मण्डित है किन्तु स्वामियों के घर में दान विच्छेद नहीं है। वे लोग सदा दान करते रहते हैं।

भोगभङ्गः—भोग शब्द सांसारिक विलास और सर्प शरीर अर्थ का वाचक है। सर्पलोग अपने शरीर को भङ्ग ( टेढ़ा ) करते हैं विलासियों का विलास भङ्ग ( नष्ट ) नहीं होता।

स्नेहक्षयः—स्नेह शब्द तेल और प्रेम दोनों का वाचक है। रात्रि के विराम के समय स्नेह ( तेल ) के समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाते हैं नगर के लोग रातभर दीप जलाते थे। दीप के प्रशान्त होने के समय में ही स्नेह क्षय होता था किसी स्नेही व्यक्ति के हृदय में स्नेह का अभाव नहीं होता।

कूटप्रयोगः—संगीत के प्रसङ्ग में अस्पष्ट अर्थ वाले कूट शब्दों का प्रयोग होता है। व्यवहार में कूट ( छल ) का प्रयोग नहीं होता॥

किं बहुना

त्रिदिवपुरसमृद्धिस्पर्धया भान्ति यस्यां
सुरसदनशिखाग्रेष्वाग्रहग्रन्थिनद्धाः।
नभसि पवनवेल्लत्पल्लवैरुल्लसन्त्यः
परमिह वहन्त्यो वैभवं वैजयन्त्यः॥ ३२॥

त्रिदिवेति॥ सुराणां सद्मानि प्रासादा विमानानि च। आग्रहग्रन्थिरित्या-ग्रहा अङ्कुटकारकेषु ये ग्रन्थयस्तैर्नद्धाः। वेल्लत्पल्लवैश्चलदञ्चलैः। उल्लसन्त्यः शोभमानाः। वैभवं माहात्म्यम्। सर्वोऽपि विजिगीषुर्बद्धपरिकरः पताकां दर्शयतीति भावः॥३२॥

देव नगरी स्वर्ग की सम्पत्ति की प्रतिद्वन्द्विता से देव गृहों के आगे गाँठ बाँधी हुई, आकाश में फहराते हुए वस्त्राञ्चलों से युक्त अतुल ऐश्वर्य को प्रकट करती हुई पताकायें सर्वथा सुशोभित हो रही हैं।

[ नगरी की पताकायें स्वर्गीय सम्पत्ति से स्पर्धा करती हैं। उसी स्पर्धा से बद्धपरिकर हो कर स्वर्ग के सामने खड़ी हैं। प्रतिद्वन्द्वी व्यक्ति अपने प्रतियोगी के सामने अकड़ कर खड़े होने के लिये बिलकुल मुस्तैद हो कर डटा रहता है और अपने ऐश्वर्य को हर तरह से प्रकट करना चाहता है। ये पताकायें भी अपने ऐश्वर्य को व्यक्त करती हुई स्वर्ग के सामने डटी हुई हैं। जिस डंडे में पताकायें रहती हैं, उसके अग्रभाग को खूब अच्छी तरह बाँध देते हैं। उसी गाँठ को लेकर कवि पताकाओं में बद्धपरिकरता देख रहा है। ]॥३२॥

अपि च।

चार्वी सदा सदाचारसज्जसज्जनसेविता।
नगरी न गरीयस्या संपदा सा विवर्जिता ॥ ३३ ॥

चार्वीति। चार्वी मनोज्ञा। सततं साध्वाचारप्रह्वसाधुश्रिता सा नगरी पुरी गरीयस्या श्रिया न त्यक्ता ॥ ३३ ॥

निरन्तर पवित्र आचरण में सज्ज ( तत्पर ) सज्जनों द्वारा सेवित यह नगरी विशाल सम्पत्ति से परित्यक्त नहीं है ॥

[ यह प्रसिद्ध सा है कि सज्जनों के यहाँ लक्ष्मी नहीं रहती हैं किन्तु इस बात की प्रतिकूलता उस नगरी में है सज्जन लोग अपने सौजन्य पूर्ण कार्य में तत्पर हैं फिर विपुल लक्ष्मी से सम्पन्न हैं ] ॥ ३३ ॥

तस्यामासीन्निजभुजयुगलबलविदलितसकलवैरिवृन्दसुन्दरीनेत्रनीलोत्पलगलद्बहलबाष्पपूरप्लवमानप्रतापराजहंसः, सकलजलनिधिवेलावनविलासकीर्तिस्तम्भभूषितभुवनवलयः, विश्वंभराभोग इव बहुधारणक्षमः, प्रासाद इव नवसुधाहारी, रविरिवानेकधामाश्रयः। दनुजलोक इव सदानघः स्त्रीजनस्य, वसिष्ठ इव विश्वामित्रत्रासजननः जनमेजय इव परीक्षितनयः, परशुराम इव परशुमासितः, राघव इवालघुकोदण्डभङ्गरञ्जितजनकः ॥

तस्यामिति ॥ शत्रुकान्ताश्रुपूरे तरत्प्रताप एव राजहंसो यस्य। तथा जयस्तम्भैर्भूषितभूमण्डलः। तथा स्तम्भोपमदोर्दण्डे स्फुरता शालभञ्जिकेव जयलक्ष्मीर्यस्य। वीरसेनसूनुर्नल इति प्रसिद्धो नृप आसीत्। बहुधानेकशो रणे क्षम। पक्षे बहूनां धारणे क्षमः। आभोग पूर्णता। वसुधां देवद्विजसंबद्धां हरत्येवशीलो न। पक्षे नवया सुधया लेपविशेषेण हारी रम्यः। अनेकधा सप्ताङ्गराज्यबहुधा माया लक्ष्म्या आश्रय.। पक्षेऽनेकस्य प्रचुरस्य धाम्न आश्रय। सदा नित्यं अघो रम्य· तथा पूर्वं एव। पक्षे दानवैः सह विश्वेषाममित्राणां त्रासकृत्। पक्षे विश्वामित्रो मुनिः। परीक्षितो नय· षाड्गुण्यं येन। पक्षे परीक्षेरभिमन्युसुतस्य सुत.। परश्विमन्द्युभे भासित·। पक्षे परशु। कुठारः। अलघुर्नो गौरवार्हं·। तथा दण्डस्य वध· परिक्लेशार्थहरणलक्षणस्य भङ्गेन मुक्त्या रञ्जितलोकः ॥ पक्षे हरधनुर्भङ्गहर्षितजनकाख्यनृप. ॥

उस नगरी में नल नामक राजा रहता था। उसने अपने बाहु युगल के बल से शत्रु दल को नष्ट कर दिया था।

इस लिये उन ( शत्रुओं ) की सुन्दर रमणियों के नेत्र कमल से गिरती हुई पर्याप्त आँसुओं की धारा में उस ( नल ) का प्रताप रूप राजहंस तैर

रहा था। [ प्रतापी नल ने अपने शत्रुओं को नष्ट कर दिया था अतः शत्रुओं की स्त्रियाँ वैधव्य दुःख से खिन्न होकर रो रही थीं ] सम्पूर्ण समुद्र तट की रक्षा के लिये अपने कीर्तिस्तम्भों को खड़ा कर दिया है जिससे पूरा का पूरा भूमण्डल सुशोभित हो रहा था। वसुन्धरा ( पृथ्वी ) विस्तार जैसे बहुधारण क्षम ( बहुत सी चीजों का धारण करने में समर्थ ) है वैसे राजा नल भी बहुधा + रणक्षम (विविध प्रकार से युद्ध सामर्थ्य रखे) थे। भवन जैसे नव + सुधाहारी ( नवीन चूने के लेप के कारण मनोहर ) होता है वैसे नल भी ( इस प्रकार से ) नव + सुधाहारी ( नवीन सुखशान्तिकर अमृत को लाने वाले ) थे अथवा न + वसुधा + हारी ( ब्राह्मण या देव निमित्त दी हुई भूमि का अपहरण करने वाले नहीं ) थे। सूर्य जैसे अनेक + धामाश्रय (विभिन्न लोकों में आश्रय लेने वाले) हैं वैसे वह भी अनेकधा + मा + आश्रय (कई प्रकार की लक्ष्मी का धाम स्थान) थे। दनुजलोक जैसे सदानव (दानवों से युक्त) है वैसे नल भी सभी जनों के लिये सदा + नव ( नित्य नया ) दीखते थे। वसिष्ठ जैसे विश्वामित्र + त्रास + अनन ( विश्वामित्र ऋषि को डराने वाले ) थे वैसे नल भी विश्वामित्र त्रास जनन ( संसार के अमित्रों को त्रास दिलाने वाले ) थे। जनमेजय जैसे परीक्षि + तनय ( राजा परीक्षित का लड़का ) है वैसे नल भी परीक्षित + नय ( सब तरह से अपनी नीति को परीक्षित कर लिये ) थे। परशुराम जैसे परशु + शालिन (परशुनामक अस्त्र से सुशोभित) हैं वैसे नल भी पर + शुभ + आशिन (दूसरों के शुभ में आस्था रखने वाले), थे। अथवा उत्कृष्ट शुभ की कामना करने वाले थे या पर ( दुश्मनों की भी दुर्बुद्धि को समाप्त कर शुभ की कामना करने वाले थे। राघव ( भगवान् राम ) जैसे धनुष को दण्ड भङ्ग रञ्जित ( विशाल धनुष को तोड़ कर जनक राजा को प्रसन्न करने वाले ) हैं वैसे नल अभ्युक ( गौरव पात्र ) है और दण्ड + भङ्ग + रञ्जित जनक ( मृत्यु आदि कठिन दण्ड को समाप्त कर जनक ( प्रजा ) को अनुरञ्जित कर देने वाले ) थे॥

[ भगवान् राम ने जैसे विशाल धनुष को तोड़ कर जनक की चिन्ता को नष्ट कर उन्हें प्रसन्न कर दिया था वैसे राजा नल भी अनघ्रूक (गौरव पात्र) थे और अपराधियों के कभी-कभी दण्ड को समाप्त कर प्रजा को प्रसन्न कर दे रहे थे। यहाँ जनपूज्य- को दण्डादि के साथ सन्धि हो गयी है। राघव पक्ष में धनुष अर्थ का वाचक कोदण्ड शब्द एक है। न्यायाधिकरण से किसी को मृत्यु आदि महान् दण्ड मिल जाने पर राजा से प्रार्थना की जा सकती थी और वह अपनी इच्छा के अनुसार उसे क्षमा कर सकता था॥ ]

सुमेरुरिव जातरूपसम्पत्तिः, तुहिनाचल इव पुण्यभागीरथीसहितः, चिन्तामणिः प्रणयिनाम्, अग्रणीः सांग्रामिकाणाम्, उपाध्यायोऽध्यायविदाम्, आदर्शो दर्शनानाम् आचार्यः शौर्यशालिनाम् उपदेशकः शस्त्रशास्त्रस्य, परिवृढो दृढप्रहारिणाम्, अग्रगण्यः पुण्यकारिणाम्, अपश्चिमो विपश्चिताम्, अपाश्चात्यस्त्यागवताम्, अचरमश्चातुर्याचार्याणाम्, अपर्यन्तभूभाराधारस्तम्भभूतभुजकाण्डकीलितशालभञ्जिकायमानविजयश्रीः, श्रीवीरसेनसूनुः, समस्तजगत्प्रासादशिरः शेखरीभूतकान्तकीर्तिध्वजो, राजा, राज्यलक्ष्मीकरेणुकाचापलसंयमनशृङ्खलः, खलवृन्दकन्दलदावानलो नलो नाम ॥

जाता रूपसम्पत्तिर्यस्य। पक्षे जातरूपं सुवर्णं सम्पत्तिर्यस्य॥ पुण्यभजनशीलः। रथवान्। हितैः सह। पक्षे पुण्यगङ्गान्वितः। प्रणयिनामर्थिनां चिन्तनप्रदो मणिरिव। जगतः प्रासादः कीर्तेश्च ध्वज उपमानम्॥

सुमेरु ( पर्वत ) जैसे जातरूप सम्पत्ति ( सुवर्ण सम्पत्ति से युक्त ) है वैसे वह (नल) भी जातरूप सम्पत्ति ( सौन्दर्य सम्पत्ति से युक्त ) थे। तुहिनाचल ( हिमालय ) जैसे पुण्य+भागीरथी सहित ( पवित्र गंगा नदी से युक्त ) है वैसे वह भी पुण्य भागी, रथी, सहित ( पुण्यात्मा, महारथी और हित की भावना से युक्त ) थे। प्रणयी (याचक जन) के लिये वह चिन्तामणि ( समस्त आकाङ्क्षित पदार्थों को देने वाले ) थे। योद्धाओं में अग्रसर थे। अध्ययन प्रकार के विशेषज्ञों में भी अध्यापक थे। वेदान्तादि दर्शनों के आदर्श ( निर्मल दर्पण ) थे। वीरता ही जिनकी शोभा है ऐसे लोगों के भी आचार्य थे। शस्त्र एवं शास्त्र दोनों ही विद्याओं के शिक्षक थे। दृढ़तापूर्वक प्रहार करने वाले लोगों की ओर भी सोल्लास आगे बढ़ने वाले थे। पुण्यात्माओं में अग्रणी थे। विद्वानों में सर्वोच्च थे। त्यागियों में अपाश्चात्य (सबसे आगे) थे। चतुरता के उपदेश देने वालों में भी वह सर्वोत्कृष्ट थे। समग्र भूमण्डल के भार को धारण करने वाली उसकी भुजायें आधार स्तम्भ ( खम्भे ) की तरह थीं। उसके बाहुस्तम्भ में विजयलक्ष्मी कठपुतली की तरह पिरो दी गयी थी। वह वीरसेन के पुत्र थे। सम्पूर्ण संसार रूप भव्य भवन के उच्चतम भाग पर उसकी भास्वर कीर्तिपताका फहरा रही थी। राजलक्ष्मी रूपी हथिनी को बाँधने के लिये वह बन्धन-शृङ्खला थे। दुष्ट जन समूह के लिये दावानल ( काननाग्नि ) थे॥

यस्येन्दुकुन्दकुमुदकान्तयः सकललोककर्णप्रियातिथयो गुणाः सततमेकब्रह्माण्डसंपुटसंकीर्णनिवासव्यसनविषादिनः पुनरनेकब्रह्माण्ड-

कोटिघटनामभ्यर्थयमाना इव भगवतो विश्वसृजः कमलसंभवस्य कर्णलग्नाः स्वर्गलोकमधिवसन्ति स्म ॥

यस्येति ॥ यस्य नलस्य गुणाः प्राचुर्यादेकस्मिन्ब्रह्माण्डेऽमान्तोऽनेकब्रह्माण्डनिर्माणं कारयिष्यन्त इव स्वर्गिभिर्नित्यमेव श्लाघ्यमानत्वात्कर्णलग्नाः श्रुतौ विज्ञापनार्थं निकटीभूताः ॥

राजा नल के गुण चन्द्र, कुन्द और कुमुद की कान्ति की तरह निर्मल थे। लोगों के कानों के प्रिय अतिथि थे। हमेशा एक ही ब्रह्माण्ड में सम्पुट ( बन्द ) होकर भलीभाँति पूर्वक निवास करने के कारण दुःख का अनुभव करते हुए मानो अनेक करोड़ ब्रह्माण्ड निर्माण करने के लिये विश्व के निर्माता एवं कमल से जन्म लेने वाले भगवान् के कानों में लगकर प्रार्थना करते हुए स्वर्ग लोक में रहते थे।

[महाराज नल के गुण एक ही ब्रह्माण्ड में नहीं अट पा रहे हैं। उन्हें अच्छी तरह रहने के लिये अनेक ब्रह्माण्ड चाहिये। इसीलिये। ब्रह्माण्ड के निर्माता ब्रह्मा के पास जाकर उनके कानों में कहते थे, "हमारे रहने के लिये करोड़ों ब्रह्माण्ड का निर्माण कीजिये।।" ]

यस्मिंश्च राजनि जनितजनानन्दे नन्दयति मेदिनीम्, गीतेषु जातिसंकराः, तालेषु नानालयभङ्गाः, नृत्येषु विषयकरणप्रयोगाः, वाद्येषु दण्डकरप्रहाराः पुण्यकर्मारम्भेषु प्रबन्धाः, सारिद्यूतेषु पाशप्रयोगाः, पुष्पितकेतकीषु हस्तच्छेदाः, न्यग्रोधेषु पादकल्पनाः कञ्चुकमण्डनेषु नेत्रविकर्तनानि, आसन्। न प्रजासु ॥

यस्मिन्निति ॥ गीतादिष्वेव जातिसङ्करादीनि न प्रजास्विति परिसंख्ययावधारणम्। गीतेषु नन्दयन्तीप्रभृतयो जातयोऽष्टादश। तासु सङ्करो मिश्रप्रतीतिः। पक्षे जातयो विप्राद्याः। सङ्करोऽनुचितसम्बन्धेन विप्लवः। तालश्चञ्चत्पुटादिः। लया द्रुतमध्यविलम्बितलक्षणा। पक्षे आलयो गृहम्। करणानि तलपुष्पपुटादीन्यष्टोत्तरशतसंख्यानि। पक्षे विषमास्त्वार्थं च। दण्डो मुदम्। दण्डः कोणः। करः पाणिः। पक्षे दण्डो वधादिः। करो राज्ञे देयोंऽशः। प्रहारो घातनम्। प्रबन्धाः सातत्यानि प्रकृष्टबन्धाश्च। पाशो दण्डो बन्धनरज्जुश्च। सारयो हि दायैर्बध्यन्ते। क्रीडार्थस्तु पाशक एव प्रतीतः। हस्तः केतकीगर्भं पाणिश्च। पादस्य मूलस्य रचना। न्यग्रोधपादपः पादान् रचयति कल्पयति। पक्षे पादस्याङ्घ्रेः कल्पना कर्तनम्। नेत्रं वस्त्रविशेषो नयनं च। विशेषेणाङ्गप्रमाणेन कर्तनं विकर्तनं विखण्डनं च ॥

जिनके राज्यकाल में प्रजा आनन्द मग्न थी, पृथ्वी प्रसन्न थी। गीतों में ही नन्दयन्ती आदि जातियों का साङ्कर्य था। आदमियों में वर्ण साङ्कर्य नहीं था। संगीत के अवसर पर ताल देते समय नाना-लय भङ्ग ( विभिन्न स्वरों

का उतार चढाव होता था किसी आदमी का नाना + आलय + भङ्ग ( विभिन्न गृह ध्वस ) नहीं होता था।

नृत्य के अवसर पर ही विषमकरण ( तेल, पुष्प, पट, आदि १०८ करणो ) का प्रयोग होता था, विषमक ( भयङ्कर ) रण ( युद्ध ) नही होता था। बाजे बजाते समय ही दण्ड ( लकड़ी का प्रयोग अथवा हाथ ) का प्रहार किया जाता था, प्रजा में किसी को मृत्यु आदि दण्ड अथवा कर (मालगुजारी) आदि से पीडित नही किया जाता था। पुण्यकर्म सम्बन्धी प्रयासो मे ही बहुत से प्रबन्ध किये जाते थे, अथवा पुण्यकर्म ( यज्ञ आदि कार्यों ) मे ही बड़े-बड़े प्रबन्ध (भागवत आदि महापुराणो) का पाठ किया जाता था। किसी प्रजा के ऊपर प्रबन्ध ( प्रकृष्टबन्धन ) नही लगाया जाता था। सारीद्यूत मे ही पाशे का प्रयोग होता था, किसी प्राणी को फसाने के लिये पाश ( जाल का प्रयोग नही होता था। विकसित केवडे का हस्तच्छेद ( मध्यभाग का भेदन ) होता था, किसी आदमी का हस्तच्छेद ( भुजकर्तन ) नही होता था। न्यग्रोध ( वट ) का वृक्ष ही पादकल्पन ( नवीन जड़ो या बरोहों की सृष्टि ) करते थे। किसी आदमी का पादकल्पन ( चरण कर्तन ) नही किया जाता था। कञ्चुकमण्डन ( चोली ) आदि सीने के समय ही नेत्र ( मायक वस्त्रो ) का विकर्तन ( छेदन ) होता था, किसी प्राणी का नेत्रविकर्तन ( नेत्र निष्कासन ) नही किया जाता था॥

[ नेत्र विकर्तन—नेत्र एक चमकीले वस्त्र का नाम है। चोली आदि के निर्माण के समय दर्जी लोग वस्त्र को काटते हैं। कोई प्रजा अपराध नही करती जिसके दण्ड के उपलक्ष्य मे किसी की आँख निकाली जाय॥

**यश्च कोऽप्यन्योदृश एव लोकपालः। तथाहि । अपूर्वो विबुधपतिः, अदण्डकरो धर्मराजः, अजघन्यः प्रचेताः अनुत्तरो धनदः॥**

यश्चेति॥ कोऽपि विस्मयहेतुः। लोकं अपालयन्ति ये तेभ्योऽन्यादृशो विसदृश एव लोकं प्रजां पालयतीति कृत्वा लोकपालः। स्वोक्तमेव द्रढयति—तथाहीत्यादिना। यतो विबुधानां सुराणां पतिः स पूर्वः पूर्वदिग्युक्तत्वात्। नलस्त्वपूर्वः सदृशो विबुधानां विदुषां पतिः। दण्डपाणिर्यमः। नलस्तु न दण्डो वधादि, करो राज्ञे दर्योऽशो यस्मादित्यदण्डकरः। तथा धर्मप्रधानराजा धर्मराजः। धर्मविजयित्वात्। प्रचेता वरुणः सह जघन्यया पश्चिमया वर्तते। नलस्त्वजघन्योऽकुत्सितः प्रकृष्टचेताश्च। यदुक्तम्—'जघन्य चरमे शिश्ने जघन्य गर्हितेऽन्यवत्'। धनदः कुबेरः सहोत्तरया दिशा वर्तते। नलस्तु न विद्यते उत्तर उत्कृष्टोऽस्मादित्यनुत्तरः। तथा धनं ददातीति धनदः॥

यह एक दूसरे ही ढंग का अलौकिक लोकपाल था। [ ससार के पालक यम कुबेर आदि लोकपाल से भिन्न ही यह प्रजापालक लोकपाल था ]

क्योंकि विबुधपति ( देवताओं के स्वामी इन्द्र ) तो पूर्व दिशा में रहते हैं किन्तु यह तो विबुध पति (पण्डितों का पति) होता हुआ भी अपूर्व (अद्भुत) था। धर्मराज (यमराज) हमेशा दण्डकर ( हाथ में दण्ड लिया करते ) हैं। किन्तु यह नल तो अदण्डकर ( वध आदि दण्ड और कर नहीं लगाता ) है फिर भी धर्मराज ( धर्म प्रधान राजा है। प्रचेता ( वरुण ) तो जघन्य ( पश्चिम दिशा में रहने वाले ) हैं नल तो अजघन्य ( अतुलित ) है और प्रचेता (उत्कृष्ट चित्त वाला) भी है। धनद (कुबेर) उत्तर दिशा में रहते हैं। नल तो धनद ( धन देने वाला ) किन्तु अनुत्तर ( सर्वोत्कृष्ट ) है॥

[ नल भिन्न शैली का ही लोकपाल था, क्योंकि इन्द्र भी एक लोकपाल हैं जो पूर्व हैं, किन्तु नल अपूर्व था। धर्मराज दण्डकर हैं नल अदण्डकर था। वरुण जघन्य हैं नल अजघन्य था। कुबेर उत्तर हैं नल अनुत्तर था। इसलिये उनकी भिन्नता सिद्ध हो गयी॥ ]

**येन प्रचण्डदोर्दण्डमण्डलीविश्रान्तविजयश्रिया श्रवणोत्पलदलाय-माननमानिनीमानलुण्टाकलोचनेन पृथ्वी प्रिया च कामरूपधारिणी सा तेन भुक्ता॥**

येनेति॥ विजयता भुजेनेत्रेण येन भूः कान्ता च सार्धेन भुक्तेन निर्विष्टा भुक्ता। सार्धं भुक्तम्। यदमरसिंह—'शर्मसात्सुखानि च' इति। कामरूपो देशविशेषः। प्रिया तु काम्यत इति काममभिलषणीय रूपम्, काममतिशयेन रूपं वा यस्यास्तं-शीला॥

उसने अपने बलशाली बाहुमण्डल में विजयलक्ष्मी को विश्राम का अवसर दिया था। कानों के ऊपर लगे हुए कमलदल सदृश उसकी आँखें मानिनी-नायिकाओं के मान को लूट लेने वाली थीं। उसने कामरूप देश की भूमि और कामरूप ( सौन्दर्यातिशय ) धारण करने वाली कान्ता का भोग किया॥

**यस्या सकलजनमनोहारिविशेषकम्, पृथुललाटमण्डलम्, अभिलषणीयकान्तयः कुन्तलाः, श्लाघनीयो नासिकाग्रभागः, वहुल-वलीकः सरोमालिकालंकारश्च मध्यदेशः, प्रकटितकामकोटिविलासः काञ्चीप्रदेशः॥**

यस्या इति॥ यस्या भुवः विशेषक-ललाट-कुन्तल नासिका मध्यदेश काञ्ची इत्येवं रूपा देशाः। वलली लताविशेष। सरसां मालिका श्रेणी। कामकोटिनाम्नी देवी। प्रियापक्षे विशेषक तिलकम्। ललाटमलकम्। कुन्तला केशा। नासिकायां भवो नासिक्यः। मध्यदेश उदरम्। वहुला बह्वयो वल्य उदररेखा यत्र तथा सह रोम-पङ्क्तिमण्डनेन। प्रकटिताकोटिकर्षविलासः काञ्चीप्रदेश श्रोणी॥

जिस प्रिया का विशेषक ( तिलक ) सब मनुष्यों के चित्त का हरण कर लेता था। ललाट भाग बड़ा ही विशाल था, कुन्तल ( बालों ) की कान्ति नितान्त स्पृहणीय थी। नासिक्य ( नाक का भाग ) अत्यन्त प्रशंसनीय था। उसका मध्य भाग बहुल + वलीक ( त्रिवलियों से युक्त ) तथा रोमपंक्ति रूप अलङ्कारों से युक्त है।

काञ्चीप्रदेश (करधनी पहनने का स्थान) करोड़ो कामों के विलास को प्रकट कर रहा है।

पृथ्वी पक्ष —उस पृथ्वी की विशेष शोभा बढ़ाने वाला विशाल लाट देश था। स्पृहणीय कान्ति से समन्वित कुन्तल देश था। नासिक्य प्रदेश बड़ा ही प्रशंसनीय था। सवली वृक्षों तथा सरोमालिकाओं ( सरवरों ) से युक्त मध्य देश था। कामकोटि नाम की देवी से अलङ्कृत काञ्ची प्रदेश था।।

**किं बहुना।**

**यस्याः कृष्णागरुचन्दनामोदबहुलकुचाभोगभूषणा नृत्यतीवाङ्गरङ्गे रमणीयतया निरुपमा नवा यौवनश्रीः॥**

यस्या इति॥ अङ्गेऽङ्गाख्यदेश एव रङ्गे नर्तनस्थाने निरुपमवायौ सति वनश्रीर्नृत्यतीव। वातलतरलक्रमेव नर्तनम्। कृष्णा पिप्पली। अगरुचन्दनौ वृक्षविशेषौ तेषामामोदः। बहूनां लकुचानामाभोगो विस्तारः। तौ भूषणं यस्याः। पक्षे पर्वाः... कालागरुचन्दनयोरामोदेन व्याप्तस्तनविस्तारमण्डना। नवेति यौवनश्रीरिति च भिन्नम्॥

कृष्णागरु (अगर) और चन्दन की गन्ध और विशाल स्तनों की व्यापकता से अलङ्कृत, रमणीयता के कारण अनुपम एवं नवीन यौवन लक्ष्मी जिसके अङ्ग रूप रङ्गमञ्च पर नाच भी रही थी।

पृथ्वी पक्ष —कृष्णागरु (अगरु) चन्दन वृक्षों की गन्ध तथा बहु + लकुच (अधिकांश लकुच) वृक्षों की व्यापकता से अलङ्कृत वनलक्ष्मी अनुपम वायु के बहते रहने पर अङ्ग देश रूप रङ्गमञ्च पर नाच भी रही थी॥

[ पृथ्वी पक्ष में निरुपमा नवा यौवश्रीः शब्द का विच्छेद, निरुपमान + वायौ + वनश्री करना चाहिये। अर्थात् अनुपम वायु के बहते रहने पर वनश्री अङ्ग देश के रङ्गमञ्च पर नाच रही थी। ]

**किं चान्यत्।**

**अन्य एव नयावतारः स कोऽपि पुरुषोत्तमो यो न मीनरूपदूषितः नाङ्गीकृतविश्वविश्वंभराभारोऽपि कूर्मीकृतात्मा, न वराहवपुःक्लेशेन पृथ्वीं बभार, न च नरसिंहः समुत्सन्नहिरण्यकशिपुः, न बलिराज-**

बन्धनविधौ वामनो दैन्यमकरोत्, नापि रामो लङ्केश्वरश्रियमपाहरत्, नापि बुद्धः कल्किकुलावतारी ॥

किं चेति ॥ कोऽप्यपरिच्छेद्यमहिमा । तथा नवः पूर्वविलक्षणोऽवतारो जन्म यस्य स तथाभूतः । यदि वा 'णु स्तुतौ' इत्यस्य नवाः स्तुतयोऽवतार्यन्ते यस्मिन्निति स्तवावसरदम् । सर्वोर्वीपतिभ्योऽन्योऽसाधारण एव स नलो राजा । पुरुषेषूत्तमः । तथा अमो रोगोऽस्यास्तीत्यमी । नामी अनमी नीरोगः । यदि वा नमयति शत्रूनवश्यमिति कृत्वा नमी । प्रतापाक्रान्तारिचक्र इत्यर्थः । तथा न रूपे दूषित । तथा स्वीकृतधराधुरोऽपि न कूर्मिर्निष्ठुरः । कुत्सनोर्मिभिः पीडा यस्य स कूर्मि । अङ्गीकृतभारो हि पीडावान्भवति । यदुक्तम्—'ऊर्मिः पीडाजवोत्कण्ठाभङ्गप्रकाशवीचिषु' । तथा वराहवत्पुष्णता क्रोडेन न धरामपि तु सुखेनेत्यर्थः । नरेषु सिंहः शौर्यात् । न च मनुजत्वं हिरण्यं धनं कशिपु भोजनाच्छादनादि यस्मात् । तथा बलिनां राज्ञां बन्धने विधाने वा मनोदैन्यं न चाकरोत् । रामः सुन्दरः । अलमर्थं कस्य प्रभूतः ईश्वरस्य शम्भोश्च श्रियं नापि न च हृतवान् देवस्वापहारी नेत्यर्थः । प्रसेशौ देवानामुपलक्षणम् । बुद्धो विद्वान् पापिकुलोपमः, मन्य एव पुराणपुरुषावतारादिसदृश एव नवावतारो नवसंख्यावतारः । कोऽप्ययं पुरुषोत्तमो विष्णुरित्युपश्लेषः । पक्षे मीनकूर्मवराहनरसिंहवामनरामबुद्धकल्किनोऽवतारा । हिरण्यकशिपुबलिलङ्केश्वरास्तत्प्रतिपक्षाः । यम परशुरामोऽपि । तद्वा । अलमिति भिन्नं च ईश्वरोऽधरः केश्वरः सहस्रार्जुनो यमदग्निहोमार्जुनीमात्रहरणात् । राम- कृष्णः तथा केन वायुनेष्टे समर्थो भवति पवमानाशनत्वात् । यद्वा कस्य पानीयस्य यमुनाह्रदलग्नस्येश्वरः स्वामी केश्वरः कालीयसर्पस्य श्रियमपजहार ॥

और यह कोई दूसरा ही नवीन अवतार था। पुरुषोत्तम ( विष्णु ) होता हुआ भी मीन रूप ( मत्स्यावतार ) धारण कर अपने को दूषित नहीं किया। यद्यपि विश्व ( समस्त ) विश्वम्भरा ( पृथ्वी ) के बोझ को स्वीकार कर लिया है फिर भी कूर्म का रूप धारण नहीं किया। वराह ( सूकर ) का शरीर धारण कर क्लेश के साथ पृथ्वी को धारण नहीं किया। नरसिंह था किन्तु हिरण्यकशिपु का विनाश नहीं किया। बलिराज बन्धन ( बली राजाओं को बाँधने के लिये वामन रूप धारण कर दीनता नहीं दिखाया। राम होकर भी लङ्केश्वर श्री ( रावण की राजलक्ष्मी ) को नष्ट नहीं किया। ( बुद्ध होता हुआ भी कल्कि कुल से कोई सम्बन्ध नहीं है।

[ पुरुषोत्तम—जो पुरुषोत्तम (विष्णु) होगा वह मत्स्य रूप अवश्य धारण किया होगा। नल पुरुषोत्तम था लेकिन मीनरूपधारी नहीं था। वह पुरुषोत्तम ( नरश्रेष्ठ ) था और अनमी ( रोग हीन ) और न रूप दूषित ( दूषित रूप वाला न ) था। अम का अर्थ रोग है। रोग जिसे रहेगा उसे अमी कहेंगे। जो अमी ( रोगी नहीं होगा वह अनमी कहलावेगा। नः और अमी के बीच

एक खण्डाकार का प्रश्लेष माना जायगा। गुण सन्धि होने के बाद 'एङः पदान्तादति' (पा. सू) से पूर्वरूप हो गया है। अर्थात् नल रोगहीन और दूषित सौन्दर्य वाला नहीं है। इस पक्ष मे पुरुषोत्तमो य + अनमो + न + रूप + दूषिता" पदच्छेद है। यदि अकार प्रश्लेष की कल्पना न की जाय तो नमो पद रह जायगा। उसका अर्थ होगा अपने प्रताप से शत्रुओ को नवा देता है।

नवावतार—मे णु स्तुतौ धातु से निष्पन्न नव शब्द का स्तुत्य अर्थ होगा। अर्थात् राजा नल स्तुत्य हैं।

कूर्मीकृतात्मा—पृथ्वी का भार धारण करने के लिये भगवान् विष्णु कच्छप का अवतार धारण किये थे। किन्तु नल सम्पूर्ण पृथ्वी का सरक्षण रूप भार धारण कर रहा था लेकिन कु + ऊर्मि (कुत्सित पीडा) से आत्मा को सवलित नही किया था। अर्थात् विष्णु कूर्मी कृतात्मा है किन्तु नल कूर्मीकृतात्मा नही थे।

वराहवपुषा—भगवान् नारायण वराह का अवतार धारण कर बडे क्लेश के साथ पृथ्वी का भार धारण किये थे। किन्तु नल वर ( विशाल ) आहव ( युद्ध ) पोषित करने वाले क्लेश से पृथ्वी का भार धारण नही किये थे। अर्थात् पृथ्वी के सरक्षण के अवसर पर कोई विशाल शत्रु नही जिसे दबाने के लिये महान् युद्ध करना पडे और उसके लिये कष्ट उठाना पडे। शत्रु हीनता की वजह से वह अनायास राज्य सचालन करता था।

हिरण्यकशिपु—नरसिहरूप धारण कर भगवान् नारायण हिरण्यकशिपु का विनाश किये थे किन्तु नल नरसिंह ( पुरुषो मे सिंह सदृश ) था किन्तु हिरण्य ( धन ) और कशिपु ( भोजन वस्त्र ) का विनाश नही किया था।

वामन—भगवान् नारायण वामन रूप धारण कर बली राजा को बाँधने के लिये भिक्षा माँगने के लिये उसके पास गये थे किन्तु नल वलिराज (वलिष्ठ राजाओ) को बाँधने के लिये मनो दैन्य (मानसिक दीनता) नही दिखाता था। बडे उत्साह के साथ वली राजाओ पर आक्रमण कर देता था। नल पक्ष मे मनोदैन्यम् विच्छेद कर वा पद का अन्वय न शब्द के साथ करना चाहिये। अर्थात् वलिराज बन्ध विधो नवा मनोदैन्यमकरोत्।

लङ्केश्वर श्रियम्—भगवान् राम ने रावण की राज्यलक्ष्मी नष्ट की थी। नल राम ( अत्यन्त सुन्दर ) है। अलम् ( व्यर्थ ही ) क ( ब्रह्मा ) और ईश्वर (शिवजी) की श्री ( सम्पत्ति का हरण नही करता था। यहाँ भी रामो और लङ्केश्वर के बीच अकार की कल्पना नल पक्ष मे भी जाती है। नल पक्ष मे राम शब्द सुन्दर अर्थ का वाचक है। तात्पर्य यह कि ब्रह्मा और शिव आदि के निमित्त दी गयी सम्पत्ति का अपहरणरूप कुकृत्य नल के राज्य में नही होता था।

राम ( परशुराम ) होता हुआ भी ईश्वर ( दुष्ट राजा सहस्रार्जुन ) की राजलक्ष्मी का अपहरण नहीं किया। अथवा—राम ( कृष्ण ) था तो भी क ( यमुना जल ) के ईश्वर ( कालीय नाग ) की श्री का अपहरण नहीं किये। ये विरोध पक्ष अर्थ हैं। इनका परिहार ब्रह्मा और शिव वाले अर्थ में पूर्ण हो जाता है।

बुद्ध —भगवान् के दश अवतारों में से कल्की भी एक अवतार है। बुद्ध के बाद दशम अवतार कल्की का ही होने वाला है। इसलिये आवश्यक है कि बुद्ध की आत्मा का सम्बन्ध अपने दूसरे जन्म वाले कल्की से हो। बुद्ध होता हुआ भी कलि कुल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, विरोध। बुध (विद्वान्) है। कलि कुल ( पापी वंश ) में उसका जन्म नहीं हुआ है, परिहार।

इस अनुच्छेद में दशों अवतारों का वर्णन किया गया और राजा नल को सभी अवतारों से विलक्षण बताया गया इसीलिये कवि ने कहा था, "अन्य एव नवावतार"। ]

किं बहुना।

धन्यास्ते दिवसाः स येषु समभूद् भूपालचूडामणि-
लोकालोकगिरीन्द्रमुद्रितमहीविश्रान्तकीर्तिर्नलः।
लोकास्तेऽपि चिरन्तनाः सुकृतिनस्तद्वक्त्रपङ्केरुहे
यैर्विस्फारितनेत्रपत्रपुटकैर्लावण्यमास्वादितम् ॥ २४ ॥

वे दिन धन्य थे जब लोक और आलोक नामक पर्वतों से घिरी हुई पृथ्वी पर अपनी कीर्ति को विस्तृत करने वाले राजरत्न नल हुए थे। वे पुण्यात्मा प्राचीन लोग भी धन्य थे जो अपनी आँखों के पत्र रूप पुट के ( दोनें ) से महाराज नल के सौन्दर्य को लेकर आस्वादित किये ॥ २४ ॥

अपि च।

ये कुन्दद्युतयः समस्तभुवनैः कर्णावतंसीकृता
यैः सर्वत्र शलाकयेव लिखितैर्दिग्भित्तयश्चित्रिताः।
यैर्चेतुं हृदि कल्पितैरपि वयं हर्षेण रोमाञ्चिता
स्तेषां पार्थिवपुङ्गवः स भवनामेको गुणानां निधिः ॥२५॥

कुन्द कान्ति सदृश जिन गुणों को समस्त लोगों ने अपने कानों के अलङ्कार बना लिये, जिन ( गुणों ) से दिशा रूप भित्तियाँ इस तरह खिल उठीं जैसे शलाका ( चित्र की तुली ) ( कूची ) से किसी भित्ति पर चित्र खींचा जाय, मन में जिन ( गुणों ) की कल्पना से भी प्रसन्नता के मारे रोमाञ्च हो आता था, ऐसे समस्त गुणों का एकमात्र स्थान नल राजाओं में सर्वश्रेष्ठ था ॥ २५ ॥

यस्य च युधिष्ठिरस्येव न कचिदपार्थो वचनक्रमः मरुमण्डलमिवापापं मानसम्, महानसमिव सूपकारसारं कर्म, कार्मुकमिव सत्कोटिगुणं दानम्, दानवकुलमिव दृष्टवृषपर्वोत्सवं राज्यम्, राजीवमिव भ्रमरहितं सर्वदा हृदयम् ॥

यस्य चेति ॥ अर्थादपेतोऽपार्थः । अन्यत्र पृथाया अपत्यत्वात् । अपापं निष्पापम् । पक्षेऽपेता आपो यस्मात् । सुष्ठु उपकारेण सारम् । पक्षे सूपकारैः सूदैः सारम् । सत्पात्रप्रतिपादनाद्दानं सच्छोभनम् । कोटिः संख्या । पक्षे कोटिरटनिः । गुणो ज्या । वृषो धर्मः । पर्व पौर्णमास्यादि उत्सवः पुत्रजन्मविवाहादिस्ते दृष्टा अनुष्ठिता यत्र । पक्षे वृषपर्वा दानवः । भ्रमः संशयः । पक्षे भ्रमरेभ्यो हितम् ॥

युधिष्ठिर की तरह जिसका वचन क्रम अपार्थ ( अर्थरहित ) नहीं था। मरुमण्डल ( मरुभूमि ) जैसे अपाप ( अप + आप = जल रहित ) है वैसे ही नल अपाप ( पाप रहित ) हृदय का था।

रसोई घर में जैसे सूपकार ( पाचक ) का कर्म ही सार ( मुख्य ) तत्त्व होता है वैसे नल मे भी सूपकार ( सुन्दर उपकार ) रूप कर्म ही मुख्य अंश है। धनुष जैसे सत्कोटि गुण ( सुन्दर यष्टि और प्रत्यञ्चा से युक्त होता है वैसे नल का दान सत्कोटि गुण ( करोडों गुणों से युक्त है या और राजाओं की अपेक्षा करोड़ गुणित है। दानव कुल ( राक्षस वंश ) जैसे दृष्ट वृष पर्वोत्सव ( वृषपर्वा नामक राक्षस के उत्सव को देख चुका ) है वैसे नल का राज्य भी दृष्ट वृष पर्वोत्सव ( वृष ( धर्म ) पर्व ( पूर्णिमा ) उत्सव ( पुत्र जन्म, विवाह आदि ) को देखा है। कमल जैसे सदा भ्रमर + हित (भ्रमरों से घिरा) रहता है वैसे उसका हृदय भी भ्रम + रहित ( सन्देह रहित ) था ॥

यश्च परमहेलाभिरतोऽप्यपारदारिकः । शान्तनुतनयोऽपि न कुरूपयुक्तः ॥

यश्चेति ॥ हेला शृङ्गारचेष्टा । यद्वा परः उत्कृष्टो महः उत्सवो यस्यां तस्यामिलायां पृथिव्यां रतः । राजन्वती हि मही सदुत्सवा । विरोधे महेला स्त्री शान्तश्चासौ तनुतनयश्च । शान्तो जितेन्द्रियः । तथा तनुः स्तुतो नयो नीतिर्यस्य । तथा न कुत्सितरूपयुक्तः । पक्षे शान्तनुपुत्रो गाङ्गेयः कुरूणां क्षत्रियाणामुपयोगी ॥

पर + महिला ( दूसरे की स्त्री ) मे अनुरक्त है फिर भी उसकी अपार दारिकायें ( अनेक कन्यायें ) हैं। विरोध।

पर + मह + इला ( उत्कृष्ट उत्सवों से युक्त पृथ्वी ) मे अनुरक्त है अतः अपारदारिकाओं ( कन्याओं ) वाला है। परिहार।

शान्तनु + तनय (भीष्म) है फिर भी कुरु + उपयुक्त ( कुरुओं के उपयोग मे ) नहीं है, विरोध।

शान्त + नुत + नय ( जितेन्द्रिय और प्रशंसित नीति वाला ) है और कु + स्न + युक्त ( खराब स्न वाला ) नहीं है। परिहार।

[ परमहिला—जो दूसरे की स्त्री में अनुरक्त रहेगा उसकी अपनी अनेक लड़कियाँ कहाँ से जायेंगी। विरोध बीज। वह उत्सव सम्पन्न उत्कृष्ट पृथ्वी का सम्राट् है। अपने राज्य में सर्वदा अनुरक्त है। प्रजा की समस्त बालिकाओं को अपनी लड़की समझता है। इसीलिए उसकी अपनी अपार दारिकाएँ ( कन्याएं ) हैं। परिहार बीज।

शान्तनुतनय ( भीष्म ) स्त्रियों के उपभोग में नहीं थे। शान्तनुतनय होते हुए भी कुदनों के उपभोग में न होना यही विरोध का बीज है।

परिहार पक्ष—शान्त स्वभाव वाला और प्रशंसित नीति वाला है तथा उसमें कुरूपता का अभाव है। ]

किं बहुना।

सदाहंसाकुलं बिभ्रन्मानसं प्रचलज्जलम्।
भूभृन्नाथोऽपि नो याति यस्य साम्यं हिमाचलः ॥ ३६ ॥

सदेति ॥ भूभृतो गिरयो नृपाश्च। तन्नाथस्तद्द्वयोरपि। सम्यग्स्थेयं हिमाचलो यस्य साम्यं नायाति। यतः। सदाहं सखेदम्। साकुलं व्यग्रम्। प्रचलत्कम्पमानम् जडं व्याकुलम्। मानसं चेतः। बिभर्ति। सिद्धान्ते तु मानसं सरः। सदेति भिन्नम्। प्रचलज्जलं यत्र। शेषं प्रतीतम्। आकुलशब्दो भावप्रधानो यथा "तिष्ठन्ति च निराकुला" ॥ ३६ ॥

निरन्तर चञ्चल जल वाले तथा हंसों से भरे हुए मानसरोवर को धारण करने वाले भूभृन्नाथ ( पर्वतों का स्वामी ) हिमालय भी उसकी समानता नहीं करता।

[ क्योंकि हिमालय सदाह ( खेद पूर्वक ) साकुल ( व्यग्रता के साथ प्रचलन् ( काँपते हुए )।

जलन् मानस (जड़ हृदय को या जल मानसरोवर को) धारण करता है।

राजा नल सदाह, सकुल, कम्प युक्त, तथा जड़ हृदय को धारण नहीं करता भूभृन्नाथ नल भी है और हिमालय भी। किन्तु सदाह और साकुल मानस को जैसे हिमालय धारण करता है वैसे नल सदाह और साकुल मानस को धारण नहीं करता। नल के पास दाह और व्याकुलता की कोई स्थिति नहीं है। ड और ल में अभेद माना जाता है इसीलिए जलशब्द से जड़ अर्थ लिया जाता है। ] ॥ ३६ ॥

अपि च ।

नक्षत्रभूः क्षत्रकुलप्रसूतेर्युक्तो नभोगैः खलु भोगभाजः ।
सुजातरूपोऽपि न याति यस्य समानतां काञ्चनकाञ्चनाद्रिः ॥३७॥

नक्षत्रेति ॥ यस्य नलस्य काञ्चनाद्रिर्मेरुः काञ्चन काञ्चिदपि समानतां नायाति । सुष्ठु जातरूप सुवर्णं यत्र । नलपक्षे रूप सौन्दर्यम् । अतो द्वयोरपि सुजातरूपात्वा त्साम्ये निषेध । यतो नाय क्षत्राद्भवति स्म । तथा भोगैर्न युक्त । नलस्य क्षत्र-प्रसूतिर्भोगभाक् । सिद्धान्ते तु नक्षत्राणां भूः स्थानम् । तथा नभसि गच्छन्ति ये तैर्नभोगैर्देवैर्युक्त ॥ ३७ ॥

सु + जातरूप ( स्वर्णमय ) काञ्चनाद्रि ( सुमेरु ) भी नल से कोई समानता नही रखता, क्योकि काञ्चनाद्रि न + क्षत + भू ( क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न नही) है जब कि नल क्षत्रकुल प्रसूति (क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न हुआ) है । काञ्चनाद्रि न + भोग + युक्त ( भोग युक्त नही ) है जबकि नल भोगभाज् ( सुख ऐश्वर्य आदि पदार्थो से सम्पन्न है । इसीलिये काञ्चनाद्रि से नल की कोई समानता नही है ।

सिद्धान्तपक्ष —काञ्चनाद्रि नक्षत्र भू ( नक्षत्रो का उत्पत्ति स्थान ) है । नभोग ( आकाश मार्ग से जाने वाले देवताओ से ) युक्त है ॥ ३७ ॥

तस्य च महामहीपतेरस्ति स्म प्रशस्तिस्तम्भः सकलश्रुतिशास्त्रशासनाक्षरमालिकानाम्, न्यग्रोधपादपः पुण्यकर्मप्ररोहाणाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम् ।

उस महा महीपाल ( राजा नल ) का मन्त्री श्रुतशील नाम का ब्राह्मण था । वह समस्त श्रुतियो, शास्त्रो एव शासन ( नीति ) विद्याओ का प्रशस्ति स्तम्भ ( आधारस्तम्भ ) था । समस्त पुण्यकर्म रूप कर्मो के प्ररोह (अकुरण) के लिये वटवृक्ष था । सुन्दर व्यवहार रूप रत्नो का आकर ( समुद्र ) था ।

प्रशस्तिस्तम्भ —जैसे किसी की प्रशसा किसी शुभ्र पत्थर पर लिखकर स्थायी कर दी जाती है वैसे ही उस ब्राह्मण के हृदय पर समस्त विद्यायें अत्यन्त स्पष्ट ढग से सक्रान्त हो गई थी ।

न्यग्रोधपादप —वटवृक्ष से जैसे नई प्ररोह ( बरोह ) निकलते है और लटकते-लटकते पृथ्वी से सम्पर्क कर एक नया मूल ही स्थापित कर देते है वैसे श्रुतशील से अनेक नवीन पुण्य व्यापार प्रतिदिन हुआ करते थे । ]

इन्दुः पार्थिवनीतिज्योत्स्नायाः, कन्दः सकलकल्याङ्कुरकलापस्य, सागरः समस्तपुरुषगुणमणीनाम्, आलानस्तम्भश्चपलराज्यलक्ष्मीकरेणुकायाः, सकलभुवनव्यापारपारावारनौकर्णधारः, सुधाम्भोनिधि-

डिण्डीरपिण्डपाण्डुरयशः कुशेशयखण्डमण्डितसकलसंसारसराः, सरागीकृतसमस्तपार्थिवानुजीवी, जीवितसमः, प्राणसमः, हृदयसमः, शरीरमात्रभिन्नो द्वितीय इवात्मा, कुलक्रमागतः, संक्रान्तिदर्पणः सुखदुःखयोः, स्वभावानुरक्तः, शुचिः, सत्यपूतवाक्, कृतज्ञः, ब्राह्मणः सालङ्कायनस्य सूनुः श्रुतशीलोनाम महामन्त्री ॥

तस्य चेति ॥ तस्य नृपतेः श्रुतशीलो नमामात्योऽस्ति स्म आसीत् । यशसा कुशेशयानि, संसारस्य सर उपमानम् ॥

राजनीति की किरणों ( दिव्य सिद्धान्तों ) के लिये इन्दु ( चन्द्र ) था। समस्त कला रूप अङ्कुर समूहों का मूल था । मनुष्य में रहने वाले समस्त गुण-रत्नों का सागर था । चञ्चल राजलक्ष्मी रूप करेणु (हथिनी) के लिये आलान ( बन्धन स्तम्भ ) था। समस्त संसार के व्यापार सागर में चलने वाली (प्रजाजन के जीवन रूपी) नौका का कर्णधार था। अमृत समुद्र के तरङ्गों से उत्पन्न होने वाले फेन पुञ्ज की तरह अत्यन्त स्वच्छ यश रूप कमल समूह से सम्पूर्ण संसार सरोवर को अलङ्कृत कर दिया था। सम्पूर्ण सामन्त राजाओं को अपने में अनुरक्त कर लिया था। राजा नल के लिए वह ( मन्त्री ) जीवन के समान था। हृदय के तुल्य था। केवल शरीर ही भिन्न था। वस्तुत राजा की दूसरी आत्मा ही था। कुल क्रम (कई पुश्त) से मन्त्री पद पर उसका वंश काम करता आ रहा था। सुख और दुःख दोनों स्थितियों में दर्पण की तरह प्राञ्जल था। राजा के स्वभाव से स्नेह रखने वाला, पवित्र, सत्य से पवित्रित वाणी बोलने वाला वह सालङ्कायन पुत्र था ॥

मित्रं च मन्त्री च सुहृत्प्रियश्च विद्यावयःशीलगुणैः समानः ।
यमूच नृपस्य स तस्य विप्रो विश्वम्भराभारसहः सहायः ॥३८॥

वह ब्राह्मण उस राजा का मित्र, मन्त्री, प्रिय एवं सुहृत् था। विद्या, अवस्था आदि में समान था और पृथ्वी का भार धारण करने में सहायक था ॥ ३८ ॥

अपि च ।

ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मवित्तापहारी स्त्रीयुक्तोऽपि प्रायशो विप्रयुक्तः ।
सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः को वा तादृग्दृश्यते श्रूयते वा ॥३९॥

ब्रह्मण्य इति ॥ ब्राह्मणे हितो ब्रह्मण्यः। तथा ब्रह्म वेत्ति। तथा तापहारी। तथा विप्रैर्द्विजैर्युक्तः। तथा सत्शोभनो वेषो यस्य। विरोधांश सुगम एव। ब्रह्मवित्तं ब्रह्मस्वम्। विप्रयुक्तो वियुक्तः ॥ ३९ ॥

ब्रह्मण्य :—(ब्राह्मणों का हित चिन्तक) होता हुआ भी ब्रह्मवित्तापहारी ( ब्राह्मणों की सम्पत्ति का हरण करने वाला ) था। विरोध ।

ब्रह्मण्य ( विप्रों का हित चिन्तक ) था और ब्रह्मविन् + तापहारी (ब्रह्म-विद्या का जानकार और प्रजाजन के ताप का हरण करने वाला) था। परिहार।

स्त्री युक्त रहता हुआ भी प्राय विप्रयुक्त ( वियोगी ) बना रहता था। विरोध।

स्त्री युक्त था विप्र + युक्त ( ब्राह्मणों से युक्त ) भी था। परिहार।

सद्वेष ( द्वेष सहित ) था फिर भी द्वेष निर्मुक्त चित्त वृत्ति वाला था। विरोध।

सद्वेष ( सुन्दर वेष युक्त ) था और उसकी चित्त + वृत्ति द्वेष रहित थी। परिहार।

[ वह ब्रह्मण्य होता हुआ भी ब्रह्म वित्तापहारी, स्त्री युक्त होकर भी विप्रयुक्त ( वियोगी ), सद्वेष होता हुआ भी द्वेष वियुक्त था, ऐसा कौन देखने या सुनने में आता है ॥ ३६ ॥ ]

**अथ स पार्थिवस्तस्मिन्नमात्ये परिजनपरिवृद्धे प्रौढप्रेमणि निगूढ-मन्त्रे मन्त्रिणि तृणीकृतस्त्रैणविषयरसे सौराज्यरागजनने जननीयमाने जनस्य, सर्वोपधाशुद्धबुद्धौ निधाय राज्यप्राज्यचिन्ताभारमभिनव-यौवनारम्भरमणीये रम्यरमणीजननयनहृदयप्रिये प्रियङ्गुभासि जित-मदनमहस्यपहसितसुरासुरसौभाग्ययशसि विस्मापितसमस्तजन-मनसि लसल्लावण्यपुञ्जपराजितसकलसमुद्राम्भसि कान्तिकटाक्षित-चन्द्रमसि वयसि वर्तमानो मानितमानिनीजनयौवनसर्वस्वः स्वयम-नवरतं सकलसंसारसुखसन्दोहमन्वभूत् ॥**

अथेति ॥ अथानन्तरमेवं वर्णनीयेऽमात्ये राज्यभारं निवेश्यैव वर्णनीये वयसि वर्तमानो राजा सुखातिशयं सिषेवे ॥

वह ( मन्त्री ) परिजन समूह से दृढ था। प्रगाढ प्रेमी था। मन्त्रो (राज-कीय गुप्त मन्त्रणाओं ) को गुप्त रखता था। स्त्री सम्बन्धी विषय रस को तृण समझता था। सुन्दर राज्य निर्माण में ही राग रखता था। प्रजाजन को जननी की तरह प्रतीत होता था। समस्त उपधाओं ( कपट आदि दुष्टताओं ) से रहित था। अतः उस पर राज्य विषयक विशिष्ट चिन्ता का भार सौंपकर वह राजा नवीन यौवन प्राप्त करने के कारण रमणीय, मनोहर रमणियों के नेत्रों और हृदयों को प्रिय, प्रियङ्गु पुष्प की तरह सुकान्त, कामदेव की कान्ति को भी जीतने वाले, देवों और दानवों के सौन्दर्य यश को तिरस्कृत कर देने वाले,

अपने उमड़ते हुए लावण्य ( सौन्दर्य ) पुञ्ज से सम्पूर्ण समुद्रों के जल को भी परास्त कर देने वाले, अपनी कान्ति से चन्द्रमा को भी तर्जित कर देने वाले वय (अवस्था) में आकर मानिनी नायिकाओं के यौवन को ही सर्वस्व मानता हुआ स्वयं निरन्तर संसार के समस्त सुख समूह का अनुभव करने लगा ॥

[ नवल्लावण्यपुञ्ज —समुद्र पक्ष में लावण्य का अर्थ क्षारत्व है और यौवनावस्था के पक्ष में सौन्दर्य है। सकल समुद्रजल क्षारत्व रूप लावण्य से सम्पन्न है और यौवनावस्था सौन्दर्यातिरपर्याय लावण्य से सम्पन्न है। लेकिन उमड़ता हुआ यौवनकालीन लावण्य समुद्र जल लावण्य को परास्त कर दिया था। ]॥

तथाहि।

कदाचिदनुत्पन्नविषमरणो गरुड इवाहितकारी हरिवाहन-विलासमकरोत् ॥

कदाचिदिति ॥ अनुत्पन्नविषमयुद्धमीरहितानामपकारी। हरिरश्वस्तस्य वाहनं वाह्यालीप्रवहणम्। स एव विलासः। पक्षे विषान्मरणभयम्। अहिः सर्पः। हरे-र्विष्णोर्वाहनविलासो यानलीला ॥

गरुड जैसे अनुत्पन्न :—विषमरण ( विष के कारण मरण की उत्पत्ति न होने देने वाले ) हैं वैसे ही नल भी अनुत्पन्न + विषम + रण (कभी भी कठिन लड़ाई की स्थिति उत्पन्न होने देने वाले नहीं ) थे। गरुड जैसे अहि + ताप + कारी ( सर्पों को ताप उत्पन्न करने वाले ) हैं वैसे नल भी अहित + अपकारी ( अहित करने वालों को कष्ट देनेवाले ) थे। गरुड जैसे हरिवाहन + विलास ( विष्णु के वाहन लीला ) को प्राप्त किये हैं वैसे नल भी हरिवाहनविलास ( अश्व वाहन विलास ) प्राप्त किये थे ॥

कदाचिच्चन्द्रमौलिरिव मदनबाणासनातिमुक्तशरसंछादितायां पर्वतभुवि विजहार ॥

कदाचिदिति ॥ मदनो बाणोऽसनोऽतिमुक्तक शरश्च मुञ्ज एभिर्वृक्षैः सम्यक्छादि-तायां पर्वतश्रेण्याम्। पक्षे मदनः कामस्तस्य बाणासनं धनुस्तस्मान्मुक्तैः शरैर्बाणैः छादितायां पर्वतभुवि। पर्वतान्भवति स्मेति पार्वत्याम् ॥

चन्द्रमौलि ( शङ्कर ) जैसे मदन (कामदेव) के बाणासन (धनुष) से छूटे हुए बाणों से ढकी हुई पर्वत भूमि पर भ्रमण किये वैसे नल भी ऐसी पर्वतीय भूमि पर भ्रमण किये जो मदन, बाण, असन, अतिमुक्तक तथा शर ( मुञ्ज ) आदि पेड़ों से आच्छादित थी ॥

[ भगवान् शंकर को पार्वती से सम्बद्ध करने के लिये हिमालय के एकदेश मे कामदेव बाण छोडा था। पार्वती से परिणय होने के बाद वही कामवाण वर्षा की भूमि शिवजी की विहार भूमि बनी। ]

कदाचिदच्युत इव शिशिरकमलाकरावगाहनोत्पन्नपुलककोरकित-तनुरनन्तभोगभाक्सुखमन्वतिष्ठत् ॥

कदाचिदिति ॥ कमलानामाकरो यमश्च। पक्षे कमलायाः श्रियः करः पाणिः। अनन्तामोगोऽनेकविलासः शेषाहिवपुश्च ॥

विष्णु जैसे शिशिर ऋतु मे कमला + कर (लक्ष्मी के हाथो) का आलिङ्गन करने से रोमाञ्चित होकर असख्य भोग ( फणाओ ) को धारण करने वाले शेषनाग के शरीर पर सुख पूर्वक विश्राम करते हैं, वैसे ही नल भी कभी शिशिर काल मे कमलाकर ( कमल सरोवर मे अवगाहन ( स्नान ) करने के कारण शरीर मे रोमाञ्च आदि का अनुभव करता हुआ असख्य सुखो का अनुभव करता था ॥

कदाचन नलिनयोनिरिव राजसभावस्थितः प्रजाव्यापारम-चिन्तयत् ॥

कदाचनेति ॥ राज्ञः सभा। पक्षे रजसा गुणेन निर्वृत्ते भावे स्थितः ॥ व्यापारो व्यवहारो निर्माणं च ॥

जैसे नलिनयोनि ( कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा ) राजस + भाव ( रजोगुण सम्बन्धी भाव ) से पूर्ण होकर प्रजा सृष्टि के व्यापार की चिन्ता करता है वैसे नल भी राज + सभा ( राजगोष्ठी ) मे अवस्थित होकर प्रजा कार्य के विषय मे विचार करता था ॥

कदाचिन्मयूर इव कान्तोन्नमत्पयोधरमण्डलिविलासेन हर्षम-भजत् ॥

कदाचिदिति ॥ कान्ताङ्गना काम्या च। पयोधरः स्तनो मेघश्च। विलास उपभोगः स्फुरणं च ॥

जैसे मयूर ( मोर ) कान्त (सुन्दर) उन्नमत्पयोधर (उमडते हुए बादलो के समय मे मण्डलिविलास (गोलाकार होकर नृत्य) करता हुआ आनन्द का अनुभव करता है वैसे वह भी कभी कान्ता (रमणी) के उन्नमत्पयोधर (उन्नत स्तनो) के साथ मण्डलिविलास (आलिङ्गन) कर सुख का अनुभव करता था ॥

[ मयूर उमडते हुए बादलो के मण्डलि विलास ( चक्कर लगाने ) के समय पूर्ण प्रसन्न हो जाते हैं। मण्डलिविलास मेघ भी करता है। वर्षा के

दिनों में इधर उधर चक्कर लगाता है। मयूर भी मण्डलाकार होकर नृत्य विलास करता है। मयूर का अपना विलास भी उसके लिए आनन्दकर है और मेघ का विलास भी उसके लिए आनन्दकर है]॥

कदाचिन्नक्षत्रराशिरिवाश्विन्या सेनया समन्वितो मृगानुसारी बहुशाखपवनमार्गे बभ्राम ॥

कदाचिदिति ॥ अश्वाः सन्त्यस्यां तया सेनया युक्तः तथा मृगानुगामी बहुशाखे वृक्षपथेऽभ्राम्यत्। पक्षे अश्विनीमृगौ नक्षत्रे। इनेन रविणा सह सेनया अश्विनीविशेषणम्। बहुशा इति भिन्नम्। पवनमार्गो द्यौः। अत्र षकाराग्रे विसर्जनीय उपध्मानीयो वा। शाखपदे तु षकार एव। उच्चैरूपभेदेऽपि श्रुतिसाम्यान्न दोष इति कविसमयः। यथा च घनश्यामकृते श्रीचण्डिकाचरिते महाकाव्ये—'पुष्पाद्यपामिह सदाधिगमे समृद्धया पुष्पाढ्या फलभराच्च विनम्रभावम्। पुष्पाद्यपि वहतो मुनिवत्सुजन्मा-पुष्पाद्यनानि मधु माधु मधुव्रतौघाः,' अस्यार्थः—अपां जलानाम्। अधिगमे प्राप्तौ सत्याम्। पुष्पात्कुसुमतः। फलभरात्फलातिशयात् च या समृद्धिस्तया। पादपास्तरवो विनम्रभावमापुः। समृद्धौ हि नम्रता स्यात्। अथाधिपस्य पुष्पफलता हेतुः। तानि च समृद्धे। भा च नम्राशाया इति। तथा पुष्पाणामवहन यत्र। तथाऽपापि पापरहितम्। शोभनं जन्म तथा मुनयो वृषति। तद्वदेतेऽपि मधुव्रतौघाः सुजन्म धारयन्तः सन्तः मधु मकरन्दमपु पिबन्ति स्म। पादैरङ्घ्रिभिः पादेषु मूलेषु वा पतन्त्यमीत्यगमित्यनेन भाधुनाप्युक्तिः। अत्रापुष्पाद्यया पकार एव। पुष्पाद्यस्तु विसर्जनीयोपध्मानीयान्यतर एव न तु पकारः। परं श्रुतिसाम्यान्न दोषः। एवमेव विसर्जनीयजिह्वामूलीययकारेष्वपि यथा 'ये सहजनिष्कलङ्काचारा अपि भान्ति निष्कृष्टगन्धात्। सुषिय काष्ठादशकधराधिक सपदि तेऽनुवत। अस्यार्थः—सहजोऽकृत्रिमो निष्कलङ्को निर्दोष आचारो येषां ते सुषिय काष्ठादशक दिक्चक्र धरे पर्वतैरधिकमरनुवत व्याप्नुवन्ति। क्षीणाममावो निधि। कुट इव। तस्य गमा भ्रश समाहारद्वन्द्वः। एतेन निर्वन्धियत्वोक्तिः। अपिविरोधः। यथा किल सहजस्वर्गीया लङ्काया चारो यति। ते कथं त्रिकूटाचलगमनामात्रेण भान्ति। दशकन्धरो रावणः काष्ठा दिशः। अत्र स्वर्गीयनिष्कशब्दे षकार एव निष्कलङ्कशब्दे जिह्वामूलीयविसर्गौ इति बोध्यम् ॥

जैसे नक्षत्रों का समूह सेन (स+इन=सेन (सूर्य सहित या सूर्य स्थित) अश्विनी नक्षत्र से अन्वित होकर मृगशिरा नक्षत्र का अनुगमन करता हुआ बहुशा पवन मार्ग (आकाश) में भ्रमण करता है वैसे नल भी कभी आश्विनी सेना (अश्व बहुल सेना) से युक्त होकर (आखेट के प्रसङ्ग) में मृगों का पीछा करता हुआ बहुशाखवन (अधिक शाखा से युक्त वन) में परिभ्रमण करता था ॥

कदाचिद्राजनेय इवाक्षविनोदमन्वतिष्ठत् ॥

कदाचिदिति ॥ अक्षैः पाशकैः विनोदं क्रीडाम्। पक्षे अक्षस्य रावणेः। विनोद वधम् ॥

जैसे आञ्जनेय ( अञ्जनि पुत्र हनुमान् ) अक्ष ( रावण पुत्र अक्षय कुमार ) का विनोद ( वध ) किये वैसे नल भी कभी अक्ष ( द्यूत क्रीडा ) में विनोद करता था ॥

कदाचिद्वानरेश्वर इव सुग्रीवो वैदेहीति प्रयाणस्यालघुकाकुत्स्थस्यार्थिनः प्रार्थना क्रियतां सफलेति वानरपुङ्गवानादिदेश ॥

कदाचिदिति ॥ शोभना ग्रीवा यस्य । वै स्फुटार्थे । मह्यं देहीति ब्रुवाणस्य । तथा आ समन्तात् लघ्व्यां काकौ भिन्नकण्ठध्वनौ तिष्ठतीत्यलघुकाकुत्स्थस्तस्य याञ्चया वशात्स्वरभेदवतोऽर्थिनो याचकस्य प्रार्थना सफला क्रियतामित्यमुना प्रकारेण नरपुङ्गवान्नरश्रेष्ठानादिष्टवान् । वा समुच्चये । पक्षे वैदेही सीतेति प्रलपतोऽलघोर्गुरो रामस्य काकुत्स्थस्य सप्रयोजनस्य प्रार्थना सफला क्रियतामिति वानरपुङ्गवान्कपीशः सुग्रीवो नियुक्तवान् ॥

जैसे वानरेश्वर (बन्दरों के स्वामी) सुग्रीव "वैदेही ( सीता सीता ) कह कर प्रलाप ( क्रन्दन ) करते हुए अलघु काकुत्स्थ ( विशाल महत्व वाले ) भगवान् राम रूप अर्थी (याचक) की प्रार्थना सफल करो" यह आज्ञा वानर श्रेष्ठों को दे रहे थे उसी तरह सुग्रीव (सुन्दर गर्दन वाला) नरेश्वर (नल) भी "वै + देहि ( निश्चित रूप से दो ) यह अलघु ( अत्यन्त नम्रता पूर्ण ) काकु ( ध्वनि ) से बोलने वाले अर्थी ( याचकों ) की प्रार्थना को सफल करो" यह आज्ञा अपने नरपुङ्गवों ( वरिष्ठ कर्मचारियों ) को देता था ॥

[ वानर राज सुग्रीवपक्ष में वानरेश्वर और वानर पुङ्गव ज्यों के त्यों हैं किन्तु नल पक्ष में वा हटा दिया गया है । अतः नरेश्वर और नरपुङ्गव अवशिष्ट रह जाते हैं । ] ॥

कदाचिन्मकरकेतन इव सुमनसो मार्गणान् विधाय स्वगुणं कर्णपूरीचकार ॥

कदाचिदिति ॥ मार्गणान्याचकान् । इष्टार्थसम्प्रदानेन सौमनस्ययुक्तान्विधाय स्वस्य गुणं त्यागाख्यं जगतोऽपि कर्णौ पूर्यते अनेनेति कर्णपूरः । स्वौ कर्णपूरीचकार । पक्षे सुमनसः पुष्पाणि । मार्गणा बाणाः । गुणो ज्या । कर्णपूरः कर्णान्तकर्षणम् ॥

जैसे मकरकेतन (कामदेव) सुमनस ( फूलों ) को मार्गण (बाण) बनाकर अपने गुण (धनुष की प्रत्यञ्चा) को कानों तक खींच कर छोड़ता है वैसे नल भी मार्गण (याचकों) को सुमनस (सन्तुष्ट चित्त वाला) बनाकर अपने (त्याग रूप ) गुण से ( जगत् के ) कान को भर दिया ॥

[कामदेव पक्ष में "सुमनसो मार्गणान् विधाय" यह अन्वय करना है और नल पक्ष में 'मार्गणान् सुमनसो विधाय' यह अन्वय करना है । अर्थात् कामदेव

पक्ष में "दूतों को" बाण बनाकर अर्थ है और नल पक्ष में "याचकों को सन्तुष्ट बना कर" यह अर्थ है ]॥

कदाचिदम्भोनिधिरिवोच्चैःस्तननाभिरम्याः, कृतानिमेषनयनविभ्रमाः, सकन्दर्पाः, सिषेवे वेलाविलासिनीः ॥

कदाचिदिति ॥ उच्चैः स्तनाभ्यां नाभ्या च रम्या। तथा निर्निमेषनेत्रलीलाः सकामाः। वेलायां वारके विलसन्ति भोगायोपतिष्ठन्त इत्येवंशीला वारस्त्री.। सिषेवे अम्भोनिधिस्तु वेला अम्भोवृद्धीः। कीदृशीस्ताः। उच्चैःस्तननेन शब्देनाभिरम्याः। तथा कृतमनिमेषाणां मत्स्यानां नयनं प्रापणं यैस्तथोक्ता विविधा भ्रमा आवर्ता यासु। तथा क जलं तस्य दर्पेण मोक्षेण सह। दर्पो मोचनार्थत्वात्। तथा विलसनयोग्याम् ॥

समुद्र जैसे उच्चैः स्तनन (अधिक गर्जन) के कारण अभिरम्य (रमणीय) अनिमेष (मछलियों) के नयनों एवं विशिष्ट ढङ्ग के भ्रमों (लहरों) वाली, क (जल) के दर्प (त्याग) रूपकार्य से समन्वित वेला (किनारा) रूप विलासिनी (नायिका) का सेवन करता है उसी तरह कभी नल भी उच्च स्तन (उन्नत स्तन) एवं सुन्दर नाभि के कारण रम्य निर्निमेष आँखों के विभ्रम (विलास) को उत्पन्न करने वाली, सकन्दर्प (सकाम) वेला (उचित समय) पर विलासिनी (नायिकाओं) का उपभोग करता था।

[अर्थात् समुद्र जैसे अधिक गर्जन के कारण रमणीय मछलियों के नयनों एवं विशिष्ट ढङ्ग की लहरों वाली, जलत्याग रूप कार्य से समन्वित तटी रूप विलासिनी का सेवन करता है वैसे नल भी उन्नत स्तन एवं नाभि के कारण रम्य निर्निमेष आँखों के विलास को व्यक्त करने वाली सकाम वेला विलासिनियों (वाराङ्गनाओं) का उपभोग करता था।]॥

कदाचिद्दशरथ इवायोध्यायां पुरि स्थितः सुमित्रोपेतो रममाणरामभरतप्रेक्षणेन क्षणमाह्लादमन्वभूत् ॥

एवमस्य सकलजीवलोकसुखसन्तानमनुभवतो यान्ति दिनानि ॥

कदाचिदिति ॥ न योद्धुं शक्याऽयोध्या सञ्ज्ञा च। तस्यां पुरि। सुमित्रैरुपेतः सुमित्रया कलत्रेण। विलासवत्यो रामा विलासिन्यो यत्र तेन भरतसङ्गीतेन विक्रीडद्रामभरतयोरवलोकनेन चाह्लादं नलो दशरथश्च भेजे॥

जैसे राजा दशरथ सुमित्रा नामक पत्नी के साथ अयोध्या नगरी में स्थित होकर खेलते हुए राम और भरत को देखकर कुछ क्षण तक आनन्द का अनुभव करते थे उसी तरह नल भी अपनी अयोध्या (अविजेय) नगरी में सुमित्रोपेत (सुन्दर मित्रों से समन्वित) होकर विलासपूर्ण रामाओं (नायिकाओं)

के भरत (शास्त्रीय संगीत) को सुनकर एक क्षण आह्लाद का अनुभव करता था ॥ इस तरह सम्पूर्ण संसार की सुख परम्परा के अनुभवो के साथ इसके दिन बीत रहे थे ॥

[मानो वर्षा रूप नायिका महाराज नल को देखने के लिये आ रही थी। इस पूरे अनुच्छेद का अर्थ वर्षा और नायिका दोनो पक्षो मे करना होगा। ]

अथ कदाचिदुन्नमत्पयोधरान्तरपतद्धारावलीविराजिताः, कमलदलकान्तनयनाः, सुरचापचक्रवक्रभुवः, विद्युन्मणिमेखलालङ्कारधारिण्यः, शिञ्जानामुक्तकलहंसकाः, प्रौढकरेणुसञ्चारहारिण्यः, कम्रकन्धराः, तिरस्कृतशशाङ्ककान्तिकलापोच्चमुखमण्डलाः सकलजगज्जेगीयमानगुणमिममनुपमरूपलावण्यराशिराजितं राजानमवलोकयितुमिव तरन्ति स्म वर्षाः ॥

अथेति ॥ अनन्तरं कस्मिन्नपि समये नृपमवेक्षितुं वर्षा अवातरन्। वर्षा शब्दशतस्त्रीत्वेन वर्षाणां स्त्रीत्वमध्यवसितम्। ततश्च पयोधरा मेघाः स्तनाश्च। पतद्धारावली पतन्ती धाराश्रेणी चलन्ती हारावली च। यद्वा पयोधरयो स्तनयोरन्तमध्येऽपतन्तीऽतिसंहतत्वादप्रविशन्तो हारा यासाम्। तथा वलीभिरुदरे लेखाभिर्विराजिताः। कमलदलाना कान्तमिष्टं नयनमतिवाहनं यासाम्। वर्षाणां ह्यतिवाहने कमलानामुल्लासः। पक्षे कमलदलवत्कान्तनेत्राः। इन्द्रधनुश्चक्रमेव वक्रे भ्रुवौ यासाम्। पक्षे सुरचापचक्रवद्वक्रभ्रुवः। विद्युदेव मणिमेखला ता तथालङ्कारार्थं कस्य जलस्यारं वेगं धारयन्ति। यद्वा कस्य राज्ञे देयाकरस्य धारिण्य। वर्षा हि सस्यादिसाधकत्वात्करस्यापि साधनम्। पक्षे विद्योतमानमणिकाञ्चीभूषणधारिण्य। शिञ्जाना गर्जन्त्यस्तथा मुक्ता मानसं प्रति प्रस्थापितहंसका याभि। यद्वा मुक्तहंसानि कानि जलानि यासु। तत्समये हंसाना मानसे गमनात्। पक्षे शिञ्जाने शब्दायमाने आमुक्ते बद्धे हंसके चरणाभरणे यासाम्। प्रकर्षेणोढ कं जलं तेन रजसंचाररोधिका। पक्षे प्रगल्भगजगमनमनोज्ञा। कं जलं धरन्तीति कंधरा मेघास्ते कम्रा रम्या यासु। पक्षे कंधरा ग्रीवा॥ छादितशशाङ्ककान्तय। तथा कायं पानीयाय उपा। कलापा। कुटुम्बिभीज्ञनगीयमानरासका। तैरुन्मुखा मेघालोकनायोन्मुखा मण्डला देशा यासु। पश्चात्कर्मधारय पक्षे निर्जितेन्दुदीप्त्यतिशयमुखचन्द्रोऽप्युन्नतकपोल वा मुखबिम्ब यासाम्॥

वर्षापक्ष —उमडते हुए बादलों के मध्य से गिरती हुई धारा के समूह से अलङ्कृत कमल दलो के लिये कान्त + नयन ( प्रिय आगमन वाले ), इन्द्र के धनुर्मण्डल रूप टेढी भौहो वाली, विद्युद्रूप मणिनिर्मित मेखलाऽलङ्कार (कटिभूषण) को धारण की हुई, शिञ्जान (गर्जन) से कलहसो (सुन्दर हसो) को मानसरोवर की ओर आमुक्त (छोडदेने) वाली, प्रौढ (धारा प्रवाह) के (जल) के कारण रेणु (धूलि) के संचार (उडान) को नष्ट कर देने वाली कम्र कन्धर (सुन्दर जल को धारण करने वाले मेघो) वाली शशाङ्क ( चन्द्रमा ) की कान्ति

को तिरस्कृत (आच्छादित) कर देने वाली, तथा क (जल) के साथ (आवाज गर्जन) से लोगों के मुख मण्डल को ऊपर उठा देने वाली वर्षा पूरे संसार के द्वारा वर्ण्य गुण वाले अद्वितीय टङ्क के सौन्दर्य राशि से सुशोभित इस राजा को देखने ही के लिए मानो उतर रही थी।

नायिका पक्ष —उन्नत पयोधर (स्तनों) के बीच लोटती हुई हारपङ्क्ति से सुशोभित, कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, विद्युत् सदृश मणिमय काँटि मुद्रा धारण करने वाली, शिञ्जान (मधुर शब्द करते हुए) हंसक (नूपुर) को चरणों में आमुक्त (बन्धन) करने वाली, प्रौढ़ करेणु (उत्कृष्ट हथिनी) के सञ्चार (गमन) को भी (अपने गमन से) न्यक्कृत कर देने वाली सुन्दर कन्धों वाली, शशाङ्क (चन्द्रमा) की कान्ति को अपनी आह्लादकता से तिरस्कृत कर देने वाली, उन्नत मुखमण्डल को धारण की हुई नायिका।

वर्षापक्ष —पतद्धारावली—पतद् + धारावली—धारा पङ्क्ति जिसमें गिर रही हैं। कमलकान्तनयना —यहाँ नयन शब्द आगमन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् कमलों को कान्त (प्रिय) है नयन (आगमन) जिसका। वर्षा का आगमन कमलों को बहुत प्रिय है। सुरचाप —इन्द्र धनुष रूप टेढ़ी भौंहों वाली। अर्थात् वर्षा रूप नायिका की भौंह इन्द्र धनुष ही है। विद्युत् — बिजली ही उसकी मणिमय करधनी है। शिञ्जान—बादल जब गरजने लगते हैं तो हंसों को समझ में आ जाता है कि अब उन्हें अपना स्थान छोड़ कर मानसरोवर चला जाना चाहिये। वर्षा के दिनों में हंस मानसरोवर चले जाते हैं। प्रौढ़ + क + रेणु + सञ्चार + हारिणी- प्रौढ़ जल से धूलि सञ्चार को नष्ट कर देने वाली, जब वर्षा पर्याप्त हो जाती है तो धूलि उड़ना बन्द हो जाता है। कन्धर —क का अर्थ जल है। अतः कन्धराशब्द जलधारि का अर्थ में प्रयुक्त होता है। तिरस्कृत —बादल चन्द्रमा की किरणों को रोक लेते हैं। चन्द्रमा उदित रहते हैं फिर बादलों के रहने पर अंधेरा रहता है। उच्च मुख मण्डला का ऊर्ध्वोत्थापन्न पूर्व पद से कर्मधारय समास हुआ है। बादल आकाश में एक अनियमित पदार्थ है। अनियमित पदार्थ हजारू आदमी को कौतूहल में डाल देता है। बादलों को देखने के कौतूहल से लोग सिर ऊपर उठा लेते हैं।

नायिका पक्ष —वर्षा के प्रायः सभी विशेषण नायिका पक्ष में लगते हैं। पतद् + हारावली—स्तनों के बीच हार पङ्क्ति लोट रही है। कमलदलकान्त-नयना —कमल दल की तरह सुन्दर नेत्रों वाली। टेढ़ी भौंहें इन्द्रधनुष की तरह हैं। विद्युत् सदृश मणिमय काञ्ची धारण की हैं। शिञ्जान—ध्वनि करते हुए सुन्दर हंस को (नूपुरों) को बाँधी हैं। उन्नत मुख मण्डल वाली हैं।]

यत्र च ।

आकर्ण्य स्मरयौवराज्यपटहं जीमूतनूत्नध्वनि
नृत्यत्केकिकुटुम्बकस्य दधतं मन्द्रां मृदङ्गक्रियाम् ।
उन्मीलन्नवनीलदलकन्दव्याजेन रोमाञ्चिता
हर्षेणेव समुच्छ्रिता वसुमती दध्रे शिलीन्ध्रध्वजान् ॥ ४० ॥

आकर्ण्येति ॥ युवा चासौ राजा चेति युवराजस्तस्य भावो यौवराज्यम् । कामस्य तरुणराज्यपटहोपमं नृत्यत्केकिनां च मृदङ्गध्वनिं दधानं घनगर्जितं श्रुत्वा मुदेव विकसत्कन्दलच्छलेन पुलकिता भूरभूत् । शिलीन्ध्रध्वजानधारयत् ॥ ४० ॥

और उसी वर्षा समय में—

काम के यौवराज्याभिषेक के अवसर पर नाचते हुए मयूर परिवार की गम्भीर ध्वनि रूप मृदङ्गध्वनि से समन्वित जीमूत ( बादल ) के नवीन ध्वनि रूप पटह (नगाड़े) को सुन कर अङ्कुरित होते हुए नवीन एवं नीले कन्दलों (अङ्कुरों) के बहाने रोमाञ्च व्यक्त करती हुई वसुमती ( पृथ्वी ) मानो हर्ष से शिलीन्ध्र-ध्वजों (गोबरछत्ते) को धारण कर रही थी ।

[ वर्षा काल में काम युवराज बन रहा है । मयूरों की ध्वनि मृदङ्ग का काम दे रही है । बादल का गर्जन नगाड़े का कार्य पूर्ण कर रहा है । नवीन अङ्कुरों के बहाने वसुन्धरा रोमाञ्च व्यक्त कर रही है और प्रसन्नता के मारे शिलीन्ध्रध्वजों को धारण कर रही है ।। ४० ।। ]

अपि च ।

पर्णैः कर्णपुटायितैर्नवरसप्राग्भारविस्फारितैः
शृण्वन्ती मधुरं घुमण्डलमिलन्मेघावलीगर्जितम् ।
शाखाग्रप्रथमानसौरभभरभ्रान्तालिपालिध्वजा-
स्तोषेणेव वहन्ति पुष्पपुलकं धाराकदम्बद्रुमाः ॥ ४१ ॥

पर्णैरिति ॥ वसन्ते पुष्प्यन्ति ते धूलीकदम्बा वर्षासु च धाराकदम्बाः ॥ शाखामेमिलन्तः सौरभभराद्भ्रान्ता अपर्युपर्यटन्तश्च तेऽलयश्च त एव पालिध्वजाः प्रसिद्धचिह्नानि येषां ते धाराकदम्बद्रुमाः पुष्पमेव पुलकं मदेन वहन्ति ॥ हर्षहेतुर्गर्जनश्रवणमेव । रसो जलं रागश्च । अन्योऽपि घुमण्डलाभिमिलन्त्या घोषितं शब्दं श्रुत्वैवंविधो भवति 'ग्रन्थग्रन्थन' इति यौजादिकाद्विकल्पिते णिचि ग्रथितुं चौलमेषामिति चानशि प्रथमाना । यत्कविरहस्ये 'गाथां ग्रन्थयति प्रथयविरलं श्लोकांश्च लोकोत्तरान्गद्यं ग्राथयति स्फुटार्थललितं यो नाटकं ग्रन्थति । ग्रन्थाति श्रुतिशास्त्रपोविवरणं ग्रन्थाननेकांश्च यः स्वच्छं यस्य मनः स्वभावसरलं न ग्रन्थते कुत्रचित्' इति । अस्मादात्मनेपदमपि । तथा च । 'बहुनि जलमिव विनष्टिं यन्थानिवमिवमुद्ग्रथते स्रजो विचित्राः' । मुसलमिदमियं च पातकाले मुहुरनुयाति कलेन हुङ्कृतेन' इति ॥ ४१ ॥

और—नवीन रस के उत्तम भार से प्रस्फुटित पत्र रूप कानों से आकाश मण्डल से मिलती हुई मेघ पङ्क्ति के मधुर गर्जन को सुनते हुए, डालियों के अग्रभाग में संलग्न सौरभ (पराग) पूर्ण ( फूलों ) से आनन्द विभोर होकर भनभनाते हुए भ्रमरों की पङ्क्ति रूप ध्वजा वाले पङ्क्तिबद्ध कदम्ब के पेड़ मानो प्रसन्नता के कारण पुष्प रूप रोमाञ्च को धारण कर रहे हैं।

[वर्षा के दिनों में कदम्ब के पत्ते तरुण हो गये हैं। आकाश के मधुर गर्जन को वे अपने पत्र रूप कानों से सुनते हैं। शाखाओं के अग्रभाग में पराग पूर्ण फूलों पर भौंरे मंडरा रहे हैं। उन भ्रमरों की पङ्क्ति ध्वज की तरह प्रतीत होती है। कदम्ब के फूलों के प्रति कवि की धारणा है कि वे पुष्प रूप रोमाञ्च हैं जो मानो प्रसन्नता के कारण प्रकट हुए हैं॥ ४१ ॥]

अथ क्रमेण।

नीरं नीरजनिर्मुक्तं नीरजस्कं भुवस्तलम्।
जातं जातिलतापुष्पगन्धान्धमधुपं वनम्॥ ४२॥

नीरमिति॥ नीरं जलमम्भोजमुक्तं भूतलं निष्पांसु वनं च जातीपुष्पसौरभान्धमधुपं जातम्॥ ४१॥

नीर (जल) नीरज निर्मुक्त (कमलों से निर्मुक्त) है। भूमण्डल नीरजस्क ( धूलि रहित ) हो गया है। जाति लता के फूलों की गन्ध से भौंरे अन्ध (मस्त) हो गये हैं। इस तरह की शोभा से वन सम्पन्न हो गया है॥ ४२॥

अपिच।

धुतकदम्बकदम्बविनिष्पतन्नवपरागपरागममन्थराः।
हृततुषारतुषा रतिरागिणां प्रियतमा मरुतो मरुतो ववुः॥ ४३॥

धुतेति॥ कम्पितकदम्बद्रुमसमूहाद्विनिःसरन् योऽसौ नवः परागस्तस्यागमेन मन्थरा मन्दाः। तथा हृतशीकरकणाः तथा रतिरागोऽस्ति येषां तेषामतिदयिता मरुतो वाता मरो: पर्वतात्प्राप्ताः स्म॥ परागमेति परापूर्वः पर उत्कृष्ट आगमो वा॥ ४२॥

धुत ( हिलते हुए ) कदम्ब वृक्ष के कदम्ब ( पङ्क्ति ) से निकलते हुए नवीन पराग के परागम ( उत्तम आगमन ) के कारण मन्थर ( मन्द ) तुषार ( शीत ) के तुष् ( कणों ) को लिये हुए रतिरागियों ( कामुकों ) के अत्यन्त प्रिय मरुनामक पर्वत से (मरु+तः) मरुत् ( पवन ) बह रहा था॥ ४३॥

ततश्च। तिरस्कृततरणित्विषि, विगलद्वारिविप्रुषि, शान्तचातकतृषि, निर्वाणवारणवपुषि, मानिनीमानग्रन्थिमुषि, जनितजवासकशुषि, विधुतवधूविद्विषि, वर्धितमण्डूकरुषि, मुद्रितचन्द्रमसि, विद्राणपङ्कजसरसि, स्वाधीनप्रियप्रेयसि, प्रोषितकलहंसवयसि, नष्टनक्षत्र-

मण्डलमहसि, मेचकितनभसि, निष्पतन्नीपरजसि, स्फुटकुटजरजःपुञ्जपिञ्जरिताष्टदिग्भासि, भासुरसुरचापचक्रमूर्ति, मयूरमदकृति मद्विपशोषहृति, विस्तरत्सरिति, विद्योतमानविद्युति, वहन्मन्दमेघङ्कुरमरुति, हृष्यत्कृपाणयोपिति, पुष्यत्केतकीगन्धपानमत्तमधुकृति, प्रोद्भुतभूरुहि, दरिद्रनिद्राद्रुद्दहि, सगर्वगोदुहि, कदम्बस्तम्बालम्बिमधुलिहि, मुदितमदनाट्टहासायमानघननादमुचि, पच्यमानजम्बूफलश्यामलितनवनान्तररुचि, रचितपान्थसार्थशुचि, श्रूयमाणमदमधुरमयूरवाचि, विनिद्रकोशातकीशालिनि, यूथिकाजालिनि, नवमालिकामालिनि, कन्दलभाजि, पच्यमानजम्बूतरुवनराजिभ्राजि, मिक्षाक्षणक्षपितपरिव्राजि शान्तसारङ्गरुजि, नीडनिर्माणाकुलवयलिभुजि, सान्द्रेन्द्रगोपयुजि, शच्योतत्तमालधारागृहसदृशि, श्यामायमानदशदिशि, दिवापि श्रूयमाणरजनिशङ्काकुलचक्रवाकचक्रक्रुशि, शाकटसञ्चाररुधि, पल्लवितवीरुधि, विध्वस्तजिष्णुक्ष्मापालयुधि, क्षीणोक्षक्षुधि, क्षीरसमुद्रनिद्राणबाणबाहुच्छिदि, सिन्धुरोधोभिदि, दवदहनतुदि, विरहिमनस्तुदि, जनितजनमुदि, तापिच्छच्छायानुच्छेदिम्नि, छन्नकुटीमध्यबध्यमानवाजिनि, विकसितबकुलवनविराजिनि, सीरसीमन्तितग्रामसीमनि, विजयमानमनोजन्मनि जाते जगज्जीविनि, जीमूतसमये कदाचिदम्भसि दिवसे मृगयावनपालकः प्रविश्य राजानं विज्ञापयामास ॥

ततश्चेति ॥ तिरस्कृता रविस्त्विषो येन । इन्द्रगोपा वर्षासु जाताः क्षुद्रजन्तवः रक्तवर्णाः शृङ्गाराः इति प्रसिद्धाः ...

( प्रस्तुत अनुच्छेद मे वर्षा काल का वर्णन है )—

तरणि ( सूर्य ) की कान्ति को तिरस्कृत ( आच्छादित ) करने वाले, वारि ( जल ) के विप्रुष् ( कणो ) को गिराने वाले, चातक की प्यास को शान्त करने वाले, निर्वाण ( आकाश ) मे वारण ( हाथी ) का रूप प्रदर्शित करने वाले, मानिनी स्त्रियो के मान ग्रहण रूप गाठ को चुरा लेने वाले या खोल देने वाले, उपजे हुए जवास के पौधो को सुखा देने वाले, पतिहीन वधुओ का शत्रु, मण्डूक ( मेढक ) के आनन्द को बढा देने वाले, चन्द्रमा को मुद्रित (आच्छादित) कर देने वाले, कमल वनो को विप्राण ( विकसित ) कर देने वाले, स्वाधीनपतिका स्त्रियो को अत्यन्त प्रिय प्रतीत होने वाले, कलहस पक्षी को ( मानसरोवर के लिये ) प्रस्थित कर देने वाले, नक्षत्रमण्डल

( तारक समूह ) के मह ( तेज ) को नष्ट कर देने वाले, आकाश को अन्धकाराच्छन्न कर देन वाले, कदम्ब के पराग का आविष्कृत करने वाले, खिले हुए कुटज पुष्प के पराग राशि की पिञ्जरता (पीलापन) से आठों दिशाओं को खिला देने वाले, भासुर (चमकीले) इन्द्र धनुष् को धारण करन वाले, मयूरों को मतवाला बना दन वाले, महिष ( भैंसों ) की दुर्बलता ( शोष ) का हरण करने वाले, सरित् (नदियों) का विस्तार करन वाल, चमकती हुई बिजलियो वाले, मन्द-मन्द बहती हुई हवा से सम्पृक्त, किसानों की स्त्रियों को प्रमन करन वाले, खिले हुए केवड़े के गन्धपान से भ्रमरों को मत्त बना देने वाले, भूरुह (वृक्षों) को उत्पन्न करने वाले, दरिद्र निद्रा से द्रोह करने वाले ( गाढी निद्रा लाने वाले) अथवा दरिद्रों के घर के अभाव म उन्ह निद्रा से द्राह कराने वाले, समर्थ ( उच्छृङ्खल ) गायों को भी दुग्वा दने वाले, कदम्ब की डालियो पर भ्रमरों को लटकने देन वाले, प्रसन्न कामदेव के उन्नत हास की तरह बादलो की ध्वनि को व्यक्त करने वाल, पक्ते हुए जामुन के फलो की कान्ति से वन की आभ्यन्तरिक कान्ति को श्यामल बना देने वाले, पान्यसार्थ (पथिक समूह) को शोक मे डाल देने वाले, मदस्वी मयूरों की ध्वनि सुनान वाले, कोशातकी नामक फलो के विकसित होने के कारण सुन्दर लगने वाले, यूथिका (जूही) लता के जाल को (पल्लवित) करन वाले, नव मालिका की मालाओं वाले, अङ्कुरो को धारण कराने वाले, पक्त हुए जामुन फल के पेड़ो की पक्ति से सुशोभित होने वाले, सन्यासियों के भिक्षा + क्षण (भाजन विषयक आनन्द) को समाप्त कर देने वाले, मृगों के रोगो को शान्त करने वाले, वलिभुज् (कौवों) को नीड निर्माण के लिये व्याकुल कर देने वाले, सान्द्र + इन्द्र (वर्षा युक्त इन्द्र) और ग्वालों को एकत्रित करने वाले, चूती हुई तमाल धारा वाले घर सदृश, दशों दिशाओं को श्यामल बना देने वाले, दिन में भी रात की आशङ्का से व्याकुल चक्रवाकों को रुला देन वाले, शकट (गाड़ी) की गति को कीचड के कारण रोक देने वाले, वृक्षों को पल्लवित करने वाल, जिष्णु ( विजय की इच्छा रखन वाले ) क्ष्मापाल ( पृथ्वी पालक ) राजाओं की यात्रा को विश्रान्त (रोक) देने वाले, उक्ष (साँडों) की क्षुधा (भूख) को क्षीण कर देने वाले, बाणासुर के बाहुओं के छिन्न-कर्ता (विष्णु) को क्षीरसागर में सोने देने वाले, सिन्धु ( नदियो ) के रोध ( किनारा ) को तोड देने वाले, वनाग्नि को प्रेरित करने वाले, विरहियों के मन को दु खित करने वाले, आदमियो के मन मे प्रसन्नता ला देने वाले, तापिच्छ वृक्ष की छाया का अनुकरण करने वाले, अच्छी तरह से छायी हुई कुटी मे बंधे हुए घोडे वाले, खिले हुए वकुल वन से सुशोभित सीर (हल) से ग्राम की सीमा को चिह्नित

दो दाँतो के कारण भयङ्कर काल सदृश मुख वाला एक कोल (सूकर) कहीं से ( जंगल में ) आ गया है।

[ सूकर के दोनो दाँत अत्यन्त शुभ्र हैं और बाकी शरीर अत्यन्त कृष्ण है। इन्हीं दो वर्ण्य तत्त्वो के विभिन्न उपमान संकलित किये गये हैं। इस सूकर को देखकर यह भ्रान्ति हो जाती है कि वह दो बड़े स्फटिको को धारण करता हुआ अंजन पर्वत या बलाकाओ से युक्त काल मेघ है या शुण्ड विहीन हाथी है। मेघ, अञ्जन पर्वत, और हाथी सूकर शरीर के उपमान हैं और स्फटिक, बलाका और हाथी के दाँत सूकर के दाँतो के उपमान हैं ॥ ४४ ॥ ]

ततश्चासौ

भिन्दन्कन्दकसेरुकन्दलभृतः स्निग्धप्रदेशान् भुवो
भञ्जन्नञ्जनशैलशृङ्गसदृशः फुल्लल्लतामण्डपान्।
मन्दं मन्दरलीलयाब्धिसदृशं मथ्नंश्च लीलासरः
क्रोडः क्रीडति भाययन्निव भवत्क्रीडावने रक्षकान्' ॥ ४५ ॥

भिन्दन्निति ॥ मन्दरलीलया करणभूतया भाययन् ॥ अत्र करणाश्रयेनात्मनेपद प्रुगागमश्च न भवति ॥ ४५ ॥

इनके अतिरिक्त,

अञ्जन पर्वत सदृश वह ( सूकर ) कन्द एवं कसेरू घास के अंकुरो को उपजाने वाले आर्द्र स्थानो को खोद रहा है। खिले हुए लता मण्डपो को तोड़ रहा है। मन्दराचल की तरह समुद्र सदृश लीला सरोवर को धीरे से मथ रहा है और आप के क्रीडावन मे रक्षको को डराता हुआ खेल रहा है ॥४५॥

राजा [illegible] तदाकर्ण्य चिन्तितवान्—

'अच्छाच्छैः शुकपिच्छगुच्छहरितैश्छन्ना वनान्तास्तृणैः
सेव्याः सम्प्रति सान्द्रचन्द्रकिकुलैरुत्ताण्डवैर्मण्डिताः।
येषु क्षीरविपाण्डुपल्वलपयः कल्लोलयन्तो मनाग्
याता यान्ति विनिद्रकेतकवनस्कन्धे लुठन्तः शनैः ॥ ४६ ॥

अच्छाच्छैरिति ॥ चन्द्रकिणो मयूरा। पल्वलमल्पं सरः ॥ ४६ ॥

यह सुन कर राजा ने सोचा—

अच्छ अच्छ ( सुन्दर सुन्दर ) तोतो के पखो के गुच्छो की तरह हरे तृणों से ढकी हुई तथा इस समय प्रसन्न चन्द्रकिकुल ( मयूरों ) के उद्धत नृत्य से अलङ्कृत ( वह ) वनस्थली सेवनीय है, जहाँ दूध की तरह स्वच्छ पल्वलों

(छोटे जलाशयों) के साथ खेलती हुई और खिले हुए केवड़े के वन से टकराती हुई हवा धीरे-धीरे बह रही है ॥ ४६ ॥

माद्यन्ति च तेषु सम्प्रति पोत्रिणः। तदुचितं विहर्तुम्' इत्यवधार्य समाहूय बाहुकनामानं सेनापतिमादिदेश ॥

माद्यन्तीति ॥ पोत्रिणः सूकराः ॥

'वहाँ इस समय सूअर उन्मत्त हो जाते हैं, इसलिये वहाँ विहार करना उपयुक्त है।' ऐसा सोचता हुआ राजा बाहुक नामक सेनापति को बुलाकर आज्ञा दिया ॥

'भद्र द्रुतमनुष्ठीयताम्, समादिश्यन्तां कृतवैरिविपत्तयः पत्तयः, पर्याण्यन्तां मनस्तुरगास्तुरगाः, सज्जीक्रियन्तां निजवेगनिर्जितमातरिश्वानः श्वानः, समारोप्यन्तामपनीताहितायूंषि धनूंषि, गृह्यन्तां निर्मथितपोत्रियूथपाशाः पाशाः' इति ॥

भद्रेति ॥ पर्याणं कटीपल्ययनम्। 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचि पर्याणयति धातुः। पर्याणमत्रमन्यदिवृत्तौ व्याकरणं सूचयतीति त्रिलोकीं तिलकयतीतिवत्कर्मस्थम्। मन इव तुराः शीघ्रा गच्छन्तीति। निर्मथिताः पोत्रियूथपाशो वराहयूथपानामाशा इच्छा यैः ॥

"भद्र, जल्दी कीजिये। शत्रुओं पर विपत्ति ला देने वाली पत्ति (सेना) को आदेश दीजिये कि मन की तरह तुरत वेग से जाने वाले) तुरग (घोड़े) को लायें। अपने वेग से मातरिश्वा (हवा) को भी जीत लेने वाले श्वा (कुत्तों) को तैयार कीजिये। अहित चाहने वालों के प्राणों को हर लेने वाले धनुषों को चढ़ाइये। शूकर यूथप (सूकर समूह) की आशा को नष्ट करने वाले पाश (जालों) को ग्रहण कीजिये।"

अथ मौलिमिलन्मुकुलितकरकमलयुगलेन सेनापतिना 'यदाज्ञापयति देव.' इत्यभिधाय त्वरया तथा कृते सति ॥

अपने दोनों कर कमलों को मुकुलित (जोड़) कर सिर से लगाता हुआ सेनापति "जैसी आप की आज्ञा" यह कह कर शीघ्र ही राजा के कथन के अनुसार कार्य कर लिया ॥

स्वयमपि

निर्मांसं मुखमण्डले परिमितं मध्ये लघुं कर्णयोः
स्कन्धे बन्धुरमप्रमाणमुरसि स्निग्धं च रोमोद्गमे।
पीनं पश्चिमपार्श्वयोः पृथुतरं पृष्ठे प्रधानं जवे
राजा वाजिनमारुरोह सकलैर्युक्तं प्रशस्तैर्गुणैः ॥ ४७ ॥

राजा स्वयं भी

ऐसे घोड़े पर आरूढ हुए जिसका मुखमण्डल मोटा नहीं था। बीच का भाग परिमित ( सुडौल ) था। छोटे-छोटे कान थे, गर्दन बन्धुर ( सुन्दर ) थी। छाती अप्रमाण ( विशाल ) थी। रोम समूह कोमल थे। अगला पुट्ठा पूर्ण रूप से पीन ( मोटा ) था। दौड़ने में बड़ा प्रशस्त था। समस्त प्रशंसनीय गुणों से युक्त था ॥ ४७ ॥

आरुह्य च क्रमेण कार्दमिककर्पटावनद्धमूर्धजैर्दण्डखण्डपाणिभिः क्रूरकर्मोचिताकारैर्वागुरावाहिभिरनन्तैः कृतान्तदूतैरिव पाशहस्तैः पापर्द्धिकैरनुगम्यमानः, दूरादुन्नमितकन्धरैस्तथोर्ध्वकर्णसम्पुटैरकाण्डोड्डीनप्राणैरिव वनप्राणिभिराकर्ण्यमानहर्षितहयहेषारवः, पवनकम्पिततरुशाखाग्रपल्लवव्याजेन दूरादेवोत्क्षिप्तहस्ताभिरुड्डीयमानशकुनिकुलकोलाहलच्छलेन भयान्निवार्यमाण इव वनदेवताभिः, अभिमुखागतैरुन्मिषत्तरुपुष्पप्रकरमकरन्दबिन्दुवर्षवाहिभिर्वनविनाशाशङ्कितैरर्घ्यमिवोपपादयद्भिरुपकथ्यमान इव वनमारुतैः, उन्निद्रसान्द्रकुसुमकेसराङ्कुरजालजटिलाभिर्भयादुद्गतरोमाञ्चप्रपञ्चाभिरिवोद्भ्रान्तभृङ्गरवगद्गदरुदितेन निषिध्यमान इव वनवीरुद्भिः, उद्भिन्नभास्वदमन्दकन्दलावलोकनेनानन्द्यमानः अश्वानुगतोऽप्यश्वानुगतः सगजमप्यगजं तद्वनमाससाद ॥

आरुह्य चेति ॥ कर्दमेन नीलीलोहमलादिना रक्तं कार्दमिकम् । अभिरश्वैश्चानुगतो राजा । गजोपेतम् । अगाः पर्वतसमीपोद्देशोऽप्यगस्तत्र जातमगजं तद्वनमाप ॥

जब घोड़े पर चढ़ लिया तो क्रमशः, लाल कपड़ों से बालों को बाँधे हुए, हाथ में छोटे डण्डे लिये हुए, क्रूर कार्य के अनुकूल वेष बनाये हुए, मृग फँसाने वाले जाल लिये हुए, असंख्य यमराज के दूतों की तरह हाथ में पाश लिये हुए, पाप सम्पत्ति से सम्पन्न व्याध लोग उनके पीछे-पीछे जा रहे थे। दूर से ही वन के प्राणी गर्दन को उठा कर, कानों को ऊपर की ओर सुचुका कर, प्रसन्न घोड़ों की हिन-हिनाहट सुन रहे थे। ऐसा लगता था कि असमय में ही उनके प्राण उड़े जा रहे थे। पेड़ों की शाखा के अग्रभाग से टकरायी हुई हवा के कारण हिलते हुए पल्लवों के बहाने दूर से अपने हाथों को उठाकर उड़ते हुए पक्षियों के कोलाहल के बहाने वनदेवताएँ मानो भय से उन्हें रोक रही थीं। सामने पड़ने वाले खिलते हुए तरुपुष्पों के पराग कणों की वर्षा को ढोने वाला, वन विनाश की आशंका से डरा हुआ वनस्थली का पवन मानो उनकी विधिवत् पूजा कर उन्हें घेर रहा था। खिले हुए घने फूलों के परागकोश के अङ्कुर से ऐसा लगता

था कि डर के मारे वनलताओं के रोंगटे खड़े हो गये थे, अतः घबड़ाये हुए भ्रमरों की भनभनाहट के माध्यम से विह्वलतापूर्ण क्रन्दन के द्वारा उन्हें रोक रही थी। अङ्कुरित होते हुए नवीन एवं चमकीले अङ्कुरों को देख कर आनन्दित हो रहा था। वह श्वानुगत (कुत्तों से अनुगत) था फिर भी अश्वानुगत (कुत्तों से अनुगत नहीं) था विरोध।

वह श्वानुगत (कुत्तों से अनुगत) था और अश्वानुगत (घोड़ों से अनुगत) था। परिहार।

सगज (हाथियों से युक्त था फिर भी अगज (हाथियों से युक्त नहीं) था। विरोध।

सगज (हाथियों से युक्त) था और अग (पर्वतों और पेड़ों) से उत्पन्न होने वाले उपवन को प्राप्त किया।

[ वन की लता, वनदेवता और वन पवन राजसेना या राजा को अनुनय विनय के साथ रोक रहे हैं। जैसे कोई झगड़ा रोकने वाला आदमी दूर से ही हाथ उठाकर "ना ना" कह कर दूर से ही किसी हिंसक को मना करता है, वैसे वनदेवता पल्लवों के बहाने हाथों को उठाई हुई थी और पक्षियों के कोलाहल के बहाने हल्ला करती हुई रोक रही थी।

हवा फूलों की गन्ध आदि सामग्री का सङ्कलन कर पूजन के माध्यम से अनुनय कर रही थी। डरी हुई वनलता को तो रोमाञ्च हो गया था। भ्रमरों की भनभनाहट के माध्यम से तो वह रो रोकर उन्हें रोक रही थी ] ॥

**ततश्च केचिदुद्यतपरश्वधा गणपतयः, केऽपि दृप्तसिंहिकासुतविक्रमाः शशधराः, केऽपि पाशपाणयो जम्बुकदिक्पालाः, केऽपि हरिमार्गानुसारिणो बलभद्राः, केऽपि चक्रपाणयो मधुसूदनाः, केऽपि शिवागमावर्तिनो रौद्राः, केऽप्याहिताग्नयो विप्रलोकाः, केऽपि खण्डिताञ्जनाधरप्रवालाः प्रभञ्जनाः, केऽप्युत्खातदन्तिदन्तमुष्टयो निस्त्रिंशाः, तस्य पृथ्वीपतेराकुलितश्वापदाः पदातयो वनं रुरुधुः ॥**

ततश्चेति ॥ उद्यन्तः पलायमानाः परे उत्कृष्टाः श्वानस्तान्दधति। तथा गणस्य सेनायाः पतयः हेरम्बाश्च उद्गृह्यमाणपरशवः। सिंहिकासुतः केसरिकिशोरो राहुश्च। शशा धरतीति शशधरः पक्षे चन्द्रश्च। पाशः पाणौ यस्य स पाशपाणिर्वरुणश्च। जम्बुकः शृगालो वरुणश्च। यद्विश्वप्रकाशः—'जम्बुकः फेरवे नीचे प्रतीचीदिक्पतावपि'। हरिं सिंहं मार्गं मृगसमूहं चानुसरन्ति बलेन भद्राः दक्षाः। पक्षे हरेर्विष्णोर्मार्गोऽध्वा बलभद्रो बलदेवः। चक्रं पाणौ यस्य स चक्रपाणिर्विष्णुश्च। मधु क्षौद्रं दैत्यश्च। सूदनं क्षरणं मारणं च। शिवा शृगाली तस्या गमो गतिः पक्षे शिवस्यागमाः शास्त्राणि। रौद्राश्च। गृहीतवह्निर्मुखो बीभत्साकृतान्प्रलोकयन्तः पापर्द्धिका हि कपोतादिपातनाय तरूणामधस्ताच्चापनीसंज्ञकामग्नीष्टिकां कुर्वन्ति। पक्षे

साग्निहोत्रा विप्रलोकाः। खण्डिता अञ्जनस्य पक्षिकपक्षिणोऽधरप्रवाला' पुच्छानि यैः। यद्वाऽञ्जनस्य शाखिनोऽथ पल्लवाः। वातास्तु खण्डितोऽञ्जनाख्याया प्रियाया ओष्ठपल्लवो यैः। उत्खाता दन्तिदन्ता यैस्तयोक्ता मुष्टयः समद्धा येषाम्। पक्ष उत्खि-तदन्तिदन्तप्रधानो मुष्टि त्सरर्येषु। निस्त्रिंशा क्रूरकर्माणः खड्गाश्च। ईदृशास्तस्य पत्तयो वनं वेष्टयामासुः ॥

जैसे गणपति ( गणेशजी ) उद्यतपरश्वध ( अपने कुठार को सदा तैयार रखते ) हैं वैसे उनमे भी कुछ लोग उद्यत्+पर+श्व+ध ( दौडने के लिये बिल्कुल तैयार उत्कृष्ट कोटि के कुत्तो को लिये हुए ) थे।

शशधर ( चन्द्रमा ) जैसे दृष्टसिंहिकासुतविक्रम ( राहु के विशिष्ट आक्रमण को देखे हैं वैसे उनमे से कुछ लोग दृष्टसिंहिकासुतविक्रम ( सिंहिनी के बच्चे से विक्रम को देख चुके) थे। और शश ( खरगोश ) को धारण किये हुए थे। पाशपाणि (वरुण) जैसे जम्बुक दिक्पाल ( पश्चिम दिशा के अधिपति ) हैं वैसे उनमे से भी कुछ लोग पाशपाणि (हाथ मे जाल लिये हुए) थे और (जम्बुक-दिक्पाल (शृगाल के रास्ते मे उनकी प्रतीक्षा कर रहे) थे। बलभद्र (बलदेवजी) जैसे हरिमार्गानुसारी ( कृष्ण के अनुसार चलने वाले ) हैं वैसे उनमे भी कुछ बलभद्र (बल के कारण भद्र (शक्तिशाली) थे और हरिमार्गानुसारी ( सिंह के रास्ते का अनुसरण करने वाले) थे। चक्रपाणि (चक्रधारी विष्णु) जैसे मधुसूदन ( मधु राक्षस को मारने वाले ) हैं वैसे उनमे से कुछ लोग चक्रपाणि (हाथ मे चक्र लिये ) थे और मधुसूदन ( मधु के छत्ते से मधु चुवा रहे ) थे। रौद्र (शिवधर्म के अनुयायी) जैसे शिवागमवर्ती ( शैव दर्शन को मानने वाले ) हैं वैसे कुछ लोग शिवागमवर्ती (शृगालो के रास्ते पर ठहर कर) रौद्र (भयङ्कर रूप धारण किए) हुए थे। जैसे विप्रलोक (ब्राह्मण लोग) आहिताग्नि (अग्नि-होत्र करने वाले) होते हैं वैसे कुछ लोग आहिताग्नि (आग सुलगा कर तापनी नामक अनुष्ठान कर रहे ) थे और वि ( पक्षियो ) को प्रलोक ( तत कर रहे थे।

प्रभञ्जन ( वायु ) जैसे खण्डिताञ्जनाधरप्रवाल (अञ्जना नाम की प्रिया के अधरोष्ठ का पान करने वाले ) हैं वैसे कुछ लोग खण्डिताञ्जनाधरप्रवाल ( खञ्जन पक्षी के अधर प्रवाल (पुच्छ भाग) को तोड लिये ) थे अत प्रभञ्जन (विध्वंसक) प्रतीत हो रहे थे। निस्त्रिंश (तलवार) जैसे उत्खातदन्तिदन्तमुष्टि (उखाडे हुए हाथी दाँत से बनी हुई मुट्ठियो से युक्त) है वैसे कुछ लोग निस्त्रिंश ( हिंसक ) है और उत्खातदन्तिदन्तमुष्टि ( हाथियो के दाँतो को उखाड कर मुट्ठी में लिये हुए ) हैं। पृथ्वीपति ( राजा नल ) के पदाति ( पैदल चलने वाले व्याध ) जगल के प्राणियो को व्याकुल कर वन को घेर लिये ॥

[ अहिताग्नय —व्याध लोग पेडों से पक्षियों को गिराने के लिये पेडों के नीचे आग सुलगा कर तापनी नामक अनुष्ठान करते हैं ] ॥

ततश्च तैः क्रियन्ते विकलभा वननिकुञ्जाः कुञ्जराश्च, ध्रियन्तेऽनेक-धारयतिपातिनः खड्गाः खड्गिनश्च, कृष्यन्ते कूजन्तः कोदण्डदण्डा गण्डकाश्च, विक्षिप्यन्ते परितः शराः शरभाश्च, भज्यन्ते तरवस्तरक्षवश्च ॥

ततश्चेति ॥ विगताः कलभा येभ्यस्ते व्यपेतकरिपोताः। कुञ्जरास्तु विकल कान्तयो भयाद्विनि शेष। खड्गा द्विधारत्वादनेकया धारया पतन्त्यमीदृशम्। गण्डकास्तु रयेणातिपतन्ति। य उक्तिप्रभृतः पीडास्ते खड्गिनः। अतएव रयासि-पातिनः। त एव वाडका गण्डका। अत एव कूजन्तः। तरक्षवश्चित्रकायाः ॥

तदनन्तर उन व्याधों द्वारा वन की झाड़ियाँ विकलभ (हाथियों के बच्चों से शून्य) कर दी जा रही हैं और हाथी भी विकलभ (निस्तेज) कर दिये जा रहे हैं। अनेक धारयातिपाती (दोनों तरफ से काटने वाले) खड्ग (कृपाण) हाथ में पकडे गये हैं और अनेक धारयातिपाती (अनेक मार्गों से आने जाने वाले) खड्गी (गैंडे) पकडे जा रहे हैं। कूजन (टंकार) करते हुए धनुर्दण्ड खींचे जा रहे हैं और कूजन (चीत्कार) करते हुए गण्डक (गैंडों के बच्चे) घसीटे जा रहे हैं। चारों तरफ शर (बाण) फेंके जा रहे हैं और शरभ (भय के मारे) पागल बनाये जा रहे हैं। तरु और तरक्ष (सर्प) काटे जा रहे हैं ॥

[ शरभ—सिंह को भी मार गिराने वाला आठ पैरों का यह एक जानवर है ] ॥

क्षणेन च पतन्ति पीवरा वराहाः, सीदन्ति दन्तिनः, विरसं रसन्ति सातङ्का रङ्कवः, प्रकाशैलं शैलं भयादारोहन्ति रोहिताः, शरसंघात-घूर्णिता यान्ति महीं महिषाः, दुर्गसंश्रयं श्रयन्ते तरलितनेत्राश्चित्रकाः, त्वरिततरं तरन्तोत्पतन्तो नभसि निजजवनिर्जिततुरङ्गाः कुरङ्गाः ॥

क्षणेन चेति ॥ सातङ्का सभया। रङ्कवो मृगा। प्रकाशाः स्पष्टा एला लता यत्र शैले। रोहितः श्वापदः। चित्रकोऽपि तद्विशेषः ॥

एक ही क्षण बाद बहुत मोटे-मोटे शूकर विकल होकर गिर रहे हैं। सातङ्क (डरे हुए) रङ्कु (मृग) विरस (करुण) क्रन्दन कर रहे हैं। प्रकाश (स्फुट) एला (लताओं) वाले शैलों पर रोहित (मृग) चढ रहे हैं। बाण के आघात से घूर्णित (मूर्छित) भैंसे पृथ्वी पर लोट जाते हैं। चचल नेत्र वाले बाघ गुफाओं में घुस रहे हैं। अत्यन्त वेग से छलाग मारने के कारण मृग मानों आकाश में तैर रहे हैं ॥

तत्र च व्यतिकरे

जाताकस्मिकविस्मयैः किमिदमित्याकर्ण्यमानः सुरैः
सन्त्रासोज्झितकर्णतालचलनाद् दिग्दन्तिनः कम्पयन्।
जन्तूनां जनितज्वरः स मृगयाकोलाहलः कोऽप्यभू-
द्येनेदं स्फुटतीव निर्भरभृतं ब्रह्माण्डभाण्डोदरम् ॥ ४८ ॥

इसी बीच एक अद्‌भुत शिकार का कोलाहल उठा जिसे "यह क्या है" इस तरह अकस्मात् आश्चर्य में पड़े हुए देवता लोग सुन रहे थे, जो डर के मारे कानों को फड़फड़ाते हुए दिग्गजों को कम्पित कर रहा था। प्राणियों में व्याकुलता उत्पन्न कर दिया था और जिससे समस्त ब्रह्माण्ड रूप भाण्ड (पात्र) का उदर (न अँटने के कारण) मानो फटा जा रहा था ॥ ४८ ॥

राजाप्येकशरप्रहारपातितमत्तमातङ्गः सर्वतो विहारिहरिहरिणशशकशम्बरवराहहननहेलया विचरन्नितस्ततस्तरुणतरतमालमञ्जरीजालनीलोद्धुषितस्कन्धकेसरमूर्ध्वस्तब्धकर्णसंपुटमभ्रचकाय क्रुध्यन्तमाघूर्णितघोणमनवरतकृतघनघोरघर्घररवमुत्क्षिप्तपुच्छगुच्छमभिमुखमेकस्मिन्नतिसान्द्रभद्रमुस्तास्तम्बभाजि पङ्किलपल्वलप्रदेशे तं शूरशूकरमपरमिव ववदहनदग्धाद्रिमद्राक्षीत् ॥

राजा भी एक ही बाण के प्रहार से मतवाले मातङ्ग (हाथी) को गिरा कर चारों तरफ विहार (भ्रमण) करने वाले हरि (सिंह), हरिण, शशक (खरगोश), शम्बर (मृग) और सूकर मारने के विचार से घूमता हुआ अत्यन्त तरुण तमाल वृक्ष की मंजरी समूह की तरह नील उस वीर सूकर को देखा जो स्कन्ध देश के बालों को ऊपर की ओर उठाये हुये था, चकित होकर दोनों कानों को ऊपर की ओर किया था, अभ्रसमूह पर क्रोध व्यक्त करता हुआ नासिका को टेढ़ी कर निरन्तर बादल की तरह गरज रहा था, अपनी पूँछ के गुच्छे को हमेशा फेंकता (हिलाता) हुआ सामने ही एक घने मुस्तावाले पङ्कयुक्त छोटे जलाशय में वनाग्नि से जले हुए एक दूसरे पर्वत की तरह प्रतीत हो रहा था ॥

दृष्ट्वा च रचितशरसन्धानलाघवो राघव इव राक्षसेश्वरस्य तस्योपरि परिणतविविधपत्रैः पतत्रिभिरभ्यवर्षत् ॥

उसे देखकर बाण सन्धान में पटु (उस नल ने) विविध पत्रों से युक्त बाणों की वर्षा उस सूकर पर उसी तरह करना शुरू किया जैसे राम रावण पर किये थे ॥

तत्र च व्यतिकरे

किमश्वः पार्श्वेषु प्लवनचतुरः किं नु नृपतिः
शरान्मुञ्चन्नुच्चैश्चलतरकराकृष्टधनुषा ।
किमालोलः कोलः परिहृतशरः शौर्यरसिको
न जानीमस्तेषां क इह परमो वर्ण्यत इति ॥ ४९ ॥

उस समय यह पता नहीं चलता था कि किसको बड़ा कहा जाय, चारों जगह में उछलने में कुशल उस घोड़े को या अत्यन्त चपल हाथों से खींचकर बाणों को छोड़ते हुए राजा को या बाणों से बचते हुए वीर रस के रसिक उस अत्यन्त चपल सूकर को ॥ ४९ ॥

अपि च—

अजनि जनितपृथ्वीमण्डलोत्पादकम्पं
किमपि चलितशैलं द्वन्द्वयुद्धं तयोस्तत् ।
स्खलिततुरगवेगो विस्मयेनैव यस्मिन्
दिनपतिरपि शौर्याश्चर्यसाक्षी बभूव ॥ ५० ॥

मालिनी ॥ स्वभावतोऽपि मध्यन्दिने स्खलिताश्ववेगो रविस्तत्र कवेरूहः ॥५०॥

उन दोनों के द्वन्द्वयुद्ध ने पृथ्वी में कम्पन उत्पन्न कर दिया, पर्वतों में चञ्चलता उत्पन्न कर दी, भगवान् सूर्य भी आश्चर्य के कारण अपने घोड़े के वेग को रोक कर उनकी आश्चर्यजनक वीरता के साक्षी बन ॥

[ दोपहर के समय भगवान् सूर्य स्वयं कुछ मन्दगति जैसे प्रतीत होते हैं । उनकी इस गति पर कवि ने कल्पना की है कि सूकर और नल की वीरता को देखने के लिये भगवान् सूर्य ने अपने घोड़े को रोक दिये और उनके अद्भुत शौर्य के साक्षी का कार्य किया ॥ ५० ॥

अथ कथमपि नाथं पोत्रियूथस्य जित्वा
ज्वरित इव विशालं सालसः सालमूले ।
सुखमभजत राजा राजमानः श्रमाम्भः-
कणकलितकपोलालोलनीलालकेन ॥ ५१ ॥

मालिनी ॥ ज्वरित इव सालस इत्यनेन श्रमातिशयोक्तिः । अन्योऽपि ज्वरितो मूलादीनि सेवमानः स्वेदबिन्दुलक्ष्यमाणज्वरापगमो राजते ॥ ५१ ॥

तदनन्तर किसी किसी तरह सूकर समूह के उस विशाल नायक को जीत कर थकने के कारण मानो ज्वराक्रान्त होकर शाल वृक्ष के नीचे पसीने के जल-कणों से अलङ्कृत कपोल तथा चञ्चल एवं सुन्दर बालों से सुशोभित वह राजा सुखपूर्वक बैठा ॥

[ ज्वरित शब्द के उपादान से राजा के अत्यधिक थकान को व्यक्त किया गया है। ज्वराक्रान्त राजा सालवृक्ष की छाया में बैठा। ज्वर को हटाने के लिये वैद्य लोग मूल आदि का काढ़ा पीने के लिये बताते हैं। ज्वरित व्यक्ति को जब पसीना आ जाता है तो समझा जाता है कि उसका ज्वर हट गया। ज्वर के प्रसङ्ग में पसीने आदि की चर्चा अत्यन्त भावपूर्ण है॥ ५१॥ ]

तत्र च स्थितं श्रममुकुलितनयनारविन्दम्, आन्दोलयन्तः कुसुमिततरून्, तरलयन्तः शिखिशिखण्डमण्डलानि, ताण्डवयन्तस्तनुलतापल्लवनिवहान्, वहन्तो वहन्निर्झरजलशिशिरशीकरनिकरान्, करालयन्तः कुटजकुड्मलानि, मकरन्दबिन्दुमुचो मन्दमानन्दयामासुः कम्पितनीपवनाः पवनाः॥

तत्र चेति॥ श्रममुकुलितनेत्रकमलं नृपं कम्पितनीपकानना पवनाः हर्षयाचक्रुः। कुटजकलिकाना करालनं विकासनम्॥

वहाँ पुष्पित वृक्षों को कँपाता हुआ, मयूरों को (आनन्द के मारे) चचल बनाता हुआ, पतली लताओं एवं पल्लवों की पंक्तियों को नचाता हुआ, प्रवाहपूर्वक बहते हुए झरनों के शीतल कणों को ढोता हुआ, कूटज पुष्प की कलियों को विकसित करता हुआ, पराग-बिन्दुओं को बरसाता हुआ, कदम्बवन को कँपाता हुआ पवन थकावट से आँखों को मुकुलित किये हुए राजा को शनैः-शनैः आनन्दित कर रहा था॥

अनन्तरमनवरतकरालकाककौलेयककुलकवलनाकुलितकोलकरिकुरङ्गकण्ठीरवकिशोरदपत्पृष्ठधाविते परितः परिजने, जनितविविधमृगवधूवैधव्याधीव्याधानिवारयितुमिवान्तरान्तरा प्रसारितकरे मध्यस्थतां गतवति गभस्तिमालिनि, सहसंवर्धितमृगविनाशशोकभरादिव वनवीरुधां पतत्सु पुष्पलोचनेभ्यो वाष्पेष्विव मध्याह्नोष्णविलीनमकरन्दबिन्दुषु, श्रूयमाणेषु वनदेवतानां वनविमर्दोपालम्भेष्विव तरुखण्डोड्डीनविविधविहङ्गविरुतेषु, विघट्टितार्भककुरङ्गकुटुम्बिनीकरुणकूजितव्याजेनाक्रन्दमिव पूत्कुर्वतीषु वनराजिषु, इतस्ततः सञ्चरद्घोटकतरतुरङ्गखुरशिखरशिखोत्खातधरणिमण्डलादुद्गमविनाशवार्तां गगनचरेभ्यः कथयितुमिवोत्पतितेऽम्बरतलमकृतपरित्राणे च मूर्च्छित इव पुनः पुनः पतति भुवि भवनपारावतपतत्त्रिपक्षधूसरे धूलिपटले, सकम्पधपिकलापोल्ललनलुलिततरुतरुणमञ्जरीपुञ्जनिकुञ्जादुद्वेजिते मञ्जु गुञ्जति घनान्तरमपरमुखलिते चञ्चलचञ्चरीकचक्रवाले, चङ्क्रमणक्रमेण च सम्पन्ने सैन्यस्य श्रमावसरे तस्यैव सरससरलशालद्रुमस्याधस्तान्निषण्णे श्रमभाजि राजनि॥

*वनान्तरमिति ॥ कौलेयकः श्वा । कोलः सूकरः । पुष्करमार्तण्डः ग्राहरणम् ॥*

इसके बाद निरन्तर कौवे और कौलेयक ( कुत्ता ) को खा जाने के लिये व्याकुल भयङ्कर कोल ( सूकर ), हाथी, मृग एवं कण्ठीरव (सिंहों) के सबल बच्चों के पीछे चारों तरफ से परिजन दौड़ रहे थे। अनेक मृगवधुओं के वैधव्य रूप आधि (विपत्ति) उत्पन्न करने वाले व्याधों को मानो निवारण करने के लिये मध्यस्थ के रूप में गभस्तिमाली ( भगवान् सूर्य ) अपने करों (किरणों) को फैलाये हुए थे। एक ही साथ पले हुए मृगों के विनाशशोक से मर जाने के कारण वनलतायें अपने पुष्प नेत्रों से मध्याह्नकालीन उष्णता के कारण गरम परागबिन्दुरूप आंसुओं को गिरा रहीं थीं। पेड़ों से उड़े हुए विविध पक्षियों का क्रन्दन ऐसा लगता था मानों वनदेवताएँ वनविनाश के कारण उलाहनाएँ सुना रहीं थीं।

बिछुड़े हुए बच्चों के लिये ( रोती हुई ) कुरङ्गवधुओं के करुण-चीत्कार के बहाने वनपंक्तियाँ अन्याय को धिक्कारती थीं। इधर-उधर घूमते हुए अत्यन्त चञ्चल घोड़ों के खुरों के अग्रभाग से कट कर गृह-कबूतरों के पंख सदृश धूसर धूलि भूतल से उड़ कर मानो वन-विनाशविषयक समाचार कहने के लिये आकाश में गयीं और जब वहाँ उन्हें रक्षा का आश्वासन नहीं मिला तो पुनः पृथ्वी पर मूर्छित हो कर आ गिरी। डरके मारे काँपता हुआ बन्दरों का झुण्ड वृक्षों की पूर्ण विकसित मञ्जरियों को रगड़ दिया था। अतः उद्विग्न होकर मधुरतापूर्वक गुञ्जार करता हुआ भ्रमर-समूह दूसरे वन में चला जा रहा था। चक्कर लगाते-लगाते सेना के विश्राम का समय भी हो चला था। राजा उसी सरस तथा सीधे शालवृक्ष के नीचे थक कर बैठा हुआ था॥

अकस्मात्कुतोऽपि

> वल्लीवल्कपिनद्धधूसरशिराः स्कन्धे दधद्दण्डकं
> ग्रीवालम्बिनमृन्मणिः परिकुचत्कौपीनवासाः कृशः।
> एकः कोऽपि पटच्चरं चरणयोर्बद्ध्वाऽध्वगः श्रान्तवा-
> नायातः क्रमुकत्वचा विरचितां भिक्षापुटीमुद्वहन् ॥ ५२ ॥

वल्लीति ॥ कुचितवती संकुचिते कौपीनवाससी यस्य । 'परिकुथत्' इति पाठे कुथो वर्णकम्बलः । रथ्यानिपतितजरत्खण्डैर्निर्मितत्वात् । पटच्चरो जीर्णवस्त्रखण्डम् । क्रमुकत्वचा पूगद्रुमवल्कलेन ॥ ५२ ॥

तब तक अकस्मात् कहीं से—थका हुआ दुबला पतला एक राही आया। वह लता के वल्कल से अपने पके बालों वाले सिर को बाँधे हुए था। कन्धे पर दण्डा लिया था। गले में मिट्टी की एक गोली लटकाया था। चितकबरे

रग की लगोटी पहना था। पैरो मे पुराना फटा हुआ चिथड़ा बांधा था। क्रमुक ( कसैली ) के वृक्ष की छाल से बना हुआ एक भिक्षा पात्र लिया था॥

[ वल्ली वल्क इसलिये कहा गया कि शिर मे बाँधने के लिये लता का वल्कल कुछ अधिक मुलायम होगा। शिर उत्तमाङ्ग है। इसके लिये प्रत्येक श्रेणी के लोग अपने-अपने स्तर के अनुसार और अङ्गो की अपेक्षा उत्तम वस्तुओ का सग्रह करते हैं। ]

परिकुथन—उसके कौपीन से विभिन्न रग झलक रहे हैं। कौपीन निर्माण के लिये उस दरिद्र पथिक ने गलियो के कई तरह के फटे चिथडो का सग्रह किया है। उन कई रग के चिथडो से निर्मित कौपीन स्वभावत चितकबरा हो जायगा ॥ ५२ ॥ ]

**आगत्य च राजानमवलोक्य सविस्मयमेव चिन्तयांचकार—**

**'अब्जश्रीसुभगं युगं नयनयोर्मौलिर्महोष्णीषया-**
**नूर्णारोमसखं मुखं च शशिनः पूर्णस्य धत्ते श्रियम्।**
**पद्मं पाणितले गले च सदृशं शङ्खस्य रेखात्रयं**
**तेजोऽप्यस्य यथा तथा सजलधेः कोऽप्येष भर्ता भुवः ॥५३॥**

अब्जेति॥ सजलधेरिति भुवो विशेषणम्। उष्णीषमुत्तमाङ्गे लक्षणविशेष। तयोर्भ्रूमध्ये ह्रस्वरोमावर्तं यद्विश्व—'उष्णीषं तु शिरोवेष्टे किरीटे लक्षणान्तरे'। तथा। 'ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादन्तरावर्तके भुवो'॥ ५३॥

आकर और राजा को देखकर आश्चर्य मे पडकर यह सोचने लगा—

"इसकी आँखो मे कमल सदृश सुन्दरता है। सिर पर बडी सी पगडी है। दोनो भौंहों के बीच ऊर्णा की रेखा है। पूर्ण चन्द्र की शोभा इसका मुख धारण कर रहा है। हाथ में कमल का चिह्न है। गले मे शख की तरह तीन रेखायें हैं। शरीर से कुछ ऐसा तेज भी विच्छुरित हो रहा है जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह कोई समुद्रान्त पृथ्वी का भरण पोषण करने वाला राजा है॥

[ दोनों भौहों के बीच मे उगे हुए बालो को ऊर्णा कहते हैं। इस श्लोक म राजा के रूप जैसे चित्रित किया गया है और जिन चिन्हो का सकेत किया गया है ये अपरिचयावस्था मे भी राजा के चक्रवर्तित्व को सूचित करते हैं॥ ५३ ॥ ]

**तदेवंविधाः खलु भद्रनीया महानुभावा भवन्ति' इत्येवमवधार्य समुपसृत्य 'स्वस्ति स्वकान्तिनिर्जितमकरध्वजाय तुभ्यम्' इत्यवादीत्॥**

इस तरह के लोग बड़े पूज्य और प्रभावशाली होते हैं।" ऐसा सोचकर कुछ आगे बढ़कर बोला—'अपनी कान्ति से कामदेव को भी जीत लेने वाले आपका कल्याण है।"

राजापि सविस्मयमना मनागुन्नमितमस्तकः स्वागतप्रश्नेनाभिनन्द्य 'तीर्थयात्रिक, कुतः प्रष्टव्योऽसि। क्व च कियद्वाद्यापि गन्तव्यम्। उपविश। विश्रम्य कथय काञ्चिदपूर्वां किंवदन्तीम्। अनेकदेशदृश्वानः किलाश्चर्यदर्शिनो भवन्तीति। न चाकस्मिकं दर्शनमपूर्वः परिचयः स्वल्पा प्रीतिरित्येकमप्याशङ्कनीयम्। अपूर्वदर्शनेऽपि न जात्या मणयः स्वच्छतामपह्नुवते। तदेहि। मुहूर्तमेकत्र गोष्ठीसुखमनुभवावः' इत्येनमवादीत्॥

राजानीति॥ किंवदन्तीं वार्ताम्। जात्या भवपो विशिष्टजातीयरत्नानि॥

राजा भी आश्चर्यपूर्वक मस्तक थोड़ा ऊपर उठा कर स्वागत प्रश्न के साथ अभिनन्दन कर कहा—"तीर्थयात्री, कहाँ से आ रहे हो? कहाँ और कितनी दूर जाना है? बैठो, थोड़ा आराम कर कुछ सुन्दर कथानकों को सुनाओ। अनेक देश देखने वाले लोग आश्चर्यजनक बहुत-सी चीजों को देखे रहते हैं। अचानक भेंट होने के कारण या नवीन परिचय के कारण आप में स्वल्प प्रेम हो, इस तरह की एक भी बात की आशङ्का नहीं कीजिये। अपूर्व (प्रथम बार भी) रत्नों को देखने पर वे अपनी सुन्दर कान्ति छिपाते नहीं। अतः आओ थोड़ी देर तक बैठकर गोष्ठी-सुख का अनुभव करें।"

असावपि 'अपूर्वकौतुककथाकर्णनरसिक, श्रूयतां यद्येवनम्' इत्यभिधाय सुखोपविष्टस्यास्य समीपे स्वयमुपविश्य कथयितुमारभत॥

'ओ अद्भुत कौतुकपूर्ण आख्यानों को सुनने में रसिक! सुनो—यदि ऐसा है तो, यह कह कर सुखपूर्वक बैठे हुए राजा के समीप बैठकर कहना शुरू किया॥

'अस्ति स्वर्गसमः समस्तजगतां सेव्यत्वसंख्याग्रणी-
देशो दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलकः स्त्रीपुंसरत्नाकरः।
यस्मिंस्त्यागमहोत्सवव्यसनिभिर्धन्यैरशून्या जनैः
रथ्याः स्पृहणीयभावभरिताः कं नोत्सुकं कुर्वते॥ ५४॥

अस्तीति॥ स्त्री च पुमांश्च स्त्रीपुंसौ। 'अचतुर—' इत्यादिना निपात्यते॥ ५४॥

सम्पूर्ण संसार में अपनी दर्शनीयता के लिये ख्याति प्राप्त स्थानों में मुख्य, दक्षिण दिशा रूपी नायिका का मुखतिलक, स्त्री एवं पुरुषरत्नों का सागर, त्याग रूप उत्सवों के अभ्यासी पुण्यवान् लोगों से भरे हुए और आकाङ्क्षित भावों से सम्पन्न स्वर्ग सदृश वे स्थान किसे नहीं उत्कण्ठित बना देते।

सम्पूर्ण ससार मे अपनी दर्शनीयता के लिये ख्याति प्राप्त स्थानो मे अग्रणी, दक्षिण दिशा रूप नायिका का मुख-तिलक, स्त्री एव पुरुष-रत्नो का सागर, स्वर्ग की समानता करने वाला ( विदर्भ देश ) है जहाँ के ( दिव्य-दिव्य ) स्थान आकाक्षित भावो से सम्पन्न हैं, और ऐसे-ऐसे पुण्यवान् लोग हैं जो त्याग को ही महान् उत्सव मानते हैं तथा दान के ही अभ्यासी हैं अत वे स्थान किसको उत्कण्ठित नही कर देते ॥ ५४ ॥

कथं चासौ न प्रशस्यते—

यत्र त्रिपुरपुरन्ध्रिरोध्रतिलकहारिणा हरिविरञ्चिचूडामणिमरीचिचकचकोरचुम्बितचरणनखचन्द्रकान्तिनिचयेन भगवता सेव्यते सेव्यतयाऽपहसितकैलासश्रीः श्रीशैलः शूलपाणिना ॥

यत्रेति ॥ त्रिशूलपाणिना त्रिपुरान्तकेन । तत्रस्थेन हि त्रिपुरासुरो हत ॥

क्यो न यह प्रशस्त माना जाय—

जहाँ अपनी रमणीयता के कारण कैलास पर्वत की भी शोभा को समाप्त कर देने वाला श्रीशैल नामक पर्वत त्रिपुरासुर की रमणियों के सिन्दूर तिलक को समाप्त कर देने वाले शूलधारी भगवान् शकर द्वारा अलङ्कृत हैं, जिनके चरण-नख-चन्द्र की कान्ति पुञ्ज को विष्णु तथा ब्रह्मा के मुकुट-रत्नो के कान्ति पुञ्ज रूप चकोर चूमते रहते हैं ॥

[ भगवान् शकर ने त्रिपुरासुर का वध किया था अत उसकी विधवा पत्नियो ने रोध्रतिलक (लाल तिलक) लगाना छोड दिया। विष्णु और ब्रह्मा दोनो ही भक्तिपूर्वक शकर जी को प्रणाम करते हैं। प्रणाम के अवसर पर उनके मुकुट मणियो की कान्ति चन्द्र सदृश भगवान् शकर के चरणनखो को उसी तरह चूमती हैं जैसे चकोर चन्द्रमा की किरणो को चूमते हैं। श्रीशैल कैलास पर्वत से भी अधिक रमणीय है, इसीलिये तो भगवान् शकर वहाँ निवास करते हैं ] ॥

यत्र च विकचविविधवनविहारसुरभिसमीरणान्दोलितकदलीदलव्यजनवीज्यमाननिधुवनविनोदखेदविद्रावणनिद्रालुद्रविडमिथुनसनाथपरिसराः सरसघननिचुलतलचलच्चकोरचक्रवाककुलकपिञ्जलमयूरहारिण्यो नाकलोककमनीयतां कलयन्ति कमलकेदारसाराः सरससहकारकान्तारा कावेरीतीरभूमयः ॥

जहाँ खिले हुए विभिन्न वनों मे घूमती हुई हवा से हिलते हुए केले के पत्र-रूप पखों द्वारा हवा किये जा रहे निधुवन ( मैथुन ) विनोद की थकावट को विद्रावण (समाप्त) करने के लिये नीद मे पडे हुए द्रविड-दम्पतियो द्वारा अलङ्कृत

सरस एवं घने बेत के वृक्षों के नीचे घूमते हुए चकोर, चक्रवाक, कपिञ्जल (चातक) तथा मयूरों के कारण मनोहर, स्वर्ग लोक की तरह कमनीय (सुन्दर), कलम ( धान ) के खेतों से महत्त्वपूर्ण, सरस आम तथा नारस्कर नामक वृक्षों से सम्पन्न कावेरी तट है।

किं बहुना—

अस्तु स्वस्ति समस्तरत्ननिधये श्रीदक्षिणस्यै दिशे
स्वर्गस्पर्धिसमृद्धये हृदयहृद्गोदावरीरोधसे।
यत्र त्रस्तकुरङ्गकार्भकदृशः संभोगलीलाभुवः
सौख्यस्यायतनं भवन्ति रसिकाः कंदर्पदास्त्रं स्त्रियः॥५५॥

अधिक क्या कहूँ ?—

समस्त रत्नों के सागर उस दक्षिण दिशा तथा स्वर्ग की सम्पत्ति से स्पर्धा रखने वाले मनोहर गोदावरी तट का मङ्गल हो जहाँ डरे हुए मृग शिशुओं के नेत्र सदृश नेत्र वाली सम्भोग लीला की उत्पत्ति भूमि रसिक स्त्रियाँ विविध ऐश्वर्यों के आगार तथा काम बाण हुआ करती हैं॥ ५५॥

तत्र प्रणतसुरासुरशिरःशोणमरीचिचयबहलकुङ्कुमानुलेपपल्लवित-पादारविन्दद्वयस्य क्रौञ्चभिदो भगवतः सुगन्धिगन्धमादनाधिवासिनः स्कन्ददेवस्य दर्शनार्थमितो गतवानस्मि॥

मैं वहाँ इधर से सुगन्धित गन्धमादन पर्वत के निवासी भगवान् कार्तिकेय के दर्शन के लिये गया था जिनके चरण-कमलों पर घने कुङ्कुम लेप का कार्य प्रणाम करते समय देवताओं और दानवों के मस्तकों की लाल किरणों का पुञ्ज ही पूरा कर देता है, और जिन्होंने क्रौञ्च (ऊँचे) पर्वत का भेदन किया है।

तस्माच्च निवर्तमानेन क्वचिदेकस्मिन्नध्वरोधिनी न्यग्रोधपादपतले दीर्घाध्वश्रान्तेन विश्राम्यता मया श्रूयतां यदाश्चर्यमालोकितम्॥

वहाँ से लौटते समय लम्बा रास्ता तय करने से थक जाने के कारण मार्ग में पूर्ण रूप से फैले हुए एक वरगद के पेड़ के नीचे आराम करते समय मैंने जिस एक आश्चर्य को देखा है उसे सुनिये॥

अतिललितपदविन्याससारसाधुसिन्धुरवधूस्कन्धमधिरूढा, प्रौढ-सखीसहायप्राया, प्रान्तपतच्चामरमरुन्नर्तितालकवल्लरी, कर्णकुव-लयालंकारधारिणी, रुचिररुचिमच्चरणनूपुरा, पुरः सरसराग-गान्धर्विककण्ठकन्दरविनिःसरत्सरसगीतप्रेङ्खोलनप्रयोगेषु दत्तावधाना, नेत्रे मनाग्मीलयन्ती, ध्रियमाणमायूरातपत्रमण्डला, मण्डलितमदन-

चापचक्रवक्रभ्रूः भूपालपुत्रिका कापि कापि कुतोऽप्युच्चलिता तदेव न्यग्रोधपादपच्छायामण्डपमशिश्रियत् ॥

उसी वट वृक्ष छाया-मण्डप के नीचे कोई अत्यन्त सुन्दरी राजपुत्री कहीं से किसी स्थान के लिये चल कर आयी हुई थी। वह अपने अत्यन्त सुन्दर पद-विन्यास की सुन्दरता से साधु ( पूर्णता प्राप्त ) सिन्धुरवधू (हथिनी) की भी गति को मात कर रही थी। प्रौढ ( सयानी ) सखियाँ उसकी सहायक थी। प्रान्त ( बगल ) में डोलते हुए सुन्दर चँवर की हवा से उसकी अलकवल्लरी (केशलता) नाच रही थी। कानों में कमल का भूषण पहनी थी। रुचिर ( सुन्दर ) तथा रुचिमत् ( कान्तिमान् ) उसके चरणों के नूपुर थे। सरस राग ( मधुरस्वर ) से गाने वाले गन्धर्वों की कण्ठ-कन्दरा से निकलने वाली सङ्गीतलहरी के प्रयोग में दत्तचित्त थी। आँखों को कुछ मुकुलित की हुई थी। हाथ में एक मयूर पङ्ख का छत्र था। भौंहें टेढ़ी थी तो, गोल किया ( चढ़ाया ) हुआ कामदेव का धनुष् ही थी ॥

तां चालोक्य चिन्तितवानस्मि विस्मितमनाः—

किं लक्ष्मीः स्वयमागता मुररिपोर्वक्षस्य वक्षःस्थलात्
कोपात्पत्युरुतावतारमकरोद् देवी भवानी भुवि।
श्यामाम्भोजसदक्षपक्ष्मलचलन्नेत्रामिमां पश्यतो
धातस्तात करोषि किं न वदने चक्षुःसहस्रं मम ॥ ५६ ॥

उसे देखकर आश्चर्यपूर्वक मैं सोचने लगा—

भगवान् मुरारि के वक्ष स्थल से स्वयं लक्ष्मी ही आ गयी क्या ? पति से क्रुद्ध होकर साक्षात् पार्वती ही पृथ्वी पर आ गयी क्या ? हे ब्रह्मन् ! श्याम-कमल सदृश पलकों से युक्त चञ्चल नेत्रों वाली इस सुन्दरी को देखते समय मेरी आँखें हजार क्यों नही बना देते। जिससे मैं इसे अच्छी तरह देख सकूँ॥५६॥

अपि च—

इन्दोः सौन्दर्यमास्यं कलयति कमलस्पर्धिनी नेत्रपत्रे
कालिन्द्याः कुन्तलाली तुलयति विभवं भव्यभङ्गैस्तरङ्गैः।
यस्याः किं श्लाघ्यतेऽन्यत्सुभगगुणनिधेः काप्यपूर्वेव यस्याः
पुष्पेषोर्वैजयन्ती जयति युवजनोन्मादिनी यौवनश्रीः ॥ ५७ ॥

और मुख चन्द्रमा के सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है। आँखें कमल से स्पर्धा करती हैं। बाल कालिन्दी (यमुना) से सन्तुलित होते हैं। सौभाग्य गुणों के सागर उस नायिका की नवीन यौवन-लक्ष्मी का क्या वर्णन करूँ जो युवकों के

हृदय को उन्मत्त कर देने वाली पुष्पबाण ( कामदेव ) की वैजयन्ती ( पताका ) है ॥ ५७ ॥

अपि च—

> आकारः स मनोहरः स महिमा तद्वैभवं तद्वयः
> सा कान्तिः स च विश्वविस्मयकरः सौभाग्यभाग्योदयः ।
> एकैकस्य विशेषवर्णनविधौ तस्याः स एव क्षमो
> यस्यास्मिन्नुरगप्रभोरिव भवेज्जिह्वासहस्रद्वयम् ॥ ५८ ॥

आकार इति ॥ उरगप्रभोर्वासुकेर्यथा जिह्वासहस्रद्वयं वर्तते तथा यस्यैतावत्यो जिह्वा भवेयुः स एव वर्णयितुं क्षमो भवेत्। यद्वा 'जिह्वासहस्र मुखे' इति पाठः। तत्रा सहस्रशब्दोऽनन्तबहुत्ववचनः ॥ ५८ ॥

और वह मनोहर आकृति, वह दिव्य महिमा, वह ऐश्वर्य, वह अवस्था वह कान्ति और वह विश्व को आश्चर्य में डाल देने वाला भव्य भाग्योदय, इनमें से एक-एक के वर्णन में वही समर्थ होगा जिसे उरगप्रभु (सर्पराज शेषनाग) की तरह दो हजार जिह्वायें प्राप्त रहेंगी ॥ ५८ ॥

**सापि यथा त्वमिदानीं मामिह पृच्छसि तथार्धपथमिलितं कंचिदुदीचीनमध्वगं दक्षिणस्यां दिशि प्रस्थितमादरेण पृच्छन्ती मुहूर्तमिव तत्रैव विश्रमितुमारभत ॥**

जैसे आप मुझसे पूछ रहे हैं, उसी तरह आधे रास्ते में मिले हुए दक्षिण दिशा के लिये प्रस्थित किसी उत्तर दिशा के पथिक से आदर के साथ कुछ पूछती हुई वहीं पर एक क्षण के लिये विश्राम कर रही थी ॥

**श्रुतश्चायं मयापि तेन तस्याः पुरः कस्यचिदुदीच्यनरपतेः श्लाघ्यमानकथावशेषालापः ॥**

मैं भी उनके द्वारा किसी उत्तर देश के प्रशस्त गुण वाले राजा की कथा का अवशेष सुना।

> तस्मिन्स्मितमुखे यूनि यूपदीर्घभुजद्वये ।
> ते धन्या न्यपतन्येषां कंदर्पसदृशो दृशः ॥ ५९ ॥

वे आँखें धन्य हैं जो उस कामदेव सदृश मुस्कुराते हुए मुख वाले तथा यूप ( यज्ञस्तम्भ ) सदृश लम्बी भुजाओं वाले युवक को देखी हों ॥ ५९ ॥

किं बहुना—

> सा त्वं मन्मथमञ्जरी स च युवा शृङ्गारसर्वैवोचितः
> श्लाघ्यं तद्द्वयतोः किमन्यदपरं किं त्वेतदाशास्महे ।

भाग्यैर्योग्यसमागमेन युवयोर्मानुष्यमाणिक्ययोः
श्रेयानस्तु विधेर्विचित्ररचनासंकल्पशिल्पश्रमः ॥ ६० ॥

सा त्वमिति ॥ अत्राप्रत्यक्षमपि बुद्धिकल्पित प्रत्यक्षमिव मन्यमानो भवतोरित्याह। भवती च भवांश्च भवन्तौ। 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेष. ॥ मानुषत्वे भूषणभूतत्वात्तयोर्माणिक्यत्वम् ॥ ६० ॥

अधिक क्या ?

तुम कामदेव की मञ्जरी हो, वह युवक (मञ्जरी के पराग को आस्वादित करने वाला भ्रमर है ) तुम्हारे ही लिये उपयुक्त है। तुम दोनो के विषय मे और दूसरी आशंसा क्या करूँ केवल यही आशा ( कामना ) करता हूँ कि दैवात् तुम दो मानव रत्नो के औचित्यपूर्ण मिलन से ब्रह्मा की अपूर्व निर्माण-विषयक प्रतिज्ञा तथा उसके अनुकूल कला प्रदर्शन के लिये किया हुआ श्रम सफल हो जाय ॥ ६० ॥

तत्र जाने स कः सुकृती येन तस्याः श्रवणादेवोल्लसद्बहुलपुलकाङ्कुरोत्तम्भितांशुकायाः पुरो विस्तरेणैवं वर्णितः ॥

मालूम नही वह कौन पुण्यात्मा है जिसके विषय मे सुनने मात्र से उस (राजपुत्री) को इतना अधिक रोमाञ्च हो गया कि ( रोमो के खडे होने के कारण ) उसका वस्त्र उठ गया। (उसकी उत्कण्ठा के कारण ही) उसने इस तरह विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

न च मयापि विस्मयविस्मृतविवेकेन केयं कस्येयं कुत्र कुतो वा प्रस्थितेति प्रश्नाग्रहः कृतः। केवलमदृष्टपूर्वरूपोपलम्भाकस्मिककौतुकातिरेकास्तमितसमस्ताम्यव्यापारेणैकाग्रतया ग्रहनिरुद्धेनेवान्धेनेव मूकेनेव मूर्छितेनेव विषविघूर्णितेनेव स्तोभस्तम्भितेनेव गतायामपि तस्यां तेनाध्वनीनेन सह तत्रैव न्यग्रोधतरुतले सुचिरमासितमासीत् ॥

नेति ॥ स्तोभश्चेष्टाविघात ॥

आश्चर्य के मारे मेरी भी चेतना नष्ट हो गयी। अत मैंने भी पूछने का आग्रह नही किया कि वह कौन थी ? किसकी ( लडकी ) थी ? कहाँ और कहाँ से आयी थी ? इसके पहले मैंने कोई ऐसा रूप नहीं देखा था। अत आकस्मिक उत्कण्ठा की अधिकता से समस्त वाह्य व्यापारो के शान्त हो जाने के कारण एकाग्रचित्त होकर किसी ग्रह द्वारा पकडे गये की तरह, अन्धे की तरह, मूक की तरह, मूर्छित की तरह, विषयोन्मत्त को तरह, व्यर्थ श्रम होने पर किंकर्तव्य विमूढ की तरह होकर उस पथिक के साथ वहीं उसी वटवृक्ष के नीचे बहुत देर तक बैठा रह गया।

तदायुष्मन्नेव कथितः स्ववृत्तान्तः ॥

तस्यां दिशि तया सकलजगज्ज्योत्स्नया, अस्मिन्नपि देशे निःशेषजननयनकुमुदेन्दुना त्वया दृष्टेन, दृष्टं यद्द्रष्टव्यम्। अभूच्च मे श्लाघ्यं जन्म। जाते कृतार्थे चक्षुषी। सम्पन्नः सफलः परिभ्रमणप्रयासः ॥

आयुष्मन्! मैंने अपना वृत्तान्त कह दिया।

उस दिशा में सम्पूर्ण संसार की किरण उस (राजपुत्री) को तथा इस दिशा में समस्त मनुष्यों के नेत्र कुमुद के लिये चन्द्रस्वरूप आपको देख लेने पर, मैंने सब कुछ देख लिया जो देखना था। मेरा जन्म सफल हो गया। आँखें कृतार्थ हो गयीं, देशाटन का प्रयत्न आज सफल हो गया।

'तदिदानीं किमन्यत् ॥ अनुमन्यस्व स्वविषयगमनाय माम्' इत्यभिधाय व्यरंसीत् ॥ राजाप्येतदाकर्ण्य चिन्तितवान् ॥

'अब इस समय और क्या कहूँ। आज्ञा दीजिये अपने विषय (देश) जाने के लिये।' इतना कह कर चुप हो गया ॥ राजा भी यह सब सुनकर सोचने लगा।

स्त्रीमाणिक्यमहाकरः स विषयः पान्थोऽप्ययं सत्यवाग्
व्यापारेऽपि विधेर्विचित्ररचनस्तत्किं न सम्भाव्यते।
किं त्वाश्चर्यमहष्टरूपविभवोऽप्याकर्ण्यमाना सती
कान्तेत्युन्नतचेतसोऽपि कुरुते नाम्नैव निम्नं मनः ॥ ६१ ॥

स्त्रीति ॥ निम्नमविलाचहीनत्वाह्वावकारपदम् ॥ ६१ ॥

वह देश स्त्री-रत्नों का बड़ा विशाल खजाना है। यह पथिक भी यथार्थ वक्ता है, क्योंकि ब्रह्मा का व्यापार (कार्य) बहुत-सी आश्चर्यपूर्ण कृतियों को प्रस्तुत करता है। अतः क्या सम्भव नहीं है। आश्चर्य यही है कि उस सुन्दरी की रूप-सम्पत्ति मैंने नहीं देखी, केवल सुनी जा रही है, किन्तु उसके नाम से ही मेरा उच्च मनोबल गिरता-सा जा रहा है ॥ ६१ ॥

तथाहि—

नो नेत्राञ्जलिना निपीतमसकृत्तस्याः स्वरूपामृतं
नो नामान्वयपल्लवोऽपि च मया कर्णावतंसीकृतः।
चित्रं चुम्बति चुम्बकाश्मकमयो यद्द्वलाद् दूरत-
स्तद्वत्तर्जितधैर्यमेतदपि मे तस्यां मनो धावति ॥ ६२ ॥

नो नेत्रेति ॥ यद्वद्यथा चुम्बकसंज्ञमश्मकम्। पाषाणं कर्म ॥ अयो लोहं कर्तृ ॥ चुम्बति। तथा मेऽपि मनस्तस्यां धावति ॥ ६२ ॥

क्योंकि—

मैं अपनी नेत्राञ्जलि से उसके रूपामृत का बार-बार पान नहीं किया। उसके नाम पल्लव को अपने कानों का भूषण नहीं बनाया। फिर भी चुम्बक जैसे चुम्बक वाले पदार्थ से चिपक जाता है, ठीक उसी तरह मेरा भी धैर्य तोड़ कर हठात् उसी की ओर दौड़ रहा है ॥ ६२ ॥

सोऽयं दुर्लभेष्वनुरागः पुंसाम्, अज्वरमस्वास्थ्यम्, अदौर्गत्यं धी.स्थ्यम्, अविषास्वादनमाघूर्णनम्, असाध्वसं कम्पनम्, अनात्मविक्रयं पारवश्यम्, अजरं जाड्यम्, अनिन्धनं ज्वलनम्, अलग्नग्रहमुन्मादनम्, अवात्याघातमुद्भ्रमणम्, अमौनं मौक्यम्, अहीनश्रुतिबाधिर्यम्, अभ्रष्टदृष्टिकमन्धत्वम्, अस्खलितमनोरथं मनःस्तम्भनम्, अमन्त्र आवेशः ॥

सोऽयमिति ॥ आवेशो भूतादेर्मनसि प्रवेशः ॥

अप्राप्य वस्तु में ही पुरुषों का अनुराग हुआ करता है। मुझे यह बिना ज्वर की अस्वस्थता है। बिना दुर्गति की अस्थिरता है। विष भोजन के बिना ही मूर्च्छा है। बिना डर का कम्पन है। आत्मसमर्पण किये बिना ही परवशता है। बिना बुढ़ापा आये ही जड़ता है। लकड़ी के बिना ही ज्वाला है। प्रतिकूल ग्रह के बिना ही पागलपन है। बिना मौन रहे ही गूँगापन है। पक्षाघात या वायु विकार के बिना ही छटपटाहट है। कानों के रहते ही बहरापन आ गया है। आँखों के बिना नष्ट हुए ही अन्धता आ गयी है। मनोरथ के नष्ट होने पर भी मानसिक स्तब्धता आ गयी है। बिना मन्त्र का ही आवेश हो गया है ॥

[ मन्त्र से लोग देव या भूत का आवाहन अपने शरीर पर करते हैं। ऐसा करने पर लोगों की मनोदशा बदल जाती है। विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है ॥

सर्वथा नमः सुस्थितजनदुर्जनाय मनोजन्मने, यस्यायमेवंविधो व्यापारः, इत्यवधारयन्नवतार्य सर्वाङ्गेभ्यो भूषणानि तस्मै सदयमदात्।

सर्वथा नमस्कार है, सज्जन को भी दुर्जन बना डालने वाले उस मनजन्मा कामदेव को जिनका ऐसा व्यवसाय है, इस तरह सोचता हुआ अपने सभी अङ्गों से भूषणों को उतार कर उसे दे दिया ॥

तैस्तैरालापैः स्थितया च कञ्चित्समयमिममथ यथास्थितं पान्थं कथमपि प्रेषयामास ॥

उन-उन प्रासङ्गिक बातों से कुछ समय बिता कर किसी-किसी तरह उस पथिक को उसके ईप्सित स्थान की ओर भेजा ॥

स्वयमपि तत्कालान्तरालमिलितैर्नक्षत्रैरिव सार्द्रमृगशिरोहस्तैः सश्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवाहिभिः पापर्द्धिकपरिजनैरनुगम्यमानो राजा निजावासमयासीत् ॥

स्वयमपीति ॥ राजा निजवासमगात् । तत्कालं तत्क्षणात् । अन्तरालेऽध्वमध्ये । राजा चन्द्रोऽपि । तदा तस्मिन्ज्योतिःप्रसिद्धे काले कलासमूहे अष्टमीलक्ष्मी यद्क्तालं तत्र । मिलितैः परिजनैरनुगम्यमानः । कीदृशैः । सार्द्राणि सरक्तान्याद्र्योभूतानि हरिणशिरांसि येषु तथाविधा हस्ता येषां तैः सश्रवणा सकर्णाम् । चित्रस्य चित्रकायस्य कृत्तिकां त्वचम् । उपस्करं मृगयोपयोगि वहन्ति तैः । आर्द्रशब्दो भावप्रधानः । पक्षे सह आर्द्रया नक्षत्रेण, सार्द्रं मृगशिरो हस्तश्च नक्षत्रं येषु श्रवणचित्रे नक्षत्रे । अनयोः समाहारद्वन्द्वः । तेन सह । ताश्च ताः कृत्तिकाश्च तासामुपस्करं समवायं वहन्ति ॥

राजा स्वयं भी उसी समय रास्ते के मध्य में मिले हुए नक्षत्र-सदृश अपने व्याध परिजनों के साथ राज-भवन चला आया। वे ( परिजन ) हाथ में ( खून से ) आर्द्र मृग का सिर और कानयुक्त चितकबरा चमड़ा आदि शिकार के अनुकूल सामग्री लिये हुए थे ॥

[ यहाँ का विशेष्य राजा है। राजा का अर्थ चन्द्रमा भी होता है। चन्द्रपक्ष में भी विशेषणों का उपयोग किया जा सकता है। चन्द्रानुगामी जैसे नक्षत्र होते हैं वैसे ही व्याध राजा के अनुगामी थे। नक्षत्र-मण्डल जैसे सार्द्रमृगशिरोहस्त ( आर्द्रा, मृगशिरा तथा हस्तयुक्त ) है एवं सश्रवण-चित्रकृत्तिकोपस्कर ( श्रवण, चित्रा एवं कृत्तिका के समुदाय से युक्त ) है वैसे व्याध-परिजन भी सार्द्र-मृगशिरोहस्त ( खून टपकाते रहने के कारण मृग का आर्द्र सिर लिये हुए हैं ) और सश्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवाही ( कानों से युक्त विचित्र रंग वाले चमड़े आदि उपस्कर ( सामग्री ) को ढो रहे हैं। शाब्दी समानता के आधार पर यह चित्र प्रस्तुत किया गया है ॥

ततः प्रभृति च—

> हृद्योद्यानमदत्तरङ्गितसरित्तीरे तरूणामध-
> स्तल्पेऽनल्पसरोजिनीनवदलप्रायेऽपि विश्रात्मनः ।
> धीरस्यापि मनाङ्मनस्तृणकुटीकोणान्तराले बला-
> द्धृष्टोऽस्येति विभाव्यते परवशैरङ्गैरनङ्गानलः ॥ ६३ ॥

हृद्येति ॥ हृदयस्य बन्धनं हृद्यम् ॥ ६३ ॥

उसी समय से—

मनोहर उपवन की हवा से लहराती हुई नदी के तीर पर पेड़ों के नीचे पर्याप्त कमलिनी दलों से निर्मित शय्या पर भी उदास रहनेवाले उस धीर ( राजा नल ) के परवश अङ्गों से यह अनुमान लग जाता था कि उसकी मानस पर्णकुटी के किसी कोने के एक भाग में बलात्कार थोड़ी कामाग्नि लग ही गयी थी ॥ ६३ ॥

एवमस्य—

पुनरपि तदभिख्याम्पृच्छतः पान्थसार्थान्
प्रतिपथमथ यूनो यान्ति तस्य क्रमेण ।
हरचरणसरोजद्वन्द्वमुद्राङ्कमौले-
र्मदनमदनिवासा वासराः प्रावृषेण्याः ॥ ६४ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण सरोजाङ्कायां
प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ।



तमसो यत्र विनाशः पथिकोत्क्राम पदं यं निर्माम ।
उदय प्रतिपद्यासौ भुवनमुदं जयति चण्डरवि ॥
इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यास्तनुते स्म चण्डपालः ।
शिशुमतिस्खलितकाविशामसौत्र चतुरमतिस्फुटभित्तिचाहचित्रम् ॥
इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे प्रथम उच्छ्वास समाप्त ॥



इस तरह—

भगवान् शङ्कर के चरणकमल द्वय के चिह्न से चिह्नित ललाटवाले उस युवक के वर्षाकालीन दिन जो काम मद के निवास माने जाते हैं, प्रत्येक मार्ग में दमयन्ती वृत्तान्त जाननेवाले पथिकों से पूछते ही पूछते व्यतीत होते थे ॥ ६४ ॥

[ इतना भाव मग्न हो गया था कि पथिकों से भी दमयन्ती के ही विषय में कुछ जानना चाहता था ] ।

प्रथम उच्छ्वास समाप्त ।



उन उन प्रासङ्गिक बातों से कुछ समय बिता कर किसी किसी तरह उस पथिक को उसके ईप्सित स्थान की ओर भेजा ॥

स्वयमपि तत्कालान्तरालमिलितैर्नक्षत्रैरिव सार्द्रमृगशिरोहस्तैः सश्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवाहिभिः पापर्द्धिकपरिजनैरनुगम्यमानो राजा निजावासमयासीत् ॥

स्वयमिति । राजा निजहर्म्यमयासीत् । तत्कालं तत्क्षणात् । अन्तराले मध्ये । राजा चन्द्रोऽपि । तदा ज्योतींषि प्रसिद्ध काले कलापमूर्ते अष्टानीलक्षणे मद्-गतरात्रय । मिलितै परिजनैरनुगम्यमान । कीदृशै । सार्द्राणि सास्र-वाष्पो-क्षन्ति हरिणशिरांसि येषु तथाविधा हस्ता येषां ते सार्द्रमृगशिरोहस्ताः । चित्र-स्य चित्रकायस्य कृत्तिका चर्म । उपस्कर मृगयासाधनानि वहन्ति तैः । आर्द्रशब्दो भाववचनः । पक्षे सह आर्द्रया नक्षत्रेण, साथ मृगशिरो हस्तश्च नक्षत्र येषु श्रवण-चित्रे नक्षत्रे । अनयोः समाहारद्वन्द्वः । तेन सह । ताश्च ता- कृत्तिकाश्च तासामुपस्करं समवायं वहन्ति ॥

राजा स्वयं भी उसी समय रास्ते के मध्य में मिले हुए नक्षत्र-सदृश अपने व्याध परिजनों के साथ राज भवन चला आया । वे ( परिजन ) हाथ में ( खून से ) आर्द्र मृग का शिर और कानयुक्त चितकबरा चमड़ा आदि शिकार के अनुकूल सामग्री लिये हुए थे ॥

[ यहाँ का विशेष्य राजा है । राजा का अर्थ चन्द्रमा भी होता है । चन्द्रपक्ष में भी विशेषणों का उपयोग किया जा सकता है । चन्द्रानुगामी जैसे नक्षत्र होते हैं वैसे ही व्याध राजा के अनुगामी थे । नक्षत्र-मण्डल जैसे सार्द्र-मृगशिरो-हस्त ( आर्द्रा, मृगशिरा तथा हस्त-युक्त ) है एवं सश्रवण-चित्र कृत्तिकोपस्कर ( श्रवण, चित्रा एवं कृत्तिका के समुदाय से युक्त ) है वैसे व्याध परिजन भी आर्द्र-मृगशिरोहस्त ( खून टपकते रहने के कारण मृग का आर्द्र शिर लिये हुए हैं ) और सश्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवाही ( कानों से युक्त विचित्र रंग वाले चमड़े आदि उपस्कर ( सामग्री ) को ढो रहे ) हैं । शाब्दी समानता के आधार पर यह चित्र प्रस्तुत किया गया है ॥

ततः प्रभृति च—

हृद्योद्यानमरुत्तरङ्गितसरित्तीरे तरूणामध-
स्तल्पेऽनल्पसरोजिनीनवदलप्रायेऽपि खिन्नात्मनः ।
धीरस्यापि मनाङ्मनस्तृणकुटीकोणान्तराले बला-
ल्लग्नोऽस्यैति विभाव्यते परवशैरङ्गैरनङ्गानलः ॥ ६३ ॥

हृद्येति । हृदयस्य बन्धनं हृद्यम् ॥ ६३ ॥

उसी समय से—

मनोहर उपवन की हवा से लहराती हुई नदी के तीर पर पेड़ों के नीचे पर्याप्त कमलिनी दलों से निर्मित शय्या पर भी उदास रहनेवाले उस धीर ( राजा नल ) के परवश अङ्गों से यह अनुमान लग जाता था कि उसकी मानस-पर्णकुटी के किसी कोने के एक भाग में बलात्कार थोड़ी कामाग्नि लग ही गयी थी ॥ ६३ ॥

एवमस्य—

पुनरपि तदभिज्ञाम्पृच्छतः पान्थसार्थान्
प्रतिपथमथ यूनो यान्ति तस्य क्रमेण ।
हरचरणसरोजद्वन्द्वमुद्राङ्कमौलेः
र्मदनमदनिधाम्ना वासराः प्रावृषेण्याः ॥ ६४ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण सरोजाङ्कायां
प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः



नमसो यत्र विनाशः पथिकोच्छ्वासः पदार्थनिर्भासः ।
उदयः प्रतिपद्यासौ सुखसमुद्रे जयति चण्डरुचिः ॥
इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यास्तनुते स्म चण्डपालः ।
शिशुमतिकलिकाविकासचैत्रं चतुरमनिस्फुटभित्तिचारुचित्रम् ॥
इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ॥



इस तरह—

भगवान् शंकर के चरणकमल-द्वय के चिह्न से चिह्नित ललाटवाले उस युवक के वर्षाकालीन दिन जो काम-मद के निवास माने जाते हैं, प्रत्येक मार्ग में दमयन्ती वृत्तान्त जाननेवाले पथिकों से पूछते ही पूछते व्यतीत होते थे ॥ ६४ ॥

[ इतना भाव-मग्न हो गया था कि पथिकों से भी दमयन्ती के ही विषय में कुछ जानना चाहता था ] ।

प्रथम उच्छ्वास समाप्त ।



# द्वितीय उच्छ्वासः

अथ कदाचिदवगलद्बकुलपरिमलमिलदलिकुलाकुलितकुटजकदम्बकुसुमकर्णपूरशून्यकाननासु, निःश्वासयन्मन्दमुखरमयूररसनानलीकलकूजितासु, विरलतरतडिल्लतालिङ्गितलावण्यासु, विगतहंसद्विजराजिषु, पतत्पयोधरासु, आगुल्फासु, वृद्धास्विव गतप्रायासु वर्षासु, रतिमकुर्वाणे मदकलकलहंसहासहारिण्यामुत्सुकस्तरुण्यामिवागतायां शरदि, द्विरदनदगन्धसम्बन्धानुधाविते कुसुमितसप्तच्छदच्छायासु विस्फूर्जति येषाङ्घूर्णितकेसरकरालकण्ठे कण्ठीरवकदम्बके, गृहदीर्घिकामृणालिकाकाण्डखण्डनविरामरमणीयमुखदस्सु शरत्समयप्रवेशमङ्गलमृदङ्गेष्विव इभमण्डलेषु, स्मरशरनिकरनिर्मथितपान्थमार्गमहारुधिरनिष्यन्दबिन्दुसंदोह इव वनस्थलीभूमिपतति बन्धुरबन्धूककुसुमप्रकरे, प्रसरन्तीषु शरल्लक्ष्मीप्रवेशानन्दवन्दनमालासु निःशङ्कशुककुलावलीषु धूयमानासु स्मरराजराज्यविजयघोषणासु पक्वकलमगन्धशालिपालिकाबालिकाहर्षगीतिषु, शरच्छ्रीकटाक्षेषून्मीलत्सु नीलनीरजेषु, क्वणति वर्षावधूप्रस्थानपटहे पटुतरपवननाले, प्रभात इव घननिमिरविरामरमणीये जाते जलनिधिशयनशायिशार्ङ्गिनिद्राद्रुहि निनिद्रसान्द्रसरससरोजराजिराजितसरसि शरत्समये, स महीपतिः समासन्नवनविहारिकिन्नरमिथुनेन गीयमानमिदमनल्पलीलं श्लोकत्रयमशृणोत् ॥

अथेति । अतन्गतामिनीति मनि स राजा निकटकानने विहारिकिन्नरमिथुनेन गीयमानं रागविशेषस्य स्थायंमानमिदमिति वक्ष्यमाणमनल्पलीलमप्राप्य श्लोकत्रियमाकर्णितवान् । किंविशिष्टे । कलहंसा एव हासस्तेन रम्यायां तरुण्यामिवाभिनवप्रवृत्तायाम् । अथ च शरदेव तरुणी युवतिः । तस्यामागतायां रागास्पदप्राप्तायाम् । उत्सुक उत्क इत्युत्कण्ठितम् । यद्वा मदेन यौवनया तरुणीमोट्टेकेन वा कलकलो यस्याः । तया शुभ्रत्वाद्धमोपमौ हासहारौ स्तोऽस्यामिति कर्मधारयान्मत्वर्थीयः । न कर्मधारयादिति प्रायिकम् । किं विदधाने कुर्वाणे । काम । रतिं चित्तसंश्लिष्टम् । कासु । वर्षासु । किंभूतासु । गतप्रायासु स्वल्पशेषासु । तथा कुसुमान्येव कर्णपूरा उत्तमास्तैः शून्यानि काननानि वनानि यासु । तथा मदन सुखराणां मयूराणां या रसनाऽली जिह्वाश्रेणिस्तस्याः कलकूजितम् । तद्विश्राम्यदि रमणासु । वर्षास्वेव हि केकायन्ते न शरदि । मदाभावात् । तथा स्तोकविद्युद्द्योतासु । व्यपेतहंसपक्षिपङ्क्तिषु प्रसन्नवदनासु । क्षीणशुक्लस्यप्रहासु । कास्विव । वृद्धा

स्विव। तदा। रति संभोग'। गत प्रकृष्टमयमिष्टफल दैव यासाम्। तथा कुसुमैः पुष्पदामभि. कर्णपूरैश्च शून्यं क शिर आनन च यासाम्। तथा रसनायाः काञ्च्या. कणितस्य मुखरमयूररवो ललितस्य मधुराङ्गविन्यासस्य लावण्यस्य च लोचन. लेह्यकमनीयगुणस्य विरलतद्विदुषयानम्। तथा व्यपेनहसशुभ्रदन्तराजिषु पतत्कुचासु। तथा क्षीण गर्भसंभवाभावाद्विनष्ट शुक्र पुवार्यं यासु। न पुनर्निवृत्तवा यांस्विति व्याख्येयम्। पुंसो वीर्यं स्त्रीणां रज इति प्रसिद्धे। अतएव न विद्यत बलं वीर्यं यासामित्यपव्या.। रसनाशब्द काञ्चीपर्षे न पर तालव्य। दन्त्योऽप्याहित। तथा च विश्वप्रकाशः—'रसना काञ्चिजिह्वयो' इति। द्विरदमदगन्धस्य सम्बन्धो द्विरदमदगन्धोऽयमिति प्रत्यभिज्ञा तयानुधाविते। सन्धानपाठे तु सन्धान सन्धि. मैत्री मात्सर्यमिति यावत्। शारदि मसच्छदा' पुष्यन्ति। ते च-मदगन्धपरतसो ग-जभ्रान्त्या सरोष 'विस्फूर्जति सिंहवृन्दे। मृणालिका काण्डस्य खण्डनाय योऽसौ विरा-मोऽर्धाखादस्यथ। तेन रम्य यथा भवति स्थित्वा स्थित्वा मृणाल चर्वन्ति ताकपाय-सेवद्वकण्ठाश्च नाद कुर्वन्तीत्यर्थ.। हसमण्डलानि शरत्प्रवेशमङ्गलमृदङ्गा। बन्धूक-कुसुमस्यातिलौहित्याद्विरहिजनरुधिरत्वम्। शुकावलिस्तोरणम्। कलमस्य श्वेतशाले गन्धशालेश्च रक्षिका गीतस्य कंदर्पराजजयघोषणा। विकसत्कासप्रसूनानि शरल्ल-क्ष्मीकटाक्षा। भृङ्गगणश्च.चान्या वर्षावध्वा प्रयाणवणष। घनो मेघो घनं च सान्द्रम्। काननस्थानम्। निद्राद्रोहो विनिद्रसान्द्रसरोजराजितसरस्च च शरत्प्र भातयो समानम्।

[ इसके बाद समीपवर्ती वन मे घूमता हुआ राजा किन्नर-मिथुन द्वारा स्पष्टतापूर्वक गाये जा रहे तीन श्लोको को सुना। उस समय तक वर्षाकाल बीत चला था और शरत् का आविर्भाव प्रारम्भ हो गया था। प्रस्तुत अनुच्छेद में वर्षा को एक बूढ़ा बधू के रूप मे और शरत् को एक तरुणी के रूप मे चित्रित किया गया है। ]

तदनन्तर एक समय राजा का मन बूढ़ा-सदृश अतीतप्राय वर्षा-बधू मे नहीं लग रहा था; क्योंकि जगल बरसते हुए गाढे पराग पर झूमते हुए भ्रमर-यूथो से व्याप्त कुटज एवं कदम्ब के पुष्परूप उसके कर्णभूषण से शून्य हो गये थे। मद से मुखर (वाचाल) मयूररूप जिह्वा-समूह की मधुर ध्वनि समाप्त हो चली थी। विद्युल्लता मे (समृद्ध) होनेवाला मनोहर (सौन्दर्य) घटता जा रहा था। हस रूप दत-पंक्ति समाप्त हो गयी थी। पयोधर (मेघस्तन) गिरते जा रहे थे। शुक्र (शुक्रग्रह) क्षीण (अस्त) हो गये थे। (बुढ़ापे के कारण) शुक्र (रज) क्षीण (समाप्त) हो गया था।

(ऐसे ही अवसर पर) मद से सुन्दर कलहसरूप-हास के कारण मनोहर (स्वयम्) आयी हुई शरत् तरुणी मे उसका मन उत्कण्ठित हो गया। हाथी के मदजल-गन्ध की धारणा से मिले हुए खिलौने की छाया मे दौड़ते हुए उलटे हुए केसरों (गर्दन के बालों) के कारण भयङ्कर कण्ठ वाले सिंह गरज

रहे थे। शरद्-वधू के आगमन के अवसर पर गृहदीर्घिका ( नहरें बहिस्त या Long-canal ) के कमलदण्ड को खाकर हंसमण्डल माङ्गलिक मृदङ्ग की तरह मधुर ध्वनि कर रहे थे। वनभूमि में सुन्दर बन्धूकपुष्पों की पङ्क्ति कामबाण-समूह से मारे गये पथिकवर्ग के स्तनस्थलों ( घावों ) से निकलते हुए रुधिर बिन्दुसमूह की तरह प्रतीत हो रही थी। शरत्-लक्ष्मी के प्रवेश से उत्पन्न होनेवाले आनन्द के कारण निःशंक तोतों की पंक्ति वन्दनमाला ( तोरण ) की तरह फैल रही थी। पके हुए सुगन्धित कलम ( धान ) की देख-रेख करने वाली बालिकाओं की गीति सम्राट् कामदेव की राज्य-विजय की घोषणा की तरह सुनायी पड़ रही थी। शरत्-लक्ष्मी के कटाक्षस्वरूप नील कमल खिल रहे थे। भ्रमरवर्ग वर्षा-वधू के प्रस्थानकालीन नगाड़े की तरह गम्भीर ध्वनि कर रहा था। जैसे प्रातःकाल घन तिमिरविराम ( गाढ़े अन्धकार के नष्ट हो जाने ) से रमणीय हो जाता है उसी तरह शरद्-समय भी घन-तिमिर-विराम ( बादलजन्य अन्धकार के नष्ट हो जाने ) से मनोहर हो गया था। समुद्र-स्थल पर सोनेवाले भगवान् विष्णु की निद्रा टूट चुकी थी। खिले हुए घने तथा सरस कमलों की पंक्ति से सरोवर सुशोभित हो रहे थे। ( ऐसे समय में ) नल ( नल ) ने समीप के वन में विहार करनेवाले किन्नर-मिथुन द्वारा गाये जाते हुए सम्य अर्थ वाले तीन श्लोक सुने ॥

[ कर्णपूरशून्य—कदम्ब और कुटज के फूलों पर जब काले भ्रमर बैठे हों तो उनकी शोभा निश्चित ही अधिक मधुर हो जायगी। ऐसे भ्रमरयुक्त कदम्ब और कुटज पुष्प को कवि ने वर्षा-वधू का कर्णभूषण बनाया है। वर्षाकाल के बीतने पर कदम्ब के फूल भी समाप्त हो जाते हैं। वृद्धा लोग जैसे अलङ्कारशून्य हो जाती हैं वैसे वर्षा भी अलङ्कार ( कर्णभूषण ) शून्य हो गयी।

मूकमयूर—वर्षाकाल में मयूर आनन्दमत्त होकर वाचाल बन जाते हैं। वाचाल मयूर ही वर्षा-वधू की जिह्वा हैं। वृद्धा के मुख से जैसे मधुर ध्वनि नहीं निकलती वैसे वर्षा वधू की मयूर जिह्वा अब मधुर ध्वनि नहीं कर पाती।

विरलतरतडिल्लता—वृद्धा जैसे यौवन के ललित लावण्य से वञ्चित हो जाती है उसी तरह वर्षा का भी सौन्दर्य कम हो गया है क्योंकि उसके स्वरूप को समृद्ध करनेवाली विद्युल्लता अब कभी ही कभी चमकती है।

हंसद्विज—वर्षाकाल में हंस मानसरोवर चले जाते हैं। शुभ्रतारूप समानता की दृष्टि से रखकर हंसों को ही वर्षा-वधू का दांत बनाया गया है। वृद्धा के जैसे दाँत गिर जाते हैं उसी तरह वर्षा-वधू के हंसरूप दन्त समाप्त हो गये हैं।

पतत्पयोधरा—बुढापे मे स्तन लटक जाते हैं। वर्षाकाल के अन्त मे पयोधर ( मेघ ) समाप्त होने लगते हैं।

क्षीणशुक्रा—वर्षाकाल मे शुक्र ग्रह अस्त रहते हैं। वृद्धा स्त्री का शुक्र ( रज ) समाप्त हो जाता है।

मदकलहस—शरत्-काल मे हस आ जाते हैं। हसो को ही यहां शरत-रुणी का हास कहा गया है। रस से स्वयम् उपस्थित तरुणी के प्रति राजा की उत्सुकता स्वाभाविक है। द्विरदमदगन्ध—छितौन के फूल में गजमद की तरह गन्ध होती है। भयङ्कर सिंहो को फूल की गन्ध मे गजमद-गन्ध की भ्रान्ति हो जाती है। इसी लिये वे उधर जोरो से दौडते हैं। निद्राद्रुहि—शरत् समय मे भगवान् विष्णु सोकर जगते है ॥ ]

धन्याः शरदि सेवन्ते प्रोल्लसच्चित्रशालिकान्।
प्रासादान् स्त्रीसखाः पौराः केदारांश्च कृषीवलाः ॥ १ ॥

धन्या इति ॥ प्रोल्लसन्त्यश्चित्रशालिका आलेख्यभूमिका येषु। पक्षे चित्रा बहुविधा शालय। स्त्रीसखा इत्युभयत्र योज्यम ॥ १ ॥

वे नागरिक धन्य हैं जो प्रोल्लसच्चित्रशालिका ( भव्य चित्रो के उपयुक्त भित्तियो ) वाली अट्टालिकाओ का उपभोग अपनी स्नेहमयी रमणियो के साथ करते हैं और वे कृषीवल ( किसान ) भी धन्य हैं जो प्रोल्लसच्चित्रशालिका ( सुन्दर विविध धानों वाले ) खेतो का उपभोग करते हैं ॥ १ ॥

[ यहाँ प्रोल्लसच्चित्रशालिकाम् का प्रासादाम् और केदारान् दोनो के साथ अन्वय है ॥ १ ॥ ]

नमिताः फलभारेण न मिताः शालिमञ्जरीः।
केदारेषु हि पश्यन्तः के दारेषु विनिःस्पृहाः ॥ २ ॥

पुन स्त्रीसखा इत्याह—नमिता इति ॥ हि यस्मात्कारणात। दारेषु के निःस्पृहाः स्यु। किं कुर्वन्त। फलभारेण नमिता वक्रिता न मिता स्तोका केदारेषु क्षेत्रेषु शालिमञ्जरी पश्यन्त। तद्दर्शनं उद्दीपनविभाव ॥ २ ॥

खेतो मे फल भार से नवी हुई अपरिमित धान की बालो को देख कर कौन आदमी स्त्रियो के प्रति अनुत्कण्ठित रह सकते है ॥ २ ॥

[ फलभार से नमित ( नवी हुई ) न + मित ( अपरिमित ) शालि—मञ्जरी ( धान के बालों ) को केदार ( खेतों ) मे देख कर कौन स्त्रियों मे ( के + दारेषु ) अनुत्कण्ठित रह सकते हैं। स्त्रीवाचक दार शब्द पुँल्लिङ्ग और नित्य बहुवचन है। केदार शब्द खेत का वाचक है। दूसरे केदारेषु मे किं शब्द का प्रथमा बहुवचन 'के' है और दार शब्द का सप्तमी बहुवचन 'दारेषु' है ॥ २ ॥ ]

प्रावृषं शरदं चापि बहुधाकाशहारिणीम् ।
विलोक्य नोत्सुकः कः स्यान्नरो नीरजसङ्गताम् ॥ ३ ॥

प्रावृषमिति ॥ रमणीयत्वात् । बहुधा पुनः पुनर्विलोक्य प्रावृषमाकाशस्य व्योम्नः स्थिरायायिनीं नीरजसं निःपांशु गतामतिक्रान्तां शरदं च काशपुष्परम्याम् । तथा नीरजैः पद्मैः सङ्गतामन्वितांम् ॥ ३ ॥

बहुधाकाशहारिणी ( अधिकांश आकाश को ) मेघों से ( छिपा देने वाली ) तथा नीरजस + गता ( धूलिहीन ) वर्षा को और बहुधा + काश + हारिणी ( अधिकांश-काश पुष्प से सुशोभित होनेवाली ) और नीरज + सङ्गता ( कमलों से समन्वित ) शरद् को देखकर कौन आदमी उत्कण्ठित नहीं हो जाता ।

[ शरद् और वर्षा दोनों ही शृङ्गार के उद्दीपक हैं । वर्षा के दिनों में आकाश अधिकांश बादलों से छिपा रहता है और पानी पड़ जाने के कारण रास्तों की धूलि समाप्त हो जाती है । इस पक्ष में 'हारिणी' का प्रयोग छिपाने अर्थ में किया जायगा और शरद्-पक्ष में 'हारिणी' का प्रयोग मनोहारिणी अर्थ में किया जायगा । शरद् काल की शोभा काश-पुष्पों से बढ़ती है और इन दिनों में कमल पर्याप्त रूप में खिलते हैं । वर्षा पक्ष में नीरजस + गता और शरद् पक्ष में नीरज + सङ्गता अन्वय करना चाहिये ॥ ३ ॥

[ किन्नर मिथुन के इन श्लोकों को सुनकर उत्कण्ठा-विह्वल राजा रमणीय उद्यान की ओर चला ॥ ]

अनेन मृदुमूर्च्छनान्तरङ्गरञ्जिताक्षरेण श्रवणपथप्रथमप्रियातिथिना श्लोकत्रयेण निरवशेषविषयवैरस्यव्रततीकठिनकुठारेण, दारपरिग्रहपराङ्मुखोऽपि शृङ्गारशैलशिखरशृङ्गमारोप्यमाणस्तदेवोद्यानममन्दमन्दारमकरन्दामोदमत्तमधुकरमधुरझङ्काररमणीयमुपसर्तुमारभत ।

*अनेन श्लोकत्रयेण प्रियासङ्गविमुखोऽप्युत्सुकः शृङ्गारगिरिशिखरं नीयमानस्तदेव वनं गन्तुमारेभे ॥*

मधुर स्वरलहरी में आन्तरिक अनुरागवाले, कर्णमार्ग के सर्वोत्तम प्रिय अतिथि, सम्पूर्ण ( सांसारिक ) विषयों के प्रति वैरस्य ( वैराग्य ) रूपी लता को समाप्त कर देने वाले तेज कुठाररूप इन तीन श्लोकों से राजा विवाह के प्रति उदासीन रहता हुआ भी शृङ्गार शैल के शिखर पर चढ़ रहा था । अतः मन्दार-पुष्पों की पर्याप्त गन्ध से उन्मत्त भ्रमरों की मधुर ध्वनि से मनोहर उद्यान की ओर चलना शुरू किया ॥

[ राजा के उद्यान में पहुँचने पर वनपालिका ने वन के बहुत से कौतुकपूर्ण स्थान दिखलाये। इस अनुच्छेद के प्रारम्भ से लेकर 'वनमारुतेन' तक के शब्द वायु के विशेषण हैं। वनरक्षिका की उक्ति सभङ्गश्लेष के माध्यम से वधू-मुख और वन, दोनो पक्ष मे लगेगी॥ ]

प्रथमसम्मुखप्रेङ्खितेन चलच्चन्दनामोदनन्दिनान्दोलनवेगवित्रस्तकुसुमिततरुशिखरसुप्तसुरतश्रमखिन्नकिंनरीनिविडतरपरिरभ्यमाणकिंनरमरस्तेन क्रीडाकमलदीर्घिकातरङ्गोत्सङ्गरङ्गत्तरुणतामरसरसबिसरोद्गारहारिणा यौवनमदनिरुद्धनैपथ्यधम्मिल्लवल्लरीवलनविलासलासकेन वनमारुतेनोत्पुलकिततनुः स्तोकमन्तरमतिक्रम्य 'देव, भवद्वैरिवधूवदने वने च नारङ्गतरूपशोभे भान्ति गण्डशैलस्थलालङ्कारधारिण्यो लोध्रलता, नागरचिताश्चन्दनपत्रभङ्गा, नालिकेरचितस्तिलक, मया दृष्टिपथमवतरति घनाञ्जनयष्टिका, नाभिरम्या नीलतमालका, नाधरीकृतस्ताम्बूलीराग, पल्लवितमेतद् दृश्यतेऽशोकजालम्। इतश्च काञ्चनगिरिरिव सुरचित क्रीडापर्वत। इतश्च गूर्जरकूर्चमिवापरिष्कृतप्रवाल बालशालवनम्। इतश्च भवद्वैरिनगरमिवानेकविधकुलसङ्कुलकूपकुलम्। इतश्च धूर्जटिजटाजूट इव पुन्नागवेष्टितो वापीपरिसर। इतश्च कुरुसेनेव कृताश्वत्थामहिता च क्रीडासरित्पुलिनपालि।' इति भङ्गश्लेषोक्तिकुशलया वनपालिकया निवेद्यमानानि वनविनोदस्थानान्यवलोकयाञ्चकार॥

तत ईदृग्विधेन वायुना रोमाञ्चिततनुः देवेत्याद्यामन्त्र्य तवारिस्त्रीमुखे वने चेदमिति भङ्गश्लेषोक्तिदक्षया वनरक्षिकया कथ्यमानानि वनकौतुकस्थानानि नलो व्यलोकयत्। आन्दोलनवेगोऽस्यास्तीत्यान्दोलन तरोरेव पवनकृतम्। त्वदरिस्त्रीमुखे अरमत्वर्थं गतस्नौदर्य कपोलफलकालङ्कारिण्यो लोध्रस्य विलेपनाग्यस्य लता मण्डनवत्कुर्यो न भान्ति। अगरुद्रवेण विनाश्चन्दनद्रवस्य पत्रभङ्गा पत्रवल्लय। अलिक ललाट तिलक पुण्ड्रम्। वा समुच्चये। घन सा दृगञ्जन तस्य यष्टि शलाका। अभिरम्या मस्तृना। प्रकर्षेण नीला कुटिलकेशा ...रोऽस्यास्तीत्यधरी कृतवान्। ताम्बूलरागशोभावर्ज कृत इति भाव। सर्वत्र नञ्समन्व ध। अवतरतीति तु सन्निहितमत्र योज्य न प्रयुक्तम्। पल्लवितशब्दो लक्षणया प्रवृद्धार्थ। शोका सम्तापमनोदुःखे यस्यास्तान शोकजालम्। अन्यत्स्पष्टम्। वने च नारङ्गतरुभिकृतशोभे गण्डशैलस्थूलपाषाणस्थलालङ्कारिण्यो लोध्रस्य तरुविशेषस्य लता ...। नागेन्द्रो रचिताश्चन्दनतरूणा पत्राणा भङ्गा विशेषा। तिलको वृक्षो नालिकेरैस्तरुभिर्व्याप्त। नता नवीना। अञ्जनस्य शाखिनो यष्टि प्रकाण्ड। तमालका इति हस्व क। अतएव नाभिरम्या नाभिदघ्ना इति भाव। नाधरीकृतो न हीनीकृत। ताम्बूली वल्ली। राग सक्ति। किसलयितमशोकानां जाल खण्ड।

इतश्च मुहु रचित सुरभिणो व्याहश्च। प्रवालाः पल्लवाः। पक्षे अलक्ष्यिता अत एव प्रवृद्धा वालाः केशा यत्र। अनेकविधैर्बकुलै सकुलम्। पक्षे अनेका विधवा मृतभर्तृका येषु कुलेषु तैः कुलैर्गोत्रैः सकुलम्। पुनागमग। अन्यत्र पुमागमो वासुकि। कृता सम्पादिता अश्वत्था पिप्पली यस्याम्। तया महिता चार्वी। पक्षे कृतनवाथागमे द्रोणमुनाय हित यया॥

अत्यन्त सामने ही बहती हुई, फैलती हुई चन्दन-गन्ध से प्रसन्न, पुष्पित वृक्षों की ऊँची डालियों पर सुरत-श्रम (मैथुन की थकावट) से थक कर लेटी हुई और (हवा के) कम्पन-वश से डरी हुई किन्नरियों द्वारा गाढालिङ्गन प्राप्त किये हुए किन्नरों से नमस्कृत, क्रीडा कमल-दीर्घिका (कमलों से भरी बावली) की लहरों के सम्पर्क से कम्पित तामरस (कमलों) के रसमय गन्ध व्यक्त करने के कारण मनोहर, यौवन-मद को ही मानो रोक रखने के लिये बाँधी गयी निषध-सुन्दरियों की वेणी के बालों को कम्पनरूप विलासपूर्ण नृत्य करानेवाले वन-पवन से राजा को रोमाञ्च हो आया।"

[मैथुन-श्रम से थक कर किन्नर-दम्पती पेड़ों की डालियों पर सोये थे। जब ओर से हवा का झोंका आता था तो डरी हुई किन्नरियाँ अपने परिजनों से लिपट जाती थीं। पवन के इस उपकार से उपकृत होकर किन्नर लोग उन्हें नमस्कार करते थे।

यौवनमद—कोई चीज भाग न निकले इसलिये उसे बाँध देते हैं। निषध-सुन्दरियाँ मानो इसलिये अपनी वेणियाँ बाँधी हुई हैं। पवन उन वेणियों के बालों को नचा रहा है।]

थोड़े व्यवधान का अतिक्रमण कर (समीप आकर) समङ्गदेव के माध्यम से बोलने में कुशल वनपालिका ने कहा—देव! आपकी शत्रु-वधुओं के धूर्ति (अरम्) शोभाहीन मुख पर कपोल भाग को अलङ्कृत करने वाली लोध्र (लाल रंग) से बने हुए रेखा—चिह्न और अगरु मिश्रित चन्दन से बनी हुई पत्र-रचनाएं तथा अलिक (ललाट) पर अच्छी तरह बनाये गये तिलक-बिन्दु अच्छे नहीं प्रतीत होते। घने अञ्जन-युक्त वर्तिका (शलाका) दृष्टिमार्ग में नहीं उतरती। नीलतम (अत्यन्त काले) अलक (बाल) अभिरम्य (सुन्दर) नहीं लगते। पान की लालिमा से ओठों को लाल नहीं किया जाता। शोक के कारण उत्पन्न दुरवस्था पर्याप्त रूप से बढ़ी हुई दिखायी पड़ती है।

वनपक्ष—नारंग (नारंग) के वृक्षों से सुशोभित इस वन में गण्ड-शैल (गिरे हुए पत्थरों) को अलङ्कृत करने वाली लोध्र लताएं मानो से सुशोभित चन्दन-पत्रों की विशेषताएं और नारियल पेड़ों से व्याप्त तिलक वृक्ष अच्छे

लगते हैं। नवीन एवं घनी अञ्जन वृक्ष की शाखायें दीखती हैं। नीले तमाल वृक्ष नाभिरम्य ( अत्यन्त रमणीय ) हैं पान की लताओं की जड़ें कम नहीं की गयी हैं। अशोक के किसलय-पत्ते सब जगह दीखते हैं। इधर काञ्चनगिरि जैसे सुर + चित ( देवताओं से व्याप्त ) है उसी तरह आपका क्रीडाशैल भी सु + रचित ( अच्छी तरह सजा हुआ ) है। गुजराती लोगों की दाढी जैसे अखण्डित प्रवाल ( बिना कटे हुए बालों वाली ) होती है वैसे आपका नवीन शाल वृक्षों का वन भी अखण्डित प्रवाल ( न कटे हुए किसलयों वाला ) है। आपका शत्रु-नगर जैसे अनेक विधवकुल सकुल ( अनेक विधवाओं से युक्त ) है वैसे ही आपके बगीचे के कूप अनेकविध + बकुल + सकुल ( विविध तरह के बकुल वृक्षों से व्याप्त है )। धूर्जटि (भगवान शंकर) की जटा जैसे पुनाग (विशिष्ट सर्प) से वेष्टित है वैसे ही इधर का वापी-परिसर ( सरोवर तट ) पुनाग वृक्ष से व्याप्त है। कुरुओं की सेना जैसे अश्वत्थामहित ( द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पर छोड़ी गयी ) थी वैसे ही क्रीडा-नदी की तट-पंक्तियाँ अश्वत्थ + आमहित ( पिप्पल वृक्षों के कारण पूजित ) हैं॥

[ नारंगतरूपशोभे—इस पद के न का अन्वय अनुपस्थी वदन पक्ष में भान्ति क्रिया के साथ हुआ है। अरम् शब्द पर्याप्त अर्थ का वाचक है। अर्थात् अर + गतरूपशोभे वदने ( पूर्णरूप से शोभाहीन मुख पर ) लोध्रलता प्रभृतय न भान्ति ( लोध्रनिर्मित पत्र रचनायें अच्छी नहीं लगती )। नारंग + तरु + उपशोभे ( नारंग के वृक्षों से मण्डित ) वन में लता आदि सुशोभित हो रही हैं। मुख पर गण्डस्थल शैलस्थलालङ्कारधारिणी ( कपोल भाग को अलकृत करनेवाली ) लोध्रलता ( लाल रंग से निर्मित लतायें ) सुशोभित नहीं हो रही हैं। वन में गण्डस्थलशैलस्थलालंकारधारिणी ( स्वभावत गिरे हुए शिलाखण्डों को अलकृत करनेवाली ) लोध्रलतायें अच्छी लग रही हैं। नागरुचिते—मुख पर आदमिश्रित चन्दन लेप से बनी हुई पत्र-रचना अच्छी नहीं लगती। वन में नागों ( सर्पों ) से मण्डित चन्दन पत्रों की बल्लरियाँ सुशोभित हो रही हैं भालिके अलिक ( ललाट ) पर तिलक नहीं किया गया है। वन में नारिकेर ( नारियल के पेड़ों ) में तिलकवृक्ष घिरे हुए हैं। नीलतमालका-अत्यन्त नीचे केश अभिरम्य नहीं है और नीले तमालवृक्ष रमणीय हैं। घनाञ्जनयष्टिका—गाढ़े अञ्जन से लिप्त शलाका आँखों में नहीं लगाई जाती। वन में नवीन-नवीन अञ्जन पेड़ों की घनी शाखायें दीखती हैं। नाधरी—अधरों में ताम्बूल का रंग नहीं लगा है वन में पान की लताओं की जड़ें छोटी नहीं की गई हैं। इस अनुच्छेद के नारंगतरु से लेकर नाधरीकृत तक याने "न" का मुख पक्ष में निषेध अर्थ

है और वनपस में न के उत्तरवर्ती शब्दों से मिल कर नारंग, नाग, नारिकेल आदि विशेष अर्थ हैं।

चलच्चकोरचक्रवाकचक्रचञ्चुचञ्चलचञ्चरीकचरणचूर्णितचम्पकाङ्कुरमरिचमञ्जरीदलदन्तुरेण वनमार्गेण स्तोकमन्तरमतिक्रान्तम्नया पुनरेवं बभाषे ॥

चलदिति ॥ सञ्चारयोग्येन मार्गेण कियदपि व्यवधानमतिक्रान्ता पुनरपि तयैवं बभाषे ॥

घूमते हुए चकोर और चक्रवाक-समूह के चोंचों तथा चचल भ्रमरों के चरणों से चूर्णित चम्पे के अङ्कुरो तथा मरिच वृक्षों की मञ्जरियो से ऊँचे नीचे वन-मार्ग से थोड़ा और आगे बढ़ कर उस ( वनपालिका ) ने राजा से कहा:—

'देव' पुरन्दरानन्दिनोद्यानस्पर्धिनोऽस्य वनस्य किं किं वर्ण्यते ॥

देवेति । देव, नन्दनस्पर्धिनोऽस्य किं वर्ण्यते ॥

देव इन्द्र को आनन्द देनेवाले नन्दन-वन से प्रतिद्वन्द्विता करनेवाले इस वन की किन-किन विशेषताओं का वर्णन करूँ ॥

यत्र त्रिजटाश्रयमनेकजटाः, स्फुरदेकपुष्पकमनेकपुष्पाः, समुद्वेजितराममानन्दितरामाः, समुपहसन्ति लङ्केश्वरं तरवः ॥

यत्रेति ॥ रावणं तरवो हसन्ति । त्रिजटा रावणस्वसा । जटा मूलानि पुष्पकं विमानं कुसुमं च । रामो दाशरथिः । रामाः स्त्रियः । अनेकजटा इत्येकशब्देन संख्योपन्यस्यते । ततोऽनेकशब्दोऽसंख्यानवचनः ॥

यहाँ के वृक्ष लंकेश्वर ( रावण ) का भी उपहास करते हैं। क्योंकि रावण त्रिजटाश्रय ( त्रिजटा राक्षसी का शरण ) है। यहा के पेड़ अनेक जटाश्रय ( विविध जटाओं से युक्त ) हैं। रावण का एकपुष्पक ( विमान ) वाला है। ( यहाँ के वृक्ष अनेक पुष्पक ( बहुत पुष्पों वाले ) हैं। रावण समुद्वेजित राम ( राम को उद्विग्न करने वाला ) है ये वृक्ष आनन्दित राम ( रामाओं ( स्त्रियों ) को आनन्दित किये हुए ) हैं ॥

यस्मिंश्च स्फुटमपूर्वहारिणि षट्पदसङ्घाते छिन्नकौञ्चपदे छन्दःशास्त्र इव वैतालीयं मालिनी शिखरिणी पुष्पिताग्रा च दृश्यते विविधा जातिः ॥

यस्मिश्चेति ॥ वै स्फुटमियं ताली तालद्रुमः । इयं जातिर्मालिनी दृश्यते । द्वे अपि कीर्त्यते । माला अस्यामस्ति । तथा शिखरयुक्ता कुसुमिताग्रभागा च । किंवि-

शिश्वे पने मत्तैर्मयूरैं रम्ये। तथा भद्र मनोज्ञं भुजङ्गानामहीनां विटानां च प्रयातं यत्र। क्रौञ्च पक्षी। पक्षे मत्तमयूर भुजङ्गप्रयातं क्रौञ्चपदा वैतालीयं मालिनी शिखरिणी पुष्पिताग्रा च छन्दोनामानि। जातिश्च उक्तादिरूकृत्यन्ता॥

जैसे छन्द शास्त्र में मत्तमयूर, भुजङ्गप्रयात, वैतालीय, मालिनी, शिखरिणी, पुष्पिताग्रा आदि छन्द देखे जाते हैं वैसे ही मत्त मयूरों से सुशोभित, अच्छे भुजङ्गों ( सर्पों और विटों ) के प्रयात ( गमन ) से युक्त, सुन्दर क्रौञ्च पक्षियों के आश्रय इस उद्यान में वे + ताली ( स्पष्ट ही ताल वृक्षों का वर्ग ) है यह मालिनी ( पक्षियुक्त ) विविध जाति लतायें शिखरिणी ( अङ्कुर युक्त ) तथा पुष्पिताग्रा ( खिली हुई ) है॥

यस्मिंश्च एकभीमार्जुनविनिर्जितानाक्रान्तानेकभीमार्जुनाः, कोपितैकनकुलानाह्लादितानेकनकुला, सहदेवेनैकेन स्पर्धमानाननेकैः सहदेवैः सहसा। न वह मन्यते कुरुवीरान्वीरुधः॥

यस्मिंश्चेति॥ वने वीरुधो लता कुरुवीरान् कौरवयन्ति। आक्रान्ता अनेके बहवो भीमा अम्लवेतसा अर्जुनाश्च याभि। यद्विश्वप्रकाशः—'भीमोऽम्लवेतसे शम्भौ घोरे वापि वृकोदरे'। नकुला जीवा। सहदेवास्तरव। कुरुवीरपक्षे भीमार्जुननकुलसहदेवा पाण्डवा॥

उद्यान की लतायें कौरव पक्ष के वीरों का सम्मान नहीं दे रही हैं, क्योंकि कुरुवीर एक ही भीम और अर्जुन द्वारा जीत लिये गये थे, ये ( लतायें ) अनेक भीम ( अम्लवेत ) तथा अर्जुन ( अर्जुन वृक्षों ) से आक्रान्त हैं। ( कुरुवीरों ने ) एक नकुल ( चतुर्थ पाण्डव ) को क्रुद्ध कर दिया था। ये लतायें अनेक नकुलों ( नेवलों ) को आनन्दित की हुई हैं। कुरुवीर एक सहदेव से प्रतिद्वन्द्विता करते थे जब कि ये लतायें अनेक सहदेवों ( वृक्षों ) से मिली हुई हैं॥

किं चान्यदवलोकयतु देव.—

पटलमलिकुलानामुद्यमन्मेघनीलं
भ्रमदुपरि तरूणां पुष्पितानां विलोक्य।
मृदुमधुरकलकेकानिर्भरो नृत्यमत्त-
स्तरलयति कलापं मन्दमन्दं मयूरः॥ ४॥

खिले हुए पेड़ों के ऊपर उमड़ते हुए मेघसदृश नीले भ्रमर-समूहों को देखकर कोमल तथा मधुर ध्वनि करता हुआ तथा नाचता हुआ मयूर पंखों को धीरे धीरे चञ्चल कर रहा है॥ ४।

अपि च—

भ्राम्यद्द्विरेफाणि विलासभाञ्जि संयोज्य पुष्पाणि शिलीमुखेषु।
इह स्थितः सर्वजगज्जयाय धनुःश्रमं पुष्पशरः करोति॥ ५॥

भ्रान्तेति। शिलीमुखा शरा। इह पुष्पानस्योद्दीपनविभावातिशयोक्त्या कामस्यास्मिन्निरद्यते। एतावता सुरभिकुसुमसम्पदुक्ता ॥ ५ ॥

जिन पर भौंरे घूम रहे हैं तथा जो विकसित हो रहे हैं ऐसे फूलों को बाण कार्य में लगाकर यहीं पर ठहरा हुआ कामदेव पूरे संसार की विजय के लिये अपना धनुष् कार्य सम्पादित कर रहा है ॥ ५ ॥

इतश्च—

हरिति हरिणयूथं यूथिकाजालमूले
कुसुमजमधुबिन्दुस्यन्दसन्दोहभाजि।
मधुरमधुकरालीगीतदत्तावधानं
लिखितमिव न दूर्वापल्लवानुल्लुनाति ॥ ६ ॥

हरितेति। हरिति शाद्वले यूथिकासमूहस्याधः प्रदेशे मधुबिन्दुसंदोहसंबन्धात् स्पृहणीयेऽपि गीतिरसिकतया मृगाणां दूर्वाङ्कुराग्रहणमुक्तम् ॥ ६ ॥

फूलों से गिरे हुए पराग-बिन्दुओं से युक्त हरे जुही के पौधों की जड़ में मधुर गुञ्जार करती हुई मधुकर-पङ्क्ति के गीतों में दत्तचित्त हरिण-समूह दूब नहीं चबा रहा है ॥

[ हरिणों को मधुर ध्वनि बहुत प्रिय है। जंगल में वे दूब के अङ्कुरों को खाने के ही लिये गये हैं, लेकिन जुही के मूल में पराग-बिन्दु से आकृष्ट भ्रमरों के मधुर गुञ्जार में फंस जाने के कारण उन्हें अपना खाना-पीना भूल गया है ॥ ६ ॥ ]

इतोऽपि—

सोऽयं क्रीडाचलो भव्य-लोभव्यसनवर्जित।
यस्मिन्नासन्नसारङ्गा सारं गायति किंनरी ॥ ७ ॥

सोऽयमिति। हे भव्य, हे लोभेन व्यसनैश्च विवर्जित, सोऽयं क्रीडागिरिः। यस्मिन्नगरावासन्नमृगा किंनरी सारमुत्कृष्टं गायति। गानप्रकर्षोत्कृष्टवाग्मारङ्गाणामासन्नता ॥ ७ ॥

और इधर—

ओ सुन्दर! लोभ तथा व्यसन से विहीन राजन्! यह वही क्रीडा-शैल है जहाँ मृगों के बीच किन्नरी सुन्दर गीत गाती है।

[ उसकी गीत-माधुरी से आकृष्ट होकर मृग उसके समीप आ जाते हैं ॥७॥ ]

राजते राजलेनायं सानुना सानुनायकः।
यस्मिन्निशम्य गायन्तं किंनरं किं न रंस्यते ॥ ८ ॥

राजत इति ॥ अयं सानुनायको गिरी रजतनिर्मितेन सानुना तटेन राजते। यस्मिन्गायन्त किंनर निशम्य श्रुत्वा न किं रस्यते। रंस्यत एव ॥ ८ ॥

राजत ( चाँदी की ) चोटियों से सुशोभित यह सानुनायक पर्वत है जहाँ गाते हुए किन्नरो को सुनकर कौन नहीं रमणोन्मुख हो जाता ॥

[ राजते राजते तथा सानुना सानुना का—यमक है। प्रथम राजते और सानुना सार्थक है किन्तु द्वितीय राजते तथा सानुना निरर्थक हैं। राजतेन तथा सानुनायक सार्थक है ॥ ८ ॥ ]

इतश्चास्य—

जनयति जलबुद्धिं बाललीलामृगाणां
मयमिह पटुकान्तिः स्फाटिको भित्तिभागः।
इह हरितमणीनामुल्लसन्तो मयूखाः
सरसनवतृणालीलोभमुत्पादयन्ति ॥ ९ ॥

इधर इस ( भवन ) का—

स्फटिक मणियो से चमकता हुआ यह भित्तिभाग बाल स्वभाववाले मृगों को जल की भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है। इधर हरित-मणियो की स्पष्ट सरस एवं नवीन तृणो की तरह लोभ उत्पन्न कर रही हैं ॥ ९ ॥

इयं च—

गौरवं गौरयंशस्य पर्वतः पर्वतस्थले।
भ्रमरी भ्रमरीणस्य कुरुतेऽकुरुतेन ते ॥ १० ॥

गौरेति ॥ गौरो यशोऽन्वयो यस्य तस्य ते। पर्वतस्थले गिरिस्थले। पर्वतो गच्छन्। अतएव भ्रमेण देहवक्लम्येन भ्रमिसंज्ञेन खिन्नस्य सतोऽकुरुतेन भ्रमरी भृङ्गी गौरवं प्रतिपत्तिविशेषं कुरुते ॥ १० ॥

गौरवता मे उत्पन्न आप इस पर्वतीय भूमि में पर्व ( भ्रमण ) करते हुए भ्रमरीण ( थक गये ) हैं। यह भ्रमरी अपने अकु + रुत ( अकुरिसत ध्वनि ) से आपका स्वागत कर रही है ॥ १० ॥

[ प्रथम 'पर्वत'—गच्छन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'कुरुतेऽकुरुतेन' इसमे अकु + रुतेन विच्छेद है। अर्थात् भ्रमरी अपनी अकुत्सित ध्वनि से राजा का गौरव ( स्वागत ) कर रही है ॥ १० ॥ ]

अपि च—

इह कवलितकन्दं कन्दरे कन्दलिन्यां
भुवि विरचितकेलि क्रीडति क्रोडयूथम्।

इह सरसिजगर्भभ्रान्तभृङ्गं कुरङ्गाः
सरसि सरलयन्तः कन्धरां कं धयन्ति ॥ ११ ॥

इहेति ॥ कं जलम् । धयन्ति पिबन्ति ॥ ११ ॥

यहाँ की कन्दयुक्त गुफा की भूमि में कन्द खाकर वराह समूह लीला-पूर्वक खेल रहा है तथा अपनी गर्दन को सरल ( सीधी ) करते हुए मृग कमल-कोष में भनभनाते हुए भ्रमरोंवाले सरोवर के जल को पी रहे हैं ॥

[ मृग ऐसे सरोवर में जल पी रहे हैं जो कमलों से भरा है और उन कमलों के कोष में भ्रमर भनभना रहे हैं ॥ ११ ॥ ]

इह पुनरनिशं निशम्य भिन्न-
द्रुममुकुलानि कुलानि षट्पदानाम् ।
श्रुतिसुखरणं रणन्ति वीणां
तदनुगुणां गुणयन्ति किंनरेन्द्राः ॥ १२ ॥

इहेति ॥ रणन्तीति शब्दं षट्पदकुलविशेषणम् । तस्य भृङ्गरणितस्यानुगुणा-मनुगामिनीम् ॥ १२ ॥

यहाँ खिली हुई मञ्जरीवाले पेड़ों पर निरन्तर कर्णप्रिय गुञ्जार करते हुए भ्रमरों को सुनकर उन्हीं के अनुकरण में किन्नरेन्द्र लोग अपनी वीणा बजा रहे हैं ॥ १२ ॥

इतश्च क्रीडाचलस्थलकमलदीर्घिकातीरतरुतलमनुसरतु देवः ॥

इधर क्रीडाशैल के कमल-सरोवर के तटीय वृक्षों की छाया में श्रीमान् आवें ॥

यत्र च—

वहति नवविकासोल्लासिकिञ्जल्कलुभ्यन्-
मधुकरकृतगीतो नर्तयन्नब्जराजीः ।
वनकरिमदगन्धस्पर्धिसप्तच्छदाली
कुसुमजकणशारः शारदीनः समीरः ॥ १३ ॥

वहतीति ॥ कुसुमजकणा मकरन्दलवास्तैः शारः शबलः शरदि भवानि मुद्गादीनि क्रियन्ते येषां ते शारदिनः कृषीवलास्तेषामिव स्वामी । तत्संबन्धसंपत्तिहेतु-त्वात् ॥ १३ ॥

वन-गज की मद-गन्ध से प्रतिस्पर्धा करनेवाले सप्तच्छद पुष्प के पराग-कणों से मिश्रित शरत्कालीन हवा जिसने कमल-समूह को नचा दिया है तथा जिसमें विकास के कारण भरे हुए पराग में लुब्ध भ्रमरों द्वारा की हुई गीत ध्वनि मिश्रित है, बह रही है ॥ १३ ॥

राजा तु तेन तस्याः सकलललितवनप्रदेशप्रकटनप्रियालापप्रपञ्चेन परितोषितः 'साधु भोः सारसिके सुभाषितमञ्जरि, साधु। गृहाण पारितोषिकम्' इत्यभिधाय सर्वाङ्गीणभरणप्रदानेन प्रसन्नाननां तामकरोत ॥

सम्पूर्ण ललित वन भूमि के वर्णन से तथा उसके प्रिय वचनो से सन्तुष्ट राजा, "अच्छा ठीक है, सरोवरवासिनि ! सूक्तिकुशले ! लो अपना पुरस्कार।" ऐसा कह कर अपने अङ्गो के सब भूषणो को देकर उसे प्रसन्न कर दिया ॥

ततश्च संचरच्चटुलभृङ्गविहंगवेगवेल्लद्बकुलचम्पकचूतचन्दनमन्दारमन्दस्यन्दमानमकरन्दबिन्दुसंदोहाडम्बरिताकाण्डप्रावृषि, प्रलम्बताम्बूलवल्लीवलयितनितम्बनिम्बकिम्बजम्बीरजम्बूस्तम्बकदम्बके कुसुमितकरवीरवीरुधि कोरकितकरञ्जाञ्जननिकुञ्जशिञ्जानशुककपिञ्जले, जलदसमयनीरदनीलतमतमालतलताण्डविनशिखण्डिनि, मण्डलितमदकलकलहंसोत्तंसकमलवापीमण्डिते, मञ्जरितसिन्दुवारसुन्दरामोदनन्दिनि मन्दतरमारुतान्दोलनविलोलकक्कोलकुड्मलफलनालिकेरलवङ्गपूगपुंनागनारङ्गरङ्गितविहङ्गे भृङ्गमुखनखरपञ्जरजर्जरितसर्जखर्जूरमञ्जरीरजःपुञ्जपांसुलभुवि, भुवो भूषणायमाने, 'सर्वर्तुनिवास'नामनि वने विहर्तुमारभत ॥

ततश्चेति ॥ भृङ्गमुखनखरेत्यादौ भृङ्गो धूम्याट पक्षी ॥

इसके बाद 'सर्वर्तु-निवास' नामक वन में घूमना शुरू किया। वहाँ चचल भ्रमरो एव पक्षियो के वेग से हिलते हुए बकुल, चम्पा, आम, चन्दन तथा मन्दार वृक्षों से पूर्ण रूप से चूते हुए पराग-बिन्दुओं के कारण बिना वर्षाकाल के आये वर्षा जैसा वातावरण हो गया था। नीम, किम्ब, नीबू, जामुन मे लटकती हुई ताम्बूल-लताये लिपटी हुई थीं। कलियो से युक्त करञ्ज तथा अञ्जन वृक्षो की झाडियो मे शुक तथा कपिञ्जल पक्षी मधुर ध्वनि कर रहे थे। वर्षाकालीन मेघो की तरह नीले तमाल-कुञ्जो के नीचे मयूर नाच रहे थे। प्रौढ कलहंसो की गोलाकार मण्डली से कमल-बावलियाँ अलकृत थी। सिन्दुवार-मञ्जरियो की सुन्दर गन्ध चारो ओर फैल रही थीं। अत्यन्त धीरे धीरे बहनेवाली हवा के हल्के झोके मे चञ्चल कक्कोल की कली एव फल तथा नारियल, लवङ्ग, कसैली, पुन्नाग एव नारङ्ग फलो मे पक्षी अनुरक्त थे। भ्रमरों के मुखो, नखो, तथा पञ्जो से चूर्णित सर्ज तथा खजूर की मञ्जरियो से निकले हुए पराग से भूमि धूलि धूसरित हो गयी थी। वह वन भूमण्डल पर अलङ्कार-सदृश था।

तत्र च व्यतिकरे प्रलयप्रचण्डपवनोल्लासिततनुतुहिनाचलगण्डशैललीलामाकलयन्तः, मन्दमरुत्तरङ्गिततनुतरशरदभ्रविभ्रमायमाणाः, सुरवारणेन्द्रविक्षोभितगगनमन्दाकिनीपतत्पाण्डुरडिण्डीरपिण्डपटलानि विडम्बयन्तः, शकलोदितेन्दुमण्डलसहस्रसंछादितामिव गगनमापादयन्तो, मन्दरगिरिपरिक्षेपक्षुभितक्षीरवारिधिदूरसमुच्छलितदुग्धकल्लोललीलां दर्शयन्तः, शेषाहिफणचक्रवालधवला, प्रमुदितहराट्टहासलवा इव मूर्तिमन्तः पतन्तः, अमन्दमन्द्रकोलाहलभरितभुवनान्तरालाः, सपदि धरातलमुत्फुल्लपाण्डुपङ्कजप्रकरप्रकारेण मण्डयन्तो निपेतुः कुतोऽपि पुण्डरीकपाण्डुरगरुत्पत्रराजयो सपदि राजहंसाः ॥

इत वेगे । शकलोदितेति ॥ शकल खण्डशशी इत्यमरश्मा भवति । मन्दरगिरिरिव परिक्षेपो मन्था ॥

इसी समय वहाँ अचानक कहीं से श्वेत कमल सदृश पंखों वाले राजहंस आ गिरे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि प्रलय की प्रचण्ड आंधी से ऊपर की ओर उठाकर पटके गये हिमालय के शिला-खण्ड हों। वे धीरे धीरे चलने वाली हवा के झोंके से कम्पित छोटे छोटे शरत्-कालीन शुभ्र बादलों के विलास का अनुकरण कर रहे थे। ऐरावत द्वारा मथित आकाश गंगा से गिरते हुए सफेद फेन-पुञ्ज की विडम्बना कर रहे थे। उदित चन्द्रमा के हजारों खण्डों से ढके हुए की तरह आकाश की शोभा उत्पन्न कर रहे थे। मन्दराचल के क्षीरसागर में गिरने से दूर तक छिटके हुए दूध के छींटों की लीला प्रदर्शित कर रहे थे। शेषनाग की फणा-समूह की तरह शुभ्र थे। प्रसन्न भगवान् शंकर के अट्टहास के मूर्तिमान अंशों की तरह गिर रहे थे। अपनी विशेष गम्भीर ध्वनि से भवनान्तरालों को भर रहे थे। खिले हुए शुभ्र कमलों से मानों धरातल शीघ्र ही अलङ्कृत हो रहा था ॥

[ हंस शुभ्र हैं। आकाश से जब उनकी पङ्क्ति उतर रही है तो किस तरह की शोभा हो रही है इसी बात को विभिन्न उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से कवि व्यक्त कर रहा है। जोरों से आंधी आने के कारण प्रलय के समय हिमालय की शुभ्र चोटियों के टुकड़े हों मानो उड़ रहे हैं। उड़ते हुए हंस उड़ती हुई हिम-शिलाओं की तरह हैं। आकाश-गंगा के फेन की तरह लग रहे हैं। मन्दराचल के गिरने से क्षीरसागर से जो दूध के छींटे आकाश में छिटके उनकी तरह लग रहे हैं। भगवान् शंकर के अट्टहास की तरह लग रहे हैं। हास का वर्णन सफेद किया जाता है। हंसों की शुभ्र इकाइयां भगवान् शंकर के शुभ्र अट्टहास की मूर्तिमती इकाइयाँ हैं। नीचे की ओर जब वे

आ रहे थे तो ऐसा लगता था कि अचानक पृथ्वी शुभ्र कमलों से मण्डित हो रही थी ॥ ]

तथाविधे च व्यतिकरे विस्मयविस्मृतनिमेषपया निर्वातनिश्चलनीलोत्पलपलाशशोभायमानलोचनः कौतुकाकूततरलितमनाः सपरिजनो नरपतिरवलोकयन्निश्चल एवावतस्थे ॥

तथेति ॥ शोभायमानलोचनेत्यत्र शोभाशब्दात्तद्वति वर्तमानादुपमानात्कर्तृवाचकादाचारेऽर्थे क्यङ्। एवं विभ्रमायमाणेत्यादयोऽपि व्याख्याताः ॥

ऐसी स्थिति में आश्चर्य के मारे पलकों का गिराना भूल सा जाकर हवा के झोकों के अभाव में कम्पन शून्य नीले कमल की तरह सुन्दर नेत्र वाले तथा उत्कण्ठा से पिघले हुए चित्त वाले राजा ( नल ) नौकरों के साथ निश्चल दृष्टि से उन ( हंसों ) को देखते हुए ठहर गये ॥

ते च धार्तराष्ट्रा अपि कृतपाण्डुपक्षपाताः, द्विजातयोऽपि सुराजिताः, केचिदुच्चचञ्चुपुटविघटितनिकटवाप्तस्थलकमलकुड्मलाः सरसबिसकिसलयानि कवलयन्तः, केऽप्युन्नतसरलगलनालयो नलिनवनविमुखाः समालोकयन्तः, केचिदुत्क्षिप्तपक्षविक्षेपपवनकम्पितकन्दलाः सलीलमुत्पतन्तः, केचिन्मदमधुरनिजनिनादनिर्जितशिञ्जाननूपुराः, पुरः पुरोऽस्य धावन्तो विचरितुमारभन्त ॥

ते चेति ॥ कृष्णैश्चरणाननैर्हंसा धार्तराष्ट्राः। कृतः पाण्डुपक्षाणां शुभ्रपक्षतीनां पातो न्यासो यैः। तथा द्विजातयः पक्षिणः सुष्ठु राजिताश्च। विरोधे धार्तराष्ट्राः कुरवः पाण्डुनृपः। पक्षपातस्तद्गृह्यत्वम्। द्विजातयो विप्राः। सुरया जिताः। गलनालि कण्ठकाण्डम् ॥

वे धार्तराष्ट्र ( धृतराष्ट्र पुत्र ) थे फिर भी पाण्डुओं के प्रति पक्षपात ( स्नेह ) रखते थे। विरोध ॥

धार्तराष्ट्र ( हंस ) थे और पाण्डु + पक्ष + पात ( शुभ्र पक्षों को हिलाते ) थे। परिहार ॥

द्विजाति ( ब्राह्मण ) थे फिर भी सुराजित ( मदिरा की परतन्त्रता में रहते ) थे। विरोध ॥

द्विजाति ( पक्षी ) थे और सु + राजित ( सुन्दर ) थे। "परिहार" कोई अपने ऊँचे चञ्चुओं से समीपवर्ती स्थल कमलों की कलियों को फोड कर सरस कमल-तन्तुओं को खा रहे थे। कोई अपनी गर्दन को ऊँचा और सीधाकर आकाश की ओर देख रहे थे। कोई अपने पंखों के झोंके से कमल-नालों को हिला रहे थे। कोई अपने सुन्दर एवं मधुर ध्वनि से नूपुर के भी अनुरणन को

जीत ले रहे थे। ( इन क्रीडाओं में व्यग्र राजहंस ) राजा के ठहराव के सामने विचरण करना शुरू कर दिये ॥

राजापि परिधावितविहङ्गग्रहणाग्रहसमग्रव्यग्रपरिग्रहः परिहासोन्मीलदमलदन्तकान्तिस्तबकितावरपल्लवो विहसन्नेव तेषामन्यतममनुचचरकुलचरणचारीचर्यया चारु संचरन्तमीषदुल्लसितपक्षविलासविहसितविलासिनीलास्यलीलमुन्नमिताग्रग्रीवं जग्राह हेलया हंसम् ॥

राजेति ॥ मत्स्यग्रहणव्यामग्रहारी ॥

राजा ने भी इधर उधर भागते हुए पक्षियों को पकड़ लेने का आग्रह किया। ( दौड़ कर पकड़ने में ) उसका सारा शरीर व्यस्त था। मुस्कुराहट के कारण निर्मल दन्त-कान्तियों से अधरोष्ठ को कुसुमित करता हुआ हंसता ही हंसता उनमें से एक हंस को जो बड़ी सुन्दरता से विचरण कर रहा था, अपने पंखों के उत्थान-पतन से रमणियों के लास्य को भी तिरस्कृत कर रहा था, धीरे धीरे पद-विन्यास के साथ गर्दन को ऊपर की ओर उठा रहा था, पकड़ लिया ॥

उत्क्षिप्तः स च तेन रक्तकमलगर्भविभ्रमायमाणपाणिपल्लवे, पाण्डुपद्म इव पद्मरागशुक्तितले, क्षणमुदयशैलशोणमणिस्थलीशिखरविश्रान्तामिन्दुरिव, विराजितो राजहंसो मृदुवाद्यमानरौप्यघनघर्घरीजर्जरस्वरेण कृतस्वस्तिशब्दो विस्पष्टवर्णविशेषं राजानमुपश्लोकयाञ्चकार ॥

उत्क्षिप्त इति ॥ पाणिपल्लवस्य पद्मरागशुक्तिः शोणमणिस्थलीशिखरोपमानम्। हंसस्य तु पाण्डुपद्म इन्दुश्च ॥

लाल कमल के मध्यभाग की शोभावाले ( राजा के ) कर-पल्लव पर पद्मराग मणि की शुक्ति पर रक्खे गये सफेद कमल की तरह तथा उदयाचल की लाल मणियों की चोटी पर चन्द्रमा की तरह सुशोभित उस राजहंस ने मधुरता-पूर्वक बजायी जाती हुई रजत-निर्मित घर्घरी ( झांझ ) की घर्घर स्वर से स्वस्ति शब्द कहता हुआ बड़े स्पष्ट शब्दों में राजा की स्तुति की ॥

[ राजा का हाथ लाल था। हंस सफेद था। उस हाथ पर वह हंस वैसा लगता था जैसा कि सफेद कमल पद्मराग मणि की शुक्ति पर लगता है और उदयाचल की लाल मणियों की चोटियों पर चन्द्रमा लगता है॥ ]

पाण्डुपङ्कजसंलीनमधुपालीसमं गलम्।
यो बिभर्ति विधेयात्ते स कपाली स मङ्गलम् ॥ १४ ॥

पाण्ड्विति ॥ श्वेतसरोजलीनालिश्रेणिनिभं कण्ठं यो धारयति स ना पुरुषः कपाली कपालमाली। अर्धाच्छित्रसनञ मंगलं क्रियात् ॥ १४ ॥

सफेद कमल मे लगी हुई भ्रमर-पङ्क्ति की तरह गले को धारण करने वाले कपाली ( कपाल धारण करने वाले भगवान् शंकर ) तुम्हारा मगल करें ॥ १४ ॥

अपि च—

सरलप्रियं गुणाढ्यं लम्बितमालं विचित्रतिलकं च ।
वनमिव वपुस्तवैतत्कथमवनं नृप जनस्याभूत् ॥ १५ ॥

सरलेति ॥ सरला अकुटिला प्रिया यस्य । तथा गुणाढ्यं शौर्याद्याढ्यम् । तथा लम्बितमाल्यं । यथा विविधपुण्ड्रं तव वपुर्जनस्यावनं रक्षकमभूत् । वनमिव तदा सरलप्रियगुणेति समाहारद्वन्द्वः । तथा लम्बिताः प्रलम्बास्तमालाः यत्र तथा विशिष्टानि प्रकाराणि तिलकवृक्षाश्च यत्र । नृपेत्यामन्त्रणे । कथमिति विरोधे । अवनशब्दस्य वनप्रतिषेधार्थत्वात् ॥ १५ ॥

और—

( राजन् ! वन सदृश आप का शरीर अवन कैसे हो गया । वन की सारी विशेषताएं आप मे भी है फिर भी आप वन नही हैं । इस विरोध को दृष्टि मे रख कर श्लोक मे कथं पद का विन्यास किया गया है । शब्दगत समानता के आधार पर राजा को वन होना चाहिये । अर्थगत समानता के आधार पर तो वह अवन है ही । वह वन नहीं है अपि अवन है । इसका भी उपपादन श्लोक के अक्षरों से ही हो जायगा ॥

सीधे प्रियङ्गु वृक्ष से सम्पन्न, लम्बे तमालो से युक्त, विचित्र तिलक वृक्षो से युक्त वन-सदृश आप नृप जन का सीधे सादे मित्रो वाला, गुणो से सम्पन्न लटकती हुई मालाओ से मण्डित तथा विचित्र तिलक से युक्त शरीर अवन कैसे हो गया है ।

[ अवन शब्द का अर्थ रक्षक है । इस अर्थ के करने में कोई विरोध नहीं रहता । ]

राजपक्ष—सरल प्रिय ( सीधे सादे मित्रों वाला ) गुणाढ्य ( गुण सम्पन्न ) लम्बित + माल ( मालाओ को लटकाया हुआ ) विचित्र तिलक ( सुन्दर तिलक किया हुआ ) आपका वपु ( शरीर ) प्रजा जन का अवन ( रक्षक ) है ।

वनपक्ष—वन सरल प्रियङ्गुण + आढ्य ( सीधे सीधे पियङ्गु वृक्षो से भरा ) है । लम्बि तमाल ( वहाँ लम्बे लम्बे तमाल वृक्ष ) हैं । विचित्र तिलक ( सुन्दर तिलक वृक्षो से सम्पन्न ) है ॥ १५ ॥ ]

अपि च—

वरसहकारकरञ्जकवीरतरोऽशोकमदनपुंनाग ।
विविधद्रुममय राजन्कथमसि म विभीतकः क्वापि ॥ १६ ॥

वरेति ॥ वराः सहकारकाः सचिवादयो यस्य। तथा रञ्जयतीति रञ्जकः। तथा वीराणां शूद्रकादीनामिव तरो बलं जवो वा यस्येति सतुद्धौ न दीर्घः। न शोको यस्य एतेन धीरत्वोक्तिः। मदन इव मदनः कामः। पुंनाग इति नागशब्दः प्रशंसायाम्। इत्यामन्त्रणैः प्रकृतोऽर्थः। विविधद्रुममयेतिपदाद् द्रुमार्थोऽप्यूह्यः। तद्यथा। सहकार–आम्रः, करञ्जको नक्तमाल, वीरतरुर्नदीसर्जः। यदमरः—'नदीसर्जो वीरतरुरिन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः'। अशोकः कंकेल्लिः, मदनः शल्यः, यत्फलं विवाहे वधूवरपाणौ बध्यते। पुंनागः सुरपर्णिका। कथमिति विरोधे। विभीतकस्याक्षार्थत्वात् प्रकृते तु विभीतको विशेषेण भीत इति कुत्सायामनुकम्पायां वा कन् ॥ १६ ॥

हे राजन् आप अच्छे सहकार ( आम ), करञ्जक वीरतरु अशोक, मदन और पुंनाग आदि विविध वृक्षमय होते हुए भी ( केवल ) विभीतकमय कैसे हैं ? विरोध ॥

हे वर-सहकारक ! ( अच्छे सहायकों वाले ) रञ्जक ! ( प्रजाजन को अनुरक्त रखने वाले ) वीर + तरस् ( शूद्रक आदि वीरों की तरह वेगवान् ) अशोक ! ( शोकहीन ) मदन ( काम ) पुन्नाग ( मानवोत्तम ) विविध वि ( विशिष्ट ) वि ( पक्षियों ) के ध ( पोषक ) द्रुममय ( आश्रयमय ) कहीं भी तुम्हें विभीतकमय ( द्यूत क्रीडा में तन्मय ) नहीं पाया जाता ॥ परिहार ॥

[ द्रुम का आश्रय अर्थ इस आधार पर किया गया है वृक्ष जैसे विरोध शरणार्थी पक्षियों का आश्रय होता है राजा भी विविध शरणार्थियों का आश्रय है ॥]

( शब्द के आधार पर तो ) राजन्, आप बाण, करवीर, दमनक, शतपत्र, बन्धुजीव, सुजाति आदि विविध विटपरूप होते हुए भी विटप क्यों नहीं हैं। विरोध ॥ १६ ॥

अपि च—

> बाणकरवीरदमनकशतपत्रकबन्धुजीवकसुजाते ।
> नृप विविधविटपरूपस्तथापि विटपः कथं नासि ॥ १७ ॥

बाणेति ॥ बाणः करवीरो दमनकः शतपत्रं बन्धुजीवकः जातिश्चेति विटपाः। एतन्मयस्त्वमसि शब्देन। अर्थतस्तु बाणाः करे यस्य। वीराणां दमयसि। शतसंख्यं पत्रं वाहनं यस्य शेषादिति कप्। बन्धून् जीवयसि उपकरोषि। शोभना जातिः यस्याः पायस्य। उभयथाप्येतानि नृपेति च सम्बोधनानि। असीति त्वमस्य त्वमित्यर्थः। त्वं न विटान् पासीति विटपः। अपात्रमतो नेत्यर्थः। तथापि कथमिति विरोधेऽभावनं विटपशब्दस्य बौन्दर्यत्वात् ॥ १७ ॥

बाण-कर ( हाथों में बाण धारण किये हुए ) वीर-दमनक ( वीरों को दमन करने वाले ) शत ( सौ ) पत्रक ( वाहनों वाले ) बन्धु-जीवक ( बन्धुओं को उज्जीवित करने वाले ) हे राजन्, आप विटप ( दुष्टों के पालन करने वाले ) नहीं हैं। परिहार ॥ १७ ॥

राजा तु तदाकर्ण्य सविस्मयम् 'अहो अस्य धैर्यं मनुष्यसंनिधौ, आश्चर्यं रूपे, माधुर्यं वाचि, प्राचुर्यं प्रज्ञायाम्, औदार्यमर्थे, गाम्भीर्यं वर्णव्यक्तौ । प्रायेणाहारमैथुननिद्राभयभ्रमणमात्रविवेकासु कथं प्रागल्भ्यमेतत्पक्षिजातिषु । तदेष विहंगव्यञ्जनः कोऽपि कामचारी भविष्यति । सर्वथा मनसापि नावज्ञेयाः केऽपि प्राणिनः । यतः कर्मतः कामतः शापतः संछन्नरूपाण्यपि भ्रमन्ति विविधाश्चर्यभाञ्जि 'भूतानि' इति चिन्तयन्नुचितज्ञस्तमीषदुल्लसितसिन्दुवारमञ्जरीभिरिव कुन्दकान्तदीप्तिभिरर्चयन्स्वागतमपृच्छत ॥

राजेति ॥ कामचारी विद्याधरादि ॥

राजा तो यह सुनकर आश्चर्य के साथ, "आह, मनुष्य के समीप भी इसका अद्भुत धैर्य, आश्चर्यजनक रूप, मधुर वाणी, प्रगाढ़ बुद्धि, उदारतापूर्ण अर्थ-प्रकाशन तथा गम्भीरता पूर्ण वर्णोच्चारण है। प्राय. भोजन, मैथुन, निद्रा, भय और भ्रमण तक ही विवेक को सीमित रखने वाली पक्षी जाति मे इस तरह की प्रौढ़ता कैसी। निश्चित ही यह पक्षियों में श्रेष्ठ यह कोई स्वेच्छाचारी (देव) होगा। मन से भी किसी प्राणी का थोड़ा भी अपमान नहीं करना चाहिये क्योंकि कार्य से इच्छा से या शाप से बहुत से आश्चर्यजनक प्राणी अपना रूप छिपाये घूमते फिरते हैं।" इस तरह सोचता हुआ अवसरोचित कार्य का विशेषज्ञ, थोड़ी खिली हुई सिन्दुवार मञ्जरी सदृश कुन्द पुष्प की मनोहर छटा से उसकी पूजा करता हुआ स्वागत प्रश्न पूछा ॥

असावपि प्रणयप्रणतशिराः शुचिरोचिषां चयेन पाण्डुपुष्पप्रकरप्रकारेण प्रतिपूजयन्निव 'देव, भवदवलोकनेनाह्लादितमनसो ममाद्य स्वागतम्' इति ब्रुवाणो राजानं रञ्जयाञ्चकार ॥

वह भी प्रेम से सिर झुका कर शुभ्र पुष्प-समूह के गुच्छ सदृश अपने पवित्र कान्ति-पुञ्ज से मानो उनकी पूजा करता हुआ बोला, "महाराज, आपके दर्शन से ही मैं तृप्त हूँ। मेरा स्वागत इतने से ही हो गया।" राजा (उनकी बातों से) आनन्दमग्न हो गये।

अत्रान्तरे धासतरलतरतारकभकाण्डाडम्बरितचापल्यपल्लवमाभमिव वहन्ती चक्षुः, उत्क्षिप्तपक्षपत्रपल्लवव्याजेन संगृहीते सहचरे शास्त्रोद्धारमिव दर्शयन्ती, हंसी दूरादवनिपालमवाप्य रौप्यमयघण्टाटङ्कारकोमलया गिरा श्लोकद्वयमपठत् ॥

अत्रेति ॥ शास्त्रोद्धारमन्यायपूरकारचिह्नं शास्त्राग्रहणम् ॥

इसी बीच दूर से ही राजा को देख कर रजत-निर्मित घड़े के टंकार की तरह मधुर स्वर से उस हंस की पत्नी ने श्लोक पढ़ा। डर के मारे उसकी आंखें चंचल होकर आंसुओं में तैर रही थीं। फड़फड़ाते हुए पंखों वाले अपने सहचर को पल्लव के बहाने पकड़ लिये जाने पर राजा को अन्याय के निमित्त मानो दुत्कार रही थी।

हंसपक्ष—ए! (कामदेव की प्रतिमूर्ति) मुक्ताहार परिच्छद (मुक्तामणि से निर्मित हार की तरह पंखों वाला) हंस ओक (जल) के अन्त (समीप) में अग (वृक्ष) पर रहता है, निश्चित ही छोड़ देने योग्य है। आप इसे क्यों पकड़ लिये हैं।

आत्मपक्ष—मोक्ष की योग्यता रखने वाला हंस (पुरुष) त्व (प्रकृति) के द्वारा बांधा जाता है। (नहीं बांधा जाता।) क्योंकि वह आहार (भोग) रूप बन्धन को छोड़ कर भगवान् विष्णु-विषयक चित्त-वृत्ति बनाकर योग की साधना में लगा रहता है।

हंसपक्ष—अ का अर्थ वासुदेव है। अ के अपत्य को इ कहा जाता है। अर्थात् इ शब्द के सम्बोधन में ए रूप बनेगा जिसका अर्थ होगा विष्णु-पुत्र कामदेव। ए शब्द से राजा को सम्बोधित किया गया है। अतः सिद्ध है कि राजा कामदेव सदृश रूप सम्पन्न है।

कान्ते—क (जल) के अन्त (समीप) में जो (यः) अग (वृक्ष) है उसकी सेवा करता है। अर्थात् उस पर रहता है।

मुक्ताहार परिच्छद—इसके पंख मुक्ता के हार सदृश हैं। योग शब्द का "अ + अग +" पदच्छेद करना चाहिये।

आत्मपक्ष—इस पक्ष में हंस शब्द आत्मा का वाचक है। त्वया शब्द "प्रकृति के द्वारा" अर्थ का वाचक है। त्वशब्द सर्वनाम है। अन्य अर्थ का वाचक है। इसी का स्त्रीलिङ्ग रूप त्वा का तृतीया एकवचन त्वया है।

मुक्ताहारपरिच्छद—इन्द्रियों के आहार (भोग्य) परिच्छद (समूह) का जिसने छोड़ दिया है।

> एकान्ते सेवते योगं मुक्ताहारपरिच्छदः।
> हंसः समोक्षयोग्योऽपि देव किं बध्यते त्वया ॥ १८ ॥

एकेति ॥ अस्यार्थः इमि । इरिव इ कन्दर्पसन्निभ । तत सम्बुद्धौ ए इति देव इति चोपच्छन्दयितुं संबोध्य मुमोचयिषु पतिं हंसी नृपमाह । मुक्ताहारो मौक्तिकहार-स्तद्वत्परिच्छदो पत्त्री यस्य शुभ्र वात् । स नयोक्त । कस्य जलस्यान्ते वर्तमानमग द्रुमं यः सेवते । मोक्षस्य मोचनस्य योग्योऽपि स हंसो वाचंस्त्वया भवता किं किमर्थं बध्यते इत्येकोऽर्थः । अथवा एकान्त इति समस्त विजनार्थम् । अय च

हंस आत्मा पुरुष मोक्षयोग्योऽपि किं बध्यते। न बध्यत एवेत्यर्थः। क्या। त्वया। त्व शब्द सर्वादिगणेऽन्यार्थे अतः पुरुषापेक्षयान्यया प्रकृत्येत्यर्थः। कस्मान्न बध्यत इत्याह—कान्ते कमनीये परमानन्दस्वरूपे ए कृष्णे त्यक्ताहारपरिवार मन् योगमभ्यासं च सेवते॥ अत्र पक्षे अ इत्यस्माद्विष्णुवाचकात्सप्तम्येकवचने ए इति रूपम्। यदि वा समोक्षयोग्योऽपीति सम समदर्शनः। अक्षयोग्योऽपि इन्द्रियसम्बद्धोऽपि॥ १८॥

एकान्ते—कान्ते ए (कमनीय विष्णु मे) चित्तवृत्ति लगाकर योग-साधना कर रहा है। विष्णु वाचक अ शब्द का सप्तमी एकवचन "ए" है। तात्पर्य यह कि जो पुरुष इन्द्रियो के भोग्य-समूह को छोडकर परमानन्द स्वरूप भगवद्विषयक ध्यान मे रहकर योग-साधना के द्वारा मोक्ष की योग्यता प्राप्त कर चुका है, उसको प्रकृति क्यो बांधेगी?

मोक्ष की योग्यता रखने वाला योगी की समस्त विशेषताये हंस मे भी हैं। इसे आप अवश्य छोड दें॥ १८॥

नीरुजनपदे तिष्ठन्विश्वसंसारसङ्गतः।
हंसः किं बध्यते क्वापि यस्य नालम्बनं प्रियम्॥ १९॥

नीरेति॥ जनानां पदे स्थाने पुरग्रामादावतिष्ठन् सरस इद सारसम्। तथा श्वसन्तीति श्वसा प्राणिनः, वय पक्षिण श्वसा यत्र तथाभूत नीरं जलम्, गतः स हस किं क्वापि बध्यते, न बध्यत एव। यस्य नलस्येद नालं मृणालं पद्मं, वनं काननं प्रियम्। अथवा नीरजनपदे नीरागपदे तिष्ठन् हस आत्मा किं क्वापि बध्यते, न बध्यत एव। यस्य विश्वेस्य संसारसङ्गेस्य आलम्बनमासक्तिर्न प्रियम्। विश्व संसारसङ्गत इति समितम्॥ १९॥

हंस पक्ष—जनपद (नगर या गाँव आदि) मे न रहने वाला तथा विश्वस (पक्षियो के निवास स्थान) सारस नीर (सरोवर-सम्बन्धी जल) से संयुक्त हंस जिसे नाल (कमल) का वन प्रिय है, कहीं भी बांधा जाता है क्या?

आत्मपक्ष—सम्पूर्ण संसार की संगति से हट कर जो वैराग्यपद पर प्रतिष्ठित है तथा जिसके लिये संसार मे कोई आलम्बन (आसक्ति का विषय) नही है, ऐसा हंस (आत्मा) कहीं बांधा जाता है?॥

[हंस पक्ष—इस पक्ष में पदच्छेद यो करना चाहिये—जनपदे (ग्राम आदि मे) अतिष्ठन् (न रहता हुआ) विश्वसं सारसं नीरं गतः (पक्षियों के *आवास सरोवरो के जलस्थल मे ठहरा हुआ*) हंस (हंस) *यस्य नालद् वनम्* प्रियम् (जिसे कमल वन प्रिय है) बध्यते किम् (बाँधा जाता है क्या?)

अर्थात् वह नितान्त अपराध शून्य है। जनपद में ही अपराधों का अवसर रहता है। हंस जनपद मे न रहकर सरोवर के जल के पास रहता है। संसार

से सुख की और कोई सामग्री उसे अपेक्षित नहीं है। वह केवल कमल वन की चाह रखता है। जल और पुष्प से ही जो जीवन बिताता है, ऐसे तपस्वी हंस को बाँध कर आपने अनुचित किया है।

इस पक्ष में विरवमं और सारसं पद नीरम् के विशेषण हैं। वि का अर्थ है पक्षी और रवम् का अर्थ है प्राणी। अर्थात् पक्षी प्राणी नहीं हो वह (जल) विरवम हुआ। सारसम्—सरोवर-सम्बन्धी पदार्थ (जल) सारस हुआ। अर्थात् यह हंस सरोवर के उस जल के पास रहता है जहाँ पक्षी आदि के लोग रहते हैं। वह किसी ऐसे जल स्थल में नहीं जाता जहाँ आप पक्षियों का आगमन एवं विहार निषेध किये हो।

सारस पक्ष—विश्व संसार सात (सम्पूर्ण संसार की संस्कृति से) (हटकर) नीरञ्जनपदे (वैराग्य मार्ग में) तिष्ठन् (स्थित) हंस (आत्मा) यस्य क्वापि आलम्बनम् न प्रियम् (जिसे संसार में कहीं भी कुछ आकर्षण नहीं है) बध्यते किम् (बाधा जाता है क्या?)

यहाँ विश्व शब्द सम्पूर्ण का वाचक है। सम शब्द के आगे तसिल् प्रत्यय हुआ है। पञ्चमी के अर्थ में जाता हुआ तसिल संसार सग से उठाकर वैराग्य मार्ग की ओर ला देता है। तसिल् प्रत्यय के कारण ही संसार सग से प्रस्थान और वैराग्य की ओर स्थिति का अर्थ व्यक्त करता है ॥ १९ ॥

अन्वयश्च—

राजन्, जलपक्षिणो मुनय इव ये मीनाहारं वाञ्छन्ति, बहुधावन-व्यसनिनो विमाधाराः। तदलमाग्रहेण ॥

राजन्निति। मीनो मत्स्य। अहिरिति। मिथम्। विष पद्मिनीकन्द आधारो जीवनं येषाम्। मुनिपक्षे अमी इति नेति च पदद्वयम्। बहुधा, अनेकधा वनव्यसनिनो वनस्या। तथा व्ययेन आधार सांपरत्निधिरवौत्सवादिर्येष्यः। लोकोत्तरगुणत्वात्। 'विमादुना' इति पाठे तु विमसदृशं येषाम्। पक्षे विगतं साह्न येभ्य'। अपीडाकरा इत्यर्थः ॥

राजन्, ये जल-पक्षी हंस मुनियों की तरह हैं। मुनि आहार (भोजन) की कामना नहीं रखते। बहुधा वनव्यसनी (अधिकांश वन में ही रहना पसन्द करते) हैं। विमाधार (उत्सव आदि नहीं मनाते) हैं। वे पक्षी भी मीनाहार (मत्स्य भोजन) चाहते हैं। बहु + धावन + व्यसनी (अधिकांश उड़ान भरने के शौकीन) होते हैं या बहुधा + वन + व्यसनी (अधिकांश वन (जल) के शौकीन) होते हैं। विसाधार (कमल तन्तु ही इनके आधार हुआ करते) हैं। अतः आग्रह न करें ॥

[ मुनि सदृश व्यवहार को अपनाने वाले मेरे पति को आप बाँधने का हठ न करें । ]

मुनि-पक्ष में अमी न आहार वाञ्छति ऐसा पदच्छेद करना चाहिये । ये और मीनाहारं के बीच अकार प्रश्लिष्ट है । एङ पदान्तादति से पूर्वरूप हो जाने के कारण अ दिखायी नहीं पड़ता । अर्थात् ये मुनि आहार की कामना नहीं रखते ॥

राजा तु तेन तस्याः श्लेषश्लाघिना श्लोकोक्तिरसेनाह्लाद्यमानो नर्मालापलीलया तां बभाषे ॥

राजेति ॥ श्लेषश्लाघिना श्लेषप्रकाशनशीलेन । एतेन एकान्त इत्यादिवचसां श्लिष्टार्थत्वमभिहितम् ॥

राजा तो उसकी श्लेष-बहुल पद्य एवं गद्य की सरलता से प्रसन्न होकर मधुरता-पूर्वक उससे बोला ॥

'अनेकधा यः किल पक्षपातं सदा सदम्भोजगतः करोति ।
स हंसिकेदारविहारशीलो न बध्यते किं बहुनाशकुन्तः' ॥ २० ॥

अनेकेति ॥ हे हंसिके, यः सदा जगतोऽपि सर्वस्यापि सदम्भो दाम्भिकः । तथानेकधोक्तोऽपि प्रकृतिप्रत्युपकारादिना पक्षपातं ममत्वं करोति । तथा दारक्रीडारतोऽब्रह्मचारी । तथा बहूनामाशयानेवंविधं कुन्तः प्रासो यस्येति हिंसापापरतः । स कथं न बध्यते । संसारकारायामिति शेषः । इति हंसीवचनप्रतिवचनीयत्वेन समपक्षे व्याख्या ॥ अथवा यो दाम्भिकः सदा जगतोऽपि पक्षस्य मित्रवर्गस्य पातं नाशं करोति । तथा जगतोऽपि दारेषु क्रीडापरः । तथा बहुघातिकुन्तश्च । स महापराधी बध्यत एव । निर्मर्मणैव हंसीवचसोऽन्यथात्वम् । तत्वतस्तु प्रामाण्यम् । तद्यथा । हे हंसि । किं बहुना किं बहुजल्पया । सदम्भोजं सरोजं, सन् ॥ पक्षतिपातं करोति केदारविहारं च शीलयति स शकुन्तः पक्षी न बध्यते । किं तर्हि मुच्यत एव । तस्मात्पुरुषमुक्तं त्वयेति वास्तवोऽर्थः । एवमुत्तरत्रापि ॥ २० ॥

हंसी, जो सदा सबके प्रति पक्षपात करता है । अहंकारी बना रहता है । रमणी विहार में ही मग्न रहा करता है । अपने मुंह से या अस्त्र से बहुतों का विनाश करता रहता है । वह क्यों नहीं बाँधा जाता ।

अथवा—जो अहंकारी अपने पक्ष के सम्पूर्ण मित्रों का पात ( विनाश ) करता है तथा जगत् ( बहुत ) स्त्रियों के साथ विलास के लिये सदा उद्यत रहता है वह महापराधी बाँधा क्यों नहीं जाता ।

यथार्थ पक्ष—हंसपत्नी, अधिक क्या कहना है, जो बार बार सुन्दर कमलों के पास जाकर अपने पंखों को फड़फड़ाता है और खेतों में विहार करता है ऐसा ( निरपराधी हंस सचमुच ही ) बाँधा नहीं जा सकता ।

[ इस श्लोक मे समान विशेषणो के माध्यम से बन्धन और मोक्ष दोनो पदार्थों पर विचार किया गया है।

बलाहना पक्ष या बन्धन पक्ष—हंसिके ! ( हंस पत्नी ) यः किल सदा सदम्भः अनेकधा ( उक्तोऽपि ) जगतः पक्षपात करोति स बहुनाद + कुन्तः दारविहारशील' किं न बध्यते।

अर्थात् उपर्युक्त गुण वाले लोग बाँधे ही जाते हैं।

मोक्ष पक्ष यथार्थ पक्ष—हे हंसि, यः किल सदा सदम्भोज + गतः अनेकधा पक्षपात करोति स केदारविहारशील न बध्यते। किं बहुना शकुन्तः।

इसका भाव यह भी है कि जो फूलों से प्रेम रखता है, प्रकृति का निरावृत वातावरण ही जिसे पसन्द आता है, शान्तिपूर्ण वातावरण से ही स्नेह रखता है ऐसा आदमी भी नहीं बाँधा जाता। पक्षी की तो बात ही दूर है।

पक्षपात शब्द विविध अर्थों मे यहाँ प्रयुक्त हुआ है। पक्ष ( मित्र का ) पात ( विनाश ) पक्षपात (पंख फड़फड़ाना) पक्षपात ( प्रकृति के वातावरण में अधिक प्रवृत्ति रखना ॥ २० ॥ ]

किं चान्यदपि श्रूयतां बन्धस्य कारणम् ॥

अपरपरिभोगप्रतिपादनैर्ष्यांपोत्कृष्टदोषप्रकर्षेण च हस प्रति हंसी कलहयमाह-किंचेति ॥ चकारः पराभिप्रायाक्षेपपूर्वके विशेषे। एव मामासौ दुरात्मा नि दाक्षो निर्मर्यादश्च ॥

और भी बन्धन के कारण सुनिये

अस्ति मत्परिग्रहे मृणालिकानामवननायिका, सापरागस्थगितमुख-कमलापि बलादनेन विनाशिता, विनिपत्योपरि जर्जरिता नखैः खण्डि-तमधरदलम्, ललितमलिकालकमण्डनम्, अपनीतः सुकुमारभावः ॥

अस्तीति ॥ येन आसतो लोकद्वारा। मम राज्ञोऽपि परिग्रहे स्थितायां नायि-कायां प्रवृत्तम् मृणालिकानां पद्मिनीनामवने रक्षणे, नायिका स्वामिनी, सा ततोऽपरागाद्रागाभावात्, संवृतवक्त्रकमलापि बलात्कारादनेन स्वसङ्गैर्विनाशिता। विनाशोऽत्र शीलखण्डनम्। तदाह—विनिपत्येति। अधर ओष्ठः, अलिकं ललाटं तस्य, तथा अलकानां केशानां च मण्डनम्। सुरम्य। उद्दण्ड. सुकुमारभाव। मर्यादिकन्यात्वम्। वास्तवे तु। मृणालिका पद्मिनी। नामेति संबोधने। वनस्य नायिकेव। परागो मकरन्दस्तेन स्थगितानि कमलानि यस्याम्। बलादपि अनेन त्रिना पक्षिणा सा खण्डिता मर्दिता। अतोमौऽन्यार्थोत्कर्माणि च। अधरदलमध-पत्रम्। अलप एव कालं कृष्णं कस्य शिरस उपरिभागस्य मण्डनम्। अपनीतो मृदुभाव.। नखैर्जर्जरितत्वात् ॥

निन्दापक्ष—मेरे द्वारा नियुक्त मृणालिका की रक्षा ( अवन ) में लगी हुई, प्रेमाभाव के कारण अपने मुख कमल को बन्द की हुई नायिका का विनाश ( शील हरण ) इसने किया है। इसके ऊपर अधिरूढ होकर नखो से इसे जीर्ण ( विदीर्ण ) कर दिया है। अधरोष्ठ को खण्डित कर दिया है। अलिक ( ललाट ) के भूषण रूप अलकों ( बालों ) को बिखेर दिया है और उसके सुकुमारभाव ( कौमार्य ) का हरण किया है।

यथार्थ पक्ष—मेरी अधिकृत भूमि मे स्थित इस वन की नायिका स्वरूप मृणालिका ( कमलिनी ) को जिसका मुख पराग से भर गया है, बलात्कार इस पक्षी ने खा लिया है। उन पर भ्रमण कर उन्हें जीर्ण कर दिया है। अलियो ( भ्रमरो ) के कालक ( कृष्णता ) रूप भूषण को दलित कर दिया है। उनकी कोमलता को नष्ट कर दिया है॥

( मृणालिकानाम् अवन + नायिका—कमलिनियो की रक्षा के लिये नियुक्त नायिका। सा पराग स्थित–मुखकमलाऽपि—मुख कमल नितान्त प्रेमाभाव पूर्ण है तो भी। बलादनेन विनाशिता-बलात्कार इसने उसे आचार-पतित किया।

वास्तव पक्ष—मृणालिका + नाम + वननायिका–हमारे उद्यान की नायिका सदृश कमलिनी। सा पराग स्थित मुखकमला—आद्योपान्त पराग से भरे मुख कमल वाली। विना + अशिता वि शब्द पक्षीका वाचक है। उसी के तृतीया का रूप विना है। अर्थात् इस पक्षी द्वारा मेरी सुन्दर कमलिनी खा ली गयी है। खण्डितम् अधर दलम्—कमल के नीचे के दलो को खण्डित कर दिया है। दलितम् अलि—कालक-मण्डनम्—भ्रमरो की कृष्णता रूप मण्डन को रगड दिया है।

इन अपराधो के कारण उसे बाधना उचित ही है॥

किं वापीवरेणानेन न कृतम्॥

किमिति॥ अथवानेन पीवरेण स्थूलेन किं न कृतम्। सर्वं कृतमेव तदिरयुप-सहारे॥ वास्तवे तु वाप्यां वरेण प्रधानेनानेन॥

इस पीवर ( स्थूल ) बुद्धि ने क्या क्या नहीं किया। द्वितीय पक्ष—इस वापीवर ( सरोवर के प्रधान हंस ) ने क्या नहीं किया॥

तदेव यावन्मध्यं बहुधापाञ्जरञ्चावगाहते तावन्मे कुतः संतोषः। न च नदीक्षितेद्विजन्मनि निगृहीतेऽपि गरीयः पातकमस्ति॥

तदिति॥ तस्मादेषोऽपराधी, पञ्जरस्तेद् पाञ्जर मध्यं यावन्नावगाहते। मे मम। तावत्कुत संतोष। अथायं द्विजन्मत्वादनिग्राह्य इत्यत आह—न चेति॥

द्वाभ्यां सकाशाज्जन्म यस्य स द्विजन्मा न द्विजन्मा तयोक्ते अर्थात् त्रिज्ञाते निगृही-तेऽपि गरीयोऽप्ययं पातकं न च नैवास्ति । तस्मिन्कोटरे । नदीक्षिते दीक्षा शैवादि-मतपरिग्रहः संजातोऽस्येति । एतेन दीक्षितो लिङ्गी त्रिजातोऽप्ययम्य एव । अथवा अपिः समुच्चयार्थो भिन्नक्रमो द्विजन्मनीत्यनेन संयोज्यः । तथा दीक्षिते व्रतिनि द्विजन्मनि ब्राह्मणे निगृहीते न च न पातकम् । पातकमेवेत्यर्थः वास्तवे तु तस्मादेव स्वपति । अपां जलानां मध्यं जरन्यावद्वार्धक्यं च नावगाहते तावन्मे कुतः संतोषः । नद्यां क्षित उषिते द्विजन्मनि विहगे नितरां गृहीते स्नेहादङ्गीकृते गरीयोऽप्ययं न च पातकमस्ति । श्रेय एवाभ्यन्तरीयम् । गरीय इति क्रियाविशेषणम् । अपिर्विरोधोद्भावने गृहीतसन्देहस्य द्विजत्वार्थत्वात् ॥

अतः यह ( अपराधी ) जब तक पिंजड़े के बीच बहुत समय के लिये नहीं जाता तब तक मुझे सन्तोष कहाँ । ( शैव वैष्णव आदि परम्परा में ) अदीक्षित द्विजन्मा को पकड़ लेने में कोई उत्कृष्ट पाप नहीं लगता ।

द्वितीय पक्ष—यह पानी के बीच अपनी वृद्धावस्था पर्यन्त विहार नहीं करता रहेगा तब तक मुझे सन्तोष कहाँ । नदी तट पर बसा हुआ पक्षी यदि ( स्नेह ) से पकड़ लिया गया तो कोई बड़ा पातक नहीं लगता ।

प्रथम पक्ष—पञ्जरम् न अवगाहते—पिंजड़े के मध्य भाग में जब तक ( बहुत समय तक ) नहीं रहता । न दीक्षिते द्विजन्मनि—जो द्विजन्मा ब्राह्मण आदि दीक्षा ग्रहण नहीं किया है । ब्राह्मण आदि भी यदि दीक्षा नहीं ग्रहण किये हों तो उन्हें पकड़ने में दोष नहीं लगता । पक्षी आदि की तो कोई बात ही नहीं । अथवा दीक्षित ब्राह्मण को पकड़ने पर पातक नहीं लगता ऐसी बात नहीं । अर्थात् पाप लगता ही है ।

द्वितीय पक्ष—अपाम् ( जल के बीच ) जरम् यावत् ( वृद्धावस्था पर्यन्त जब तक ) न अवगाहते ( विहार नहीं करता ) तावन्मे कुतः सन्तोषः ( मुझे तब तक सन्तोष कहाँ । ) नदी + क्षिते ( नदी में बसे हुए ) द्विजन्मनि (पक्षी को) निगृहीते ( पकड़ लेने पर ) महान् पाप नहीं लगता ।

जल के किनारे हंस बैठा था, मैंने उठा लिया है । मेरी इच्छा है कि बुढ़ापे तक यह जल में विहार करे । मैं तो इसका मङ्गल चाहता हूँ ॥

अयि मुग्धे कलहंसिके, त्वं पुनः मानसङ्गिनापि विमाननां सहसे, विपरीतः खल्वेषः । यतः सहंसकान्तारागविमुक्तो मधुपश्रेणिश्यामायां सुरार्जीयिनीं कान्तां कामयते । तदलमनेन । 'गच्छ वत्से, यथाप्रियम्' इत्यभिहितवति वसुंधरेश्वरे ॥

कलहंसि ॥ मानेन मदना । विमानना अवमानना । पक्षे मानसं सरः । विमु पक्षि-षु मानना पूजा । विपरीतो विरुद्धवृत्तः । पक्षे त्रिभिः पक्षिभिः परिवृतः । कादम्बक-

कदम्बकेश्वरत्वात्। सद्वन्वयकान्तानुरागपराङ्मुखे। मद्यपश्रेणिसेव्याम्। सुरया जीवति या ताम्। इत्युक्ति। पक्षे शोभना वंशा मस्करा येषु तेषु कान्तारेषु नगेभ्यो विमुखो भृङ्गपङ्क्तिश्रितां सुष्ठु शोभनां राजीविनीं नलिनीम्। प्रयस्थानतिक्रमेण यथाप्रियम्। प्रियो भर्ता इष्टप्रदेशश्च। इत्युक्तवति नृपे॥

प्रथम पक्ष—जो सुन्दरी हंसी, तुम मान (प्रेममूलक रोष) से संगत (युक्त) हो फिर भी विमानना (अवहेलना) सह रही हो। यह विपरीत बात है। क्योंकि सुन्दर वंश में उत्पन्न प्रिया के प्रेम से विमुख (यह तुम्हारा पति) मद्यपीने वालो के उपभोग लायक, मदिरा से ही जीने वाली प्रिया को चाह रहा है। अतः यह महान् अनर्थ है। "वत्से, जाओ अपने प्रिय स्थान पर।" इतना कह कर सम्राट् चले गये।

द्वितीय पक्ष—"ओ हंसी, मानसरोवर जाकर विशिष्ट सम्मान प्राप्त करती हो। तुम्हारा पति पक्षियो द्वारा घिरा हुआ है। सुन्दर बांस के जंगल में पेड़ो से विमुख होकर भ्रमरो से युक्त मनोहर कमलिनी की कामना करता है॥

[प्रथम पक्ष—मानसंगताऽपि विमानना—मान (हठ से युक्त) है फिर भी मान से हीन है। विरोध॥ मान (प्रेम मूलक रोष) से युक्त हो फिर भी विमानना (अवहेलना) सह रही हो। "परिहार"॥

विपरीतमेतत्—यह अनुचित है। मानिनी को अनुनय-विनय के साथ मनाना चाहिये उसकी अवहेलना करना तो असंगत बात है।

सद्वंश कान्ताराग विमुख—सुन्दर वंश में उत्पन्न अपनी प्रिया के प्रेम से विमुख। मधुपश्रेणीश्रयणीयाम्—मद्य पीने वाले लोगों के उपभोग के उपयुक्त। सुराजीविनीम्—मदिरा से ही जीवन चलाने वाली कान्ता कामयते—सुन्दरी की कामना करता है।

द्वितीय पक्ष—मानसंगताऽपि विमानना—मानसरोवर जाकर वि (पक्षियो) का मानना (सम्मान) प्राप्त करती हो। यह उस हंस की पत्नी है जो अपने समाज का नायक है। अतः उसकी पत्नी का सम्मान होना स्वाभाविक है।

वि + परीतम् एतत्—वि (पक्षियो) से यह घिरा हुआ है। पक्षियो का नायक है। अतः दूसरे पक्षी अपनी स्वामी की सुरक्षा के लिये उसे घेरे हुए है।

सद्वंश कान्ताराग विमुख—सद्वंश (सुन्दर बांस) के कान्तार (जंगल) में जो अग (पेड़) हैं उनसे विमुख (निरीह) रहता है। अर्थात् हंस बांस के वन में अनुराग नहीं रखता।

मधुप—मधुप (भ्रमर) श्रेणी (पङ्क्ति) द्वारा श्रयणीय (सेव्य) कान्ता (मनोहर) सु + राजीविनी (सुन्दर कमलिनी) की कामना करता है। इस पक्ष में हंस का स्वाभाविक एवम् उचित वर्णन हुआ है।

सापि सपरिहासं हंसी 'हंहो विदग्धभुजङ्ग, मृणालिका तामरसान्तरसानुरागरञ्जितमना कामयसे किं वापीनदेहे नीरसे बके त्वयि न संभाव्यते' इत्याकलितकलहं कलहंसमवादीत् ॥

सापीति । हंस्यपि हंसमवादीत् । हंहो इति सरभसपूर्वामन्त्रणे । विदग्धविलासिन् । तां राजनिवदिनाम । मृणालिकाना पालननायिकाम् । अरसा निःस्नेहाम् । तरसा बलेन । अनुरागेण स्वामन्त्र्या रञ्जितचित्त इच्छसि । नु किमर्थं । न चाय विलासिधर्मः । वसन्तस्तु मृणालिका पद्मिनीम् । तामरसमान्त अन्तर्मार्गे रसा निर्यासस्तत्रानुरागो यस्यति सम्बोधनम् । अन्तमध्य स्वरूपार्थः । अथवा तामरसस्यान्तरे मध्ये सानुरागेति सम्बोधनम् । अथवा पीने स्थूलाङ्गे । नीरसे निःस्नेहे । निर्वीर्ये वा । बकमाये त्वयि किं न समाध्यते । अन्यत्र । त्वयि किन्नूने वाप्यश्च महाश्च तेष्वीहा यस्य । तथा नीरं जल सेवते च । किं न संभाव्यत इति । सम्भावना प्रशंसाविषया । एकमेव हि वाक्य प्रकरणादिभिरपारम्य प्रशंसा निन्दा च प्रतिपादयति । यथा 'त्वमस्माकं किं किं न करिष्यसि' इति प्रसङ्गेनैकं प्रशंसा गमयति श्लेषेन च निन्दाम् ॥

प्रथमपक्ष—वह (हंसी) भी परिहास (हँसी) करती हुई, ओ विदग्ध भुजङ्ग (विलासी हंस) उस प्रेमशून्य कमलवन की रसिका को बड़े प्रेम से चाहते हो। निर्वीर्य बगुले जैसे मोटे शरीर वाले तुम पर क्या क्या सम्भावनाएँ नहीं की जा सकतीं। इस तरह मिल किलकते हुए हंस से बोली।

द्वितीयपक्ष—वह (हंसी) भी परिहास पूर्वक ओ पत्नियों के साथ विलास करने वाले राजहंस कमल रस के अनुरागी बड़े प्रेम से कमलिनी की कामना कर रहे हो। बावलियों और नदी की अभिलाषा करने वाले तथा जल का सेवन करने वाले तुम में क्या क्या सम्भव नहीं है। इस तरह बड़े प्रेम के साथ हंस से बोली।

प्रथमपक्ष—ताम् अरसाम् मृणालिकाम् (उस प्रेमशून्य मृणालिका नामक वनरक्षिका को। तरसा अनुराग रञ्जितमना—बलात्कार अनुराग से पूरित वृत्ति वाले होकर) उसकी कामना करते हो। पीनदेहे (मोटे शरीर वाले) नीरस (निर्वीर्य) बके (बगुलेसदृश) तुम में क्या सम्भव नहीं है। तुम सब कुछ कर सकते हो। सब जगह अनुरक्त हो सकते हो। निर्वीर्य होने के कारण तुम महान् कामी हो गये हो।

द्वितीय पक्ष—तामरसान्तराग! (कमल के मध्य भाग में अनुराग रखने वाले) रञ्जितमना (प्रसन्नचित्त वृत्ति वाले) तुम मृणालिका (कमलिनी) की कामना करते हो।

वापीनदेहे—वापी ( बावली ) और नद में ईहा ( इच्छा ) रखने वाले आप में क्या नहीं सम्भव है।

मुनिकी तरह जल के समीप रहने वाले आप जैसे व्यक्ति में विविध उत्कृष्टताओं की सम्भावना की जा सकती है। ]

सोऽपि 'वैदग्धधुरंधर, धूर्तालापपण्डित, प्रज्ञाप्राग्भारगुरो, चातुर्याचार्य, मा मे प्रियां प्रकोपय। सदृशा एव यूयं वयं च राजहंसाः। सरसां श्रियमनुभवामः। नदीनां पात्रेष्ववस्थितिं कुर्मः। न चरणचर्यायां न श्लाघ्यामहे। तत्स्वपक्षेषु विपक्षो माभूः॥

सोऽपीति॥ राजहंसा राजमुख्या यूयं सरसां जनानुरागकरीं लक्ष्मीमनुभवथ। तथा पात्रेषु धर्मपात्रादिषु दीना स्थितिं व्यवस्थां न कुरुथ॥ तथा रणविधौ न न श्लाघ्यध्वे। च समुच्चये। वयं पक्षे सरसां तडागानाम्॥ नदीनां सरितां कूलमध्येषु। चरणं चर्या गतिविशेषः॥ तत्तस्मादुक्तप्रकारेण समानपक्षेषु पक्षतिसहितेषु च। विरुद्धपक्षो माभूः॥

वह ( हंस ) भी 'ओ उत्तम सहृदय! धूर्तों की तरह (,अस्पष्ट ) बातों में प्रवीण! बुद्धि के विशिष्ट भार से गभीर! चतुरता के आचार्य! मेरी प्रिया को रुष्ट न करो। आप जैसे राजहंस ( उत्तम राजे ) और हम राजहंस ( पक्षी ) बराबर ही हैं।

आप लोग प्रजा को अनुरक्त कर देने वाली सरस राजलक्ष्मी का उपभोग करते हैं। पात्र (सत्पात्र सुयोग्य) में दीन ( कृपण ) दशा का प्रदर्शन नहीं करते। ( सुयोग्य आदमी को सुयोग्य सम्मान देकर सम्मानित करते हैं। ) रणचर्या ( लड़ाई के बारे ) में आप लोग प्रशंसित नहीं हो ऐसी बात नहीं। ( होते ही हैं। ) अतः अपने पक्ष के लोगों पर प्रतिकूल न हों।

हम ( हंस ) लोग भी सरोवरों ( सरसां ) की शोभा ( कमलिनी ) का उपभोग करते हैं। नदियों के पात्र ( तट की खाइयों ) में ठहरते । चरणचर्या ( विलासिता पूर्वक भ्रमण करने ) में प्रशंसित न होते हों ऐसी बात नहीं। इसलिए आप सपक्ष ( सुन्दर पक्षों को धारण करने वाले हंसों ) पर विपक्ष ( रुष्ट ) न हों॥

एषा मे हृदयं जीव उच्छ्वासः प्राण एव च।
संसारसुखसर्वस्वं प्राणिनां हि प्रिया जनः॥ २१॥

एषेति॥ एषैव मे हृदयं मनः। अभिन्नभावात्। जीवो जीवितम्। तत्सद्भावे जीवनात्। उच्छ्वासः श्वासरोधकचिन्तादिषु स्वभावापगमहेतुत्वात्। प्राणः प्रधानभूतो वायुः। देहाधारत्वात्। प्राणो बलमपि। जीवितार्थो बलार्थो न वाक्यर्थः। यप्रशस्तपाद—'प्राणोऽन्तःशरीरे रसमलधातूनां प्रेरणादिहेतु' इति॥ २१॥

यह मेरा हृदय है, जीव है, श्वास तथा प्राण ( बल ) है, क्योंकि प्राणियों के लिए संसार के उत्तम सुख की प्रतिमूर्ति उनके प्रियजन ही होते हैं ॥ २१ ॥

रूपसम्पन्नमग्राम्यं प्रेमप्रायं प्रियंवदम् ।
कुलीनमनुकूलं च कलत्रं कुत्र लभ्यते ॥ २२ ॥

रूपेति ॥ प्रेम्णा तुल्यं प्रेमप्रायम् । सस्नेहमित्यर्थः ॥ २२ ॥

रूप सम्पत्ति से पूर्ण, नागरिक स्वभाव की, प्रेम भरी, सुन्दर कुल में उत्पन्न मनोऽनुकूल पत्नी कहाँ मिलती है ॥ २२ ॥

तदलमलीककलहारम्भेण 'भवानप्येवं प्रेमप्रपञ्चनाटकनायको नातिचिरादेव यथा भवति तथा कमप्युपकारं करिष्यामि' इति राजानमवादीत् ॥

व्यर्थ अधिक जल्पन क्या करना है, आप भी इस प्रेम प्रपंच वाले नाटक के नायक शीघ्र जिस उपाय से बनें उस तरह का उपकारात्मक यत्न मैं करूँगा । इस तरह राजा से हंस ने कहा ॥

अथान्तरेऽन्तरिक्षमण्डलादतिस्पष्टवर्णव्यक्तिमनोहारिणी वाग श्रूयत ॥

इसी बीच आकाश से अत्यन्त स्पष्ट वर्णव्यञ्जना के कारण मनोहर वाणी सुनाई पड़ी ॥

राजन्राजीवपत्राक्ष क्षिप्रं हंसो विमुच्यताम् ।
भविष्यत्येष ते दूतो दमयन्त्याः प्रलोभने ॥ २३ ॥

हे कमलनयन 'राजन् ! शीघ्र ही हंस को छोड़ दीजिए । दमयन्ती को आपकी ओर आकृष्ट करने में यही आपका दूत होगा' ॥ २३ ॥

राजा तु तस्याः सोष्मबलातैलपूरेणेवाङ्गमुत्पुलकयता, कर्णान्तरमवतीर्णेन, दमयन्तीति नाम्ना कोमलतैत्तिरपिच्छस्पर्शसुखमिवानुभवन्मनाङ्निमीलिताक्षिस्तस्थौ ॥

राजा तु इति ॥ बला गन्धद्रव्यविशेषस्तस्य तैलम् ॥

राजा तो जैसे गरम खवला तैल अङ्गों पर छिड़क दिया जाय और रोमाञ्च हो उठे उसी तरह रोमाञ्चित होकर कान के भीतर 'दमयन्ती' इस नाम से तित्तिल के कोमल पक्ष-स्पर्श सदृश सुखानुभव करता हुआ थोड़े आँखों को निमीलित करता हुआ सोचा ॥

'आह्लादयन्ति सौख्याम्भःशातकुम्भीयकुम्भिकाः ।
काञ्चीकलापसश्रीकाः श्रोणीबिम्बाः श्रुता अपि ॥ २४ ॥

आह्लादेति ॥ सौख्यजलसौवर्णकलशा । आसेविता दृष्टाः स्पृष्टा वा । श्रुता अप्याह्लादयन्ति । यतः सौख्यस्य सर्वात्मना आधारभूता ॥ २४ ॥

'करधनी से सुशोभित ऐश्वर्यजल से भरे हुए शातकुम्भीय ( सोने के घडे की तरह ) नितम्बों को धारण करने वाली (रमणियों) को देखना या सुनना होना ही आह्लाद की चीजें होती हैं ॥ २४ ॥

तत्केयं दमयन्ती, कश्चायमाश्चर्यभूतो विहंगः, का चेयं नभोभारती, सर्वमेतद्विस्तरेण वेदितव्यम्' इत्यवधार्यैकस्यामुत्फुल्लपल्लवितलतामण्डपच्छायायामुद्भिद्कुसुममकरन्दशीकरासारशिशिरे शिलातले निपद्य तं हंसमभाषत् ॥

यह कौन-सी दमयन्ती, कौन-सा यह आश्चर्यजनक पक्षी, कौन-सी यह आकाशवाणी, यह सब कुछ विस्तार से जानना चाहिए । यह निश्चित कर एक खिली हुई लता-मण्डप की छाया में पूर्ण विकसित फूलों के पराग-बिन्दुओं की वर्षा से शीतल एक शिला पर बैठकर उस हंस से बोला ॥

'भद्र, साप्तपदीनं सख्यम्, उत्पन्नकतिपयप्रियालापा प्रीतिः, प्रयोजननिरपेक्षं दाक्षिण्यम्, अकारणप्रगुणं वात्सल्यम्, आनिमित्तसुन्दरो मैत्रीभावः सतां लक्षणम् ॥

भद्रेति ॥ सप्त पदानि सम्यक् उच्यन्ते वा यत्र सख्ये तत्साप्तपदीनम् । मैत्र्याः प्रीतेर्भावोऽभिप्रायः ॥

कल्याणमय मित्र ! सात ही पदों के आलाप से मैत्री, कुछ ही प्रिय बातों से प्रेम की उत्पत्ति, अकारण दाक्षिण्य ( उदारता ) अकारण सुन्दर मित्रता ये सब सज्जनों के लक्षण हैं ॥

अस्ति च तत्सर्वं भवन्मूर्तावतो निःशङ्कमभिधीयसे कथय केयं दमयन्ती, कस्य सुता, कीदृग्रूपम्, कुत्र सा वसति, कश्च भवानस्माकमुपकर्तुमिच्छति, का चेयं दिव्यवाणी—इत्येवमुक्तः [illegible] कथयितुमारेभे ॥

आपके शरीर में ये सब गुण हैं, इसीलिए निर्भीकतापूर्वक कह रहा हूँ, 'कहिये कौन यह दमयन्ती, किसकी लड़की, किस तरह का रूप, कहाँ वह रहती है, कौन मेरा उपकार करना चाहता है और कौन यह दिव्य वाणी है ? ( राजा के ) ऐसा पूछने पर उसने कहना शुरू किया ।

'शृङ्गारारम्भभृङ्गार तस्याः सौन्दर्यवीचयः ।
कर्णमारोप्यतां देव वार्ताविस्मयपल्लवः ॥ २५ ॥

शृङ्गारे ॥ रसेन सिच्यमाना वीरुद्दधते । महतोऽपि कर्णकण्ठे निहितेन पल्लवेन श्रीमन इत्युभयममागमौचित्यात् । सौन्दर्येण वीरुदिव सौकुमार्यात् । वार्तायां विस्मयो वार्ताविस्मय स एव पल्लव ॥ २५ ॥

हे शृङ्गार रस के स्वांच्छन्द ! ( राजन् ! ) उस ( दमयन्ती ) की सौंदर्य-लता के आश्चर्यमय वार्ता-पल्लव को ( कृपया ) अपने कानों पर रखें ॥ २५ ॥

अस्ति निर्माणमेदिनीमण्डलमण्डनायमानो नगनगरपुरविहारा रामरमणीयः सीतासहायसंचरितरघुपतिपादपद्मपवित्रारण्य पुण्य-तरलतरङ्गगङ्गागोदावरीवारिवारितदुरितदावानलप्रसर, मन्दर इव बलि-राजजनितपरिवर्तन, कैलास इव महेश्वरलोककृतवसतिः, मेरुरिव सुवर्णप्रकृतिकमनीयो, यदुवंश इव दृष्टशूरपुरुषावतार, सोमान्वय इव गुरुप्रयातो, वेदपाठ इवानेके मखनैवचेन, पर्वते-पर्वते स्थाणुभि, पुरे पुरे पुराणपुरुषै, जले जले कमलोद्भवै, पदे-पदे देवकुलै, वने-वने वरुणै, स्थाने-स्थाने नन्दनोद्याने, अर्गल स्वर्गस्य, तापीप्रायोऽप्यनुपतापी जनस्य, विन्ध्याद्रिमुद्रितायां दिशि देशानामुत्तरोऽपि दक्षिणो देश ॥

अस्तीति । देशानामुत्तरा श्रुष्ठो दक्षिणदेशोऽस्ति । अविरोधे । उत्तरतादृस्य दिग्विशेषार्थत्वात् । बलिना बलवता, राज्ञा भीमलङ्घेन अभित परि समन्ताद्वर्तन परिपालन यस्य । पक्षे बलिराजो दैत्य । परिवर्तनं भ्रमणम् । महादेवीवरोऽतिसम्प्रद शिवश्च । सुष्ठु वर्णं द्विजातय । प्रकृतयोऽमात्याद्या । पक्षे सुवर्णप्रकृत्या स्वर्णस्व-भावेन काम्य । शूरो विक्रमी वसुदेवपिता च । गुरुो विद्वान्महविशदश्च । स इति शिवश्च । वने कानने । पक्षे मखनैवेद्यैर्दुर्वृत्त ॥ स्थाणु र्वृक्ष स्थिरपदार्थश्च । पुराणपुरुषै वृद्धो विष्णुश्च । कमलोद्भवै कमलोत्पत्तिभिर्ब्रह्मभिश्च । कुल गृह वृन्द च । वरुणो वृक्षा जल वा । पक्षे प्रवता सूर्यो वा । नन्दन इति क्रियावचन इन्द्रवन सञ्ज्ञा च । तैस्तैर्वृक्षविशिष्टैर्देवोऽर्गलोऽधिक । स्वर्गे इन्द्रेक एव स्थाणुरमृतिः । अस्मिस्तु बहव इत्यर्थ । तापी नदी प्रायेण तत्र । विरोधे तु तापकारकमिति तापा ॥

जैसे हुए भूमण्डल का भूषण पर्वत, नगर, ग्राम, विहार ( मठ ) एवं उद्यानों से रमणीय, सीता के साथ घूमते हुए रघुपति ( रामचन्द्र ) के चरण कमलों से पुनीत जङ्गलों वाला गङ्गा और गोदावरी के अत्यन्त पवित्र जल तरङ्गों से दुरित ( पाप ) दावाग्नि के प्रसार को रोक दिया जाने वाला विन्ध्याचल से बन्द किया हुआ सभी देशों में उत्तर ( सर्वश्रेष्ठ ) दक्षिण देश है यहां के बलिराज ( बलवान् भूपति ने ) उसी तरह परिवर्तन ला दिया है जैसे बलिराज 'दैत्य' ने मन्दर में परिवर्तन ( कम्पन ) ला दिया था । जैसे कैलास पर्वत में महेश्वर लोक ( शिवजी के गण ) निवास करते हैं उसी तरह यहां भी महेश्वर-

लोक ( महान् ईश्वर ( राजा ) के प्रजाजन ) निवास करते है। मेरु पर्वत सुवर्ण प्रकृति ( स्वर्ण शरीर ) होने के कारण जैसे कमनीय ( सुन्दर ) लगता है उसी तरह वह ( देश ) भी सुवर्ण प्रकृति ( सुन्दर आकृति वाला ) होने के कारण कमनीय लगता है। यदुकुल जैसे शूर ( वसुदेव पिता ) के अवतार को देखा है वैसे उस देश ने भी शूर ( पराक्रमी ) पुरुषो के अवतार को देखा है। सोम ( चन्द्र ) वश बुध ( ग्रह ) जैसे मुख्य ग्रह से युक्त है वैसे ही यह देश भी बुध प्रधान ( पण्डित बहुल ) है। वेदपाठ जैसे बहुत सवन ( यज्ञ चर्चाओ ) से युक्त है उसी तरह से (वह देश) वन ( जगल ) से युक्त है। वह देश स्वर्ग से भी सर्गोल ( अधिक ) है क्योकि वहा प्रत्येक पर्वत मे स्थाणु ( ठूठे पेड या स्तम्भ ) हैं। प्रत्येक गाव मे पुराण (वृद्ध लोग) हैं। हर एक सरोवर मे कमलोद्भव (कमलों की उत्पत्ति) है। पग-पग पर देवकुल ( सुन्दर गृह ) हैं। हर एक वन मे वरुण ( वरुण वृक्ष ) हैं। स्थान-स्थान पर नन्दनोद्यान ( सुन्दर उपवन ) हैं। ( स्वर्ग मे तो एक ही स्थाणु ( शिवजी ) एक ही पुराण पुरुष ( विष्णु ) एक ही कमलोद्भव ( कमला ( लक्ष्मी ) उत्पत्ति ) एक ही जगह देवकुल ( देवताओ का गृह ) एक ही वरुण ( वरुण देवता ) तथा एक ही नंदन-वन ( इन्द्र का उपवन ) है। वह देश तापी प्राय ( तापबहुल ) होता हुआ भी उपतापी ( ताप बहुल नहीं है। विरोध ) वह देश तापी नदी से घिरा हुआ है तथा लोगों को उपताप ( दुःख ) नहीं पहुँचाता ॥

यत्र शास्त्रे शस्त्रे च वेदे वैद्ये च भरते भारते च कल्पे शिल्पे च प्रधानो, धनी, धन्यो, धान्यवान्, विदग्धो वाचि, मुग्धो मुखे, स्निग्धो मनसि, वसति निरन्तरमशोको लोकः ॥

यत्रेति ॥ कल्पे शिल्पे चेति। कल्पो यज्ञकर्मणामुपदेशकः। प्रधान इति प्रकृष्टं धानं धारणं यस्य। शास्त्रशास्त्रादीनि प्रकर्षेण धारयतीत्यर्थः। एवं सर्वत्र वाच्यलिङ्गता। मुख्यार्थस्य हि प्रधानशब्दस्याविशिष्टमपुंनपुंसकलिङ्गत्वम् ॥

जहां शास्त्र, शस्त्र, वेद, आयुर्वेद, भरतखण्ड महाभारत, ( आदि दिव्य ग्रन्थो ) कल्प ( यज्ञादि के उपदेशकों ) मे मुख्य धनी, धन्य, धान्ययुक्त, वाणी में प्रवीण, मुख से सुन्दर, मन [illegible] अनुरागी सदा शोक-शून्य लोग बसते हैं ॥

यत्र कन्दर्पधूर्जटिललाटलोचनानलज्वालाकवलनाकुलः, प्रासादपाश्वावलोकनमात्रनिर्जितपरमेश्वरमनसां विलासिनीनामुच्चकुचकुम्भयोः शृङ्गारसर्वस्वम्, अधरपल्लवेषु मधु, भ्रूभङ्गेषु धनुः, कटाक्षेषु पुष्पबाणान्निधाय निलीनोऽङ्गेषु जघनस्थलस्थापितरतिमकरकेतनः ॥

यत्रेति ॥ देशे विलासिनीनां कुचादिष्ववयवेषु स्वोपकरणानि शृङ्गारादीनि स्थापयित्वा प्रासादशिखरीनो मन्मथ। यतः। किंविशिष्टानां तासाम्। निर्जितं

परमेश्वराणां धनिनां मनो याभिः ॥ अथ च परमेश्वरो धूर्जटिः सोऽपि तानिर्निर्जित इत्युल्लिखेत् । एतेन शरणागतत्रातृत्वं भवम् ॥

जहा क्रोधावेश मे आये हुए भगवान् शङ्कर के ललाटस्थ लोचन की अग्नि ज्वाला से कवलित किये जाने के कारण डर के मारे अपाङ्ग भाग से देख लेने मात्र से बड़े बड़े राजाओं की चित्तवृत्ति को भी जीत लेने वाली रमणियों के ऊँचे कुचकलश पर शृङ्गार के सारभूत तत्त्व को, अधरों मे मधु को, भौहों की वक्रता मे धनुष को, कटाक्षो मे फूलों के बाणो को रखकर स्वयम् अङ्गों मे विलीन होकर जघनस्थल में रति को रखकर कामदेव रहता है ॥

यासां तारुण्यमेव सर्वाङ्गेषु शोभार्थमाभरणम्, उत्तुङ्गस्तनमण्डललावण्यमेव मुखकमलावलोकनाय दर्पणः, तारतरनयनकान्तिरेव मुखमण्डलमण्डनाय चन्दनललाटिका, भ्रूभङ्गा एव विभ्रमाय मृगमदपत्रभङ्गाः, कटाक्षा एव युवजनजयाय परमास्त्राणि, बन्धूककुसुमकान्तिदन्तच्छद एव लोकलोचनमनोमोहनाय माहेन्द्रमणिः, मुखकमलपरिमलागतमधुकरमधुरझंकार एव विनोदाय वीणाध्वनिः ॥

यासामिति ॥ माहेन्द्रमिन्द्रजालम् । तन्त्रबलेनाविद्यमानवस्तुप्रकाशनमिति यावत् । तदर्थो मणिर्माहेन्द्रमणिः ॥

जिनका यौवन ही सभी अङ्गों को सुशोभित करने के लिए भूषण है । उच्च-स्तन मंडल का सौन्दर्य ही मुखकमल को देखने के लिए दर्पण है । चंचल आँखों की कान्ति ही मुख-मंडल को अलंकृत करने के लिए चंदन बिन्दु है । भौहों की वक्रता ही विलास को द्योतित करने के लिए कस्तूरी से अङ्कित पत्र रचना है । कटाक्ष ही युवकों को जीतने के लिए परमास्त्र है । बन्धूक ( अड़हुल ) के फूल जैसी कान्ति वाले ओष्ठ ही लोगों की आँखों को मोहित करने के लिए महेन्द्र मणि है । मुखकमल से निकले हुए परिमल ( सुन्दर गंध ) के लिए भौंरो की मधुर झंकार ही विनोद के लिए वीणा की ध्वनि है ॥

किं बहुना—

ता एव निर्वृतिस्थानमहं मन्ये मृगेक्षणाः ।
मुक्तानामास्पदं येन तासामेव स्तनान्तरम् ॥ २६ ॥

ता एवेति ॥ निर्वृतिर्मुक्तिः शर्म च । मुक्ता मुक्तात्मानो मौक्तिकानि च ॥ २६ ॥

मैं मानता हूँ कि वे मृगेक्षणायें ( नायिकायें ) मुक्ति का स्थान हैं, उन्हीं के स्तनों के बीच मुक्त लोगों को जगह मिलती है ।

द्वितीयपक्ष—मेरी सम्मति मे वे मृगेक्षणायें निर्वृत्ति ( लज्जाशीलता ) के स्थान हैं । उन्हीं के स्तनो के बीच मुक्तामणियो को स्थान मिलता है ॥ २६ ॥

मन्ये च। ताभिरेव विविधनिधुवननिधानकुम्भीभिः कुम्भोद्भवोऽपि भगवान् प्रलोभितो भविष्यति, येनाद्यापि न मुञ्चति दक्षिणां दिशामेव ॥

सुरत-क्रीडा के पात्र उन्हीं नायिकाओं द्वारा कुम्भज ऋषि ( अगस्त्य ) भी मालूम पड़ता है प्रलोभित हो गये होंगे। इसी लिए आज भी दक्षिण दिशा को छोड़ ही नहीं रहे हैं ॥

अथवा—

देशो भवेत्कस्य न वल्लभोऽसौ स्त्रीसंकुलः सुस्थितकामकोटिः।
स्वर्गैककामं त्रिदिवं विहाय यस्मिन्कुमारोऽपि रतिं चकार ॥ २७॥

देश इति॥ कामकोटिर्देवी कंदर्पकोऽपश्च। कुमार· कार्तिकेयो डिम्भश्च। रतिरास्थार्थः। सुरतार्थेन च विरोधोद्भावना॥ २७॥

या—

कामकोटि देवी से सनाथित स्त्री बहुल वह देश किसको प्रिय नहीं है जहाँ कामदाय स्वर्ग को छोड़कर कुमार ( कार्तिकेय ) भी प्रेमपूर्वक रहे हैं।

वह कामदेव की कोटि ( मौर्वी ) तथा स्त्री बहुल देश किसको प्रिय नहीं है जहा कामवासनाओं को भुला देने वाली क्रीडा की विविधताओं को छोड़कर बच्चे भी रति ( प्रेम ) करने लगते हैं ॥ २७ ॥

तस्यान्तर्भूतधर्मण्डलस्यालंकारभूतमनाकुलममरपतिपुरप्रतिस्पर्धिपरितः परिखाप्रान्तरूढप्रौढद्योद्यानमालावलयितमदभ्रशुभ्राभ्रंलिहप्रासादशिखरशिखाभोगभग्नरविरथतुरंगवेगम्, एकत्राग्निहोत्रमन्त्रपवित्राहुतिहतसमस्तदिग्दान्तरिक्षभौमोत्पातसंघातैः, कृतमन्युभिरपि मन्युशल्यैः, उत्तस्कैरपि निरुक्तपरैः, सन्मार्गस्थैरपि गृहस्थैः, सफलश्रैरपि ब्रह्मचारिभिः, अभ्यस्ततिथिभिरप्यतिथिकुशलैः, सामप्रयोगप्रधानैरपि दण्डावलम्बिभिः, शतपथानुसारिभिरप्येकमार्गैः, ब्राह्मणैरध्यासितम्। एकत्र कुम्भिरिव द्रोणपुरःसरैः, प्रासादैरिव तुलाधारिभिः भयायिकैरिवानुमेयानुमाननिपुणैः, वैशेषिकैरिव द्रव्यागुगुणकर्मविशेषपण्डितैः, वैयाकरणैरिव रूपसिद्धिप्रधानैः, रुद्रैरिवानेकग्रन्थियक्षकपर्दकैः, विपणिवणिग्जनैरधिष्ठितम्। एकत्र विटकौलदम्भदीक्षाभिरिव कुचरूपलोभितलोकाभिः, कुकविकाव्यपद्धतिभिरिव भग्नयतिगणयुक्ताभिः, निशाचरीभिरिव रजनिरागिणीभिः, सर्वतोमुखजघनचपलाभिरप्यनार्याभिः, कर्णाटचेटीभिर्भरितम्। एकत्र बालकमिव कुलालाकीर्णम्। एकत्र वृद्धमिव कुजराजितम्। एकत्र चित्रविषयेव प्रवर्धमा-

नसकलशिशुशोभितया विन्यस्तस्वस्तिकया सर्वतोभद्रभूषणया भवनमालयालंकृतम् । एकत्र नाटकैरिव पताकाङ्कसंधिसंगतैः, दुर्धरकिरातैरिव दृढकूटकर्मभिः, दाक्षैरिव सुधारैः, विचित्रैरपि सचित्रैः, सतुलैरप्यतुलैर्देवकुलैः संकुलम् । विशालमपि शालासंपन्नम्, चतुश्चरणसंयुक्तमपि चरणपद्धितम्, विट्संभृतमपि शुचिमार्गम्, सर्वत्र चत्वराविक्रमपि स्थिरप्रकृति, मज्जन्महाराष्ट्रकुटुम्बिनीस्तनमण्डलविधीयमानोत्फुल्लकमलशोभायास्तुङ्गतरङ्गरङ्गच्चरणार्जुनराजीविराजमानराजहंसविराजितवारेर्वरदायास्तीरे रमणीयकरसकुण्डं कुण्डिनं नाम नगरम् ॥

तस्येति ॥ तस्य दक्षिणदेशस्यान्तर्भूतं वैदर्भं मण्डलं तदलंकारभूतम् । पुष विशेषणोपेतम् । निवरन्नपम् । तुङ्गतरङ्गेषु रङ्गन्ति तरुणानि नवाम्बुजानि चपलानि यानि राजीवानि तद्वद्राजमाना य राजहंसास्तैर्विराजितं वारि यस्यास्तस्या वरदायास्तीरे कुण्डिनं पुरं वर्तत इति शेषः । एकत्र ब्राह्मणैरध्यासितम् । कीदृग्भिः । आतुनिर्हतोपद्रवमध्वे । तथा कृतक्रतुभिः । तथा कोपशून्यैः । निरुक्तं ग्रन्थविशेषो वाचनामावश्च । सन्मार्गः सदाचारः क्षेत्राण्वा च । सकलं सर्वं त्रायन्त इति सकलत्राः । ब्रह्म वेदं चरन्ति आनन्त्यचरयम् । 'ब्रह्मचारिभिरपि सकलत्रैः' इति पाठे ब्रह्मचारिभिर्विरुद्धकामे । अनियोनागन्तूम्, कुशाश्च लान्ति स्वीकुर्वन्ति । नाम वेदः साम च । दण्ड आयाशा दमन च । तावपयो यजुर्वेदमार्गः शालम्बय पन्थाश्च । एकमार्गैश्चंतुर्भिः । सर्वत्रापिर्विरोधार्थे । स तु प्रतीयमानध्वनया । पुनरप्येकत्र । वणिग्भिरधिष्ठितम् । द्रोणो मानं कौरवगुरुश्च । सूत्रादिमानं गृहादीनां तिर्यग्धारणस्तम्भश्च तुला । अनुमेय कणादि तस्यानुमानमुद्दिशानम् । पक्षे अनुमीयते तदनुमेयम् । अनुमीयतेऽनेन तदनुमानम् । यथाऽयं वह्निमान्धूमवत्त्वादित्यत्र धूमोऽनुमानम् । वह्निरनुमेयं द्रव्यत्व रूपकादयस्तुगुण सकलता तत्कर्मविशेषविद्या । पक्ष द्रव्यागुणागुणकर्मविशेषा पदार्थाः । रूप टङ्करूपकादिनामक शाद्व्रश्च । कपर्दो वराटो जटाबन्धश्च । एकत्र । कर्णान्दासीभिर्भरितम् । कुत्सयो रूपेण लोभितलोका । शाल्वदुम्बर्दिखातु कुत्सितेन चरणा ग्रामादिनोपस्थामितलोका । सप्तमुनिभूतशीलाभि । पञ्च सप्तपतिगणानि वृत्तानि यासु । यतिविरति । गणा सगणाद यो ऽष्टौ । वृत्त पद्मम् ॥ रजनी हरिद्रा निशा च । रागो वर्णान्तरारोपणमासक्तिश्च । कर्कोट हि हरिद्रेचाङ्गरागः । मुखं जघने च चपला । आर्या साध्वी मात्रावृत्तभेदश्च तना नत्र्यांग । नापिविराध । मुखजघनचपलाशब्दस्यार्थद्वयपर्याचि वात् । एकत्र । कुलाले कुम्भकारे कुत्सितटाल्या चार्कीमय । कुचैस्तरुणी राजितम् । पक्ष कुत्सितज्ञाया जितम् । एकत्र । गृहश्रेण्या भूषितम् । प्रवर्धमाने सकलैकलावद्भिः शिशुभिर्डिम्भैः शोभितया । तथा विन्यस्ता स्वस्तिका मौक्तिकादिरचिताश्चतुष्का यस्याम् । सर्वत इति मित्रम् । भद्राणि वास्तुशास्त्रप्रधानानि भूषण यस्याम् । यदि वा स्वस्तिकवर्धमानौ गृहावयवविशेषौ । पक्षे शिशुः सकलः स्वस्तिको वर्धमान सर्वतोभद्र इत्यादयानि पञ्च पद्मानि । एकत्र देवकुलैः संकुलम् ।

पताका ध्वजवास सैवाङ्को येषाम्। तथा सन्धिषु सगतानि। अविभाज्यसन्धी निश्चयं। नाटकेषु तु मुख्यनायकोपरि उपनायकचरितं पताका। अङ्क प्रबन्धविभाग। मुख प्रतिमुख-गर्भ अवमर्श निर्वहणाख्या पञ्च सन्धय। कूट शिखर कपट च। सुधां लेपविशेषमियति प्राप्नुवन्ति। पक्षे शोमना धारा येषाम्। विचित्रैरनेक प्रकारै। ■ विगतचित्रै। न तुला साम्य येषाम्। तथा तुलया धारणस्तम्भेन सह। उभयत्रापिविरोधे। विशाल विस्तीर्णम्। व्यपेतशालम्। शाला गजालय। चत्वारश्चरणा ऋग्वेदादय। अपि चेति विरोधे। तथा रणेन युद्धेन रहितम्। विड म्बितैः संवृतम्। न विद्यामि। चत्वर चतुष्पथम्। प्रकृतिरमात्यादि। विरोधस्तु चत्वरे चकारस्य समुच्चयार्थस्य पूर्वपदेन योगे॥

उस दक्षिण देश के भीतर वैदर्भ मण्डल को अलकृत करने वाला कुण्डिन नामक नगर है। वह उपद्रव रहित नगर इन्द्रपुरी से भी प्रतिस्पर्धा रखता है। खाइयों से घिरे हुए उत्कृष्ट एवं मनोहर उपवनो से आलिङ्गित बहुत से गगन चुम्बी भवनों के शिखरो के विस्तार ने सूर्य-रथ के घोडो के वेग को भग कर दिया है। जहाँ के ब्राह्मणो ने एक जगह अग्निहोत्र मन्त्र की पवित्र आहुति से स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी ( भौम ) सबधी उत्पात समूह को नष्ट कर दिया है। मन्यु ( क्रोध ) करके भी मन्यु ( क्रोध शू य ) हैं। विरोध। म यु ( यज्ञो ) को किए हैं मन्यु ( क्रोध ) से शून्य है। परिहार सूक्तो को बोलते हैं फिर भी निरुक्त ( न बोलने ) में तत्पर हैं। विरोध। सूक्तो ( पुरुषसूक्त श्रीसूक्त आदि स्तोत्रो ) का पारायण करते हैं तथा निरुक्त शास्त्र के अध्ययन म तत्पर हैं। परिहार। सन्मार्ग ( सुन्दर मार्ग ) पर ठहरे हैं फिर भी घर मे बैठे हैं। विरोध। स मार्गस्थ ( सदाचार का पालन करते हुए ) गृहस्थ हैं। सकलत्र ( स्त्री के साथ ) हैं फिर भी ब्रह्मचारी हैं। विरोध। सकलत्र ( सभी लोगो के त्राण ( रक्षा ) करने वाले ) ब्रह्मचारी ( ब्रह्मविद्या के उपासक ) हैं। तिथि ( पञ्चाङ्ग ) विद्या का पर्याप्त अभ्यास किये हैं फिर भी अतिथि कुशल ( तिथि विद्या मे निपुण नहीं ) हैं। विरोध। अतिथि सेवा मे कुशल है। परिहार। साम ( शान्त ) प्रयोग मे निपुण हैं फिर भी दण्ड नीति का अवलम्बन लेने वाले हैं। विरोध। सामवेद का गान करते हैं तथा पलाशदण्ड धारण करते हैं। शतपथ ( सैकड़ो मार्गो ) का अनुसरण करते हैं फिर भी एक ही रास्ते से चलने वाले हैं। विरोध। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार आचरण करते हैं तथा एक मार्ग ( नीति ) से चलने वाले ब्राह्मणो से समन्वित हैं। कौरव जैसे द्रोण ( द्रोणाचार्य ) पुरस्सर थे वैसे ( वे ब्राह्मण ) भी द्रोण ( मनस्विता ) से युक्त हैं। प्रासाद ( महल ) जैसे तुलाधारी ( तिरछे स्तम्भ को धारण करता है ) वैसे वहाँ के बनिये लोग तुला ( तराजू ) धारण करते हैं। नैयायिक जैसे अनुमेय और अनुमान ज्ञान म पटु है। वैसे वे ( बनिये ) भी अनुमेय ( वस्तुओं के

उद्देश्य, फल, भाव आदि का ज्ञान करने में निपुण हैं। वैशेषिक दर्शन के जानकर लोग जैसे द्रव्य, गुण, कर्म विशेष आदि तत्त्वों के विशेषज्ञ होते हैं वैसे द्रव्य (रुपये) के अनुकूल ( कर्मविशेष व्यापार ) के जानकार होते हैं। वैयाकरण जैसे रूपसिद्धि ( शब्दसाधन ) को मुख्यता देते हैं वैसे वे भी रूपसिद्धि ( मुद्रा स्वर्ण आदि ) के साधन में लगे रहते हैं। रुद्र जैसे अनेक गाँठो को देकर अपनी कपर्दक ( जटा ) बाँधते हैं वैसे वे भी अनेक गठरियों में कपर्दक ( कौड़ी ) बाँधे हुए हैं। अनेक बनिये लोगों से वह स्थान सनाथित है। धूर्त वाममार्गी शाक्तों की दम्भ ( अहङ्कार ) भरी दीक्षा में कुचरु ( माष आदि से पूर्णपात्र ) द्वारा जैसे लोग लोभित ( आकृष्ट ) कर लिए जाते हैं वैसे अपने कुच-रूप ( स्तन सौन्दर्य ) से जन सामान्य को क्षुब्ध कर देने वाली, असमर्थ कवि की काव्यशैली जैसे यतिगण तथा छन्दोभङ्ग आदि दोष से युक्त होती है वैसे यतिगण वृत्त ( मुनि समूह ) के शील को भंग कर देने वाली रजनि रागिणी ( रात में ही रागिणी ) होती है वैसे वे भी रजनी ( हल्दी ) से रागिणी ( अङ्गराग लगाने वाली ) मुख तथा जघन से चंचल अनार्य कर्णाटदासियों से कहीं सनाथित है। बालक जैसे कु ( खराब ) लाल ( लार ) से युक्त होते हैं वैसे वह ( नगर ) भी कुलाल ( कुम्भकारों ) से व्याप्त है। बुढ़ापा जैसे कु ( खराब ) जरा ( जीर्णता-दुर्बलता ) से आक्रान्त रहती है वैसे वह ( नगर ) भी कुज ( वृक्षों ) से अलङ्कृत है। जैसे चित्र विद्या जैसे बहुत से उदीयमान शिशुओं से सुशोभित, स्वस्तिक चिह्न विधान की विधि से युक्त सर्वतोभद्र वेदिका निर्माण विधि से अलंकृत रहती है वैसे उस ( नगर ) की भवनपंक्ति भविष्णु शिशुओं से सुशोभित है, मोती आदि के चूर्ण से चारों ओर स्वस्तिक चिह्न बने हैं। भद्र ( वास्तु शास्त्र में प्रसिद्ध ) भूषणों से भूषित हैं। नाटक जैसे पताका, अङ्क और सन्धियों से युक्त होते हैं वैसे वह (नगर) भी पताका ( झंडा ) रूप अङ्क ( चिह्न ) तथा सन्धियों से युक्त हुए किरात ( व्याध, शबर ) जैसे कूटकर्म (कपट व्यापार) को देखे रहते हैं उसी तरह वे ( मन्दिर ) भी अपने कूट ( शिखर ) से कर्मों को देखे हुए हैं। शस्त्र जैसे सुधार सुन्दर धार वाले होते हैं वैसे वे ( मन्दिर ) भी सुधार ( चूने से लिप्त ) हैं अथवा सबका सुधार करने वाले हैं ( अर्थाशाचक् ) विचित्र ( विगत चित्र ) हैं फिर भी सचित्र ( चित्रयुक्त ) हैं। विरोध। विचित्र ( अनेक ) प्रकार के चित्रों से युक्त हैं। परिहार। तुला युक्त हैं फिर भी तुलायुक्त नहीं है। विरोध। तुला ( स्तंभ ) युक्त हैं तथा अतुल ( अतुलनीय ) हैं। परिहार। इस तरह के देव कुलों ( मन्दिरों ) से वह नगर सकीर्ण हो गया है। विशाल ( हाथी आदि की रहने की जगह ) नहीं है फिर भी शाल ( हाथी आदि की रहने की जगह ) से सम्पन्न है। विरोध। विशाल ( बहुत बड़ा )

तथा शाला ( अश्वशाला हस्तिशाला आदि ) से सम्पन्न है। परि चार चरण वाले पदार्थ से युक्त है फिर चरण रहित है। वि० । चतुश्चरण ( ऋग्वेद आदि वेदो ) से युक्त है और (च) रण ( लडाई ) के वातावरण से रहित है। परि० । विट् ( विष्ठा ) से भरा है फिर भी शुचि ( पवित्र ) मार्ग वाला है। वि० । विट् ( वैश्यो ) से भरा है और पवित्र मार्ग वाला है। परि० । सब जगह ( च ) त्वराधिकता ( जल्दीबाजी ) है फिर भी स्थिरप्रकृति ( स्थिर स्वभाव वाला ) है। वि० । सब जगह चत्वराधिकता ( चौराहो की अधिकता ) है और स्थिर प्रकृति ( मन्त्री आदिराज्य प्रकृति स्थैर्यसम्पन्न ) है। परि० । स्नान करती हुई महाराष्ट्र की सुन्दरियो के मुख मण्डल के प्रतिबिम्ब से जिसमे, खिले हुए कमल की शोभा उत्पन्न की जा रही है, ऊँची लहरियो और पूर्ण विकसित अर्जुन ( सफेद ) कमलो तथा सुन्दर हसो से जिसका जल सुन्दर लग रहा है, ऐसी वरदा नदी के तट पर रमणीय रसो का पात्र कुण्डिन नाम का नगर है ॥

यस्य नातिदूरे दर्शनदूरीकृतदुरितोपप्लयाऽऽप्लवनजनितपातकभङ्गां गङ्गामुपहसन्ती स्वर्गमार्गाश्रयनिश्रेणी पुण्यपयाः पयोष्णी वहति ॥

यस्येति ॥ यस्य ( पुरस्य )। नातिदूरे ( निकटे )। गङ्गा स्नानात्पुण्यहेतु । पयोष्णी तु दर्शनादपीत्यस्या विशेष ॥

जिसके थोडी पर दर्शन से ही पाप समूह को दूर कर देने वाली, स्नान से पापो को चूर्णित कर देने वाली गङ्गा का उपहास करती हुई स्वर्गमार्ग की सीढी पयोष्णी नाम की नदी बहती है ॥

यस्य च पश्चिमदेशे प्रणतसुरासुरमौलिनीलमणिमरीचिचञ्चरीकचक्रचुम्बितचरणाम्भोजस्य भोजकटकूपजन्मनो जरापासितययातेः प्रचण्डदण्डदाण्डिक्यखण्डनाडम्बरितगण्डपाषाणविदलितवैदर्भमण्डलस्य भगवतो भार्गवस्याश्रमः ॥

यस्य चेति ॥ भार्गव शुक्र । भोजकटकूपेति अधिष्ठाननाम । तत्र जन्मास्येति । तथा च श्रुति —'शुक्रो भोजकटेऽभवत्' । कूपादिप्रसिद्धया हि अधिष्ठान नामानि दृश्यन्ते । तथा च मरुदेशे शिवकूप किराटकूपो जाङ्गलकूप इत्याद्यधिष्ठान नामानि । वृषपर्वदैत्यसुतां शर्मिष्ठां शुक्रसुतां देवयानीं च ययातिनृपतिरुपयेमे । ततोऽसौ शर्मिष्ठाप्रीत्या देवयानीमवजानन् 'सर्वाङ्गे जरा पततु' इति शुक्रेण शप्त । तथा दाण्डक्यो नाम भोजकटदेशाधिपः शुक्रसुतामरजसं पथिप्रि किल हठाद्द्विजकन्यां परिणीतवान् । इति परिभूतंमन्येन शुक्रेण मन्युना पाताष्टशैलगण्डवृष्टिना स वैदर्भमण्डलो हत ॥

इसके पश्चिम ओर भगवान् भार्गव का आश्रम है, जिनके चरण कमल पर ( देवताओं और दानवों के सिर पर लगी हुई नीलमणिकान्ति भ्रमरी का पुञ्ज झूम रहा है, मोजकट देश में उत्पन्न होने वाले ययाति राजा के ऊपर बुढ़ापा को जिन्होंने हठात् गिरा दिया है, बहुत प्रचण्ड शासन करने वाले दाण्डिक्य राजा को दण्ड देने के लिये पाताल पर्वतों की चोटियों की वर्षा कर वैदर्भ देश को जिन्होंने नष्ट कर दिया है ) ॥

[ राजा ययाति वृषपर्व नामक दैत्य की लड़की शर्मिष्ठा और भार्गव ( शुक्राचार्य ) की लड़की देवयानी से विवाह किये थे। ययाति का प्रेम शर्मिष्ठा के साथ अधिक था। इस प्रसंग में कभी-कभी अपमान भी हो जाता था। शुक्राचार्य अपनी लड़की का अपमान देखकर ययाति को शाप दे दिये "जाओ तुम्हारे ऊपर बुढ़ापा का आक्रमण हो जाय। )

भोजकट देश के राजा दाण्डिक्य अरजा नाम की शुक्राचार्य की लड़की से बलात् विवाह कर लिया। शुक्राचार्य इस अपमान को न सह सके। अतः उन्होंने पर्वत शृङ्गों की वर्षा कर उसके देश को नष्ट कर दिया ॥

यत्र च विपत्त्राः सन्ति शाखिनो न तु नराः, विजृम्भमाणकमलानि सरांसि न जनमनांसि, कुवलयालंकाराः क्रीडादीर्घिका न सीमन्तिन्यः, विपदाक्रान्तानि सरित्कूलानि न कुलानि ॥

यत्रेति। विपद्धातुपत्त्र इति विपत्त्रा सन्तः न तु नरा विपन्नाः। एवं विकच-कमलानि। न तु कस्यापि मनो विजृम्भमाणं प्रसरन्मलं पापं यस्मिन्निति। यद्विश्व— 'मलं किट्टे पुरीषे च पापे च कृपणे मतः।' कवलयं सरोजं कुत्सितवलयं च। वीना पदैराक्रान्तानि कूलानि। कुलानि तु न विपदा विपत्त्या ॥

जहाँ साधु लोग विपत्र ( विपत्ति में वास करने वाले ) हैं, पर विपत्र ( पत्रहीन ) नहीं हैं। सरोवरों में कमल विजृम्भित ( विकसित ) हो रहे हैं, किसी मानव के मन में क ( कुत्सित ) मल का विकास होने नहीं पाता। क्रीडासरों के अलङ्कार कुवलय ( कमल ) हैं, सौभाग्यवती स्त्रियों का अलङ्कार कु ( कुत्सित ) वलय ( कङ्कण ) नहीं है। वि+पद् ( पक्षियों के चरणों ) से आक्रान्त नदियों के तट हैं, किसी का कुल विपद् (आपत्ति) से आक्रान्त नहीं है ॥

*किं बहुना—*

देशानां दक्षिणो देशस्तत्र वैदर्भमण्डलम् ।
तत्रापि वरदातीरमण्डनं कुण्डिनं पुरम् ॥ २८ ॥

देशों में ( महान् ) दक्षिण देश, उसमें भी ( रमणीयतम ) विदर्भ ( बरार ) उसमें भी वरदा तीर को अलङ्कृत करने वाला कुण्डिन नाम का नगर है ॥ २८ ॥

तत्रास्ति समस्तरिपुपक्षक्षोददक्षदक्षिणक्षोणीपालमौलिमाणिक्यनिकषनिर्मलितचरणनखदर्पणश्चतुरुदधिपुलिनचक्रवालवालुकासंख्यसंख्यविख्यातकीर्तनीयकीर्तिसुधाधवलितवसुंधरावलयो निजभुजपञ्जरान्तरनिरुद्धशारिकायमाणरणरङ्गाङ्गणार्जितोर्जितजयश्रीः, यौवनमदमत्तकान्तकुन्तलविलासिनीनयननीलोत्पलदलमालार्च्यमानलावण्यपुण्यप्रतिम, रविरिव नासत्यजनक, पुरंदर इव नाकविख्यात, गरुत्मानिव नागमाधिक्षेपी, पद्मखण्ड इव नालसहित, व्याकरणप्रबन्ध इव नामसंपन्न, धाम धाम्नाम्, आधारो धीरतायाः, पुरं पुरुषकारस्य, आश्रय श्रेयसा, श्रिया श्रुतीनां च, राजा रणाङ्गणेष्वगणितभीर्भीमो नाम ॥

तत्रेति ॥ तत्र कुण्डिने रिपुपक्षक्षोदप्रवीणानामप्यनुकूलानां राज्ञां मौलिमणिनिकषनिर्मार्जितनखादर्शः । तथा चतुरुदधिद्वीपपुञ्जवालुकावदसंख्यमध्येष्वनेकरणेषु विख्यातकीर्त्यैव सुधया धवलितभूमण्डल । तथा जयश्री सारिकोपमा यस्य । एवंविधो भीमो नाम राजास्ति ॥ कुन्तलस्य देशविशेषस्य विलासिन्य लावण्यमेव पुण्यप्रतिमा । रविरिवेति । सर्वत्र नेति भिन्नम् । असत्यवक्ता न । अकविषु कुकविषु न प्रतीत । आगमान्शास्त्राणि न तिरस्करोति । अलसेभ्यो हित । आलेनानर्थेन सहितो वा न । आमेन रोगेण न युक्त । पक्षे नासत्ययोर्देववैद्ययोर्जनक पिता । नाकः स्वर्गः नागानां सर्पाणां मां लक्ष्मीमधिपतिं लुम्पति । नाक काण्डम् । नाम प्रातिपदिकम् ॥

वहाँ भीम नाम का राजा हैं उसके पदनख समस्त शत्रु पक्ष को नष्ट कर देने मे प्रवीण एवम् उदार दक्षिण नरपतियो के मणिनिकष स्वरूप शिर से दर्पण की तरह निर्मल बना दिये गये हैं, चारो समुद्र के तट मडल पर छोटे छोटे बालुओ के कण की तरह असख्य, प्रसिद्ध एव वर्णनीय कीर्ति सुधा से उसने पृथ्वी मण्डल को स्वच्छ कर दिया है। रणाङ्गण के रङ्गमञ्च पर उद्दीप्त विजयलक्ष्मी को जीतकर अपने बाहुदण्ड रूप पिंजडे में शारिका की तरह पकड कर रक्खा है। यौवन से मदमाती कुन्तल देश की मनोहर रमणियों के नयन रूप नीलकमलों की माला से उसकी सौन्दर्यमयी पवित्र मूर्ति पूजित हो रही है। रवि जैसे नासत्य जनक ( अश्विनीकुमार के जनक ) हैं वैसे राजा भी नासत्यजनक ( असत्य का जनक नहीं ) है। पुरदर ( इन्द्र ) जैसे नाक ( स्वर्ग ) मे विख्यात हैं वैस वह भी न + अकवि ( साधारण कवियो म नहीं ) ख्यात ( प्रसिद्ध ) है। गरुड जैसे नाग + मा ( सर्पों की लक्ष्मी ) को समाप्त कर देता है वैसे राजा भी आगम ( वेदो ) का अधिक्षेप ( निन्दा ) नहीं करता है। पद्म खण्ड जैसे नालसहित ( कमलदण्ड से युक्त ) है वैसे वह भी न अलसहित

( आलसी आदमियों का हितकर नहीं ) है। व्याकरणशास्त्र जैसे नाम सम्पन्न ( प्रातिपदिकों से युक्त ) है वैसे वह भी न + आम + सम्पन्न ( रोग से सम्पन्न नहीं ) है। तेजों मे एक विशिष्ट तेज है। धैर्य का आधार है। वीरता पूर्ण कार्यों में अगुवा है। मङ्गलों, सम्पत्तियों और स्तुतियों का आधार है। युद्ध के मैदान मे अधन्यों मे भय उत्पन्न कर देता है ॥

यस्यानवरतमुत्कृष्टालयः क्रीडावनपादपा पौरलोकश्च, अपरुषो दायादा वाग्विभवश्च, विमत्सरा सभासदो देशश्च, विकसद्रुचयोऽङ्गा-वयवाः क्रीडापर्वतश्च अपराजयो मण्डनमणयः सेनासमूहश्च, अगत-रुजो वने विनाशमन्वभवन्नितान्तं रिपवः पुष्पप्रकरश्च ॥

यस्येति ॥ अत्र बहुर्व्वैकस्वरश्लेषः ॥ उपमावर्ज्जेन । अर्थान्तरैरभिमतेन कृष्टा आनीता अलयो यैः । तथोत्कृष्टस्य राज्ञः संबन्धिनः क्रीडार्थं वनवृक्षाः । जनस्तु उत्कृष्ट आलयो गृहं यस्य । अपगता रुड् येभ्यः । पक्षे परुषशब्दस्य नञ्समासे अरूक्ष स्निग्ध इत्यर्थः । विगतो मत्सरो येभ्यः एकत्वे तु विमत्सि पक्षियुक्तानि सरांसि यस्मिन् । विकसन्ती रुचिः कान्तिर्येषु । अन्यत्र द्रुवृन्दस्य चय । अप-गता राजि संधिर्येभ्यः । पक्षे न पराजीयन इत्यर्थः । अगतरुजो आतपीडा शत्रवः । इत आगतोऽन्तो मरणं यत्र यथाभूतं विशिष्टं नाशं बहुतर भयाद्दर्शनं वनेऽनुभूत-वन्तः । हृणः के 'हृत' इति रूपम् । पुष्पप्रकरस्तु पर्वतप्रस्रजो वने नितान्त मूर्ध्नं प्रत्वमनमनुसभूव । अन्वनुभवन्नितान्तमिति शास्तन्या बहुरवैकल्पयो ॥

उसके उपवन के वृक्ष ( अपने सौरभ से ) अलियों ( भ्रमरों ) को खींच लिये हैं और उसके प्रजा लोग उत्कृष्ट आलय ( भवनों ) से सम्पन्न हैं। दायाद भी वहाँ अपरुष ( प्रेमपूर्वक ) रहते हैं और वाणी भी अपरुष मधुर है। सभा के सदस्य लोग विमत्सर ( मात्सर्य रहित ) हैं और उसका देश भी विमत्सर ( मछलियों से युक्त सरोवरों से सम्पन्न ) है। अङ्गावयव विकसद्रुचय ( छिटकती हुई कान्ति समूह से युक्त ) हैं और क्रीडाशैल भी विकसद् + द्रु + चय ( खिलती हुई वृक्ष पंक्तियों से सम्पन्न ) है। अलङ्कारों के मणि अपराजय ( जोड़ से हीन ) हैं। अलङ्कारों में खण्डित मणियों का योग नहीं है। सेनासमूह भी अपराजय ( पराजय प्राप्त करने वाला नहीं ) है। अगत रुज ( पीड़ा सम्पन्न ) शत्रु वन में विनाश का अनुभव किये हैं और अगतरुज ( कान्ति युक्त ) फूलों का वर्ग भी वन में पर्याप्त विनाश का अनुभव किया है ॥

तस्य च कंदर्पकमनीयकान्तेर्मत्ताः करिणः सदामानो न मानिनी-लोकः, कृतविटपानमनाः क्रीडोद्यानतरवो नावरोधजनः, कटकालंकृत-दोषः सीमन्तिन्यो न परिपन्थिकः ॥

तस्य चेति । सह दाम्ना अर्गलेन । पक्षे सदा मानो गर्वो यस्य । विटपानां विस्ताराणामानमन कृत तरौ । अन्यत्र कृत विटानां पाने चुम्बने मनो येन। कटकैर्वलयैरलङ्कृतौ दोषौ बाहू यासाम्। परिपन्थी तु न स्कन्धावारेऽलमत्यर्थं कृतोपद्रव ॥

कामदेव की तरह सुन्दर कान्ति वाले उस राजा के हाथी सदाभान ( अर्गला बन्धन मे युक्त ) है किन्तु मानिनी लोक ( नारीजन ) सदा + मान ( हमेशा मान सम्पन्न ) नहीं रहता । बिहारवन के वृक्ष कृतविटपानमन ( अपनी शाखाओ से नपे हुए ) हैं । अन्त पुरकी स्त्रियाँ विट + पान + मन ( धूर्तों के चुम्बन में मन लगायी हुई ) नहीं हैं । सौभाग्यवती स्त्रियो के हाथ वलयो से अलकृत हैं । कोई परिपन्थी ( विरोधी ) आदमी कटक ( सेना ) मे पर्याप्त उपद्रव न कर सका है ॥ नारियों मे शृङ्गार उत्पन्न करता है अरियो मे नहीं ॥

यस्य च चरणाम्भोजयुगलं विमलीक्रियते नमज्जनेन न मज्जनेन ॥
यः शृङ्गारं जनयति नारीणां नारीणाम् ॥
यः करोत्याश्रितस्य नवं धनं न बन्धनम् ॥
यो गुणेषु रज्यते न रमणीनां नरमणीनाम् ॥

यस्य चेति ॥ नमता जनेन न स्नानेन । एतेन जनानुरागसम्पत्तिः । एवमग्रेऽप्युत्तरपदेषु नञ्संबन्ध ॥

यस्य च नमस्याग्रहारेषु श्रूयते नलोपाख्यानं न लोपाख्यानम् ॥

यस्य चेति ॥ नलस्योपाख्यान भारतप्रतीतम् । नमस्याना पूज्यानां देवद्विजादीनां ग्रामेषु लोपकथा नैव ॥

अपने आश्रितो को नवधन ( नवीन धन ) देता है, बन्धन नहीं देता ॥
नरमणियो ( उत्तम पुरुषो ) के गुणो मे अनुरक्त रहता है रमणियो मे नहीं ॥

पूज्य लोगो के यहां नल का ही आख्यान ( वृत्तान्त ) सुना जाता है । किसी अच्छी कहानी के लोप का वृत्तान्त नहीं सुना जाता ॥

यस्य च राज्ये साक्षरस्य पुस्तकस्य बन्धः, सगुणस्य कार्मुकस्याकर्षणम् , सुवंशप्रभवस्य च्छत्रस्य दण्डः, सुजातेरुद्यानविशेषस्योत्खननम् , कुलीनस्य फन्दस्योन्मूलनारम्भः, सन्मार्गलग्नस्य पुनर्वसुभाजश्चन्द्रस्यैव ग्रहणालोकनमभूत ॥

यस्य चेति ॥ साक्षरः लिखिताक्षर अर्थेसाक्षरश्च । गुणो ज्या शौर्यादिश्च आकर्षणं 'कर्णान्तप्रापणम् आक्षेपश्च । वंशो वेणुरन्वयश्च । दण्डो यष्टिर्दमनं च । जातिर्मालती विप्रादिश्च । उत्खनन वृक्षपुष्पश्च आलवालमार्दवायोत्कृष्टं खननं गोर्दनमिति प्रतीतम् । पक्ष उत्पेषनम् । कुलीन भौ स्थितो हीनोऽभिजातश्च । सद्विद्यमान मृगपदेदं मार्गम् । सन्मार्ग संयोगो यस्य । पुनर्वसु नक्षत्रम् ।

ग्रहणं शङ्कुयोगः। पर्वे सन्मार्गः सदाचारः। पुनरिति मित्रम्। वसुमाञ्जनी। ग्रहणं धारणम्। सखिरसनान्वितो मार्गः। अर्थाश्रम इति वा। व्याख्यानगतिर्यथा। साक्षरस्य वर्णादिनस्य पुस्तकस्यैव बन्धनं न जनस्येति॥

जिसके राज्य में साक्षर ( अक्षरयुक्त ) पुस्तकों को बाँधा जाता है, और किसी को बन्धन में नहीं डाला जाता। गुण ( मौर्वी ) युक्त धनुष् कोटि को ही ( कानों तक ) खींचा जाता है, किसी गुणी व्यक्ति को नहीं खींचा ( घसीटा ) जाता। सुन्दर बांस से निकले हुए ( बांस ) का छत्र दण्ड बनाया जाता है, किसी सुन्दर कुल में उत्पन्न व्यक्ति को दण्ड नहीं किया जाता। सुजाति ( मालती आदि ) पुष्पों के ( पौधों ) को पुष्ट करने के लिये उसके मूल के पास की मिट्टी का खनन किया जाता है, किसी सुन्दर जाति में उत्पन्न व्यक्ति का खनन नहीं किया जाता। कु ( पृथ्वी ) में लीन कन्द को उखाड़ने के लिये यत्न किया जाता है, किसी कुलीन व्यक्ति को जड़ से उखाड़ने का यत्न नहीं किया जाता। मृगशिरा और पुनर्वसु नक्षत्र से संयुक्त चन्द्र पर ही ग्रहण देखा गया है, किसी सज्जन धनी को अर्धचन्द्र नहीं लगाया जाता॥

किं बहुना—

देवो दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलकः कर्णाटकान्ताकुच-
क्रीडादोलमृगः प्रतापकदलीकन्दः स किं वर्ण्यते।
यस्यारातिकरीन्द्रकुम्भरुधिरक्लिन्नासिदंष्ट्राङ्कुरा
शौर्यश्रीर्भुजदण्डमण्डपतले सिंहीव विश्राम्यति॥ २९॥

और अधिक क्या कहें—

( राजा भीम ) दक्षिण दिशा का मुख तिलक है। कर्णाटकदेश की (रमणियों के कुच रूप क्रीडादोली का मृग है ) प्रताप कदली का मूल है। अधिक क्या कहें, उसकी शौर्यलक्ष्मी रूप सिंही उसके भुज मण्डप के नीचे शत्रु रूप गजेन्द्र के कुम्भस्थल के रक्त से तलवार रूप दांतों को आर्द्र कर विश्राम कर रही हैं॥

[ सिंही जैसे किसी गजेन्द्र को मारकर खून से अपने दांतों को लथपथ कर पेड़ के नीचे विश्राम करती है उसी तरह भीम की शौर्यलक्ष्मी उसकी भुजा में शत्रुओं को मार कर तलवार रूप दांतों को रक्त रञ्जित कर विश्राम कर रही है॥ २९॥ ]

तस्य च महामहीपतेरात्मरूपापहसितसमस्तसुरसुन्दरीसौन्दर्य-सारसंपत्तिः सकलकुलकन्दलीकंदर्पदर्पणजेन्द्रायष्टम्भस्तम्भयष्टिरखिलज-ननयनकुरङ्गवागुरा रामणीयकपताकायमानोद्भिन्ननवयौवनश्रीः, शृङ्गारस्यागारम्, अवनिवनिताविभ्रमाङ्कुराणाम्, आभोगः सौभा-

ग्यभागस्य, रङ्गशाला रागवृत्तनृत्तस्य, सर्वान्त पुरपुरंध्रिकाप्रधानभूता ऽस्ति प्रिया प्रियङ्गुमञ्जरी नाम ॥

तस्येति ॥ भीमस्य प्रिया प्रियङ्गुमञ्जरी नामास्ति ॥

उस महाराज ( भीम ) की प्रिया का नाम प्रियङ्गुमंजरी है जिन्होंने अपने सौन्दर्य से समस्त देव रमणियों के सौन्दर्य रूपी उत्तम सम्पत्ति को तिरस्कृत कर दिया है। ( देवाङ्गनाओं के रूपापहास रूप ) कलङ्क समूह के मूल से निकले हुए अङ्कुर का कदली स्तम्भ है।

कामदेव रूपी मतवाले हाथी को रोक रखने के लिए स्तम्भ दण्ड है। समस्त मानव-नयन रूपी मृगों के लिए बन्धन-जाल है। उनकी खिली हुई यौवन लक्ष्मी सुन्दर पताका की तरह ( सर्वोच्च ) है। वह शृङ्गार का भवन है। रमणी सुलभ विभ्रमाङ्कुरों की भूमि है। सौभाग्य के अश का विशाल रूप है। प्रेमात्मक नृत्त की रङ्गभूमि है। अन्त पुर की सभी कुलाङ्गनाओं में प्रधान है॥

यस्या पद्मानुकारिणी कान्तिर्लोचने च, रम्भाप्रतिस्पर्धिनी रूपसंपत्तिरूरुमण्डले च, सुमनोहारिणी केशकबरी भ्रूभङ्गचक्रे च, भ्रमरकोल्लासिनी ललाटपट्टिका कर्णोत्पले च, प्रवालकाकारिणी धृन्तच्छदच्छाया करचरणयुगले च ॥

यस्या इति ॥ अत्रप्रथमैकारद्वितयो स्त्रीक्लीबयोश्च श्लेष । सर्वत्र मान्तत्वात्। पद्मा श्री पद्ममब्जम् । रम्भा अप्सरोऽन्तर कदली च। सुमनस पुष्पाणि । पक्षे सुशब्देन समास । भ्रमरक ललाटस्थमलक भृङ्गश्च प्रवालो विद्रुम पल्लवश्च ॥

जिसकी कान्ति तथा लोचन दोनो कमल की तरह हैं। रूप सम्पत्ति रम्भा ( स्वर्गीय अप्सरा ) से स्पर्धा करती है तथा ऊरु ( जंघा ) मण्डल रम्भा ( केलो ) से स्पर्धा रखते हैं। केशो की वेणी सुमनोहारिणी ( फूलों से ग्रथित ) है, भौहों की भंगिमा भी सुमनोहारिणी ( मनोहर ) है। ललाटभ्रमरक ( बालो ) से सुशोभित हैं। कानों में लगे हुए कमलभ्रमरों से सुशोभित हैं। प्रवाल ( मूँगों ) की तरह दन्तकान्ति है। हाथ-पैर भी प्रवाल ( किसलय पत्र ) की तरह है॥

यस्या सुवर्णमयं वचनं नूपुरं च पदे पदे मनो हरति ॥

यस्या सुमधुरया वाचा सदृशी शोभते कण्ठे कुसुममालिका। अलिकालयाऽप्यलकवल्लरीमालया सह विराजते तिलकमञ्जरी ॥

यस्या इति ॥ सुष्ठु वर्णोऽकारादि सुवर्णं च। तेन निर्वृत्त पदं प्रकृतिविभक्ति समुदाय पादन्यासश्च ॥

यस्या इति ॥ अत्र तृतीयाप्रथमयो श्लेष । सुष्ठु मधुनो मकरन्दस्य रस

प्रसरो यत्र। अलिकं ललाटमालयं स्थानमस्याः सा तिलकमेव मञ्जरीति रूपकम्। तृतीयापक्षे अलिवत्कालो वर्णो यस्याः। यदा त्वलिवत्कालेति क्रियते तदा दीर्घप्रमज्येत ॥

जिसका सुवर्णमय ( सुन्दर वर्णों से संयुक्त ) वचन तथा सुवर्णमय ( सुवर्ण से बना हुआ ) नूपुर ( चरणभूषण ) प्रत्येक पद पर मन का हरण करता है ॥

जिसकी सुमधुर वाणी की तरह सु-मधु-रया ( सुन्दर पराग राशि वाली ) पुष्पमालिका कण्ठ में सुशोभित होती है। अलिक ( ललाट ) ही है आलय ( घर ) जिसका वह तिलक रूप मञ्जरी अलिवल्लरी ( बालरूपी लता ) के साथ अच्छी लगती है। अथवा—अलियों ( भ्रमरों ) का आश्रय तिलक ( वृक्ष ) की मंजरी अलक ( केशों ) की वल्लरी ( वेणी ) के साथ सुशोभित हो रही है ॥ २९ ॥

किं बहुना—

तस्याः कान्तिनिरुद्धमुग्धहरिणीलीलाचलच्चक्षुष-
स्तारुण्यस्य भरादनालसलसल्लावण्यलक्ष्मीरसः।
लुब्धल्लोकविलोचनाञ्जलिपुटैः पेपीयमानोऽपि स-
न्नङ्गेष्वेव न माति सुन्दरतरो रङ्गंस्तरङ्गैरिव ॥ ३० ॥

तस्या इति ॥ आ समन्ताद्लस आलसः। पश्चान्नञ्योगः। तस्या लावण्यलक्ष्मीरसः सुन्दरतरत्वात्तरङ्गै रङ्गन्निवाङ्गेष्विव। रसो हि भराद्विहो लसति तरङ्गैश्च रङ्गति ॥ ३० ॥

अपने सौन्दर्य से पूर्ण मुग्ध हरिणी के विलासकालीन चञ्चल नेत्रों की तरह नेत्रवाली उस नायिका के सौन्दर्य की पूर्णता तथा आलस्यहीनता से सौन्दर्य लक्ष्मी का रस उल्लसित हो रहा है। सस्पृह लोग अपनी नयनाञ्जलि से उस रस को बार-बार पीते हैं फिर भी वह अतिशय सुन्दर ( सौन्दर्य ) रस उसके शरीर में सदा तरंगित होता हुआ अंगों में अँटता-सा नहीं है ॥ ३० ॥

एवमनयोः सकलसंसारसुखरसास्वादमुदितमनसोर्यान्ति दिवसाः ॥

इस तरह संपूर्ण संसार सुख के रसास्वादन से प्रसन्न चित्त वाले इन दोनों के दिन ( सकुशल ) बीत रहे हैं ॥

कदाचिच्चटुलतरतरुणषट्चरणचक्रचुम्बनाक्रमणभरभज्यमानमञ्जरीजालगलदमन्दमकरन्दबिन्दुकर्दमितेषु विविधाङ्गविहङ्गविहारविदलितदलदन्तुरान्तरालेषु स्मरबन्धुसुगन्धिगन्धवाहवाजिवाह्यालीषु वरदायाः पुण्यपुलिनपालिपादपतलेषु रममाणयोः परिपतेन्द्रवारुणारुणकपोलकान्तिरुद्घुषितदेहपिण्डकण्डूयनाकूततरलितकरकिसलया बालकमेकमुदरदेशलग्नमपरमपि पृष्ठप्रतिष्ठितमुद्वहन्ती कापि कपिकुटुम्बिनी दृष्टिपथमवातरत् ॥

-कदेति ॥ मधुबिन्दुकर्दमवासु। पर्णदन्तुरमध्येषु। सुगन्धिगन्धवाह एव वाजी तस्य बाह्यालिप्रायेषु। वरदातरुतलेषु क्रीडतोरभुयोः कपिपत्नी इन्द्रवारुणीफलपिङ्गगण्डकान्तिर्वानरी नयनपथं गता इत्यर्थः ॥

किसी समय अत्यन्त चचल युवक भ्रमरो ने मञ्जरियो के चुम्बन के लिए आक्रमण किया। पराग-कोष को भग्न कर दिया। उससे (मञ्जरी) से जोरो से पराग बिन्दु की धारा निकली और (वरदा नदी के तट प्रदेश के पेडो को) पकिल बना दिया। विभिन्न अङ्गो से विहङ्गो ने विहार किया। इस लिए उनका कोई एक देश दन्तुर (ऊँचा-नीचा) हो गया। कामदेव के हाथी सुगंधित वायु रूप घोडे के लिए बाह्याली (विश्राम गृह रूप) वरदा नदी के पवित्र तट पक्ति के पेडो के नीचे विहार करते हुए दम्पती को दृष्टि मे एक पके हुए इन्द्रवारुणी फल की तरह लाल कपोल कांति वाली चमकीली देह को खुजलाने की उत्कण्ठा से नवीन पत्र जैसे चञ्चल हाथो वाली एक बच्चे को पेट मे सटाई हुई तथा दूसरे को पीठ पर रख कर डोली हुई कोई वानर-पत्नी दिखायी पडी ॥

तां चावलोक्य चेतस्यास्पदमकरोत्तयोरनपत्ययोर्विषमविषादवेदनाव्यतिकरः ॥

तामिति ॥ तां च वीक्ष्य विषादव्यथासंपर्को हृदि पदमकरोत् ॥

उसे देखकर उन सन्तानहीन दपतियों के चित्त मे असह्य वेदना के संस्पर्श ने घर कर लिया ॥

करपत्रधाराकर्तनदुःसहदुःखदूनमनसोर्मनस्यमभूद् भूमिन राज्ये जने जीविते च। किमनेनाधिपत्येनापत्यशून्येन ॥

आरा से काटने से जैसा दुःख होना है वैसे दुःख का अनुभव करते हुए दम्पती का विशाल राज्य, परिजन तथा अपने प्राणों से भी मन हटने लगा। सन्तान से हीन इस आधिपत्य से क्या लाभ ॥

सर्वथा सकलसुरासुरकिरीटकोटीकोणशोणमणिमरीचिचञ्चरीकचुम्बितचरणाम्बुजमम्बिकाप्रियं प्रतिपद्यामहे महेश्वरमित्यन्योन्यमालोचयांचक्रतुः ॥

समस्त देवताओ तथा दानवो के मुकुट के ऊपर के एक भाग मे लगे हुए लाल मणि की कान्ति रूपी भ्रमर द्वारा जिनका चरण-कमल चुम्बित है तथा जो महेश्वर (सबसे बडे स्वामी) हैं ऐसे अम्बिका (पार्वती) प्रिय भगवान् शकर की सब तरह से आराधना करेंगे ऐसा कहते हुए एक दूसरे को देखे ॥

अथ विपुलवियद्विलङ्घनश्रमप्रशमनार्थमरुणेन वारुणीं प्रतिपानार्थमिवावतार्यमाणेषु रविरथतुरंगमेषु, अपरासक्ते दिवसभर्तरि शोकभरा-

दिव तमःपटलेनापूर्यमाणामाश्वासयितुमिव पूर्वां दिशमभिधावमानासु पादपच्छायासु, हारीतहरितहरिहारिभिस्तरणेररण्यान्तराय मन्दमपवर्त्तमानेषु गोमण्डलेषु, अस्ताचलवनदेवतादत्तरक्तचन्दनार्घसलिलप्लवप्लाव्यमान इव लोहितायति पश्चिमाशामुखे, वारविलासिनीभिः कपोलमण्डलीमण्डनाय क्रियमाणेषु पत्त्रभङ्गेषु, भयेनेव पादपैः प्रारब्धे पत्त्रसंकोचकर्मणि, विघटिष्यमाणचक्रवाककामिनीकरुणकूजितव्याजेन दिवसमनुरस्ताचलगमनं निवारयन्तीभिरिव विरहविधुराभिः कमलिनीभिर्निधीयमानेषु प्रार्थनाप्रणामाञ्जलिपुटेष्विव कमलमुकुलेषु, क्रमेण पश्चिमाम्भोधितरङ्गान्तरतस्तरुणतरताम्रतामरसानुकारिकम्पमानरश्मिमञ्जरीजालजटिलमवलोक्य तपणिमण्डलमतिसंभ्रमभ्रमपुञ्जमर्पनिकुरम्ब इव प्रधावमाने दूरं तिमिरपटले, कृष्णागुरुपङ्कपत्त्रभङ्गभूष्यमाणेष्विव दिगङ्गनामुखेषु, कोकिलकलापैराक्रम्यमाणेष्विव वनान्तरेषु, पिकचकुवलयदलमेचकरुचिभिरिव श्यामलीक्रियमाणेष्विव सलिलाशयेषु, तापिच्छगुच्छच्छायाच्छाद्यमानास्विव घनवृतिषु, नृत्यत्कलापिकुलकलापैः कालीक्रियमाणेष्विव शैलशिरःशिलातलेषु, कज्जलालेख्यचित्रचर्च्यमानास्विव भवनभित्तिषु, विरहिणीनिःश्वासधूमश्यामलीक्रियमाणेष्विव पान्थावसथेषु, कस्तूरिकासलिलसिच्यमानास्विव कामुकविलासवासवेश्मवाटीषु, मदान्धसिन्धुरनिरुध्यमानेष्विव नृपभवनाङ्गनेषु, कलितकालकञ्चुकायामिव गगनलक्ष्म्याम्, मदनशरनिकरविद्रुतदरिद्रविटविषादानलस्फुलिङ्गेष्विव रक्तरसु ज्योतिरिङ्गणेषु, काञ्चनासु तिमिरकरिकुम्भभेदमल्लीष्विव निशितासु प्रदीप्यमानासु प्रदीपकलिकासु, प्लवमानपाण्डुपुण्डरीककल्माषितकालिन्दीपरिस्पन्दसुन्दरेऽमृतमथनक्षणक्षुभ्यत्क्षीरसागररसबिन्दुस्पर्शकितनारायणवक्षःस्थल इव कांचिदपि श्रियं कलयति ताराविराजिते वियति, विटवृन्दमनुसरन्तीषु वेश्यासु वेश्मपारावतपतत्रिपंक्तिषु च, भ्रमरसक्तासु कुलटासु कुमुदिनीषु च, नदीपालिविघटितेषु चत्वरेषु चक्रवाकमिथुनेषु च, जाते जरद्गवयकायकालकान्तिकाशिनि निशावतारे, तरुणतमालकाननमिवाञ्जनगिरिगुहागर्भमिवेन्द्रनीलमणिमहामन्दिरोदरमिव विशति सकलजीवलोके स लोकेश्वरः 'प्रिये प्रियङ्गुमञ्जरि, प्रसादय प्रणतप्रियकारिणमङ्गानङ्गदर्पहरं हरम्। अहं च तदाराधनविधानमनुविधास्यामि' इत्यभिधाय यथावासमयासीत्॥

भयेनेति॥ अथानन्तरं श्रमवशात्स्वयं वारुणीं पश्चिमां प्रति लक्ष्यीकृत्य नीयमानेषु रविरथाश्वेषु। प्रतिपानपक्षे वारुणी सुरा। अपरा दिग् अङ्गनान्तरं च।

तमो मोहो ध्वान्तं च। तथा गोमण्डलेषु [किरणौघेषु च। यथासंख्यं रवेर्वनान्त-राच्च मन्दं चलमानेषु। दृषदपि कीदृगुपात्। हारीता शुकाभाः पक्षिणस्तद्वद्धरिता नीला ये हयपोऽश्वास्तैर्गच्छति। तस्मात्। वनाच्च हारीतै शुकाभपक्षिभिर्हरितैः शाद्वलैर्हरिभिर्वानरैश्च हारिणो मनोज्ञात्। रक्तचन्दनार्घैः अस्ताचलादवेरेव। पत्र-भङ्गो विलेपनचित्र पत्रवल्लीसङ्गपर्णानां मज्जन च। तथा काश्चिदपि श्रियं शोभां नारायणवक्षसि तु श्रियमब्धिपुत्रीं प्राप्नुवति नक्षत्रालंकृते नभसि। कालिन्दी-परिस्यन्दो नारायणवक्षश्च वियत उपमानम्। पाण्डुपुण्डरीकाणि क्षीररसबिन्दवश्च ताराणाम्। परिस्यन्द प्रस्रवणम्। प्रवाह इति यावत्। विटो भुजग। कान्त पति.। पक्षे पक्षिणामावासयष्टेरुन्नतोऽशो विटङ्कस्तस्यान्त। भ्रमो भ्रमण तत्र रसस्तत्परर्यम्। अन्यत्र भ्रमरा भृङ्गा। नेति भिन्नम। पक्षे नदीनां पालि सेतु.। इतीति, सति स राजा यथावासमयासीत्। किं कृत्वा हे प्रिये, प्रसादय हरमहमपि महाराधनमनुष्ठाय. करिष्यामीत्यभिधाय ॥

विशाल आकाश के लांघने मे जो परिश्रम हुआ था उसको शांत करने के लिए (भगवान्) सूर्य ने वारुणी (पश्चिम दिशा रूपी) नायिका का चुम्बन करने के लिए अपने रथ के घोडो को उतार रहे हैं। सूर्य रूपी पति के दूसरी नायिका मे आसक्त होने से मानो शोक मग्न अधकारसमूह से भरी हुई पूर्व दिशा को आश्वासन देने के लिए पेडो की छाया उसी ओर दौडी जा रही है। हरितो (शुको) की तरह हरित (हरे रग के) हरि (घोडो) द्वारा हारि (ले जाये जा रहे, सूर्य के गोमण्डल (किरणो के) धीरे-धीरे दूसरे अङ्गलो से मुड जाने पर हरित शुको के कारण हरे तथा हरि (वानरो) के कारण हारि मनोहर ढग से ढंके हुए जङ्गलो से गोमण्डल (गायो) के लौट जाने पर, अस्ताचल की वनदेवता द्वारा दिये गये रक्त चदन के अर्घ्य जल मे नौका द्वारा लाल एव विशाल पश्चिम दिशा (रूपी नायिका) के मुख के हैरते रहने पर, कपोल मडल को अलङ्कृत करने के लिए वाराङ्गनाओं द्वारा पत्र रचना करते रहने पर मानो भय से वृक्षो के पत्रो को सकुचित करने लगने पर, वियुक्त हो रही चक्रवाक (पक्षी) की रमणी के करुणा पूर्ण क्रन्दन के बहाने दिनपति (सूर्य) के अस्ताचल गमन को मानो रोकती हुई विरह के कारण खिन्न कम-लिनियो द्वारा अपनी सकुचित मुकुलरूपी प्रणामाञ्जलि [redacted] माध्यम से प्रार्थना किये जा रहने पर क्रम से पश्चिम समुद्र की लहरियों मे तरुण तट (अत्यन्त विकसित) (सूर्य रूपी) तामरस (कमल) की किरण समूह रूपी मकरन्द मञ्जरी के जाल को देखकर सूर्यमण्डल के पास बहुत जल्दी ही अधकारसमूह रूपी भ्रमर समूह के दौडते रहने पर कृष्णागुरू के पङ्क से निर्मित पत्र रचना से दिशा रूपी नायिका मुख के अलकृत हो जाने पर, विभिन्न वनो मे मानो कोकिल समूह के आक्रमण करते रहने पर खिले हुए नील कमल की गाढी

नीली कान्ति राशि से सरोवरों के नीले किये जाते रहने पर, सप्तपर्ण के गुच्छे धरते वन की ज्वालायें मानो देखी जा रही हैं। नाचते हुए मयूरों के पंखों से पर्वतों के उच्चतर शिलाखण्डों के मानो काले किये जाते रहने पर, भवनों की दीवारों पर कज्जल से अंकित करने योग्य चित्र अंकित किये जाते रहने पर, पथिकों का मार्ग विरहिणियों के निःश्वास धूम से काले किये जाते रहने पर, कामुकों के विलासगृह के कक्ष का कस्तूरी के जल से सींचे जाते रहने पर, मतवाले सिन्धुर (हाथियों) द्वारा मानो राजभवन के विभिन्न भागों के घिरे जाते रहने पर, आकाश लक्ष्मी के काली कञ्चुकी (कुर्ती) पहन लेने पर, मान मात्र से सर्वथा विद्ध दरिद्र कामुकों के विषाद (क्लेश) रूपी अग्नि से निकले हुए स्फुलिङ्गों के चमकते रहने पर अंधकार रूपी हाथी के कुम्भ स्थल को छेदने के लिये सोने की बनी तीक्ष्ण भल्ली (अङ्कुश) रूपी दीपकों के ,जल जाने पर तैरते (उतराते) हुए असाम्बु (काले) कमलों से कल्माषित (काली की हुई) कालिन्दी (यमुना) की तरह सुन्दर, अमृत मथन के समय क्षुब्ध (व्याकुल) क्षीर सागर के रत्नकणों से नारायण के वक्षस्थल पर जैसे अपूर्व शोभा हुई थी वैसी शोभा को तारों से युक्त आकाश के धारण कर लेने पर अपने प्रिय मीठे का अनुसरण वेश्याओं के करते रहने पर, घर के पाले हुए कपोत पक्षियों के विटङ्क (कपोत घोसले) में चले जाने पर, कुलटा (स्वेच्छाचारिणी) स्त्रियों के भ्रमरस (घूमने में रस) प्राप्त करते रहने पर तथा कुमुदिनी के भ्रमर सघन (भ्रमर युक्त) हो जाने पर, दीप पंक्ति से चौराहे के विरहित (शून्य) न रहने पर तथा चक्रवाक के जोड़े से नदी पालि (नदी सेतु) विरहित (शून्य) हो जाने पर, वृद्ध गवय (नील गाय) की शरीर कांति की तरह दिखायी पड़ने वाली रात के आ जाने पर सम्पूर्ण संसार के मानो प्रौढ़ तमालवन के जंगल में (या) अञ्जन पर्वत की कन्दरा में (या) इन्द्रनील मणि से बने विशाल भवन में घुसते रहने पर राजा "प्रिये प्रियङ्गुमञ्जरि! प्रणतों (भक्तों) के प्रिय करने वाले, कामदेव के अखंड अहंकार का हरण करने वाले, भगवान् शंकर को प्रसन्न करो। मैं भी उनके पूजन में ध्यान केन्द्रित करूँगा।" यह कह कर अपने निवास स्थान पर चले गये॥

तनश्च—अखण्डितप्रभावोऽथ प्रदोषेणान्धकारिणा।

तस्याश्चित्ते स्थितः शम्भुरुदयाद्रौ च चन्द्रमाः॥ ३१॥

अखण्डितेति॥ शम्भुशशिनो श्लेष। प्रकृष्टदोषेण अन्धकनाम्ना प्रतिपक्षेण। अव्याहतवैभवः। शशी च प्रदोषेण रजनीमुखेन। अन्धत्वविधायिना अन्धकार-युक्तेन वा। न खण्डित- प्रभावा आभा वृद्धिर्यस्य। अत्र अत्र वृद्धपर्यं॥ ३१॥

इसके बाद अत्यन्त दुष्ट अन्धकासुर भी जिसके प्रभाव (महिमा) को खण्डित न कर सका ऐसे भगवान् शंकर उसके चित्त में स्थिर हो गये।

द्वितीय अर्थ—अन्धत्व को लाने वाला प्रदोष ( रात्रि का प्रारम्भिक भाग ) जिसके प्रभा ( प्रकाश ) के आय ( वृद्धि ) को खण्डित न कर सका ऐसे भगवान् चन्द्र उदयाचल पर स्थित हो गये ॥ ३१ ॥

विभ्रते हारिणीं छायां चन्द्राय च शिवाय च ।
नभोगरुचये तस्मै नमस्कारं चकार सा ॥ ३२ ॥

विभ्रत इति ॥ चन्द्रपक्षे हरिणस्येव हारिणी छाया । कलङ्क इत्यर्थः । नभोगा वियद्व्यापिनी रुचिर्यस्य । शिवस्तु हारिणीं छायां कान्तिम् । तथा भोगे विलासे रुचिरभिलाषो यस्य पक्षात्मभोग ॥ ३२ ॥

नभोगरुचि ( आकाश मे अपनी कान्ति फैलाने वाले ) हारिणी ( हिरण का प्रतिबिम्ब ) छाया धारण करने वाले चन्द्रमा को तथा हारिणी छाया ( मनोहर कान्ति ) को धारण करने वाले और भोग मे रुचि न रखने वाले भगवान् शंकर को उसने नमस्कार किया ॥ ३२ ॥

नित्यमुद्वहते तुभ्यमन्तः सारङ्गरञ्जितम् ।
भूतिपाण्डुर गोवाह सोम स्वामिन्नमो नमः ॥ ३३ ॥

नित्यमिति ॥ सहोमया वर्तत इति सोमः तस्य संबोधनम् । तद्विशेषणं स्वामिन्निति । तथा भूत्या भस्मना पाण्डुर शुभ्र । तथा गौर्वृषो वाहनं यस्य । एवंभूत उमापते । अन्तर्मध्ये । सारमुत्कृष्टम् । गरं कालकूटम् । जितं महिम्ना स्तम्भितशक्ति । नित्यमुद्वहते बिभ्राणाय तुभ्य नमो नम । अत्र प्रकर्षं द्विवचनम् । सोमश्चन्द्रोऽपि । तदा भवन भूतिर्जन्म । जन्मना पाण्डुरः स्वभावश्वेत । तथा गा किरणान् वहतीत्यण् । पाण्डुराश्च ता गावश्चेति समासे कृते समासान्तो दुर्घट. । अन्तरिति कर्मपदम् । सारङ्गो मृगस्तेन रञ्जित लाञ्छितमिति तद्विशेषणम् ॥ ३३ ॥

उमा के साथ रहने वाले सोम स्वामिन् ! भस्म से शुभ्र रंग वाले ! बैल को वाहन बनाने वाले, अन्त सार ( आत्मबल ) गर ( विष ) तथा जित ( विशिष्ट शक्ति ) को धारण करने वाले आप को मेरा पुन पुन प्रणाम ।

हे सोम ( चन्द्र ! ) भूति ( जन्म ) से ही पाण्डुर ( सफेद ) गोवाह ( किरणो को धारण करने वाले ) सारङ्गरञ्जित ( मृग से भूषित ) भगवान् चन्द्र आप को नमस्कार है ॥ ३३ ॥

एवं च नातिचिरात् ।

क्षुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्रसलिलोल्लोलैरिव प्लावयँ-
ल्लोकं लोचनलोभतः स्मरसुहृज्जात स चन्द्रोदयः ।
यस्मिन्संभृतवैरदारुणरणप्रारम्भिणो भ्राम्यत
मुद्धोलूककदम्बकस्य पुरत. काकोऽपि हंसायते ॥ ३४ ॥

क्षुभ्यदिति ॥ स धवलिताशेषभुवनतलश्चन्द्रोदय उत्प्रेक्ष्यते । क्षुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्रसलिलोल्लोलैर्लोकं प्लावयन्निव जात. । क्षीरसमुद्रसोमस्य तत्सहचरितत्वात् ॥

इस तरह थोड़ी ही देर में—

क्षीर सागर को खलबलाते हुए गाढ़े जल की तरह संपूर्ण संसार को तैराते हुए आँखों के सुभावने, कामदेव के मित्र चन्द्र का उदय हो गया। जिसमें पर्याप्त शत्रुता के (शोध के लिए) कठिन लड़ाई प्रारंभ करने की कामना से घूमते हुए क्रुद्ध उलूकवर्ग के सामने कौआ भी हंस जैसा दीखता है ॥

(उलूक कौओं से लड़ाई करने के लिए रात को खोजते हैं लेकिन चन्द्रमा की अत्यधिक श्वेत किरणों ने कौओं को भी सफेद कर दिया है। अतः वे भी हंस जैसे प्रतीत होते हैं।) ॥ ३४ ॥

अपिच—श्च्योतच्चन्दनचारुचन्द्ररुचिभिर्विस्तारिणीभिर्भरा
जातेयं जगती तथा कथमपि श्वेतायमानद्युतिः ।
उन्निद्रो दिनशङ्कया कृतरुतः काको यथाकः प्रिया
मन्विष्यन्पुरतः स्थितामपि यया चक्रभ्रमं भ्राम्यति ॥३५॥

श्च्योतदिति ॥ सान्ध्यभ्रमणेन कुलालप्रेरितचक्रवद्भ्रमो यत्रेति भ्रमणक्रियाविशेषणम् । अथवा चक्रः कोकस्तस्येव भ्रमो यत्र । सोऽपि रात्रौ समीपवर्तिनीमपि प्रियामन्विष्यन् भ्रमति ॥ ३५ ॥

चूते हुए चंदन की तरह फैलने वाली चंद्र की सुन्दर कान्ति से भरा हुआ संपूर्ण संसार श्वेत की तरह लग रहा है। दिन की भ्रांति से बिचारा कौआ जाग उठा है, क्रन्दन कर रहा है, क्योंकि सामने ही बैठी हुई अपनी प्रिया को खोजता हुआ गोलाकार चारों तरफ घूमता है ॥

(चन्द्रमा की कांति से उसकी प्रिया भी सफेद हो गयी है। इसी लिए उसे वह पहचान ही नहीं पाता) ॥ ३५ ॥

अपि च—मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधो वल्लवाः
कर्णे कैरवशङ्कया कुवलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि ।
कर्कन्धूफलमुच्चिनोति शबरी मुक्ताफलाकाङ्क्षया
सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका ॥

मुग्धेति ॥ वल्लवा बालगोपालाः शबर्योऽप्याभ्यन्तरस्त्रियो विपर्यस्ता भवन्तु । सततपरिचितोत्तंसरचनाः कान्ता उपभर्तृस्त्रियोऽपि विपर्यस्ता इति, अपिर्विस्मये ॥

सीधे स्वभाव के गोपबालक (बल्लव) दूध समझ कर गायों के थनों के नीचे घड़ा रख देते हैं। रमणियाँ भी कुवलय (नीलकमल) को कैरव (सफेद कमल) समझ कर कानों में लगाने लगती हैं। शबरी (किरातिनी) कर्कन्धु (बेर) फल को मुक्ताफल समझ कर चुन रही है। चन्द्रमा की गाढ़ी किरणें किसके चित्त को भ्रान्त नहीं कर देतीं ॥ ३६ ॥

यत्र च—मुक्तादाममनोरथेन वनिता गृह्णन्ति वातायने
गोष्ठे गोपवधूर्दधीति मथितुं कुम्भीगतान्वाञ्छति ।

उच्चिन्वन्ति च मालतीषु कुसुमभ्रान्त्यालघो मालिकाः
शुभ्रान्तिभ्रमकारिणः शशिकरान्पश्यन्न को मुह्यति ॥३७॥

महिलायें वातायन (खिड़की) में (आती हुई चन्द्रिका को) मोती की माला समझ कर पकड़ने लगती हैं। गोपपत्नियाँ गोशाले में वे (हुंडी) में गई हुई (चन्द्रिका) को मथना चाहती हैं। मालती के पेड़ों पर पड़ी हुई चन्द्रिका को फूल समझकर मालाकार वधुएँ चुनने लगती हैं। भ्रान्ति उत्पन्न कर देने वाली चन्द्रमा की इन शुभ्र किरणों को देखकर कौन नहीं मुग्ध हो जाता ॥ ३७ ॥

अपि च—किं कर्पूरकणाः स्रवन्ति वियतः किं वा मनोनन्दिनो
मन्दाश्चन्दनबिन्दवः किमु सुधानिष्यन्दधारा इमाः ।
इत्थं भ्रान्तिमयी जनस्य जनयन्त्यङ्गे लगन्त्यः परा-
मिन्दोः कुन्दविकासिकुड्मलदलस्रक्सुन्दरा रश्मयः ॥३८॥

किमिति ॥ कुन्दस्य विकासिनां कुड्मलदलानां स्रक्। तद्वत्सुन्दरा इति शैत्यसौकुमार्यातिशयार्थं । जाडयकस्य कि इन भ्रान्ति परत्वात्तानि च भवन्तीति ॥

क्या आकाश से कपूर के कण चू रहे हैं अथवा मन को मुग्ध कर देने वाले चंदन के बिन्दु या ये कोई अमृत के झरने हैं। इस तरह अङ्गों में लगती हुई चन्द्र की ये विकसित हो रहे कुन्ददल की माला सदृश किरणें लोगों में भ्रान्ति उत्पन्न कर देती हैं ॥ ३८ ॥

इति जनितमृदिन्दोः सिन्दुवारस्रगाभं
किरति किरणजालं मण्डले दिङ्मुखेषु ।
हरचरणसरोजद्वन्द्वमाराधयन्ती
शुचिकुशशयनीये साथ निद्रां जगाम ॥ ३९ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां
हरचरणसरोजाङ्कायां द्वितीय उच्छ्वासः ॥

इतीति ॥ इत्यमुना प्रकारेण। जनितहर्षेन्दोः। निर्गुण्डीकुसुममालाप्रतिमं करनिकरं दिङ्मुखेषु किरति विनम्रति सतीन्दोर्मण्डले हर ध्यायन्ती सा दर्भशय्यामास्वपत्। समाधिस्थ शलेति भाव ॥ ३९ ॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे द्वितीय उच्छ्वास समाप्तः ॥

सिन्दुवार की माला सदृश कान्ति वाली आह्लादोत्पादिका चन्द्रकिरणें जब दिशाओं में चारों तरफ फैल रही थीं भगवान् शंकर के चरण कमल युगल की आराधना करती हुई पवित्र कुश की शय्या पर वह (राजपत्नी) निद्रित हो गयीं (समाधिस्थ हो गयीं) ॥ ३९ ॥

द्वितीय उच्छ्वास समाप्त।

—०—

# तृतीय उच्छ्वासः

अथ क्रमेण रजतकुम्भमम्भोभरणार्थमिवेन्दुमण्डलमादाय पश्चिमाम्भोनिधिपुलिनमनुसरन्त्यां तरुणकपोतकंधरारोमराजिराजिन्यां रजन्याम्, अखिलकमलखण्डकमलिनीनां विनिद्रायमाणकमलकुड्मलविलोचनेषु कज्जलरेखाश्रियमिवोल्लसन्तीषु भ्रमरपङ्क्तिषु, राजीवराजिपुञ्जनिकुञ्जे शिञ्जानमञ्जीरमञ्जुलमुखरेषु शारदजलाहकधवलपक्षविक्षेपपवनतरलिततरलतामरसेषु दीर्घिकावतंसेषु हंसेषु, झेङ्कारयति च चक्रवाकमिथुनमेलकमङ्गलमृदङ्ग इव रौप्यघर्घररवसरसं सारसकुले, अवश्यायजलशिशिरशीकरिणि मन्दान्दोलितविनिद्रद्रुममञ्जरीरजःकणकषायिते तमःसर्पसंदष्टोज्जीवितजगन्निश्वासायमाने प्रस्खलति प्रभातसुरतश्रमखिन्नसुन्दरीकुचमण्डले मरुति, मनोहारिहारीतहरितहये हरितितिमिरपटलपटी गगनलक्ष्म्याः करपरामृष्टपयोधरे रागवति सवितरि, मृगमदमिलितबहलकुङ्कुममण्डनमञ्जरीमिव पिञ्जरिते पुरंदरदिङ्मुखे सुखप्रसुप्ता सा स्वप्नमद्राक्षीत् ॥

अथेति ॥ अनन्धां किरणसंस्पृष्टमेव। रागवत्यारक्ते रवौ सुप्ता सती स्वप्नं ददर्श। अन्योऽपि रागवानासक्तः किल वधूमुखायं कराभ्यां स्तनौ स्पृशति। शारदजलाहकधवलाः शारदभ्रधवला.। झेङ्कारो वाद्यविशेषः ॥

क्रम से युवक कपोतकी गर्दन की रोम पंक्ति की तरह सुन्दर (आकृति वाली) रात जल भरने के लिए चंद्रमण्डल रूप चाँदी का घड़ा लेकर पश्चिम समुद्र के तट पर उतर रही थी। समस्त कमल वनो में कमलिनियों के कुड्मलनयन खिल रहे थे। उनमें कज्जल रेखा सदृश भ्रमर पंक्ति उल्लसित हो रही थी। कमल श्रेणी से संपन्न वन में नूपुर की तरह मधुर ध्वनि करते हुए दीर्घिका (सरोवर Long canal) के अलंकार हंस शरत्कालीन बादल की तरह अपने श्वेत पक्षों की फड़फड़ाहट से उत्पन्न वायु द्वारा पूर्ण विकसित कमलों को तरङ्गित (चचल) बना रहे थे। सारसों का जत्था (रात के बिछुड़े हुए) चक्रवाक दम्पती को मिलाने के लिए मंगल मृदंग रूप में चादी की झाल सदृश सरस (झंकार) ध्वनि कर रहा था। ओस के शीतल कणों से संयुक्त मंद-मंद कंपित वृक्ष मंजरियों के पराग बिन्दुओं से कषायित अन्धकार रूप काले सर्प के काट लेने से (मूर्च्छित) सम्पूर्ण जगत् के जागरण के अवसर पर श्वास की तरह प्रतीत होता हुआ पवन प्रातःकाल सुरतश्रम से थकी हुई सुन्दरियों के

स्तन मडल पर प्रस्खलित ( धीरे-धीरे बह रहा ) था। मनोहर हारीत शुक सदृश हरे घोड़ो वाले भगवान् सूर्य गगन लक्ष्मी ने अधकार-समूह रूप वस्त्र को हटाकर ( किरण रूप हाथो ) से पयोधर ( मेघस्तन ) का स्पर्श कर रागवान् हो रहे थे। कस्तूरी मिश्रित गाढे कुङ्कुम रूप अलङ्कार से निकली हुई मजरी से पुरन्दर दिशा ( पूर्व दिशा ) का मुख पिञ्जर ( पीत रक्त ) बनाया जा रहा था। ऐसे उष काल मे सोई हुई प्रियङ्गुमञ्जरी स्वप्न देखी ॥

किल सकलसुरासुरशिरःशेखरीकृतचरणकमल, कमलाधिवासेन ब्रह्मणा नारायणेन च रचितरुचिरस्तुतिः कृशानुरूपेण ललाटलोचनेन चन्द्रमसा च भासमानः विकचं कर्णे कुवलयं करे कपालं च कलयन्, अहिंसाटोपं मनसा शिरसा च बिभ्राणः प्रोज्ज्वलक्षयनाविश्रितभस्म च समुद्वहन्, अधिकङ्कालेन स्कन्धेन कंधरार्धेन च विराजमानः, सालसदृशं भुजवनं भवानीं च दधानः, सर्वदानववारं त्रिशूलं मन्दाकिनीं च धारयन्, देवो दर्पितदनुजेन्द्रनिद्राद्रो हरश्चन्द्रमण्डलादवतीर्य 'पुत्रि प्रियंगुमञ्जरि, मञ्जरीमिमां गृहाण। मा भैषीः। प्रत्युपत्ति मन्नियोगाद्दमलकनामा महामुनिरेष्यति स तेऽनुग्रहं करिष्यति' इत्यभिधाय स्वश्रवणशिखरान्तरादमन्दमकरन्दस्यन्दसुन्दरामोदमाद्यन्मधुकररवरमणीयां पारिजातमञ्जरीमदात् ॥

स्वप्नमाह—किलेति। वार्तायाम्। हर शशिमण्डलादुत्तीर्य पुत्रीत्यभिधाय ईदृशीं पारिजातमञ्जरीमदात्। कीदृशो हर। ब्रह्मणा विष्णुना च कृतस्तुतिः। द्वयेनापि कीदृशेन। कमलेऽधिवासोऽस्य पद्मासनत्वात्। विष्णुस्तु कमलाया श्रिया अधिवासत्वेन। तथा वह्निस्वरूपेण नेत्रेण चन्द्रमसा च कृशेन वामेण अनुगतरूपेणाविनाभावसंबद्धमूर्तिना लसन्। तथा विकचं सविकासम्। कपालं तु विगता कचा केशा अस्मादिति विकचम्। तथा अहिंसाया आटोपमावेशम्। अहिं च साटोपं सदर्पम्। प्रोज्ज्वलदीप्यमानम्। भस्म तु प्रकर्षेणोज्ज्वलम्। अधिगतं कङ्कालं शरीरास्थि अर्धोत्सङ्गेऽङ्गं येन। कंधरार्धेन तु कालेन सह कालकूटत्वात्। अधिकमिति क्रियाविशेषणम्। सालद्रुमतुल्य प्रांशुत्वात्। पक्षे मालसे लीलामन्थरे दृशौ यस्या। सर्वान्दानवान्वारयति। गङ्गा तु सर्वदा नित्यं नवा अविरुद्धाया वा पायो यस्या। अथवा सर्वं ददातीति सर्वदा। आनूयन्न इत्यानवाः नवोक्ता वाचोऽस्या। एतेन कामुकत्वेन नर्मवचनादारमञ्जरानां स्तुत्यत्वोक्तिः॥

यहाँ रात्रि को नायिका रूप मे चित्रित किया गया है। वह एक चद्र रूप चाँदी का घड़ा लेकर समुद्र में पानी भरने जा रही है। कमलिनियों की कलियाँ उसके नेत्र का काम दे रही हैं। उनमे लगे हुए भौंरे अजन का काम दे रहे हैं। सारस-समूह का क्रेंकार भग मृदग जैसा लग रहा है। चक्रवाक दंपती के भावी

मिलन के उपलक्ष्य में मानों वे मन्द मृदंग बजा रहे थे। प्रातःकालीन मंद पवन के झोंके ऐसे लगते थे मानों अन्धकार रूप काले सर्प के काटने से मूर्च्छित सारे संसार के प्राणियों के निःश्वास हों॥

जिनका चरणकमल समस्त देवताओं तथा दानवों के सिर का भूषण है, कमल में निवास करने वाले ब्रह्मा तथा कमला के निवासस्थान विष्णु अथवा कमला ( के हृदय ) में निवास करने वाले विष्णु द्वारा जिनकी प्रिय स्तुतियां की गई हैं। जो कृशानुरूप ( अग्निरूप ) ललाट में ( तृतीय ) लोचन से तथा ( पतले ) तथा अनुरूप ( अपने शरीर के साथ सर्वदा सम्बद्ध ) ( द्वितीया ) के चन्द्र से चमकते हैं। ( ऐसे भगवान् शंकर ) कानों में विकच ( विकसित ) कुवलय ( नीलकमल ) तथा हाथों में विकच ( कच (बाल) हीन ) कपाल किए हुए, मन में अहिंसा का आटोप ( आवेशपूर्ण भावना ) तथा सिर में साटोप ( फुफकारता हुआ ) अहि ( सर्प ) धारण किए हुए, चमकती हुई ( तृतीय ) नेत्र की दीप्ति तथा चिता के भस्म को धारण किए हुए, स्कन्ध में काल तथा कंधरार्ध ( ग्रीवा ) तक काल ( विष ) से अधिक सुशोभित, साल ( वृक्ष ) सदृश भुजाओं तथा सालस ( लीलापूर्ण ) आंखों वाली भवानी ( पार्वती ) को धारण किए हुए, सर्व-दानव-वार ( समस्त दानवों को निवारित करने वाले ) त्रिशूल को तथा सर्व-दानव-वार ( हमेशा नवीन जल देने वाली ) मंदाकिनी ( गंगा ) को धारण किए हुए, अहंकारपूर्ण राक्षसों की निद्रा ( मदस्विता ) का हरण करने वाले भगवान् शंकर चन्द्रमण्डल से उतर कर बसे प्रियङ्गुमञ्जरी। इस मञ्जरी को ग्रहण करो। मत डरो। प्रातःकाल मेरी आज्ञा से दमनक नामक महामुनि आयेंगे। वह तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे—ऐसा कहकर अपने कान के ऊपरी भाग से पर्याप्त पराग के झड़ने से सुन्दर गन्ध के कारण मस्त मधुकरों के झंकार से मनोहर पारिजात मञ्जरी को दिये॥

सापि 'प्रसादोऽयम्' इत्यभिधाय स्वप्न एव प्रणामपर्यस्तमस्तका स्तुतिमकरोत्।

वह भी 'यह प्रसाद है' ऐसा कहकर सिर नवाकर प्रणामपूर्वक स्तुति की॥

तुभ्यं नमो नमल्लोकशोकसंतापहारिणे।
व्यर्थीकृतान्धकारातिदम्भारम्भाय शम्भवे॥ १॥

तुभ्यमिति॥ अन्धकारातीति कर्मधारय ॥ १॥

प्रणाम करने वाले लोगों के संताप का हरण करने वाले, अन्धकासुर के अहंकार भरे प्रयत्नों को व्यर्थ करने वाले भगवान् शंभु आपको नमस्कार है॥

विभो विभूतिसंपन्न पन्नगेन्द्रविभूषण
नमो नमोघसंकल्प तुभ्यमभ्यन्तरात्मने ॥ २ ॥

विभो इति ॥ विभु सर्वव्यापी । विशेषेण भूत्या भस्मना समृद्ध सपन्न । यद्वा विभूत्या चतुर्दशभुवनाधिपत्यलक्षणया । नथा वासुकिभूषण । मोघो निष्फल सकल्पो ध्यान यस्य । पश्चाच्चन्योग । एतानि शिवसंबोधनानि ॥ २ ॥

सर्पराज को भूषण बनाने वाले, अपने सकल्प ( प्रतिज्ञा ) को कभी व्यर्थ न जाने दने वाले, अन्तरात्मस्वरूप, ऐश्वर्य सपन्न, हे भगवान् आपको प्रणाम है ॥२॥

अत्रान्तरे तरणिकोमलकान्तिभिन्न-
भास्वत्सरोजदलदीर्घविलोचनायाः ।
तस्याः प्रबोधमकरोद्रजनीविराम-
यामावसानमृदुमङ्गलतूर्यनादः ॥ ३ ॥

इसी बीच सूर्य की कोमल कान्ति से विकसित कोमल दल क सदृश बडे नत्रो वाली रानी को रात्रि के अन्तिम प्रहर की समाप्ति से मगल-वाद्यों की ध्वनि ने जगा दिया ॥ ३ ॥

क्रमेण च प्राच्या सिच्यमानायामिव घटुलकुसुम्भाम्भःकुम्भैः ककुभि, प्रभवति तारकोच्छेदनाय सुकुमारे रश्मिजाले, पूर्वाचलस्थलीमधिरोहति जगत्प्रबोधप्रारम्भमङ्गलकलशेऽंशुमालिमण्डले, ताण्डवाडम्बरिणि पुण्डरीकखण्डे, हिण्डमानासु दीर्घिकामण्डनमुण्डमालासु कारण्डवमण्डलीषु, निधाप्यत्सु श्रवणपुटेषु हृदयानन्दिनि वन्दिवृन्दारकवृन्दवन्दनारम्भरवे, रणयत्सु वीणावेणुक्वणान्वैणिकवैणविकेषु, कण्ठकुहरमे हिन्दोलरागं कलयति तारतरं गायति ग्रामरागं गायनजने जाते जरज्जपाप्रसूनभिन्नस्फुटस्फाटिककान्तिसमप्रभे प्रभातसमये, सा समुत्थाय भूत्वा शुचिर्विरचितनलिनगर्भमधाञ्जलिमवकीर्य भगवन्तमर्कं स्तुतिमकरोत् ॥

क्रमेणेति ॥ यथा माहेन्द्र इन्द्र, तथा सुकुमार । कुमार । हि तारकासुरोच्छेदनाय प्राभवत् । सुकुमार मृदु रश्मिजाल तु तारकाणां नक्षत्राणामुच्छित्तये । वैणिक वैणविकौ वीणावेणुवादकौ । अलङ्काराश्च सुदिनविनृतानुगामिरादय । तारोऽत्युच्चध्वनि । ग्रामराग पञ्चम । यद्वा षड्जमध्यमगान्धाराख्यांस्त्रीन्ग्रामान्रागं च भरतोक्त षड्विध गायके गायति सति ॥

क्रम से केसर के गाढे जल से भरे हुए घडों से मानो पूर्व दिशा सींची जा रही थी । तारकासुर को समाप्त करने क लिए कुमार कार्तिकेय प्रवृत्त हुए थे वैसे ( आकाश म विकीर्ण तारों को समाप्त करने के लिए सुकुमार

( कोमल ) किरणें प्रवृत्त हो रही थीं। संसार के आदरणीय मंगल कार्य को प्रारंभ करने के अवसर पर कलश की तरह प्रतीत होते हुए अंशुमाली ( सूर्य ) पूर्वाचल स्थली ( पूर्व-पर्वत ) पर चढ़ रहे थे। कमल वन उद्भ्रान्त नृत्य की स्थिति प्रदर्शित कर रहा था। उत्तम कोटि के बन्दीजनों की स्तुतिध्वनि में स्नान विश्राम कर रहे थे। वीणा तथा वंशी बजाने वाले वैणिक ( वीणा-वादक ) तथा वैणविक ( वंशीवादक ) मधुर ध्वनि कर रहे थे। कण्ठ कुहर ( गले ) को कंपित कर ( मुद्रित, विवृत, अनुनासिक आदि ) अलंकारों को निकालने में कुशल गायक लोग बड़ी ऊँची ऊँची ध्वनि से ग्रामराग ( पंचम स्वर ) में गा रहे थे। जब पुराने जपा ( अड़हुल ) पुष्प से प्रतिबिम्बित स्फटिक-मणि के सदृश कान्ति वाला प्रभातकाल हुआ तो वह उठकर पवित्र होकर खिले हुए नवीन कमल पुष्प से भगवान् सूर्य को अर्घ्य देकर स्तुति की।

[ मंगलकार्य के प्रारंभ में कलश स्थापनपूर्वक पूजन की परंपरा है। भगवान् सूर्य भी जगन्मंगलरूप मंगलकार्य कर रहे हैं इसलिए स्वयं कलश की मूर्ति बन गये हैं। ]

पातरर्थीमहावल्लीपल्लवाकारधारिणः ।
जयन्ति प्रथमारम्भसंभवा भास्वदंशवः ॥ ४ ॥

दिन-लक्ष्मी-रूपी महालता के पल्लव की आकृति वाली प्रथम प्रहर की सूर्य किरणें उत्कृष्ट लग रही हैं ॥

[ दिन की शोभा एक लता है। सूर्य की किरणें उस लता के नवीन पल्लव की तरह प्रतीत हो रही हैं। ] ॥ ४ ॥

जयत्यम्भोजिनीखण्डखण्डितालस्यसंचयम् ।
कौङ्कुमं पूर्वदिग्गण्डमण्डनं मण्डलं रवेः ॥ ५ ॥

कमलिनी वन की आलस्य-राशि को समाप्त कर देने वाला प्राची ( पूर्व दिशा ) के कपोल का कौङ्कुम ( कुङ्कुम से बना हुआ ) अलंकाररूप सूर्यमण्डल सर्वोत्कृष्ट प्रतीत हो रहा है ॥ ५ ॥

राजापि प्रथमप्रबुद्धप्रगीतगीतध्वनिनिरस्तनिद्रः सान्द्रविद्रुमप्रभाभासि संध्यावसरे, विधाय मांगल्यं विधिम्, अधिकृतेन धर्मकर्मणि नरपालपुरःसरेण पुरोधसा सह तामेवान्वेष्टुमन्तःपुरमाजगाम ॥

राजापीति ॥ प्रथमप्रबुद्धा ये प्रकृष्टगीतास्तद्गीतध्वनिना निरस्तनिद्रः ॥

राजा भी पहली बार की गायी हुई गीत की ध्वनि से जगकर गाढ़े विद्रुम कान्ति सदृश कान्ति वाले उष:संध्या ( प्रातः ) काल में सन्ध्यानुष्ठान कर धर्म-कार्य के अधिकारी पुरोहित को उसी समय आगे कर उसी ( रानी ) को देखने ( खोजने ) के लिए अन्तःपुर आए ॥

दृष्ट्वा च विस्मयमानः स्फुरदरविन्दसुन्दराननाम् 'अनुगृहीतेयमिन्दुमौलिना' इत्यवधारयन्, अतिहर्षोत्कर्षमन्थरगिरा तां बभाषे ॥

खिले हुए कमल की तरह सुन्दर मुखी ( रानी ) को देखकर आश्चर्य प्रकट करते हुए इन्दुमौलि ( भगवान् शंकर ) ने कृपा की है ऐसा निश्चित करता हुआ अधिक प्रसन्नता के कारण गंभीर आवाज से उससे बोला ॥

मुग्धस्निग्धनिरुद्धशब्दहसितस्फारीभवल्लोचनं
तिर्यक्कान्तिकपोलपालिपुलकस्पष्टीकृतान्तर्धृति ।
पतत्ते करभोरु पङ्कजसदृग्दृष्ट्वा मुखं मे बला-
दुच्चैः किंचिदचिन्त्यचर्चितचमत्कारं मनो हृष्यति ॥ ६ ॥

मुग्धस्निग्धेति ॥ मणिबन्धकनिष्ठिकयोर्मध्यं करभस्तद्वदूरू यस्याः । तत ऊङ् तस्या सबोधनम् । ईदृश ते मुख दृष्ट्वा महसाचिन्त्याधिगतचमत्कार मे मनो हृष्यति ॥ ६ ॥

मनोहर स्नेहपूर्ण तथा नि शब्द हास्य से आँखें खिल उठी है । वक्रकान्तिपूर्ण कपोल के रोमाञ्च से आन्तरिक धैर्य प्रकट हो रहा है । हे करभोरु ! ( हाथ के तलवे की तरह कोमल जघे वाली ) कमल सदृश आपके इस मुख को देखकर हठात् मेरा मन किसी ऐसे उच्च (अद्भुत) चमत्कार से चमत्कृत हो उठा है जिसके बारे मे न तो मैंने कभी सोचा था, न कभी चर्चा ही की थी ॥ ६ ॥

तत्कथय शतासि ममाज्ञया हर्षवृत्तान्तम्' इत्यभिहिता सा स्मितसुधानुविद्धमुग्धमुखवीणाक्वणकोमलालापेन सर्वमादितः स्वप्नदर्शनमाचचक्षे ॥

शपथ है । मेरी आज्ञा से समुचा हर्ष वृत्तान्त कह डालो । ( राजा ) के ऐसा कहने पर, मुस्कुराहट से अमृत प्लावित, सुन्दर मुख वीणा की कोमल वाणी में आद्योपान्त स्वप्न की सारी कहानी कह सुनायी ॥

क्षितिपतिस्तु तदाकर्ण्य 'प्रिये, मयापि स भगवान् । आत्मानुहारिणा विनायकेन स्वामिना च शक्तिमता पुत्रेणानुगम्यमानो, दग्धकाम. पूरितकामश्च, एककपर्दक ईश्वरश्च, ससोमश्चासोमः, सविभवश्चाविभूतिश्च, पिनाकी चापिनाकी, दृष्टः स्वप्नान्तरे तरुणार्कमण्डलमध्यवर्ती प्रणतप्रियंकरः शंकर. । तदेष ब्राह्मण. करोतु संवादिनोरनयो. स्वप्नयोरर्थपरामर्शम्' इत्यभिधाय तां, समवस्थितं पुर. पुरोहितमभाषत ॥

क्षितिपतिस्त्विति ॥ अग्रे स्थित पुरोहितमित्यमुना प्रकारेण राज्ञीकथनलक्षणेनावोचत् । यत् प्रिये, स भगवाञ्छंकरो मयापि स्वप्नान्तरे दृष्टः । कीदृश । सामर्थ्यवता हेरम्बेण, शक्तिशस्त्रभृता षण्मुखेन चात्मप्रतिमेनानुगम्यमान' । शिवोऽपि

विगननायक: सकललोकस्वामी शक्तिमांश्च शिवशक्त्योरविनाभावसंबन्धादि- त्यासमाहारयम्। काम स्मर इच्छा च। कपर्दो जटाबन्ध विरोधपक्षे वराट ईश्वरो धनवान्। ससोम सेन्दु। सह उमया वर्तत इति सोम। ततो नञ्योग। विगतो भवो यस्यस्ते विभवा मुक्तात्मानः। तैः सह। भगव सायुज्य हि मुक्तिरिति वृद्धा.। तया विशिष्टा भूतिर्यस्य। भस्म च। पिनाक धनुरस्यास्ति। अपीति भिन्नम्। नाकी स्वर्गी। यद्वा 'चर सान्त्वने'। चरयन्ति सान्त्वयन्त्यनुनयन्त्यवश्य चापिन- प्रमादृशा नाकिनो यस्य॥

राजा भी यह सुनकर 'प्रिये!' मैंने भी, अपने अनुरूप पुत्र शक्तिशस्त्रधारी स्वामी (कार्तिकेय) तथा विनायक (गणेशजी) के साथ कामदेव को जन्म देने वाले तथा कामनाओं को पूर्ण करने वाले एक कपर्दक (एक कौड़ी वाले) तथा ईश्वर (बड़े-बड़े ऐश्वर्य (धन) वाले (विरोध) एक कपर्दक (जटा वाले) ईश्वर (सबके स्वामी) परिहार) ससोम (सोम-चन्द्रसहित) थे। फिर भी असोम (सोमरहित) विरोध। उमा के सहित थे वस्तुत स्वयं ही सोम-चन्द्र नहीं थे। परिहार।

सविभव (ऐश्वर्य सम्पन्न) थे फिर भी अविभूति (ऐश्वर्यहीन) थे— विरोध। सविभव (संसार जिनसे छूट गया है ऐसे मुक्त लोग जिनके साथ) थे तथा अविभूति (भूति (ऐश्वर्य) से विगत नहीं) थे। परिहार। पिनाकी थे फिर भी अपिनाकी (पिनाकी नहीं) थे और (अपि) नाकी (स्वर्गवासी) थे। स्वप्न में पूर्णतः प्राप्त सुरमंडल के बीच भक्तों के आशासित सिद्ध करने वाले भगवान् शङ्कर को देखा हूँ।

तो ये ब्राह्मन इन मिलते-जुलते दोनो स्वप्नों का अर्थ (फल) विचारें। ऐसा उनसे कहकर, सामने बैठे हुए पुरोहित से बोले॥

सोऽपि 'देव, दिष्ट्या वर्धसे। अनल्पपुण्यप्राप्यमेतत्तरुणेन्दुमौले- रालोकनम्, अवश्यमवाप्स्यति देवी सकलराजचक्रचूडामणि- कल्पमशेषभुवनव्याप्तशुभ्रयशःपिण्डडिण्डिममपत्यम्' इत्यनेकधा तयोराशंसयांचकार॥

वह भी 'राजन्'! भाग्यसे आप बढ़ रहे हैं। अत्यधिक पुण्य से तरुण शङ्कर भगवान् का दर्शन होता है। निश्चित ही देवी (रानी) को समस्त राज- समूह का मणि समस्त संसार में अपने यश का उद्घोष करने वाला कोई अपत्य (संतान) होगा। इस तरह उनकी अनेक प्रकार से प्रशंसा किया॥

एवंविधे च व्यतिकरे कोऽपि कान्तकार्तस्वरस्वरूपमुत्फुल्लपाण्डु पुष्पमालया मेरुशिखरमिव प्रदक्षिणाक्षीणलग्नया नक्षत्रराज्या जनित- शोभं जटाभारमुद्वहन्, अतिबहलमलयजरसरचितविचित्रपुण्ड्रक-

मण्डनाममरशैलशिलामिव रङ्गत्त्रिस्रोतस ललाटपट्टिका कलयन्, प्लवमान इवोज्जृम्भपङ्कजकिंजल्ककपिलकायकान्तिकल्लोलेषु, करुणारसपूर्णवक्षःस्थलदीर्घिकायामन्तस्तरन्तीं बालकलहंसपक्षिपङ्क्तिमिव स्फारस्फाटिकाक्षमालिका बिभ्राण कुशकौपीनवासा करकलित कुशकाण्डकमण्डलुमण्डले, तरुभिरिव विविधशाखैर्विधृतजटावल्कलैश्च, पर्वतैरिव समेखलै सरुद्राक्षाक्षमालैश्च, नक्षत्रैरिव समृग कृत्तिकाश्लेषै सज्येष्ठापाढैश्च, सुसमदैरपि नमदाकारमाकल यद्भि अक्रोडैरपि चक्रोडापरै, रोमशैरपि विप्रवाल्कै मुनिभि परिवृत, सेवितपुराणपुरुषोऽप्यजनार्दनप्रिय, प्रसन्नशङ्करोऽप्यनाश्रित भव, प्रबुद्धोऽप्यवन्दीकृतजन, श्रमणोऽप्यजिनपरिग्रह ग्रहगण इव नवधात्मको लोकानाम्, धनुर्धर इव नालीकसख, वस इव नदाम्भस्थानकप्रिय पन्नग इव नाकुलीन, सरस्वतीसनिवासस्य मुख मन्दिरस्य वन्दनमालयेव प्रथमोद्भदभासिन्या दंष्ट्राकारोमराजिरेखया श्यामलितोत्तरोष्ठपृष्ठ, कलिकालकलङ्कशङ्काशरणगतैस्त्रिभि पुण्य युगैरिव सुसूक्ष्मीभूय देहलग्नै, त्रिपुष्करस्नानावसरविलग्नसरसबिस काण्डकुण्डलैरिव भक्त्याराधितत्रिपुरपरचितरक्षासूक्ष्मरेखानुकारिभि सितयज्ञोपवीततन्तुभिर्भूषितदेह, शमी विद्रुमाभाधरश्च प्रजापो विप्र जापश्च, सुतपा कृतपश्लाघी च, विकलन, सकलग्रश्च, यमान्तानुसारी सकुशलश्च, विकचनवनलिनशङ्कया मिलन्मुक्तमुग्धमधुपमण्डलेनेव रुद्राक्षवलयेन विराजितवामपाणितलव, न स्मृत स्मरापस्मारेण, नाङ्गीकृत कृतघ्नतया नालोकित कितववृत्तेन नाकलित कलिना न निरुद्धो विरुद्धक्रियाभि अतितेजस्तया द्वितीय इव परब्रह्मण, तृतीय इव सूर्याचन्द्रमसो, चतुर्थ इव गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्नीनाम्, पञ्चम इव दिक्पतीनाम् षष्ठ इव महाभूताधिदेवतानाम्, सप्तम इव मूर्तर्तूनाम्, अष्टम इव सप्तर्षीणाम्, नवम इव वसूनाम्, दशम इव ग्रहाणाम्, अनवरतहृदयकमलकर्णिकान्त स्फुरज्ज्योतीरूप परमब्रह्मकान्तिकलापनेव बहिर्निर्गच्छताच्छभस्मानुलेपन कनकगिरिरिव विरलचन्द्रातपेनापाण्डुरितदेह, दीर्घसरसबिसकाण्डपाण्डुना प्रचण्डपवनेनोर्ध्वमुल्लासितेन जटाजूटबन्धनपटप्रान्तपल्लवेन शिर पतद्गगनगङ्गाम्बुधारावारिणो हरस्य स्वामिभक्त्या कृतानुकरण व्रतचर्यामिव कलयन्, कोमले महसि तरुणे वयसि वृद्धे तपसि पृथुनि यशसि गुरुणि श्रेयसि वर्तमान, सद सदाचाराणाम्,

आश्रयः श्रुतीनाम्, मही महिम्न:, प्रपा कृपारसस्य, क्षेत्रं क्षमाङ्कुराणाम्, पात्रं मैत्रीसुधाया:, प्रासाद: प्रसादस्य, सिन्धु: साधुताया: तरुणार्कमण्डलमध्यान्मुनिरवातरत् ॥

एतस्मिन्नन्तरे कोऽपि मुनि: सूर्यमण्डलादवातरत्। कनककपिलजटाभारस्य मेरुशिखर पुष्पमालायश्च नक्षत्रपङ्क्तिमुपमानम्। लग्न सम्बद्ध ज्योतिषप्रणीत च। ललाटस्य शिला तिलकाना च गङ्गोपमानम्। परिवृतो मुनिभि:। कीदृशैर्विविधाग्नै:। शाखा कमण्डलुचाण्डालता च तया कशारचना मूल च। वल्कल। वृक्षत्वक्। सदैव मरुणा मरुण मुनीना चाहार्यम्। मेखला मौञ्जी नक्षत्रान्तदशाश्च। रुद्राक्षाक्षमालाद्भिवने। पक्ष रुद्राक्षा अक्षाश्च तदभिताथा। मृगकृत्तिकाया मृगत्वचा श्लेषै महिते उपदृष्टपटेन प्रशस्यमनड्वेन महित। पक्ष मृगा मृगशिर कृत्तिका अश्लेषा ज्येष्ठा आषाढाश्च नक्षत्राणि। समसमदैन्यतृष्णाक्षयाभ्यानन्दै। तथा मनुष्य गवस्याकार नाकलयद्भि। आर्यविरोध। स तु तुरगाधमाध्यायमा। क्रीडा विषयासक्ति। तथा चार्वाको त्व क्रीडा स्तुतानलपरै। विरोध तु च पृथक्। मूलरनुवर्तै। विप्रागा बालकैडिम्भै। विरोधे विरता मगतकेशै। पुराणपुरुषा वृद्धा। जननामर्दन पीडा। प्रजानामाश्रिताना शकर सुखकर। भव संसार। प्रबुद्धो विद्वान्। बन्दीकृतो हठेन गृहीत। श्रमणास्तपस्वा। अजिन मृगाजिनत्वक्। विरोध तु पुराणपुरुषा जनार्दनश्च विष्णु। शङ्करो भवश्च शिव। प्रबुद्ध सुगत। बन्द्या बन्दका बौद्धमनस्या। श्रमण क्षपणक। जिनोऽर्हन्। परिग्रह सर्वत्र नित्यमिदम्। वधो हिंसा। अलीकमथा मिथ्याप्रवृत्ति। दम्भवृद्धिना दाम्भा मायिका। अकुलीनो नाभिजात। ग्रहणास्तु नवमकवरस्वरूप। धन्वी च नालीकै शर सधान यस्य। इमस्तु नादरवाम्न एव दर्शनक तस्मिय। वाक्यवंशलीकस्तत्र लीन। मत्सयारातिनन्द्रितुरपरिशि। अथ पुरुषा यतन्ति समुदायित एव समुदाय इति दर्शन बहुवचनम्। व्यतिरिक्तसमुदायपक्षस्तु नेहाश्रित इति सचितहरिहरब्रह्मणो रचयं रचितरक्षानुवर्णयज्ञोपवीतत्वमुनिमूर्धितदेह। शमोऽस्यास्तीति शमी। शाम्न। तथा विद्रुम प्रवाल तुलयोम्न। प्रभा पाति कनुइत्यो हि प्रभात्रयम् विप्राश्चानयति अपसारयति। महद्दर्शनाभ्यसत्वात्। शुद्ध तप अमलस्य। तथा कौ भुवि तपसा लोकाचारेण धर्मेण श्लाघनशील। 'तपश्चान्द्रायणादौ स्याद्धर्मे लोकाचारऽपि च' इति विश्व। यद्वा कुतपो दर्भस्तद्वा कुतपश्लाघीयस्य विमर्शभावेऽपि (दरव द्विन्देन) श्रुत्या विशेषप्रतीति। विगतकलत्र। सकल प्रायत। अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमास्तेषामन्त पारम्। कृष्णाद्याः मांसानि गृह्णन्ति य न कुशला दशास्तै सह। च सर्वत्र विशेष। तथाया शमीनामा तरु तथा द्रुमामा घरति। विनेता। विप्रज्ञावान्। कुतप कुत्सित तप। सह कलत्रेण। समरताम्रकस्य सनीरमनुसरपवरस्य। सह कुशलेन वेषेण ॥

एस ही अवसर पर कोई मुनि पूर्व सूर्य मण्डल से अवतीर्ण हुए। वह मेरु शिखर की तरह चमकते हुए स्वर्ण रंग की प्रदक्षिणा के कारण क्षीर लगने वाली नक्षत्र पंक्ति की तरह खिले हुए शुभ्र मालाओं से मण्डित जटाभार का धारण

कर रहे थे। अमर शैल ( हिमालय ) की शिला पर जैसे त्रिस्रोतस ( गंगा ) बहती है वैसे वह अपनी शुभ्र ललाट-पट्टिका पर गाढे चंदन रस से त्रिपुण्ड्र तिलक किए हुए थे। पूर्ण विकसित कमल के पराग सदृश अपने गौर देह की दीप्ति लहरी में मानो तैर रहे थे। करुण रस के भरे हुए वक्ष स्थल रूपी दीर्घिका ( सरोवर ) के भीतर सुन्दर बालहंसो की श्रेणी की तरह बड़ी-बड़ी स्फटिक मणियों को धारण किए हुए थे। कुश तथा कौपीन वस्त्र पहने हुए थे। हाथ मे कुशयुक्त कमण्डलु लिए हुए थे। पेड़ जैसे विभिन्न शाखा जटा ( जड़ मूल ) तथा वल्कल ( वृक्ष छाल ) से युक्त होते हैं वैसे ( कण्ठबहृवृच् आदि वैदिक ) शाखाओं, जटा ( केश समूह ), तथा वल्कल वस्त्र को धारण किये थे। पर्वत जैसे समेखल ( तटीय भाग युक्त, होते हैं तथा रुद्राक्ष वृक्ष की पत्तियों से युक्त होते है वैसे ( मुनि भी ) समेखल ( मोञ्जीकरधनी युक्त ) तथा रुद्राक्षमणियों की माला लिए हुए थे। नक्षत्र समूह जैसे मृगशिरा, कृत्तिका, आश्लेषा, ज्येष्ठा, तथा पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ से युक्त रहते हैं वैसे ( मुनि भी ) मृगकृत्तिका ( मृगचर्म ) को आश्लेष (पहने हुए) थे और ज्येष्ठ ( उत्तम ) आषाढ़ (व्रत दण्ड) धारण किए हुए थे। वह ऐसे मुनि बालको से घिरे थे जो समद ( मदयुक्त ) होकर भी न मदाकार ( मद युक्त न ) थे। विरोध। समद ( तृष्णाहीन होने के कारण आनन्दयुक्त ) थे। और न मदाकार ( मदपूर्ण आकृति को धारण नहीं कर रहे थे नम्र ) थे। परिहार। अक्रीड ( क्रीडाविहीन ) फिर भी ( च ) क्रीडा पर ( क्रीडा मे तत्पर ) थे। विरोध। अक्रीड ( विषय वासना मे अनुरक्त नहीं ) थे और चक्री ( विष्णु ) की ईडा ( स्तुति ) मे लगे रहते थे। रोमश ( बड़े बड़े बाल वाले ) थे फिर भी विप्र बाल ( उत्तम केशो से हीन ) थे। विरोध। रोमश ( उत्तम रोम वाले ) थे और विप्र + बाल ( ब्राह्मण जाति के लड़के ) थे। ( वह मुनि ) सेवित पुराण पुरुष ( विष्णु की सेवा किये ) थे फिर भी जनार्दन उन्हे प्रिय नही थे। विरोध। पुराण पुरुष (विष्णु या वृद्ध मनियो) की सेवा किये थे। अतः उन्हे जनार्दन ( जनता का उत्पीडन ) प्रिय नही था। परिहार। शंकर को प्रसन्न किये थे किन्तु उन्होंने भव ( शंकर ) का आश्रय नहीं लिया था। विरोध। शंकर को प्रसन्न किये थे किन्तु भव ( संसार ) के आश्रय ( परतन्त्रता ) में नहीं रहे थे। प्रबुद्ध ( महात्मा बुद्ध ) थे किन्तु किसी आदमी को बन्द ( बौद्धधर्म का उपदेश ) नहीं दिए थे। वि० । प्रबुद्ध ( बड़े आत्मज्ञानी ) थे और किसी बंधन में नही डाले गये थे। परिहार। श्रमण ( जैन सन्यासी ) थे किन्तु जिन' के सिद्धान्तों को नहीं मानते थे। वि० श्रमण ( आत्मज्ञान के लिए समाधि योग आदि श्रम करते ) थे और अ-जिन मृगचर्म धारण करते थे ॥ परिहार ॥

[ संमद शब्द अलौकिक आनद का वाचक है। इस तरह के आनद की अनुभूति तृष्णाहीन विप्रबालकों में सभव थी। अक्रीड विप्रों के बालक बाल्योचित क्रीडा में अनुरक्त नहीं थे। चक्री की स्तुति मे ही दत्तचित्त थे। विरोध पक्ष में चक्रीड का 'च' अपि अर्थ मे आता है। अर्थात् क्रीडा हीन है फिर भी क्रीडा में तत्पर है। ]

पुराण पुरुष—शब्द ही विष्णु अर्थ प्रसिद्ध ही है। किन्तु 'वृद्धजन' अर्थ भी यहाँ प्रासंगिक ही होगा क्योंकि वर्ण्यमान मुनि अभी अत्यन्त नवीन हैं। अभी उन्हें मूछों की रेखा पड रही है। अत वृद्धजन सेवा उनके लिए उचित ही है। ]

लोक में ग्रह ( नवग्रह ) जैसे ( नवधा ) नव भागों मे विभक्त हैं वैसे ( मुनि भी ) न-वधात्मक ( किसी के वध की आकाङ्क्षा वाले नहीं ) थे। धनुर्धर जैसे नालीक ( धनुष् ) पर संध ( शर सधान ) करता है वैसे ( मुनि भी ) न + अलीक संध ( मिथ्या प्रतिज्ञा करने वाले नहीं ) थे। हंस जैसे नदाम्भ स्थानक प्रिय ( नद के जलवाले स्थान को प्रिय मानता ) है वैसे ( मुनि भी ) नदाम्भ स्थानक प्रिय ( दाम्भिकों ( घमण्डियों ) की जगहें उन्हें प्रिय नहीं ) थीं। पन्नग ( सर्प ) जैसे नाकु ( वल्मीक म ) लीन ( छिपे ) रहते हैं वैसे ( मुनि भी ) नाकुलीन बहुत कुलीन थे। उनका मुख सरस्वती का निवास मंदिर था। अभी पहली बार उत्तरोष्ठ पर मूछों की काली रोम पंक्तियाँ निकली थीं। वह मुख-रूपी सरस्वती के भवन का तोरण प्रतीत हो रही थीं। कलियुग के डर से तीनों युग सूत्र ( तनु ) रूप मे परिणत होकर देह मे सट गये थे। तीनों पुष्करतीर्थों मे स्नान करते समय शरीर में सटे हुए कमल तनु के कुडल की तरह प्रतीत होने हुए भक्तिपूर्वक आराधित ब्रह्मा, विष्णु और महेश द्वारा दिये हुए सुरक्षा सूत्र की तरह प्रतीत होते हुए, सफेद यज्ञोपवीत के तन्तुओं से जिनका शरीर अलंकृत हो गया था।

शमी ( शमी नामक वृक्ष ) थे और विद्रुमाभाधर ( वृक्ष की काति धारण करने वाले ) नहीं थे। वि० शमी ( शान्तिप्रिय ) थे और विद्रुमाभाधर ( प्रवाल काति की तरह अधरो वाले ) थे। परिहार। प्रजाप थे फिर भी विप्रजाप ( प्रजाप नहीं ) थे। वि०। प्रजाप ( प्रजा की रक्षा करने वाले ) थे और विप्रजाप ( ब्राह्मणों से जप कराने वाले ) थे। ब्राह्मणों को जप करने की प्रेरणा देते थे। परिहार। सुतपा ( सुन्दर तपस्या वाले ) थे फिर भी कुतप श्लाघी ( खराब तपस्या के प्रशसक ) थे। वि०। सुतपा ( सुन्दर तपस्या किये हुए ) थे और कु ( पृथ्वी ) पर अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध थे। परि०।

विकलत्र ( स्त्री रहित ) थे फिर भी सकलत्र ( स्त्री सहित ) थे। वि०। विकलत्र ( स्त्री रहित ) थे फिर भी सकलत्र ( सबो का त्राण करने वाले ) थे। परि०। यमान्तानुसारी ( यमराज के पास रहने वाले ) थे फिर भी सकुशल थे। वि०। यमान्तानुसारी ( अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और यमनियमो का पालन करते ) थे तथा सकुशल ( कुश लाने वाले मुनियो से युक्त ) थे॥ परिहार॥

[ शमी शब्द का उपयोग मुनिपक्ष में वृक्ष सादृश्य के आधार पर भी किया जा सकता है। शमी वृक्ष जैस अन्तराग्नि से युक्त होता है वैसे यह मुनि भी अपनी आन्तरिक तेजस्विता से उद्भासित है। ]

खिले हुए नवीन कमल की भ्रान्ति से आये हुए आनदमग्न भोले भौंरो के समूह सदृश रुद्राक्ष की छोटी माला से उनका बायाँ हाथ मडित तथा स्मरापस्मार ( कामरूप रोग ) द्वारा वे कभी याद नही किये गये थे। कृतघ्नता को कभी छूये नही थे। धूर्तवृत्तान्त को कभी देखे तक नहीं थे। कलि द्वारा आक्रान्त नही थे। शास्त्र विरुद्ध आचरण द्वारा निरुद्ध ( पतित ) नही हुए थे। अत्यन्त तेजस्विता के कारण द्वितीय ब्रह्मा की तरह थे। सूर्य और च द्र के अतिरिक्त तीसरे तेजस्वी थे। गार्हपत्य दक्षिणाग्नि और आह्वनीय इन तीन अग्नियो के अतिरिक्त चतुर्थ अग्नि थे। चार दिक्पतियो के अतिरिक्त पाचवे दिक्पति थे। पाच महाभूतो के स्वामियो के अतिरिक्त ये छठे महाभूतपति थे। छ प्रत्यक्ष ऋतुओं के अतिरिक्त ये सातवे ऋतु थे। सप्तर्षियो के अतिरिक्त आठवें ऋषि थे। आठ वसुओ के अतिरिक्त नवम वसु थे। नवग्रहो के अतिरिक्त दशम ग्रह थे।

[ मिलन्मुक्तमधु—मुनि का पाणि पल्लव इतना सुन्दर था कि भ्रमरो को उसम कमल की भ्राति हो सकती थी। उनके बाँये हाथ से लगी हुई रुद्राक्ष की माला भ्रमर समूह की तरह प्रतीत होती है। मानो भ्रमरो का झुण्ड ही उनके हाथ को कोमल समझकर आ गया है। ]

निरन्तर हृदय कमल कोष के भीतर से छिटकती हुई ज्योतिरूप परमात्मा की कान्ति राशि ही मानो बाहर शुभ्रभस्म रूप मे निकल रही थी जिसके लेप से शुभ्र शरीर वाले मुनि कहीं कहीं पडने वाली चन्द्रकिरणो से युक्त कनकगिरि की तरह लग रहे थे। जटाजूट का बधन लवे एव सरस कमल ततु की तरह श्वेत अधिक हवा बहने के कारण ऊपर की ओर उठा हुआ जटाजूट बाँधन वाले वस्त्र का पल्लव सदृश एक अश आकाश से गिरती हुई गगा की धारा की तरह मनोहर लग रहा था। स्वामिभक्ति के कारण ( सिर पर गगा को धारण करने वाले ) भगवान् शकर का मानो अनुकरण कर रहे थे। तेजस्विता

मे कोमल, अवस्था म तरुण, तपस्या मे वृद्ध, यश मे महान् तथा प्रशंसनीय श्रेष्ठता से स्थित सदाचारों का भवन, श्रुतियो का आश्रय, प्रभाव का स्थान, दया-सरोवर का झरना, क्षमारूप अंकुर (के उत्पन्न होने की) भूमि, मित्रता रूपी अमृत का पात्र, प्रसन्नता की अट्टालिका, सम्पन्नता का सागर थे।

राजा तु दूरत एव तमायान्तमवलोक्य विस्मयविस्फारितविलोचनो हर्षवर्षविनिःसरद्बहलपुलकोच्चम्बितोत्तरीयवासाः ससंभ्रममासनादुत्थाय कियन्त्यपि पदान्यभिमुखं समेत्य क्षितितलमिलन्मौलिमण्डलः प्रणाममकरोत् ॥

दूर से ही उन्हें आते हुए देखकर आश्चर्य के कारण राजा की आँखें खिल उठीं। हर्ष की वर्षा के कारण पर्याप्त रोमाञ्च हो गया। रोमा के खड़े होने से (उत्तरीय वस्त्र) चादर ऊपर उठ (तन) गयी। शीघ्र ही आसन से उठकर कुछ कदम सामने बढ़कर पृथ्वीतल तक सिर झुका कर प्रणाम किये।

मुनिरपि महादारुणान्तयापि सौम्यया दृशा विद्रुमममाभिकया सुधासिन्धुतरङ्गमालयेव प्लावयन्नाशिषमवादीत् ॥

मुनिरिति ॥ दारुणामान्तम् । सर्वदा रक्तान्तया दृशा प्रवालच्छुरितक्षीरोदवीच्येव प्लावयन्मुनिराशिषमुवाच । रक्तान्तनेत्रत्व शुभलक्षणम् । विरोधे त्वन्यत्र मुनिविरोधगम । दारुणं रौद्रम् ॥

मूँगे की कान्ति से अनुविद्ध, अमृत सागर की लहर की तरह अपनी (सदा+अरुण) रक्त नेत्र भाग वाली दृष्टि से नहलाते हुए आशीर्वाद बोले।

[ स (वह मुनि) दारुण और सौम्य दृष्टि से नहलाते हुए आशीर्वाद की वाणी कहे। जो दृष्टि दारुण होगी वह सौम्य कैसे होगी यही विरोध है। ऊपर दिया हुआ अर्थ परिहार पक्ष का है। ]

'सिन्दूरस्पृहया स्पृशन्ति करिणां कुम्भस्थमाधोरणा
भिल्ली पल्लवशङ्कया विचिनुते सान्द्रद्रुमद्रोणिषु।
कान्ता कुङ्कुमकाङ्क्षया करतले मृद्नन्ति लग्नं च यत्
तत्तेजः प्रथमोद्भवं भ्रमकरं सौरं चिरं पातु वः' ॥ ७ ॥

*सिन्दूरेति ॥ भ्रमकरं भ्रान्तिजनकम् । तच्च सिन्दूरस्पृहदेत्यादिनाभिहितम् ॥७॥*

भगवान् सूर्य की प्रथम किरणें आपकी रक्षा करें जिन्हें हाथियों के कुम्भस्थल पर देखकर आधोरण (हाथीवान्) लोग सिन्दूर की भ्रान्ति से छूते हैं, किरात-पत्नियाँ वृक्षो के आलवाल द्रोणी (क्यारियों) में पल्लव की भ्रान्ति से चुन रही हैं तथा रमणियाँ अपने हाथों पड़ी हुई कुङ्कुम समझ कर पोंछ रही हैं ॥ ७ ॥

दत्ताशीश्च प्रणामपर्यस्तकर्णपूरपल्लवपरामृष्टपादपांसुरवनिपालेन स्वयमादरेणोपनीतमुच्चकाञ्चनासनमध्यतिष्ठत् ॥

प्रणाम के अवसर पर ( राजा के ) लटकते हुए कर्णपल्लव से जिनके पैरों की धूलि पोंछी गयी है, तथा जिन्होंने आशीर्वाद दे दिया है ऐसे मुनि राजा द्वारा आदरपूर्वक स्वयं लाये हुए ऊँचे स्वर्णमय आसन पर बैठे।

अथ नरपतिदत्ते प्राप्तसौन्दर्यनिर्य-
न्मणिमहसि स तस्मिन्नासने संनिविष्टः ।
रुचिररुचि सुमेरोः संगत श्रृङ्गभागे
कमल इव कान्ति कांचिदुच्चैर्बभार ॥ ८ ॥

अथेति ॥ प्राप्तसौन्दर्यं यस्य निर्यन्ति मरम्मणीनां महस्तेजो यस्मात् तत्रासने आसीनः। मुनिः कांचिदपूर्वां शोभां बभार ॥ रुचिरकान्तौ सुमेरो शृङ्गभागे स्थितो ब्रह्मेव ॥ ८ ॥

मणि की दीप्ति जिससे छिटक रही थी ऐसे राजदत्त सुन्दर आसन पर बैठे हुए मुनि सुन्दर कान्ति वाले सुमेरु पर्वत की चोटी पर स्थित ब्रह्मा की तरह अलौकिक शोभा धारण कर रहे थे ॥ ८ ॥

दत्त्वार्घमर्हणीयाय तस्मै सोऽपि महीपतिः ।
स्वहस्तधौतयोर्भक्त्या ववन्दे पादयोर्जलम् ॥ ९ ॥

वह राजा भी उस पूज्य मुनि को अर्घ देकर भक्तिपूर्वक अपने ही हाथों से धोये हुए पैरों के जल को प्रणाम किये ॥ ९ ॥

कृत्वातिथ्यक्रियां सम्यग्विनयं च प्रकाशयन् ।
तस्याग्रे भूतलं भेजे नोपविष्टः स विष्टरे ॥ १० ॥

अतिथि को जिस विधि से सत्कार करना चाहिए वह सब कर, विनम्रता व्यक्त करता हुआ राजा उस मुनि के आगे पृथ्वी पर ही बैठा, आसन पर नहीं ॥ १० ॥

ललाटपट्टविन्यस्तपाणिसंपुटकुड्मलः ।
नीचैरुवाच वाचं च चञ्चद्दशनदीधितिः ॥ ११ ॥

( विशाल ) ललाटरूपी शिलापट्ट पर सपुट पाणिरूप कुड्मल ( कलि ) रखकर चमकती हुई दन्तकान्ति वाले राजा धीर स्वर से बोले ॥ ११ ॥

'अद्य मे सुयहो' कालाच्छ्लाघनीयममूदिदम् ।
त्वत्पादपद्मसंपर्कसंपन्नानुग्रहं गृहम् ॥ १२ ॥

आज आपके चरणकमल के स्पर्श से संपन्न मेरा घर चिरकाल के लिए प्रशंसनीय बन गया ॥ १२ ॥

यतः समस्तमुनिमनुजवृन्दारकवृन्दवन्दनीयपादारविन्दाः, परमानन्दपरिस्पन्दभाजः पांसूनिव पार्थिवान्, तृणमिव स्त्रैणम्, निधनमिव धनम्, रोगानिव भोगान्, राजयक्ष्माणमिव लक्ष्मीम्, आकलयन्तः सकलसंसारसुखविमुखाः कस्य भवादृशा भवनमवतरन्ति ॥

समस्त उत्तम मुनिवर्ग तथा मानववर्ग द्वारा जिनका चरणकमल प्रणम्य है, जो, उत्तम आनन्द के पात्र हैं, जिन्होंने राजाओं को धूलि, स्त्री वृन्द को तृण, संपत्ति को मृत्यु, भोग को रोग तथा लक्ष्मी को राजयक्ष्मा समझा है, समस्त संसार के सुख से विमुख आप जैसे लोग किसके घर जाते हैं ?

तदहमद्यानवद्यस्य भवद्भूयं भूतो यशोराशेर्भाजनम्, आरूढः पदं श्लाघार्हम्, आगतो गुणिषु गौरवम्, उपलब्धवान्धन्यताम्, संपन्नः पुण्यवतामग्रणी, जातो जनस्य वन्दनीयः ॥

भगवन्! आज मैं पर्याप्त अनिन्द्य कीर्ति-राशि का पात्र बन गया, प्रशंसनीय पद पर आरूढ हो गया। गुणवानों में गौरव-पात्र बन गया। धन्य हो गया। पुण्यवानों में अग्रणी बन गया तथा मानववर्ग का वन्दनीय बन गया।

तदित्थमनेकप्रकारोपकारिणां किं ब्रवीमि, किंकरोऽस्मीति पौनरुक्त्यं सर्वस्वामिनाम्। केनार्थित्वमित्यनुचितादरो निःस्पृहाणाम्। इदं मे सर्वस्वमात्मीक्रियतामिति स्वल्पोपचारः स्वाधीनाष्टगुणैश्वर्याणां भवताम्। तथापि प्रणयेन भक्त्या च मुखरितः किंचिद्विज्ञापयामि ॥

इस तरह अनेक तरह से उपकार करने वाले आपके बारे में क्या कहूँ? यदि कहता हूँ कि आपका नौकर हूँ तो वह पुनरुक्ति ही होगी क्योंकि आप सबके स्वामी हैं। [ वचन में भी आ गया बिना कहे ही आप स्वामी हैं मैं नौकर हूँ। यदि उसी बात को फिर कहता हूँ तो पुनरुक्ति ही होगी। ] आपके यहाँ कौन याचक नहीं है, ( ऐसा कहूँ तो ) आप जैसे त्यागी का अपमान ही है। [ क्योंकि आपके पास जो कुछ भी है वह याचकों के लिए ही है। अतः याचक आपकी संपत्ति को अपनी ही सम्पत्ति समझ कर माँगने आते हैं। ऐसी स्थिति में मैं इस कार्य को लेकर यदि आपकी प्रशंसा करूँ तो कोई आदर की बात नहीं अपि तु कुछ अनादर का ही भाव झलकता है। ] 'यह मेरी संपूर्ण संपत्ति स्वीकार कीजिए' यह कहता हूँ तो यह भी थोड़ा ही सत्कार है क्योंकि जिन्होंने आठों

सिद्धियों के ऐश्वर्य को अपने अधीन कर लिया है ( उसके लिए यह थोड़ी-सी संपत्ति का देना कौन सत्कार की बात है ? ) फिर भी विनय एवं भक्ति से वाचाल मैं बनकर मैं कुछ कह रहा हूँ ॥

इदं राज्यमियं लक्ष्मीरिमे दारा इमे गृहाः ।
एते वयं विधेयाः व कथ्यतां यदिहेप्सितम् ॥ १३ ॥

यह राज्य, यह लक्ष्मी, ये स्त्रियाँ, ये घर और मैं सभी आपके किङ्कर हैं, जो इच्छा हो कहें ॥ १३ ॥

मुनिरप्यवनीशस्य विनयमभिनन्द्य स्निग्धमुग्धस्मितसुधाधवलिताधरपल्लवमब्रवीत्–'उचितमेतद्भवादृशां वक्तुं कर्तुं वा' ॥

मुनि भी राजा के विनय की प्रशंसा कर स्नेहपूर्ण सुन्दर मुस्कुराहट से अधरोष्ठ को शुभ्र बनाते हुए बोले—'उचित ही है आप जैसे लोगों का कहना या करना' ।

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥ १४ ॥

उपेति ॥ इन्दुः केन शिशिरीकृतः । स्वभावादेव शिशिर इत्यर्थः ॥ १४ ॥

उपकार करना, प्रिय बोलना, अकृत्रिम ( स्वाभाविक ) स्नेह व्यक्त करना सज्जनों का स्वभाव ही होता है । चन्द्रमा को शीतल किसने किया है ? ॥१४॥

[ सज्जनों में मधुरता किसी के द्वारा नहीं बनायी जाती, स्वयं उत्पन्न होती है । जैसे चन्द्रमा को किसी ने शीतल नहीं किया है । वह स्वयम् शीतल है । ]

अपिच—

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया ।
चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता ॥ १५ ॥

यथेति ॥ वाचीत्येकत्वेऽपि जात्या बहुत्वप्रतीतिः ॥ १५ ॥

जैसा चित्त वैसी वाणी, जैसी वाणी वैसा कार्य । चित्त, वाणी तथा कार्य सब में सज्जन एक रूप रखते हैं ॥ १५ ॥

अपिच—

विवेकः सह संपत्त्या विनयो विद्यया सह ।
प्रभुत्वं प्रश्रयोपेतं चिह्नमेतन्महात्मनाम् ॥ १६ ॥

विवेक इति ॥ प्रश्रयः प्रणयः ॥ १६ ॥

सम्पत्ति होने पर भी विवेकपूर्ण रहना, विद्या होने पर भी नम्र रहना, शरणागत का स्वामी बनना, यही सब महात्माओं के चिह्न हैं॥ १६॥

तदेतत्समस्तमस्ति त्वयि दीर्घायुषि, श्रूयतामिदानीं प्रस्तुतम्। अनवरतसुरासुरचक्रचूडामणिघृष्टचरणरजसश्चन्द्रचूडामणेर्देवस्यादेशनागता वयम्। प्राप्स्यसि सकलजलधिजलकल्लोलमालालंकारभाजो भुवो भर्तुरुचितमतिमान्यं धन्यमसामान्यं कन्यारत्नम्' इति॥

हे चिरञ्जीविन्! आप में ये सब चीजें हैं, सुनिये जो इस समय प्रासंगिक है। निरन्तर देवों और दानवों की चूडामणि में जिनके चरणों की धूलि लगी रहती है, चन्द्रमा जिनके सिर में स्थित रहते हैं, उन भगवान् शंकर की आज्ञा से हम आये हैं। आप सागर जल की तरंगमाला से अलंकृत सम्पूर्ण पृथ्वी के राजा के (सम्मान) के अनुकूल, असाधारण, सर्वप्रशंसनीय एक कन्यारत्न प्राप्त करेंगे।

एवमुक्तवति तस्मिंस्तपस्विनि पुत्रार्थिनी कन्यालाभं मन्यमाना विप्रियं प्रियंगुमञ्जरी जरन्मञ्जीरजर्जरविलक्षाक्षरया गिरा कुर्वाणेव क्रोधपरिस्पन्दं निन्दास्तुतिधर्मेण नर्मालापमकरोत्॥

एवमिति॥ क्रोधस्य परिस्पन्दं चेष्टां कुर्वाणेव॥

तपस्वी के इस तरह कहने पर पुत्र चाहने वाली प्रियंगुमंजरी ने अप्रिय कन्या लाभ जानकर पुराने नूपुर की तरह श्रीवृत्त (कुछ उदास) अक्षरों की वाणी में क्रोध अनियन्त्रित करती हुई निन्दा और स्तुतियुक्त नर्मालाप करना प्रारम्भ किया॥

'नयशोभाजन, कृतकटीककुशाग्रग्राहिवेदनोद्गारं कृतवानसि क्वापि। सर्वदानादेयेषु प्रतिकूलवर्तिषु जलेषु रतिं कुर्वाणः पाठीनहिंसको धीवर इवोपलक्ष्यसे। कुरङ्गेषु प्रीतिं बध्नासि। कदम्बकुरवकैर्बहुदलानैः पलाशप्राये कुजन्मभिः सह संवससि॥

नयेति॥ नयशोभाजनेत्यामन्त्रणस्य नञ्योगः। नया कृतानि कृत्रिमाणि, ननु वेदनव्योदर्याणि। कुत्सितटीकानि कुशाग्राणि गृह्णास्यवशील यस्य तदर्दो वदपापरहितः। इदमपि द्वयमामन्त्रणम्। कमपि न उद्गारमुच्चारणं कृतवानसि। वक्तुमपि न कथापयं। स्तुतिपक्षे नयश्च शोभा च ते जनयति। यद्गृहमागतोऽसि तस्यति दायः। तथा कृता कौ पृथिव्या टीका गमन यत्। स्वर्गोपस्थान दत्तुविघृष्ययति दायः। कृशो दर्भ एवात्र गृह्णास्यवश्यम्। एतनादरपशत्रुणामपि विघातोक्तिः। वेदना दुःख तदर्थमुद्गारमुच्चारणं क्वापि नाकरोः। एतन प्रियच दचोक्तिः। निन्दाया अनादेयत्ववदेषु जलेषु रतिं विदधद्धिंसको धीवर इवासि तुच्यम। पीवरोऽपि किल नादेयाशयसु कूटं कच्छ प्रति वर्तमानेषु रतिं कुरुते।

पाठीनाहारत्वात्। पक्षे सर्वकालमेव नदीभवेषु कूलं कूलं प्रति वर्तमानेषु वारिषु रागमासक्तिं कुर्वाण पाठवान् न हिंसाशीलो धिया वृद्धया वर प्रधावगम्यसे। एतेन तीर्थस्थास्नुर्दयालुर्ज्ञानी च। कुत्सितो रङ्गो वासना येषा तेषु विषयेषु प्रीतिमान्। पक्षे कुरङ्गा मृगास्तेषु प्रीत। कदम्बे कुमार्गके। कुत्सिता अम्बा कदम्बा ताश्च दुश्चेष्टितैः कुर्वन्ति आचक्षते वा इति णिजन्तादचि सिद्धम्। बहुव्रीहौ तु को कद भवति कुत्सितो रवो येषा ते। कुत्सितमलीकम् कदलीकम्। को कत्। बहुकदलीक येषाम्। तथा पल पिशितमश्नन्ति ये तेषा प्राये सदृशै। तथा कुत्सित जन्म येषा तथाविधैः सह वास विधत्से। पक्षे कदम्ब-कुरबक-कदली पलाशा ये कुजन्मान को पृथिव्या जन्म येषामिति कृत्वा भूरुहास्तै सह संवससि। मुनयो हि मृगनगप्रिया। वनवासित्वात्॥

निन्दापक्ष—हे न यशोभाजन! (अयशस्विन्) कृतकुटीक कुशास्त्र ग्राहिन्! (कृत्रिम, अभद्र टीकाओ से युक्त खराब शास्त्रों के ग्रहण करने वाले) न वेद (तुम कुछ नही जानते हो)। कहीं भी (विद्वानो के बीच) उद्गार (भाषण) नहीं किये हो। बोलना नहीं आनते हो।

सर्वदा (सदा) अनादेय (अश्रद्धेय) तथा प्रतिकूल चलने वाले जडो के साथ प्रेम करने वाले तथा पाठीन (पोठिया मछलियों) की हत्या करने वाले धीवर (मल्लाह) की तरह प्रतीत होते हो। कुरङ्ग, खराब रग (वासना) वाले लोगों मे प्रेम करते हो। कदब (टेढा चलने वाले) हो। [कुत्सितमम्बति इति कदम्ब 'अम्ब गतौ'] कुरवक (अभद्र बोलने वाले) बहुकदलीक (अधिक झूठे) तथा पलाशप्राय (अधिकाश मास खाने वाले) कुजन्म (निन्द्य कुल वाले लोगो) के साथ तुम रहते हो।

प्रशसा पक्ष—नय (नीति) और शोभा के जनक हो। कु (पृथिवी) म टीक (आगमन) किए हो। कुश रूपी अस्त्र को ग्रहण किए हो। कही भी वेदनापूर्ण शब्द नहीं किये हो [किसी से इस रूप मे नही बोलते हो कि सुनने वाले को कष्ट हो) सदा नादेय (नदी सम्बन्धी) तटवर्ती जल म प्रेम रखते हो। पाठी (वेद के स्वाध्यायी) हो। हिंसक नही हो। धी (बुद्धि) के कारण बढे हो। कुरङ्गों (मृगो) से प्रेम रखते हो। कदम्ब, कदली, कुरवक जो कु (पृथिवी) म जन्म लिये हैं उनके साथ रहते हो।

किमन्यद् ब्रूमो वयम्।

और दूसरा आप के बारे म क्या कहू।

यस्य ते सदाचारविरुद्धः पुष्पवत्कान्तारागः एव प्रिय ॥

यस्येति॥ पुष्पवतीषु हि कान्तासु राग आसक्ति। आचारविरुद्ध कुलधर्मानुचित पक्षे सत्राचारेत्यामन्त्रणम्। विभि पक्षिभी रुद्ध पुष्पवान्कान्तारस्याग-स्तरुरेव प्रिय ॥

निन्दा पक्ष—जिस आपको रजस्वला रमणी में प्रेम करना इष्ट है, जो कि सज्जनों के आचरण से सर्वथा प्रतिकूल है।

प्रशंसा पक्ष—हे सदाचार! (सुन्दर आचरण वाले महर्षे!) वि (पक्षियों) से रुद्ध (घिरा हुआ) कान्तार (जंगल) के अग (वृक्ष) आपको प्रिय हैं। (आप अरण्यवासी सर्वदा स्तुत्य महात्मा हैं।)

तदलमनेन तापसहितेन कन्यावरप्रदानेन' इति॥

तदिति॥ तस्मात् तापस सपरस्विन्, हि स्फुटं ते नव सेवाभिर्विना कन्यावरप्रदानेन नालं न पर्याप्तं नेष्टं पूर्यत इति यावत्। यतोऽहं पुत्रार्थिनीति। अथवा ताप सन्तापस्तत्सहितेन। पक्षे तापसेत्यामन्त्रणम्। तेनानेन कन्यावरप्रदानेनालमन्यत्प्रार्थनीयमित्यर्थ॥

निंदा पक्ष—ताप (सन्ताप) सहित यह कन्यावर-प्रदान व्यर्थ ही है।

प्रशंसा पक्ष—हे तापस! यह कन्यावर-प्रदान को हित करना (छोड़ना) पर्याप्त (अच्छा) नहीं है।

['कन्यावर प्रदान पर्याप्त है' ऐसा अर्थ करने पर 'अलं' का प्रयोग पर्याप्ति अर्थ में मानना होगा। तब "नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च" के योग में चतुर्थी विभक्ति होने लगेगी। इसलिए इस पंक्ति को स्तुति पक्ष में लगाने के लिए "कन्या वरप्रदान को छोड़ना व्यर्थ नहीं है"—यह अर्थ करना चाहिए जिसमें 'अलं' अपर्याप्ति अर्थ में लग सके।]

एवमभिहितः सोऽपि तां बभाषे॥

ऐसा कहने पर मुनि भी प्रियङ्गुमञ्जरी से कहे।

'दोषाकरमुखि, किं मामुपालभसे। प्रायः प्राणिनामीशः शम्भुरेव शुभाशुभं कर्मालोक्य तुलाधर इव तुलितं फलमुपकल्पयति॥

दोषेति॥ दोषाणामाकरो मुखं यस्यास्तत्सम्बोधनम्। पक्षे दोषाकरश्चन्द्रः॥

निन्दा पक्ष—हे दोषाकरमुखि! (दोष भरे मुँह वाली) मुझे क्यों दोष देती हो?

प्रशंसा पक्ष—हे दोषाकरमुखि! (चन्द्रमुखी) मुझे क्यों उलाहना देती हो? प्राय सभी प्राणियों के स्वामी शंकर भगवान् ही लोगों के शुभ अशुभ कर्मों का विचार कर तौलने वालों की तरह ठीक ठीक फल देते हैं।

तथाहि।

> यद्यावद्यादृशं येन कृतं कर्म शुभाशुभम्।
> तत्तावत्तादृशं तस्य फलमीशः प्रयच्छति॥ १७॥

जो जब तक तथा जैसा शुभ अशुभ काय जिन लोगो ने किया है वही उसने समय तक, तथा वैसा ही उसका फल ईश्वर देते है ॥ १७ ॥

अथवा।

**मत्तमातङ्गगामिनि, यस्यास्तवाप्रमाणालोचनश्री सा त्वं वलि सश्रयावलग्ना कस्य नाधिक्षेप जनयसि ॥**

मत्तेति ॥ मत्त क्षीबो मातङ्ग शबरस्तद्वद्गच्छसि चेष्टसेऽवश्यम्। ■ ह्यनुचितचेष्ट त्वमपि तथा क्षीबा। म्लेच्छाभिगमस्यानुचितत्वान्त क्वापीत्यर्थ। पक्षे मातङ्गो हस्ती। यस्या भवत्या आलोचनश्री विवेकसपद्प्रमाणा प्रत्यक्षादिप्रमाणापेता सा त्व वलिनो बलवतो राज्ञ सश्रयऽवलम्बनावष्टम्भ्या कस्य पूज्यस्यापूज्यस्य वा अधिक्षेप तिरस्कार न करोषि। सर्वस्यापि करोष्येव। पक्षे लोचनश्रिय प्रसृत्यादिप्रमाणातिरिक्तम्। वलिरुदररेखा। अवलग्न मध्यम्। एवविधा सा त्व शुभ लक्षणा कस्य आधिक्षेप मन पीडाया अपनोद न करोषि ॥

मत्तमातङ्गगामिनि ( मतवाले किरात की तरह चलने वाली ) तुम्हारी आलोचन—श्री ( विचार शक्ति ) प्रमाणहीन है। ( तुम प्रत्यक्ष आदि प्रमाणा को नही मानती। )

तुम बलि सश्रय ( बलवान् राजा का आश्रय ) प्राप्त कर किसका अधिक्षेप ( अपमान ) नही करती ?

प्र प मत्तगजगामिनी! अप्रमाण ( बडी ) आखो की शोभा और बलि ( त्रिवलि ) युक्त अवलग्न ( कमर ) से सपन्न तुम किसकी आधि ( व्यथा ) का क्षेप ( नाश ) नही करती ?

**तदलमनेनालापालसप्रपञ्चेन। गतो भूयिष्ठो दिवस। समासन्नोऽस्माकमाह्निकसमय। सीदत्येषा ब्रह्मपरिषद्। गगनमण्डलमध्यमारोहति भगवानशेषकल्याणचिन्तामणिस्तरणि। अरविन्दारुणवदने न नक्तं समयमनुपालयन्त्यमी मुनय। अनुमन्यस्व। यामो वयम् ॥**

तदिति ॥ तस्मात्। अल पूर्यतामनेन। आलापे सभाषे आलस्यामध्यस्य सतो मध्यस्य च प्रपञ्चेन विस्तारेण। प्रकृत प्रक्रियत इति भाव। उक्तयो हि सप्रतिपक्षा भवन्तीत्यालप्रतिपेऽे सतोऽपि प्रतिपक्ष। तथाहि—'सन्त सच्चरितोदयव्यसनिन प्रादुर्भवद्यन्त्रणा सर्वत्रैव जनापवादचकिता जीवन्ति ■ ए सदा। अव्युत्पन्नमतिकृतेन न सता नैवासता व्याकुलो युक्तायुक्तविवेकशून्यहृदयो धन्यो जन प्राकृत'। अथवा आलापस्य आन्नेनावस्तुरूपेण सन् न परमार्थेन सन् योऽसौ प्रपञ्चस्तेनाल निरर्थकत्वात्। यदुक्तम्—'यदत्रार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत्'। दाहग ■ यशोमाजनपालीनहिंसकत्यादिकस्य मुनीनां प्रतिपादनाद्दीद वदन यस्यास्तस्या सबोधनम्। न अरवि नक्त समयम्। अपितु सरवि सध्यासमय मुनयोऽप्यनुपाल

यन्ति। नक्तमित्यनेन सन्ध्या लक्ष्यते। वयमपि मुनयस्ततोऽस्माकं सन्ध्यावसर इत्यभिप्रायः। ग्मुनौ अरविन्दवदनां वदन् यस्यास्तस्याः संबोधनम्। नैते मुनयः संध्याकालमनु पक्षपाल्यन्ति। अवश्यविधेयत्वात्तत्कालकर्मेत्यर्थः। तस्मादनु-जानीहि यामो वयम्॥

इस आलाप (चर्चा) के आल (अन्त्य) तथा सत् (सत्य) प्रपञ्च से क्या लाभ ?

दिन का बड़ा भाग बीत गया। हमारे सन्ध्यानुष्ठान का समय समीप है। यह ब्राह्मणों की गोष्ठी (बैठे बैठे) दुःखी हो रही है। समस्त कल्याण को देने वाले भगवान् सूर्य आकाश के मध्यभाग में आ रहे हैं।

हे दाशवदने ! [पाठीन, हिंसक, धीवर, पुष्पवन् कान्तारग इत्यादि पदों से मुझे तूने सबोधित किया है इसलिए तुम दाशवदना हो।]

अरविनक (सूर्यहीन) सन्ध्या काल की सन्ध्या का अनुष्ठान मे मुनिलोग नहीं करते। [केवल सन्ध्याकालीन सन्ध्या ही नहीं करते, मध्याह्नकालीन सन्ध्या भी करते हैं।] आज्ञा हो। हमलोग जाते हैं।

इत्यभिहिता सा प्रियंगुमञ्जरी 'महर्षे, मर्षणीयोऽयमेकस्त्यक्तकुल-वधूधर्मो नर्मापराधः। स्वीक्रियन्तामेतानि विविधान्युल्लसन्मयूखमञ्जरी-रचितेन्द्रचापचक्राण्याभरणानि। गृह्यतामिदमिन्दुद्युतिधवलमनल-शौचं चीनांशुकपट्टपरिधानयुगलमियं च कुसुममालिका' इत्यभिधाया-स्यान्यदप्यतिथिसत्कारोचितमुपढौक्य प्रसादनाय प्रणाममकरोत्॥

इतीति॥ इत्युक्ता सा राज्ञा महर्षे इत्याद्यभिधायातिथिसत्क्रियायोग्यमुपहृत्य हर्षयितुं प्रणतिं चक्रे॥

ऐसा कही जाने पर प्रियंगुमञ्जरी, "महर्षे ! कुलाङ्गना के मार्ग को छोड़ कर जो यह एक मैंने नम्रतापूर्ण अपराध किया उसे क्षमा करेंगे। इन अलङ्कारों को स्वीकार करें जिनमें छिटकती हुई किरण मञ्जरियों से इन्द्रधनुष जैसी रेखायें बन गई हैं। अग्नि की तरह पवित्र तथा चन्द्रकान्ति की तरह धवल एक जोड़ा यह चिन्नवस्त्र तथा पुष्पमाला ग्रहण करें।"

इस तरह कह कर और भी अतिथि—सत्कार के उपयुक्त चीजों को लाकर महर्षि को प्रसन्न करने के लिए प्रणाम की।

मुनिस्तु 'गौरवमुखि, वृत्तमुक्तोऽयं हारः, दोषालयमङ्गदम्, जघन्यापदाश्रयं काञ्चीदाम, सदापदाधिष्ठानं नूपुरम्, अलंकारो मनद्वि-धानामेव राजते नास्माकम्। इयं च परिमलवाहिनी माला निबद्ध-मधुकरालापाचीनं वासश्च तवैवोचितम्' इत्यनेकधा श्लिष्टालापलीलया-

तिवाह्य काञ्चित्कालकला करकलितकमण्डलुर्मण्डलेश्वरमापृच्छ्य ताँ च प्रियगुमञ्जरीं जरठतमालनीलमम्बरतलमुदपतत् ॥

मुनिरिति ॥ वृत्तमुक्तो वर्तुलमौक्तिक शीलरहितश्च। दोषाशब्दो भुजपर्याय इति दोषा बाहू आलयो यस्य। दोषा अवद्यानि च। यद्विश्व—'दोषा रात्रौ भुजेऽपि च'। जघने भव जघ य गर्हित च। तादृक पदमाश्रयो यस्य। 'सदा शश्वत् पदे पादावधिष्ठानमाश्रयो यस्य। पक्षे सतामप्यापदामासमन्तादधिष्ठान नगरम। आपदामाधेश्च स्थानमिति वाक्ये तु सुषामादित्वात्षत्वम्। इति प्रकृतेऽलकारस्य वर्णन मौणत्र्या दूषणम्। तस्मादेव दोषयुक्तोऽलकारो युष्मादृशीनामेव भाति, नास्माक यतीनाम्। यतो हि चारित्र्यमण्डना नर्मण्यस्तु अलमत्यर्थं कारो राजप्रासाद भागस्वादृशीना राजपत्नीना सगच्छते, नास्माक वनवृत्तीनाम्। लोकस्यापकुर्म एव वय, न कुतोऽपि किंचित्प्रतिगृह्णीम इति भाव। इय च सुगन्धि सभृङ्गलापा स्रक चीनमशुक च तवैव युक्त, नास्माकम्, यस्मात् परितो मल वहति। तथा निषद्धमधुना समवेतसुरया कराला एवभूतासौ स्रक्। अपाचीन निकृष्ट च वास। इति समय कतिचल्लेपोक्तिभिर्निर्गमय्य गगनमुदगात् ॥

प्र प —गौरवमुक्ति! (प्रभावमुक्ति!) यह हार वृत्त मुक्त (गोल मणियो) का बना है। इस अगद (भुजभूषण) के दोष (भुजाये) ही आलय है। इस करधनी का आश्रय जघनपद (मध्य) भाग है। ये नूपुर सदा पद मे ही रहते हैं इसलिए ये अलंकार आपही जैसे लोगो में अच्छे लगते है हम लोगो मे नही। भ्रमर गुञ्जार से मुखरित यह परागपूर्ण माला तथा चीनाशुक वस्त्र आपही के लिए उचित है।

नि प —गौरवमुक्ति! यह हार (व्यवहार) मुक्त वृत्त (शील रहित) हैं ब्रह्मचारी मुनि के लिए चमकीले वस्त्र अलकार तथा सुगधित माला आदि देना मर्यादा के प्रतिकूल है। मनु ने ब्रह्मचारियो के लिए इन सभी पदार्थों का निषेध किया है। यह अगद (बाहुभूषण) दोषो का हार है। यह करधनी निन्दा का स्थान है। यह नूपुर सज्जनो के लिए आपत्ति और आधियो (रोगों) का स्थान है। परि (चारो तरफ से) मलवाहिनी (रजपूर्ण) तथा मधु (सुरा की तरह मादक गध वाली) कराल (भयकर) माला, तथा यह अपाचीन (अधम वस्त्र) मैं लेकर क्या करूगा। इस तरह श्लिष्ट उक्तियो मे बात करते हुए कुछ समय बिताकर हाथ मे कमण्डलु उठाकर राजा तथा प्रियगुमञ्जरी से कहकर पुराने तमाल पत्रो की तरह नीले आकाश में उड गये ॥

वियति विशदविद्युल्लोललीलायमाने
स्फुरदुरुपरिवेषाकारकान्तौ मुनीन्द्रे।
अथ गतवति तस्मिन्विस्मयोत्तानिताक्ष
क्षितिपतिरवतस्थे स्थाणुसंस्थां दधान ॥ १८ ॥

विरमीति ॥ विस्मयाच्चिथलाकृतिर्नृपः स्थाणुनोपमितः ॥ १८ ॥

आकाश में तीव्र दीप्तिपूर्ण बिजली की तरह गतिवाले, चमकते हुए विशाल गोलाकार अपने तेज का परिवेष बनाते हुए मुनि के चले जाने पर आश्चर्य के मारे अपनी आँखों को ऊपर उठाये हुए राजा स्तम्भ की तरह वहीं खड़े रह गये।

[ तेज अपने पिण्ड के चारो तरफ परिवेष बनाता है। मुनि का भी वैसा ही परिवेष था ] ॥ १८ ॥

स्थित्वा च तत्कथाप्रस्थया काश्चित्कालकलाः कलापिकुलोत्कण्ठाकारिणि रणति नवजलधररवरमणीये मध्याह्नगम्भीरभेरीरवे शङ्खयुगलके, विशति बिसकाण्डकवलनमपहाय तीव्रतरतपनतापताम्यत्तनुनि नवनलिनीछदच्छायामण्डलमुपवनदीर्घिकावतंसे हंसकुले कुमुदकुवलयाम्भोजपत्रपुञ्जपञ्जरान्तरमनुसर्पति परिहृतोष्णमधुनि, मुकुलितपक्षपुटे षट्चरणचक्रवाले चटुलाभिमशुशिखरोल्लिखितधरणिमण्डलेषु खण्डितसर्वदूर्वानालनीलघुरघुरायमाणघोणाकोणेषु विमुच्यमानेषु पिपासातुरतुरंगेषु, घर्मविघूर्णितेषु ससूत्कारकरविमुक्तसीकरासारवर्षणार्द्रिताङ्गेषु मज्जनाय सज्जितेषु सेवागतराजकुञ्जरेषु, क्रीडागिरिसरित्तमवतार्यमाणेषु लीलामृगमिथुनेषु, पयोभिः पूर्यमाणासु पञ्जरपक्षिपयःपातपात्रीषु उद्यानारघट्टतटीं टीकमानासु कोयष्टिमयूरमण्डलीषु, क्रीडामरुः सरत्सु संगीतश्रमस्विन्नक्षिन्नकिंनरेषु, कूपकूलकुलायकोणकूणितेष्वातपातङ्काकुलकलविङ्केषु, भवनवनवापीपुलिनपालिपांसुपटलमुत्तमपहाय शीतलशैवलावलिं श्रयति तपलितनके, कूँकारयति क्रौञ्चचकोरचक्रवाकचक्रे, क्रीडामरोपितप्राङ्गणप्रान्ततरुशिखरमध्ये मध्याह्नबलिपिण्डाय पिण्डिते कँकारयति काकवयसां कर्णकटु कुटुम्बके, चक्रवलयवलक्षाण्स्त्रिपति दिक्षु दीप्रान्दीप्तिदण्डांश्चण्डरोचिषि, विसर्ज्य परिजनं राजा मज्जनभवनायोदचलत् ॥

स्थित्वा चेति ॥ राजापि निश्चलनेत्रस्तया तमवलोक्य कंचित्त समयं तत्कथाभिरेवातिवाह्य मध्याह्नस्नानसद्मने प्रतस्थे ॥

उन्हीं की चर्चा में कुछ क्षण बिताकर मयूरवर्ग में उत्कण्ठा उत्पन्न करने वाले, नवीन मेघ की तरह रमणीय गर्जन करने वाले दोपहर को विशाल नगाड़े के साथ दो शङ्खों के बजने पर कमलनाल का खाना छोड़कर सूर्य की प्रखर किरणों से शरीर के जलने लगने पर उपवन सरोवर के भूषण राजहंस कमलिनी पत्रों की छाया में घुसने लगे। ( पुष्पों के ) उष्ण रस को छोड़ कर अपने पंखो

को सकुचित कर भ्रमर समूह कुमुद, कुवलय तथा अम्भोज ( श्वेतकमल ) के पत्र समूह के भीतर जाने लगे। वे प्यास से व्याकुल घोडे छोडे जा रहे थे। चञ्चल खुरो के अग्रभाग से पृथ्वीमडल को खोद रहे थे। छोटे छोटे हरे दूब के टुकडे नाक मे अटक गये थे। अत घुर घुर आवाज कर रहे थे। सेवा के लिए आये हुए राजकुञ्जर जो धूप से पीडित होकर सी सी करते हुए अपने शुण्डो से निकले हुए जलकणो की वर्षा से आगन को भिगो रहे थे, स्नान के लिए सजाये जा रहे थे क्रीडा शैल की नदी म लीला मृगों के जोडे उतारे जा रहे थे। पिजडे के पक्षियो के पानी पीने वाले पात्र भरे जा रहे थे। उपवन के अरघट्ट ( रेहट ) तटपर सारसो और मयूरो का समूह ( प्यास बुझाने ) आ रहा था। गीत श्रम के कारण स्वेद ( पसीना ) युक्त तथा दु खी किनर गण क्रीडा सरोवर की ओर बढ रहा था। कूप तट मे बने हुए खोखलो के कोने म प्रविष्ट धूप विह्वल से कलविङ्क ( चटक पक्षी व्याकुल हो रहे थे। गृहरूपी अरण्य जलाशय की तट पक्तियो की गरम धूलि को छोडकर चञ्चल नक्र ( घडियाल ) शीतल शैवाल पक्ति तल म आ रहे थे। क्रौञ्च, चक्रवाक तथा चकोर कूज रहे थे। क्रीडा के लिए आगन मे रोपे गये पेड की चोटी पर मध्याह्न बलि के पिण्ड प्राप्त करने के लिए इकट्ठे हुए काक पक्षियो का कर्ण कटु कुटुम्ब केङ्कार कर रहे थे। भगवान् बगुले के पख की तरह श्वेत अत्यन्त द्युतियुक्त किरणदण्ड को विविध दिशाओ मे ( भगवान् सूर्य ) फक रहे थे। ऐसे समय मे अपने परिजनो ( समीपवर्ती अनुचरो ) को छोडकर राजा स्नानागार की ओर चल दिये।

**गत्वा च पृथ्वीवलयमिव पय पूर्णसमुद्रद्रोणीकम् केदारोदरमिव सकलशालिस्थानम्, श्रोत्रियद्विजजनभवनमिव सकलधौतपट्टम्, अनतिमर्णार्थं मज्जनभवनमवतारिताभरण स्नानपीठे निषसाद ॥**

गत्वा चेति ॥ मज्जनगृह गत्वा स्नानपीठे निषण्ण गृह विशिष्यते। पयसा पूर्णा समुद्रा मुद्राङ्किता द्रोणी जलपात्री कुण्डिका यत्र। स्नानीयजलादिषु मुद्रा दीयत इति राजधर्म । तथा कलशा कुम्भास्तेषामालि पङ्क्तिस्तया सह युक्तानि स्थानानि प्रदशा यत्र। तथा कलधौतस्य हेम्न पट्ट आसन तेन सह। अन्यत्र पय पूर्ण समुद्रो द्रोणी च यत्र। द्राणी दशविशेष । यद्विश्व —'द्रोणी स्याच्चीवृदन्तरे'। कदारोदर तु समग्रशालिस्थानम। तथा सकला सर्वे धौता धौता क्षालिता पट्टा ह्रासनानि यत्र ॥

जल से पूर्ण तथा मुद्रा ( द्रव्य ) सहित द्रोणी ( जलकुण्ड ) से युक्त वह ( भवन ) पृथ्वीवलय ( समुद्र ) की तरह लग रहा था।

केदार ( खेत ) का मध्य भाग जैसे सकल शालि स्थान ( सम्पूर्ण धान का स्थान होता ) है वैसे ( वह भवन भी ) सकल शालि स्थान ( कलशों की पक्ति

सहित स्थान वाला ) है। वैदिक ब्राह्मण का घर जैसे सकल धौतपट्ट ( सभी धुले हुए वस्त्रों से युक्त ) होता है वैसे वह भी सकलधौतपट्ट ( कलधौत ( सोने ) का पट्ट ( आसन ) से युक्त है। ऐसे भवन ( स्नानागार ) में जाकर अपने अलङ्कार को उतार कर स्नान-पीठ पर बैठे।

[ पृथ्वीवलय का दो तरह से समास करेंगे। पृथ्व्याः वलयः समुद्रः। पृथ्वी बीच में है और समुद्र उसके चारो ओर है। इसलिए यह वह उसका वलय हुआ। दूसरा—पृथ्वीवलयस्य मुद्रया सदृशस्य समुद्रस्य प्रांगीकस्य भवनस्य। यहां समासभेद में वस्तुसाम्य और शब्दसाम्य दोनों है। ]

आसन्नस्थितश्चास्यावसरपाठकः पपाठ—

इनके पास में खड़ा हुआ अवसरपर स्तुति पाठ करने वाला पाठक ने पढ़ा—

वररजनीकरकान्ते चित्राभरणे निशानभःसदृशे।
नव नृप मज्जनभवने सवितानाभाति परमश्रीः ॥ १९ ॥

वरेति ॥ नृप इति सम्बोधने। अधुना त्रिरुक्तिलंकृतानि। वर श्रेष्ठ। रजनीकरस्य चन्द्रस्येव कान्तिरस्येति, चन्द्रद्युते। रणे युद्धे चित्रो व्याघ्रसदृशाभा अस्येति तथोक्ते। तथा निशातैस्तेजोभिरभिवर्तनत्वेनीति कृत्वा सुभटस्य अथवा निशानं निर्मलं वमसि शोभते। तथा सदृशः कामो यस्येति कृत्वा कन्दर्पप्रतिम। मज्जनभवने सविताना शोभोत्थ उत्कृष्टश्रीर्दीप्तिः। अथ च मज्जनभवने सविता रविर्नाभाति। पर केवलम्। मश्रीर्निष्प्रभ एवेत्युल्लेखः। यतो निशायां पद्मस्तम्भसदृशो। प्रद्योतनाद्युपने हेतुरयम्। तथा चित्राभरणालावि यत्र। समपदे चित्रा नक्षत्रम्। तथा वरा श्रेष्ठा रजनी हरिद्रा तां कुर्वन्ति मन्दुर्वन्तीति कृत्वा रजनीकरा गन्धकारकास्तैः कान्ते। नमस्तु वरो दीप्तिमान् सूर्याभावात् रजनीकरः शशी तेन कान्तम् ॥ १९ ॥

प्र पक्ष—पूर्णचन्द्र जैसी कान्ति वाले, व्याघ्रप्रतिम, तीक्ष्ण तेजवाले, कामदेव के प्रतिरूप, इस स्नानागार में आपकी तेजोलक्ष्मी, पूर्ण विस्तार से शोभित हो रही है ॥ १९ ॥

द्वि पक्ष—उत्कृष्ट कोटि की रजनी ( हल्दी लेपन द्रव्य ) बनाने वाले लोगों से मनोहर, विचित्र अलङ्कारों से युक्त, रात्रिकालीन आकाश की तरह ( कुछ नीला, कुछ विभिन्न अलङ्कारों के कारण तारों जैसा ) वि ( मधुर बोलने पक्षियों ) के विस्तार से भरे हुए भवन में उत्तम कोटि की लक्ष्मी सुशोभित हो रही है ॥ १९ ॥

तृ. पक्ष—चित्रा और भरणी नक्षत्र और वर रजनीकर ( चन्द्र ) कान्त से युक्त रात्रिकालीन आकाश में जैसे तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्य नहीं चमकते वैसे आपके इस मज्जन भवन में किसी प्रकार की तीक्ष्णता नहीं है ॥ १९ ॥

[ प्रथम पक्ष—वररजनीकरकान्ते ! ( पूर्ण चन्द्र जैसी कान्ति वाले ) समस्त कान्ति शब्द के सम्बोधन का रूप 'कान्ते' है। रणे चित्राभ ( लडाई में व्याघ्र सदृश ) चित्र शब्द व्याघ्रवाचक है। अर्थात् चित्र ( व्याघ्र ) सदृश आभा है जिसकी। यह भी सबोधन का रूप है। निशानभ ! ( तीक्ष्ण तेजवाले ) सदृशे ( सदृश है ) इ ( काम ) जिनके वह। अर्थात् काम का प्रतिरूप सदृशे भी सम्बोधन का ही रूप है। सदृश और इ में गुण सन्धि हुई है। सवितानो ( विस्तारपूर्ण )।

द्वितीय पक्ष—वररजनीकरका न्ते—( सुन्दर हल्दी का गन्धद्रव्य बनाने वाले लोगो से मनोहर ), चित्राभरणे ( विभिन्न अलङ्कारो से मण्डित ) निशानभ सदृशे मज्जनभवने ( रात्रिकालीन आकाशसदृश स्नानागार में ) सवितानो परमश्री ( विस्तारपूर्वक लक्ष्मी ) भाति ( चमकती है )। ( रजनी शब्द हल्दी का भी वाचक है। )

तृतीय पक्ष—वररजनीकरकान्ते ( पूर्ण चन्द्रमा द्वारा मनोहर ) चित्राभरणे ( चित्रा नक्षत्र रूप आभरण वाले ) रात्रिकालीन आकाश मे परमश्री सविता ( पूर्ण तेज सूर्य ) न आभाति ( चमकते नही है। ) निशानभ शब्द को सूर्य का विशेषण बनाया जा सकता है। निशान ( तीक्ष्ण ) है भा ( किरण ) जिनकी अर्थात् तीक्ष्ण किरणो वाले। ॥ १९ ॥

अनन्तरमुत्तुङ्गकनककुम्भशोभास्पधिकुचमण्डलार्धबद्धोत्तरायाशुक परिकरा सस्मरस्मितविकारकारिण्य दर्शितसीत्काराङ्गमलनवि न्यासा, काश्चित्समुद्रवेल इव समकरोत्क्षिप्तामलका काश्चित्तरुण तरुमञ्जरीराजय इव भृङ्गारभरभुग्नदेहा, काश्चिदन्यायकारिण्य इव सभाजनाद्धूलनकरा, काश्चिन्मलयाचलभूमय इवोत्कृष्टगन्धधारितैला काश्चिद्देवलोकवसतय इव चामरधारिण्य काश्चित्पुरन्दरपुरन्ध्रिका इव सविभ्रमकङ्कतिकोपान्तेनाकेशप्रसादनमाचरन्त्य काश्चिद्विन्ध्याटव्य इव दर्शितविविधपादपालिका, काश्चिद्राघवसेना इव कृतप्रहस्तमर्दना, काश्चिद्वधान्तरणवृत्तय इव बाहुलता सवाहयन्त्य मज्जननियुक्ता कामिन्यो राजान स्नपयामासु ॥

अनन्तरमिति परिकरमावध्येति जघन पटावष्टि कृत्वा कामि यो राजानमस्न पयन्। समेनाविषमेण करेणोत्क्षिप्तान्यामलकानि याभि। आमलकचूर्णं हि स्नानी यम्। भृङ्गार कनकालुका। भाजनं पात्रम्। नखोद्धूलन चूर्णविशेष तेन सह कर पाणिर्यासाम्। सभाजनोद्धूलनपाठे उद्धूलनमुद्वर्तनम्। उत्कृष्टानि उद्घतानि गन्ध धारीणि तैलानि याभि। चामर प्रकीर्णकम्। विशिष्टो भ्रमश्चलनं तेन सह या कङ्क तिका केशमार्जनी तस्या उपान्तेनासमन्तात्केशानां विरलीकरणमाचरन्त्य। पालि

पर्यायाश्रमरः। यदमरः—'पालिः कर्णलताग्रां स्यात्प्रदेशे पङ्क्तिचिह्नयोः। इष्टरमश्रुस्त्रियामस्त्री पर्यायावसरे क्रमे'। ततश्च दर्शिता विविधा पादपालिः पादमर्दनावसरो याभिः। कृतं प्रकर्षेण हस्तमर्दनं याभिः। बहुलनाम्नि बाहुलेतेवैति। पक्षे मकरैः सह उन्मिश्रमलं कं जलं यस्मि। भृङ्गाणामार आगमनं तस्माद्यो भरः। तथा अवाच्यवचनैः सभाजनस्योद्धूलन मालिन्य कुर्वन्ति। उद्धूलनपाठे तु समाजनादुद्धूलनमपसरणम्। उत्कृष्टगन्धधारिता एला ओषधिविशेषो याभिः। च पृथक्। अमरा देवा। सविभ्रमं सविलासं कं सुखं यत्र। कतिकोपान्ते किमाकोपविरामे नाकेशस्य दिवस्पते प्रसादनं कुर्वन्ति। कतोनि पुरप्रिकानिवेशेण वा। दर्शिता विविधा पादपानामालयो याभिः। प्रहस्तो रावणप्रतिहारस्तस्य मलनमभिभव। बाहुल्या बाहुलकम्॥

इसके बाद कामिनियाँ जो स्वर्णकलश की शोभा से भी स्पर्धा रखने वाले ऊँचे स्तनमण्डल के आधे भाग को उत्तरीय (चादर) से बाँधते हुए कटि तक को कसी हुई हैं। मुस्कुराहट से कामविकार उत्पन्न कर देने वाली हैं। अङ्गों को मलते समय सीत्कार उत्पन्न करा देती हैं। जैसे समुद्रतट समकरोन्मिश्रामलक (ग्राह द्वारा ऊपर उछाले हुए निर्मल (क) जल से युक्त होता) है वैसे वे (कामिनियाँ) भी समकरोन्मिश्रामलक (हाथ को बराबर कर आमलकी चूर्ण शरीर पर छिड़क रही) हैं। जैसे पूर्ण विकसित मञ्जरी पंक्ति भृङ्गार—गुरु+देह (भृङ्गों के आर (आगमन) के भार से नमी होती है), वैसे ही वे भृङ्गार+गुरु देह (भरे हुए स्वर्ण जलपात्र के भार से टेढ़ी देहवाली) हो गयी है। अन्यान्यकारिणी (अनुचित कार्य करने वाली) स्त्री जैसे सभाजनोद्धूलनकरी (सभ्य आदमी को भी अपशब्दों या दुर्व्यवहारों से मलिन कर देती है) है वैसे कोई सभाजनोद्धूलनकरी (भाजन (पात्र तथा उद्धूलन (चूर्ण) युक्त हाथ वाली) है। मलय पर्वत की भूमि जैसे उत्कृष्ट गन्धधारितैला (उत्तम कोटि की गन्धवाली एला (ओषधि विशेष) को धारण करती) है, वैसे उनमें भी कोई उत्कृष्ट गन्धधारितैला (उत्तम कोटि के गन्ध तैल को ली हैं) देवलोक की नगरियाँ जैसे चामरधारिणी (अमरों (देवताओं) को धारण करती) हैं वैसे वे चामरधारिणी (चवँर ली हुई) हैं। इन्द्राङ्गनाएँ जैसे सविभ्रमकङ्कतिकोपान्तेनाकेशप्रसाधन (सविभ्रमक (विलासपूर्वक सुख उत्पन्न करती हुई) कतिकोपान्त (कुछ क्रोध के समाप्त हो जाने पर नाकेश (इन्द्र) को मानती रहती) हैं वैसे वे भी विलासपूर्वक कंघी से केश का प्रसाधन कर रही हैं। विन्ध्याटवी जैसे दर्शित विविध+पादपालिक (बहुत वृक्ष पंक्तियों को प्रदर्शित करता) है वैसे वे भी बहुत ढंग की पाद-पालन-विधियाँ दिखाती हैं। राघव-सेना ने जैसे प्रहस्त (प्रहस्त नाम के रावणदूत) का मर्दन किया वैसे वे भी प्रहस्त (जोरदार हाथों) से मर्दन कर रही हैं।

व्याकरण नियम जैसे बहुलता से प्रवृत्त होते हैं वैसे वे भी बाहुलता का संवाहन ( मर्दन ) कर रही है। इस तरह स्नान कराने के लिए नियुक्त कामिनियों ने राजा को स्नान कराया।

किं बहुना—

तास्तास्तं स्नपयामासुरङ्गनाः कुम्भवारिणा।
यस्य या स्युः प्रसन्नेन द्युलोकात्कुंभवारिण ॥ २० ॥

ता इति ॥ भवस्य संसारस्यारि शिवस्तेन। प्रसन्नेन हेतुना। द्युलोकात्स्वर्गलोकात्। कुं पृथ्वीम् आगत्य। या स्युर्भवेयुः। तास्ताः स्त्रियः। तं कुम्भवारिणा कलशोदकेन स्नपितवत्य ॥ २० ॥

उस राजा को कलश जल से असामान्य सौन्दर्य की अङ्गनाएँ स्नान करायीं जो भवारि ( संसार-बंधन के शत्रु भगवान् शंकर ) की प्रसन्नता के कारण द्युलोक ( स्वर्गलोक ) से आयी हुई थीं॥ २० ॥

अथ विमलदुकूलप्रान्तनिर्नीरिताङ्गः
परिहितसितवासाः स्वल्पमाङ्गल्यभूषः।
शुचिरुचितविधिज्ञः स स्वयं स्वस्थचित्तः
कुशकुसुमकरः सत्कर्म धर्म्यं चकार ॥ २१ ॥

अथेति ॥ निर्नीरितं निर्जलीकृतमुद्गमितमित्यर्थः ॥ २१ ॥

इसके बाद एक निर्मल वस्त्र से शरीर के जल को पोछकर, सफेद वस्त्र तथा कुछ माङ्गलिक अलङ्कारों को पहन कर उचित विधानों का जानकार एवं पवित्र, राजा ने स्वस्थचित्त होकर स्वयं हाथ में फूल और कुश लेकर धार्मिक कृत्य किया ॥ २१ ॥

अनन्तरमावर्तितानेकस्वर्णवल्लभो वल्लभो जनस्य भोजनस्य समये स मयेन निर्मितया तया स्वधर्माणं धर्मसुतसभया सभयागतजनजनितारम्भोऽरं भोजनस्थानवेदीं जनस्थानवेदी गतवान् ॥

अनन्तरमिति ॥ आवर्तिता येऽनेके स्वर्णस्य वल्लास्तौल्यमानविशेषास्तद्वल्लभस्य। तथा वल्लभो दयितो लोकस्य भोजनस्य काले स राजा मयेन दैत्यवर्धकिना कृतया तया प्रतीतया युधिष्ठिरस्य सभया सधर्माणं सदृशीं भोजनस्थानवेदीम्। सभयानामागतानां शरणं प्रपन्नानां जनानां जनितरक्षोपक्रम। अरमत्यर्थं जनानां स्थानवेदी लोकस्योचितासनज्ञ प्राप्तवान् ॥

आवर्तित ( कई बार व्यवहार में आये हुए ) चमकीले स्वर्णमापों की तरह कान्ति वाले, लोगों के प्रिय, भयभीत लोगों के शरण में आने पर उनकी रक्षा के लिए सदा प्रयत्नशील, जनस्थानवेदी ( योग्यतानुसार लोगों को स्थान देने वाली विधि का जानकार या जनस्थान ( अपने राज्य ) का जानकार)

वह राजा मय नामक दैत्य द्वारा निर्मित युधिष्ठिर सभा की तरह ( अलौकिक एवं भ्रान्ति उत्पन्न कर देने वाली ) भोजन-स्थान की वेदी पर गया ॥

तस्यां च बहुविस्तीर्णस्वर्णभोजनपात्रपत्त्रशङ्खशुक्तिसनाथायामुपविष्टस्यास्य क्रमेण परिकरमाबध्य गाढमाढौकन्त स्वस्य स्वस्यानुहारिणोऽन्नविशेषानादाय सूपकाराः सूपकाराङ्गनाश्च ॥

तस्यां चेति ॥ सूपकारा औदनिका सुपूपकारकाश्च ॥

बहुत से बिखरे हुए स्वर्णपात्रों के पत्तों एवं शंख शुक्तियों से सनाथित उस ( भोजन वेदी ) पर राजा के बैठने पर कमर को बाँधे हुए अपने-अपने सुस्वादु अन्नों को लेकर सूपकार ( पाचक ) तथा उनकी पत्नियाँ पंक्तिबद्ध होकर ला रहीं थीं ॥

तथाहि—

भक्तास्तस्य भक्तम्, मुद्गा मुद्गान्, मोदका मोदकान्, अशोकवर्तिन्योऽशोकवर्ती, समांसा मांसम्, नानाशाकाः शाकानि, व्यञ्जना व्यञ्जनम्, अपरास्तु काश्चिदक्षीरा अपि क्षीरम्, अघारिका अपि घारिकाः परिवेषयामासुः ॥

भक्ता इति ॥ भक्ताः प्रसादकाः । मुदं गच्छन्तीति मुद्गाः । मोदयन्तीति मोदकाः । न शोके वर्ततेऽभीष्टमशोकवर्ती मीनायको येषां यासां च । समीऽस्तो धामाम् नाना अनेकप्रकारा आशा येषा यासां च । 'शेषाद्विभाषा' इति कप् । विशिष्टाञ्जना । अक्षीणि ईरयन्ति विभ्रमातिरेकम्पयन्ति । अघस्य पापस्य अरिकाः शत्रुरूपाः । भक्तमित्यादि कर्मपदानि भक्ष्यार्थानि । परिवेषणमत्र भोजनस्य भाजने क्षेपणम् ॥

भक्त ( प्रसन्न कर देने वाले पाचक ) भात, मुद्ग ( प्रसन्न मुख मुद्रा वाले ) मुद्ग ( मूँग की बनी मिठाई ), मोदक ( आनन्दमग्न कर देने वाले पाचक लोग ) मोदक ( लड्डू ) अशोकवर्तिनी ( शोकहीन नायक वाली ) नायिकायें शोकवर्ती ( भोज्य विशेष ), नानाशाक (विभिन्न आशाओं वाली स्त्रियाँ) शाक, विशिष्ट ढंग का व्यञ्जन लगायी हुई स्त्रियाँ व्यञ्जन, अक्षीर ( आँखों के विलास युक्त स्त्रियाँ ) दूध, अघारिका ( पापों के शत्रु रूप दिव्य धर्मों वाली ) पाचिकायें घारिका ( भोज्य विशेष ) परोसीं ।

सोऽप्यधीशो भूभुजां भुञ्जानो भोज्यम्, लिहँल्लेह्यम्, आस्वादयन्स्वाद्, चूषयञ्चूष्याणि, पिबन्पेयानि, आहारमकरोत् ॥

इन्हीं महीपालों का स्वामी वह ( राजा ) भी भोज्य पदार्थों को खाता हुआ, चाटने योग्य पदार्थों को चाटता हुआ, सुस्वादु पदार्थों को

आस्वादित करता हुआ चूसने के पदार्थों को चूसता हुआ, पेय पदार्थों को पीता हुआ भोजन किया ॥

अनन्तरमाचम्य चन्दनेनोद्वर्तितपाणिपल्लवः शीघ्रमाघ्राय धूपधूमम्, आस्ये निक्षिप्य कस्तूरिकाकुङ्कुमकर्पूरकर्बुराणि क्रमुकफलशकलानि, आदाय च चित्रस्तमृगतर्णकर्णकान्ताणि शुक्तिशुक्लानि ताम्बूलीदलानि, तस्मात्प्रदेशादपरमवकीर्णकुसुमहारि विस्तीर्णास्तीर्णस्वर्णमयवैदूर्यपर्यन्तपर्यङ्काङ्कितैः सह विनोदास्थायिकास्थानमगात् ॥

अनन्तरमिति ॥ त्रस्तस्य हि मृगशावस्य कर्णौ स्तब्धौ भवत । ताम्बूलीदला न्यपि तादृशीति भाव ॥

इसके बाद आचमन कर चन्दन [redacted] करपल्लव को मलकर शीघ्र ही धूपधूम को सूंघ कर, कस्तूरी, कुङ्कुम और कपूर से कर्बुरित ( चितकाबर ) किये हुए कसैल को मुख मे डालकर, डरे हुए मृग शिशु के कान की तरह मनोहर तथा शुक्ति की तरह सफेद ताम्बूलदल ( पान ) लेकर उस स्थान से दूसरी जगह बिखरे हुए फूलो के कारण मनोहर बिछे हुए विस्तर वाले स्वर्णमय, वैदूर्य मणि से खचित, पलग वाले स्थान पर, जहां विनोद गोष्ठी होती थी, गया ॥

तत्र च सकामकामिनीकमलकोमलकरपुटपीड्यमानपादपल्लवो नर्तयन्नाट्यपरिपाटीपटून्नटान्, भावयन्नमृतस्रुतः कविवाचः, वाचयंश्चिरंतनकविकथाः, शृण्वन्वीणाप्रवीणकिंनरमिथुनगीतानि, आलोकयँल्लोचनोत्सवकरान्विलासिनीलास्यविलासान्, वादयन्मृदुवाद्यविशेषान्, अवधारयन्वांशिकवाद्यवेणुनिक्वाणान्, कलगिरः पाठयन्पञ्जरशुकान्, कान्ताकुचकुम्भमण्डलाश्लेषलीलयापराह्णसमयमतिवाहितवान् ॥

वहां भी कामपूर्ण कामिनियों के कमल की तरह कोमल करयुगल से उनके पल्लव सदृश पैर दबाये जा रहे थे। नाट्यपद्धति मे प्रवीण नटों को नचा रहे थे, अमृत टपकने वाली कविवाणी पर विचार कर रहे थे, पुराने कवियो की कथाएँ पढ़ रहे थे। वीणावादन म कुशल किन्नर युगल के गीत सुन रहे थे, आखो को आनन्द देने वाली विलासिनियो ( वाराङ्गनाओ ) के नृत्य विलास देख रहे थे। मधुर बाजो को बजा रहे थे। वंशी के वेणुदण्ड से निकले हुए मधुर अनुरणन पर विचार कर रहे थे। मधुर बोलने वाले पिंजडे के शुकों को पढा रहे थे। इस तरह रमणियों के स्तनमडल की संश्लेष लीला से दिन का अपराह्न भाग बिताये ॥

क्रमेण च चषकायमाणविकचकमलमध्यमधुपानमत्त इव पुनर्वारुण्याशयाभिभूतभासि मदादिव लोहितायमाने निपतति मुक्तांशुकेऽंशुमालिनि, वनान्तरतरुशिखरशिथिलशाखाशिखरेषु गलद्बहलकिञ्जल्कपुञ्जपिञ्जरासु मञ्जरीष्विव विलम्बमानासु दिनकरदीधितिषु, विस्तीर्णशिलावकाशजघनायामुल्लसल्लोहिताधरपल्लवायामस्ताचलवनराजिरेखायामुपरि पतितमवलोक्य रागेणमहर्पतिमीर्ष्याविपक्षरादिव जाते जपापुष्पराशिचयरुचि पश्चिमाशामुखे, मुखरयति नभो निजनीडनिलयनाकुलकूजितजरच्छकुण्डजव्रजे, व्रजति मरः संध्याविधिविधित्सया द्विजजन्मजनमुनिनिकाये, कालागुरुसान्द्रजलपङ्क इव श्यामलयति गगनलक्ष्मीमभिसारिकाबन्धावन्धकारे, राज्ञः संध्यावसरमावेदयन्किन्नरमिथुनमिदमगायत् ॥

क्रमेणेति ॥ अन्योऽपि मधुपानेन माद्यति । पुनः पुनर्मधुपानेच्छया निष्प्रभः स्यात् । तथा चीवनया भास्करः मचिरेहो भूमौ पतति । विस्तीर्णशिलावकाश एव जघनं श्रोणी यस्याः । तथा उल्लसन्तः अधरा अधरियनाः प्रवाला यस्याः । ईदृश्यामस्ताचलारण्यराजौ उपरिष्टात्पश्चाद्भागिन रक्तं धुमणिं वीक्ष्य रोषादिव पश्चिमदिगानने रक्ते जाते । अन्यस्या अपि मुखमीदृशगुणायामपरकान्तायामनुरागिणमुपरि पतितं पतिमवलोक्येर्ष्याविषादाद्रक्तं स्यात् ॥

क्रम से चषक ( प्याले ) रूप खिले हुए कमलों के बीच के मधु पी लेने के कारण मत्त की तरह, मद के कारण लाल होते हुए सूर्य के अपने अंशु (किरणों) को छोड़ देने पर, विभिन्न जङ्गल के वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग पर गिरती हुई गाढ़ी पराग राशि से पिञ्जरित ( रक्तपीत मिश्रित रंग की ) मंजरी की तरह सूर्यकिरणों के लटक जाने पर फैली हुई शिलारूपी जघन वाली, उल्लसित अधरोष्ठ रूपी पल्लवों वाली वनस्थली की श्रेणी पर अपने प्रेमी सूर्य को गिरा हुआ देखकर मानो ईर्ष्या और क्रोध के कारण पश्चिम दिशा के जपापुष्प राशि सदृश अपने मुख कर लेने पर, अपने घोसले में छिपने की उत्कंठा से वृद्ध पक्षियों के आकाश को गुञ्जरित करना शुरू कर देने पर द्विजन्मा ( विप्र-क्षत्रिय, वैश्य ) मुनिवर्ग के सन्ध्या करने की इच्छा से सरोवर की ओर चल देने पर, अभिसारिकाओं के बन्धु, अन्धकार के आकाश-लक्ष्मी को कालागुरु सदृश अञ्जन रंग में काला करने लगने पर राजा का यह सन्ध्यावदन का अवसर है मानो यह बताता हुआ किन्नर-युगल ने गाया ॥

'भोगाम्भो गाङ्गमोघैर्विमलितशिरसः प्राप्य शंभोः प्रसादा-
न्मोहाम्भोहानमिज्ञाः क्वचिदपि भवत प्राणिनो दर्पभाजः ।
यस्मादेः स्मर्निर्विघ्नप्रणतिनुनपदः सर्वसंपत्प्रभोगो
नाम्यान्भाः स्वाङ्गभूता अपि स परिहरन्नस्तमेव प्रयाति' ॥ २२ ॥

भोगानिति ॥ भोगानित्यनन्तरो भो शब्द आमन्त्रणे। गाङ्गोर्मिभिर्निर्मलीकृताङ्गस्य शंभोः शिवस्य प्रसादाद्भोगान् प्राप्य भो दर्पभाज प्राणिन , मोहारसकाशाद् ऊहानभिज्ञा अविमर्शका क्वचिदपि विषये मा भवतेति। भावोऽपि सानु बन्धकत्वाद्विषो पञ्चमी। यस्माद्धेतोः स्मार्तविप्रैः प्रणामसमये स्तुतपादपद्म.। तथा सर्वसंपत् सकलश्रीको नभोगो वियद्गामी च यो भास्वान् रवि । सोऽपि स्वाङ्गभूता भा दीप्ती. परिहरन् एव भवता प्रत्यक्षोऽस्त प्रयाति। सर्वे सुलभा दुर्लभाश्च संपदा भोगा अस्येत्युक्ताभिहितम्। तस्मादेवंविधस्य महात्मनोऽपि रवेरस्तं विलोक्य शम्भोराराधनादिकार्ये न प्रमदितव्यमित्यर्थ. ॥ २२ ॥

गगा की लहरो से निर्मल शिरवाले भगवान् शकर की कृपा से विभिन्न भोगो को प्राप्त कर सदा मा ( लक्ष्मी ) विषयक ऊहु ( वितर्क ) मे लगे रहने के कारण ऊहानभिज्ञ ( वास्तविक पदार्थविषयक विवेक से हीन ) मत बनो, क्योंकि स्मार्त ब्राह्मणो द्वारा प्रणाम के माध्यम से जिनका पैर वंदित है तथा जिन्हें सभी लोग प्राप्त हैं ऐसे भगवान् सूर्य भी अपने अगभूत किरणो को समेटते हुए अस्त हो रहे हैं ॥ २२ ॥

एतदाकर्ण्य नरपति. सांध्यं विधिमन्वतिष्ठत् ।

यह सुनकर राजाने संध्यानुष्ठान किया ॥

क्रमेण मधुरचलच्चापकुलकालकान्तिकाशिभिर्वहलतम.कल्लोलैरालोडिते लोके लोकेश्वरो विहितविकालवेलाव्यापारः पारसीकोपनीतपारावारपारीणपारावतपतत्रिपञ्जरसनाथे विकीर्णवासधूलिनि धूपधूममुचि विचित्रचित्रशालिनि प्रान्तप्रदापितदीपदीप्तिदण्डखण्डिततमसि सज्जितशय्ये शय्यागृहे गृहीतस्पृहणीयाङ्गरागो रागसागरकल्लोललोचनयानया प्रियया प्रियंगुमञ्जर्या अलीकरुकलहकोपकुटिलभ्रमद्भ्रूक्षीणतर्जनर्जनिस्मितः स्मरविकारकारिकरिकलभकुम्भविभ्रमायमाणोत्तुङ्गपीवरकुचकुम्भपीठमारोपितो रजनीमनैषीत् ॥

क्रम मे पर्याप्त रूप मे बढते हुए, चाष ( कीट विशेष ) की कालिमा सदृश कान्तिवाले गाढे अन्धकार के झकोर मे पूरे ससार के मथित हो जाने पर लोगों के स्वामी ( राजा), वेलानुसार समस्त कार्यों को समाप्त कर पारसी लोगों द्वारा सहुद्र पार मे लाये हुए कपोत पक्षियों के पञ्जरो स युक्त, सुगंधित द्रव्य की धूलि से समन्वित, विविध चित्रों से सुशोभित, बगल मे जलते हुए दीपक के प्रकाश दण्ड के कारण अन्धकारहीन, शय्या मे मण्डित शयनगृह मे धूप-धुम को छोडता हुआ मनोरम लेपन शरीर मे लगाकर प्रेमसागर की तरग रूप लोचनों वाली प्रिया ( प्रियगुमजरी ) के साथ, मिथ्या

कलह के प्रसङ्ग में कोप के कारण टेढ़े घूमते हुए भौहों के कोने से डाटने के कारण उत्पन्न मुस्कुराहट वाला काम विकार को उत्पन्न करने वाले, हाथी के बच्चों के कुम्भस्थल सदृश विलासपूर्ण ऊँचे तथा स्थूल कुम्भ सदृश स्तनों पर आरोपित होकर रात बिताया ॥

एवमस्य सकलसंसारसुखपरम्परामनुभवतो यान्ति दिवसा ॥

इस तरह संसार की समस्त सुख परम्परा का अनुभव करते हुए इस ( राजा ) का समय बीत रहा था ।

कदाचिच्चारुचामीकराचलचलद्देहाधिदेवतेव बहुधानन्दने सुरुचिरस्वरा यौवनारम्भे सुरतोत्सवमनुभवन्ती पत्युः प्राणप्रिया प्रियंगुमञ्जरी गर्भं बभार ॥

कदाचिदिति । बहुधा नन्दयति हर्षयति यस्मिन् । यौवनारम्भे । सुष्ठु रुचिरिच्छा रव स्वरो यस्याः । कामनामिच्छायां कलमाविषी च । सुरत मोहनमेवोत्सवमनुभवन्ती प्रियंगुमञ्जरी गर्भं दधे । चामीकराचलो मेरुस्तस्य चलद्देहा अधिष्ठातृदेवतेव । सोऽपि बहुधानकथा नन्दनाख्य वनारम्भे सुष्ठु अतिशयेन रुचिरस्वरा सुरताया देवस्तरोत्सवमनुभवति । आरम्भ आरम्भ आदिरित्यर्थः । नन्दन हि वनानामादिरप्रथ प्रधानमित्यर्थः । यदि वा वनान्यारभ्यन्तेऽस्मिन् कृत्वा वनारम्भ । शतानन्दनं हि प्रथमं नन्दन सृष्ट्वा तदवयवैर्बीजैर्वसावादिभिरितरवनानि जगति सृष्टानि ॥

किसी समय सुन्दर स्वर्ण पर्वत की गतिशील अधिदेवता की तरह अधिकाय आनन्द ही देने वाली, रुचिकर स्वर वाली यौवन के आरम्भ में सुरतोत्सव ( पति मिलन ) का अनुभव करती हुई अपने पति के लिए अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय प्रियंगुमञ्जरी ने गर्भ धारण किया ॥

तेन च निकचचूतमञ्जरीव कोमलफलबन्धेन बन्धुररमणीया द्युति, चन्द्रलेखेव कलाप्रवेशेनोपचीयमानप्रभा, प्रभातवेलेवोन्मालदंशुमालिमण्डलेनानन्द्यमाना, रत्नाकरतरङ्गमालेवान्तःस्फुरन्माणिक्यकान्तिकलापनोद्भासमाना, गर्भसदर्भितेन लावण्यपरमाणुपुञ्जेन व्यराजत राजमहिषी ॥

नतान ॥ कुसुमान्तर्गूढ फलारम्भकरसकणिकारूपो बन्धः कोमलफलबन्धः ॥

खिली हुई आम्रमञ्जरी जैसे अपने कोमल फल ( आरम्भिक ) गाठ के कारण मनोहर प्रतीत होती है, जैसे चन्द्रकला की कान्ति प्रतिदिन बढ़ती है, उगते हुए सूर्यमण्डल से जैसे प्रभात वेला अच्छी लगती है, रत्नाकर ( समुद्र ) की तरंगमाला जैसे अपने भीतर छिपे हुए रत्नों की किरणों से चमकती है, वैसे गर्भ से अभिव्यक्त होने वाली सौन्दर्य राशि के कारण रानी भी सुशोभित हुई ॥

गच्छत्सु च केषुचिद्दिवसेषु सुवृत्ततुहिनाचलगण्डशैलयुगलमिव बालमयूरिकाकान्तम्, अनङ्गसौधशिखरद्वयमिव शेखरीकृतेन्द्रनीलकलशम्, उज्ज्वलरौप्यनिधानकुम्भयुग्ममिव भुजगसंगतमुखम्, उल्लासिहंसमिथुनमिव चञ्चूत्खातपङ्किलकमलकन्दम्, ऐरावतमस्तकपिण्डपाण्डुरमुचचूचुकश्यामलिम्नाऽलंकृतमापूर्यमाणमन्तःक्षीरेण क्षणं क्षणमखिद्यत पयोधरद्वन्द्वमुद्वहन्ती ॥

कुछ दिनों के बाद सुन्दर गोल हिमालय के दो गण्डशैल छोटी मयूरी से जैसे आक्रान्त हो, कामदेव महल के दो ऊंचे गुम्बज पर जैसे इन्द्रनीलमणि के कलश लगे हों, सफेद रजत निर्मित ( मुद्रा ) रखने के दो कलश जिनका मुख किसी सर्प से अवरुद्ध हो, जैसे प्रसन्न हंस का जोड़ा जिसने अपनी चोंच से पंकयुक्त कमलमूल को उखाड़ लिया हो, ऐसे ऐरावत हाथी के मस्तक की तरह शुभ्र, उन्नत चूचुक की श्यामलता से अलकृत तथा आंतरिक दुग्धभार से पूर्ण स्तनों को ढोती हुई प्रतिक्षण खिन्न हो रही थी ॥

बबन्ध च चन्द्रकलाङ्कुरकवलने स्पृहाम् ॥

चन्द्रकला की किरणों के उपभोग की इच्छा की ॥

अभिलाषमकरोच्च चञ्चलचञ्चरीककुलकलरवरमणीयविकचचूतवनविहारेषु ॥

चपल भ्रमर समूह की झंकार से मनोहर, विकसित ( मंजरी वाले ) आम्रवन में विहार करने की अभिलाषा व्यक्त की ॥

स्पर्शममन्यत बहु बहलमभ्यर्णावकीर्णविकसितकमलवननिष्यन्दिमकरन्दबिन्दोर्मन्दतरतरङ्गसङ्गशीतलमलयमारुतस्य ॥

पास में ही घने रूप में फैले हुए, एवं खिले हुए कमलवन से चू रहे मकरंद की बून्दों की अत्यन्त मंद लहरी से सम्पर्क होने के कारण ठंढी मलयपवन की हवा को बहुत अच्छा मानने लगी ॥

चिन्तयांचकार च चतुरुदधिलावण्यरसमास्वादयितुम् ॥

चारों समुद्रों के सौन्दर्य रस का आस्वादन करने का विचार किया ।

अभ्यवाञ्छदतुच्छमच्छमदोषममन्दमन्दरमन्थानमन्थोत्पन्नममृतमातृप्ति पातुम् ॥

मन्दराचल रूप मथनी के अमन्द मन्थन से उत्पन्न बहुमूल्य एवं स्वच्छ सम्पूर्ण अमृत रस को भरपेट पीना चाही ।

**इत्यनेकधोत्पन्नगर्भप्रभावादनुरूपदोहदसंपत्तिसंपन्नाधिककमनीय-कान्तिरुल्लसद्बहलमृगमदजललिखितविचित्रपत्रभङ्गभव्यविपुलकपोल-मण्डलेन मुखेन शशाङ्कमन्तःस्फुरत्कलङ्कमुपहसन्ती द्विगुणमवनिपते-र्नस्य प्रिया प्रियंगुमञ्जरी बभूव ॥**

गर्भ के कारण अनेकों बार अनुकूल इच्छारूप सम्पत्ति के पूर्ण होने के कारण उनकी कान्ति खिल गयी। शोभा सघन गाढ़े कस्तूरी लेप से अंकित सुन्दर पत्र-रचना के कारण भव्य, सुन्दर एवं विशाल कपोल मंडल वाले मुख से कलङ्क-पूर्ण चन्द्रमा को उपहासित करती हुई प्रियगुमंजरी उस महीपाल की दुगुना प्रिय हो गयी ॥

तथाहि—

सा समीपस्थितज्येष्ठा पयःपूर्णपयोधरा।
अप्रप्रावृडिवाह्लादमकरोत्तस्य भूपतेः॥ २३॥

सा प्रमदेति॥ समीपे स्थिता ज्येष्ठा वृद्धस्त्रियो ज्ञातप्रसवस्वरूपा यस्याः। तथा पयसा क्षीरेण पूर्णौ पयोधरौ स्तनौ यस्याः। सा प्रियंगुमञ्जरी तस्य राज्ञो मुदम-करोद्। अग्रप्रावृडेऽग्रप्रावृट् आषाढवर्षा। तत्पक्षे समीपे स्थितो ज्येष्ठ शुक्रो मासो यस्याः। तथा पयसा जलेन पूर्णः पयोधरो मेघो यस्याः। भुवो हि प्रावृट् परमोदकारिणीति भुवः पत्युराह्लादं करोति॥ २३॥

प्र॰पक्ष—जिसके पास में वरिष्ठ स्त्रियां बैठी रहती थीं, तथा जिसका पयोधर (स्तन) दूध से भर आया था, ऐसी प्रियगुमंजरी ने उस महीपाल को आनन्दित कर दी जैसे वर्षाकाल की प्रथम (आषाढ़) वर्षा लोगों को आनन्द देती है ॥२३॥

द्वितीय पक्ष—ज्येष्ठ का महीना जिसके पास है तथा जलपूर्ण जिनके पयोधर (मेघ) हैं, ऐसी आषाढ की वर्षा पृथ्वी को आनन्द देती है। तथा उसके पति, भूपति को भी आनन्द देती है ॥ २३ ॥

**एवमविरतविविधवान्छोत्सवाविच्छेदकर्तरि भर्तरि, संज्ञयैवाज्ञा-कारिण्यपारे परिवारे बहुभङ्गिभाग्योपभोगक्रमेणातिक्रामति कुत्र-चित्काले, कालकलाकुशलश्लाघनीये पूर्णप्राये प्रसवसमये, विलीन ज्योत्स्नाजृम्भमाणे भास्वत्युदयमारोहति, हततिमिरासु दिक्षु क्षण-मेकं सा प्रसववेदनाव्यतिकरमन्वभूत् ॥**

इस तरह निरतर पति उनकी विभिन्न आकांक्षाओं को पूर्ण करता जा रहा था। विशाल परिजन वर्ग संकेत मात्र में आज्ञा पालन में लगा हुआ था। विविध ढग के भाग्य-दत्त पदार्थों का उपभोग करती हुई रानी का क्रम से समय बीत रहा था। एक पवित्र एवं प्रशसनीय अवसर पर जब कि प्रसव का

समय पूर्ण हो चला था, पिघले हुए सुन्दर सोने की तरह कान्तिवाले भगवान् सूर्य उदयाचल पर चढ़ रहे थे, समस्त दिशाओं का अन्धकार नष्ट हो गया था, एक क्षण तक प्रसव पीड़ा का अनुभव की ॥

ततश्च—

प्रभासंयोगिविख्यातं योग्यं नालस्यकर्मणः ।
पृथ्वीव पुण्यतीर्थं सा कन्यारत्नमजीजनत् ॥ २४ ॥

प्रभेति । कान्तिसयोगि । विख्यात प्रसिद्धम् । नलस्य नृपतेरिदं नालम् । कर्म अराध्यपुण्यात्मकं तस्य । योग्यमुचितम् । कन्यारत्नम् । सा अजीजनदुत्पादयामास । पृथ्वी पुण्यतीर्थमिव । तदपि प्रभासाख्यम् । योगिभिर्योगमार्गरतैर्विख्यातम् । आलस्य असारस्य कर्मणो न योग्यम् । अथ च आलस्यकर्मणो न योग्यम् । किं तर्हि उद्यमक्रियायोग्यम् । ततस्तदर्थं केनापि न प्रमदितव्यमिति भाव ॥२४॥

कान्तिपूर्ण, नल द्वारा किये गए ( पुण्य ) कर्मों के अनुकूल, विख्यात कन्यारत्न का जन्म उन्होंने दिया, जैसे पृथ्वी ने पुण्य तीर्थ को उत्पन्न किया ॥२४॥

सौराष्ट्र में प्रभास नामक तीर्थ है जहाँ स्नान करने से राजयक्ष्मा रोग अच्छा हो जाता है, पृथ्वी पक्ष म इस श्लोक का अर्थ है —

योगि-विख्यात ( योगियो म प्रसिद्ध ) आलस्य का अवसर न देने वाला प्रभास नामक पुण्यतीर्थ जैसे पृथ्वी ने उत्पन्न किया वैसे ही रानी ने उस ( दमयन्ती ) कन्या ( रत्न ) को उत्पन्न किया ॥ २४ ॥

तस्मिंश्च दिवसे 'विकसितकुमुदकुन्दकान्तकीर्तनीयकीर्तिसुधया धवलानि करिष्यत्येषा प्रवर्धमानास्मन्मुखानि' इति प्रियाख्येव प्रसन्नाः समपद्यन्त दश दिशः । 'मा स्म पुनरस्मद्गुणानेषापहार्षीत्' इत्यपहृतैरिन्द्रसारगुणा सभया नमस्यन्त इव तस्यै कुसुमाञ्जलिममुञ्चन् चन्द्रादयो देवाः । स्वकान्तिसर्वस्वापहारभयादिव दिवि ननृतुरप्सरसः । 'किमस्याः सम समुत्पन्नमन्यदपि कन्यारत्नम्' इत्यन्विष्यन्त इव परितः परिबभ्रमुः सुरभयः क्षमाः समीरणाः ॥

तत्र चेति ॥ कन्यारत्नान्वेषिणो हि । सुरभयः सौरभ्यवन्तः । क्षमाः समर्थाश्च भवन्ति ॥

उस दिन, 'यह बड़ी होकर खिली हुई कुमुदिनी की तरह कान्त ( सुन्दर ) एवं प्रशंसनीय कीर्ति रूपी सुधा से हम लोगो के मुख को उज्ज्वल बनायेगी ।'' मानो इस प्रिय आशा से दसों दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं । पुन हम लोगो क गुणों को न चुरा ले ।' मानों इस भय से पुष्पाञ्जलि देते हुए चन्द्र आदि देव नमस्कार रह रहे थे । मानो अपनी कान्ति के मुख्यांश क अपहरण क भय से

स्वर्ग न अप्सराएँ नाचने लगीं, "क्या इसके साथ कोई और भी कन्यारत्न उत्पन्न हुआ है।" मानो इसी बात को सोचती हुई सुगंधित हवाएँ चारों तरफ घूम रही थीं।

किं बहुना—

अमन्दानन्दनिष्यन्दमपास्तान्यक्रियाक्रमम्।
जगज्जन्मोत्सवे तस्याः पीतामृतमिवाभवत् ॥ २५ ॥

आनन्द के अमन्द ( जोरदार ) प्रवाह में अन्य समस्त कार्यक्रमों को छोड़ कर जग ( दमयन्ती ) के जन्मोत्सव में संसार अमृत पान किये हुए की तरह ( आनन्दमग्न ) हो गया ॥ २५ ॥

अथ बहोः कालादनुरूपप्रौढप्रहरणप्राप्तिपीनहृदयेनास्फोटितमिव सकलजगद्विजयव्यवसायसाहसिकेन कुसुमसायकेन, चिराद्विनाश्रय-लाभमुदितमनसा स्फूर्तितमिव शृङ्गाररसेन, सुरभिकाशकुसुमहास्येन योग्यसहकारिकारणोपलम्भपूर्णमनोरथेन वलितमिव वसन्तमासेन, निजकर्मणः सफलतां मन्यमानेनोच्छ्वसितमिव मलयानिलेन, चिर-कालोपलब्धश्लाघ्याधारतया हसितमिव रूपसंपदा, विकसितमिव लावण्यलक्ष्म्या, प्रनृत्तमिव समस्तस्त्रीलक्षणाधिदेवतया, कलकलित-मिव कान्तिकलापश्रिया ॥

बहुत समय के बाद अनुकूल एवं सुन्दर शस्त्र प्राप्त करने से सम्पूर्ण संसार पर विजय का कार्य करने में साहसी पुष्पबाण, कामदेव प्रसन्नता के मारे उत्तावला हो गया। बहुत दिनों के बाद उचित आधार पाने के कारण प्रसन्न-चित्त शृङ्गाररस उद्दीप्त सा हो उठा। अनुकूल सहकारी ( सहायक ) कारण प्राप्त कर पूर्ण मनोरथ वसन्त, जिसका हास्य पवित्र ( शुभ्र ) काशपुष्प है, अत्यन्त उत्साहित हो गया। अपने कार्य में अपने आपको सफल मानकर दक्षिणानिल उच्छ्वास ले रहा था। बहुत दिनों के बाद बहुत प्रशंसनीय आधार प्राप्त हुआ है। इसलिए रूप सम्पत्ति हँस रही थी। सौन्दर्यलक्ष्मी खिल उठी थी। स्त्री में रहने वाले सम्पूर्ण उचित लक्षणों की अधिदेवता मानो नाच उठी ॥ कान्ति-समूह की लक्ष्मी कल-कल ध्वनि कर उठी ॥

किं बहुना—

सर्गव्यापारखिन्नस्य बहोः कालाद्विधेरपि।
आसीदिमां विनिर्माय श्लाघ्यः शिल्पपरिश्रमः ॥ २६ ॥

बहुत दिनों से सृष्टि-कार्य करने से थके हुए ब्रह्मा का शिल्प-परिश्रम भी इसे बनाकर प्रशंसनीय हो गया ॥ २६ ॥

[ कोई कलाकार बहुत दिनो तक अभ्यास करता है किसी पदार्थ के निर्माण के लिए। तब किसी दिन वह कला-कार्य में पूर्ण-निष्णात होता है। बहुत दिनो के अभ्यास के बाद ही ब्रह्मा का शिल्प-परिश्रम प्रशसनीय बन सका। जब उन्होने दमयन्ती जैसे अनुपम कला-कृति का निर्माण किया ]॥

एवमस्याः सततविस्तीर्णस्वर्णपूर्णपात्रपूजितपूज्यद्विजन्मनि संपन्ने नामकर्मसमये समान्य मान्यजनं जनेश्वरो वरप्रदानमनुस्मृत्य दमनकमुने: 'दमयन्ती' इति नाम प्रतिष्ठितवान् ॥

इस तरह उनके नामकरण समय मे निरंन्तर फैले हुए स्वर्णमय पूर्णपात्रो से ब्राह्मणो का पूजन सम्पन्न कर माननीय लोगो को सम्मानित कर लोकपति ( राजा ) ने वर प्रदान की बात स्मरण कर, दमनक मुनि के आधार पर 'दमयन्ती' यह नाम निश्चित किया ॥

क्रमेण च प्रचुरामृतसंसिक्ता इव सुकुमाराः प्रसर्तुमारभन्ताङ्गावयवपल्लवाः, चकार च चञ्चच्चामीकररुचिरुचिराङ्गणमणिवेदिका सुकैश्चिद्दिवसैरनुच्चचरणप्रचारचारुचापल्यलीलाः, सहासमकरोत्परिजनं जनयन्ती बालकेलीः, स्वच्छन्दमानन्दयाञ्चकार पितरं तरङ्गभङ्गिरङ्गितेन, जननीमजीजनच्चालविस्मयां स्मितमुग्धदर्शितदन्तकान्तिकुन्दपुष्पमसिृप्तमाक्षरमल्पाल्पं जल्पन्ती ॥

क्रम से, पर्याप्त अमृत से सीचे हुए की तरह उसके कोमल अग-पल्लवो ने बढना शुरू कर दिया। चमकते हुए सोने की तरह सुन्दर आगन की मणिमय वेदिकाओ पर कुछ दिनो तक घुटने के बल चल कर उसने अपनी सुन्दर चचल लीला दिखायी। अपने चारो ओर परिजनों को बटोरती हुई हासपूर्वक बाल लीला की। आनन्दपूर्वक विविध ढग की शैशवोचित लीलाओं से पिता को अबाध आनन्द पहुँचाया। मुस्कराहट के कारण दीख रही दत-कान्तिरूपी कुन्द पुष्पो मे निकले हुए अस्पष्ट अक्षरो को कुछ-कुछ बोलती हुई माता को भी आश्चर्य मे डाल देती थी।

किं बहुना—

अपि रेणुकृतक्रीडं नरेऽणुक्रीडयान्वितम्।
तस्याः प्रौढं शिशुत्वेऽपि वयो वैचित्र्यमावहत् ॥ २७ ॥

अपीति ॥ रेणुना कृता क्रीडा यत्र। तथा 'कस्त्वां परिणेष्यति, त्वं कस्मै दातव्या' इत्याद्युक्तिभिर्नरे पुंसि विषये अणुक्रीडान्वितमल्पक्रीडाकरम्। तस्याः सयन्धि वय। शैशवेऽपि प्रौढं वैचित्र्यं दधौ। अपिर्विरोधार्थः। स च पुनरर्थव्याख्यया ॥२७॥

अधिक क्या कहा जाय :—

रेणु-क्रीडा ( धूलि क्रीडा ) पूर्वक होती हुई भी रेणु-क्रीडा से बहुबद्ध थी। शैशव काल में भी उसकी प्रौढ़ावस्था विचित्रता उत्पन्न कर रही थी। विरोध।

रेणुकृत क्रीडा करती ( धूलि से खेलती ) थी किन्तु नरे + अनु क्रीडयाऽन्वित ( उसकी विचित्र लीलाओं को देखने पर उसमें मनुष्य की कुछ समानताएँ मिलती ) थी। शैशवकाल म भी उसन बहुत सी विचित्रतायें थीं। परिहार ॥ २७ ॥

एवमियमनवरतस्वैरविहाराहारिणि क्रमेणातिक्रामति शैशवे वयसि पितुर्नियोगात् गुरूपदेशात्साधुवृद्धसंवासात् बुद्धिविकासाच्च नातिचिरेण, प्राप्ता नैपुण्यं पुण्यकर्मारम्भेषु, जाता प्रवीणा वीणासु निराकुला कुलाचारेषु, कुशला शलाकालेख्येषु, विशारदा शारिदायेषु, मर्मज्ञा प्रबन्धालोचनेषु, चतुरा चातुरानाथजनचिकित्सासु ॥

इस तरह निरन्तर स्वेच्छया विहार और आहार करने के उपयुक्त शैशव अवस्था के समाप्त होते रहने पर पिता की आज्ञा से गुरुओं के उपदेश से, साधु एवं वृद्धों की संगति से, तथा बुद्धि के विकास से शीघ्र ही पुण्यकर्मों में निपुणता प्राप्त कर ली। वीणावादन में प्रवीण हो गयी, कुलानुकूल आचरण करने में धैर्यवती, द्यूतविधान ( जुआ खेलने ) में कुशल, शारिकाओं को खिलाने में निपुण, काव्यों की आलोचनाओं में तीव्र बुद्धि, आतुर ( रोगी ) तथा अनाथ लोगों की चिकित्सा करने में चतुर हो गयी॥

किं चान्यत्—

अकरोदनालस्यं लास्ये, प्राप प्राधान्यं धन्योचित व्यवहारेषु, वैचित्र्यं चित्रेषु, चातुर्यं तौर्यत्रिके, कौशलं शल्योद्धारे, पाटवं पटहवादने, वैमल्यं नवमाल्यग्रथने, प्रावीण्यं गीत्याम् प्राकाम्यं कामकथासु ॥

अकरोदिति ॥ प्रवीणा प्रसिद्धा वेश्या भाव प्रावीण्यम् ॥

नर्तन में उसे आलस्य नहीं था। एक उच्चकोटि के आदमी का जैसा व्यवहार होना चाहिए वैसे व्यवहारों में निपुणता और चित्रकला में विचित्रता प्राप्त की। वाद्यकला म चातुर्य, शल्य-चिकित्सा में कुशलता, पटह ( नगाड़ा ) बजाने में पटुता, नवीन माला गूँथने में निर्मलता, गीत कलाओं में विशिष्टता तथा काम-कथा में नैपुण्य प्राप्त किया॥

किं बहुना—

न तत्काव्यं न तन्नाट्यं न सा विद्या न सा कला।
यत्र तस्या प्रबुद्धाया बुद्धिर्नैव व्यजृम्भत ॥ २८ ॥

न तो ऐसा कोई काव्य था, न ऐसा कोई नाट्य था, न कोई ऐसी विद्या थी, न कोई ऐसी कला थी जहाँ उस जागृत बुद्धि वाली बाला की प्रज्ञा स्फुरित नही होती थी ॥ २८ ॥

प्रथमम्या शैशव एव निजजरठप्रज्ञाप्रज्ञातव्यवस्तुविस्तारायाः क्रमेण तिलकभूतं नूतनचूतवनमिव वसन्तप्रवेशप्रथमपल्लवोल्लासेन, प्रस्यप्रघनसमयमहीमण्डलमिवामन्दविदलत्कन्दलकलापेन, केसरिकिशोरकण्ठपीठमिवनवकेसराङ्कुरोद्गारेण, करिकलभकपोलस्थलमिव प्रथममदोद्भेदेन, निशावसानन्भस्तलमिव प्रभातप्रारम्भप्रभाप्रभावेण, सरःसलिलमिव विदलितकोमलकमलकान्तिसंतानेन, मनोहारिणा संसारसारभूतेनाभूष्यत वपुः कान्ततरतारुण्यावतारप्राक्प्रारम्भेण ॥

बाल्यकाल मे ही अपनी प्रगाढ बुद्धि से जानने योग्य समस्त वस्तुओं के प्रारभ से विस्तार तक को जानने वाली दमयन्ती का शरीर ससार के तत्त्व-भूत मनोहर यौवन से, अत्यन्त सुन्दर बसत ऋतु के प्रथम प्रवेश के समय नवीन पल्लवो के विकास से उत्तम प्रतीत होते हुए आम्रवन की तरह, अमद गति से अकुरित होने वाले मूल समूह से अलकृत अचिर प्रवृत्त वर्षाकालीन भूमडल की तरह, गर्दन पर नवीन रोम वाले सिंह के बच्चे की तरह, प्रथमबार प्रकट हुए हस्तियुवक के कपोलस्थल की तरह, प्रातःकाल की प्रारभिक कान्ति से मडित आकाश मण्डल की तरह खिले हुए कोमल कमलो की कान्ति से अन्द्भूत सरोवर जल की तरह सुशोभित हो रहा था ॥

[ दमयन्ती अत्य त रमणीय यौवन की अवस्था से मण्डित हुई । ]

ततश्च—

परिहरति वयो यथा यथाऽस्या
स्फुरदुरुकन्दलशालि बालभावम्।
द्रढयति धनुपस्तथा तथा ज्या
स्पृशति शरानपि सज्जयत्यनङ्गः ॥ २९ ॥

पनपन हुए महान् मूल ( होनहार अङ्कुर ) की तरह इसकी नवीन अवस्था जैसे जैसे शैशव को छोड़ती जा रही है वैसे वैसे कामदेव अपना धनुष दृढ़ करता जा रहा है, प्रत्यञ्चा को छू रहा है और बाणो को सजा रहा है ॥ २९ ॥

अपि च—

मुञ्चन्त्या शिशुतां मरादवतरत्तारुण्यमुद्राङ्कित-
स्फारीभूतनितान्तकान्तवपुषस्तस्याः कुरङ्गीदृशः।
उन्मीलत्कुचकाञ्चनाब्जमुकुलं यूनां मुहुः पश्यतां
बाह्वोरन्तरमन्तरायसदृशा मन्ये निमेषा अपि ॥ ३० ॥

और भी :—

शैशव को छोड़ती हुई, वेग उत्पन्न होते हुए ( उभड़ते हुए ) यौवन के चिन्हों से चिह्नित होने के कारण प्राञ्जल ( स्पष्ट तथा अत्यन्त सुन्दर शरीर वाली मृगेक्षणा के दोनों बाहुओं के बीच स्वर्णकमल की कलिका की तरह उठते हुए स्तनों को पुन: पुन: देखते हुए युवकों की पलकों के बीच मानो कुछ व्यवधान सा पड़ गया है ॥ ३० ॥

[ पलकों के बीच यदि कोई चीज लेकर भर दी जायगी तो पलक गिर नहीं सकते। बीच की भरी हुई चीज उनको गिरने नहीं देती। कवि यहाँ कहना चाहता है कि दमयन्ती के सौन्दर्य का देखते समय युवकों के पलक नहीं गिरते। न गिरने का कारण कवि कल्पना करता है कि पलकों के बीच मानो कोई चीज अटक गयी है। इसीलिए उनके पलक नहीं गिरते ॥ ३० ॥ ]

ततश्च—

ततस्या: कमनीयकान्तिविजितत्रैलोक्यनारीवपुः
शृङ्गारस्य निकेतनं समभवत्संसारसारं वयः।
प्रस्निग्धस्मितपक्ष्मपालिवलना कामालसा दृष्टयो
नो यूनां पुनरुत्पतन्ति पतिताः पाशे शकुन्ता इव ॥ ३१ ॥

उनकी स्पृहणीय कान्ति से सम्पूर्ण त्रैलोक्य के रमणी-सौन्दर्य को जीती हुई दमयन्ती का वह यौवन संसार का सारतत्व है और शृङ्गार का भवन है जिसमें युवकों की कामविह्वल निर्निमेष दृष्टियाँ फँसती हैं तो जाल में फँसे हुए पक्षी की तरह फिर नहीं निकल पातीं ॥ ३१ ॥

अपि च—

आबध्नत्परिवेषमण्डलमलं वक्त्रेन्दुबिम्बाद्वहि
कुर्वच्चम्पकजृम्भमाणकलिकाकर्णावतंसक्रियाम्।
तन्वङ्ग्या परिनृत्यतीव हसतीवोत्सर्पतीवोल्बणं
लावण्यं ललतीव काञ्चनशिलाकान्ते कपोलस्थले ॥ ३२ ॥

मुख चन्द्रबिम्ब के बाहर पर्याप्त गोल मण्डल बनाया हुआ, खिलती हुई चम्पक-कलिका की तरह कर्णाभरण का कार्य करता हुआ उस कृशाङ्गी का

अत्य त उत्कृष्ट सौंदय स्वर्णमयी शिलासदृश कपोलस्थल पर नाच रहा है और उल्लसित हो रहा है ॥ ३२ ॥

[ प्रत्येक अत्यन्त कान्तिशील पदार्थ के चारों तरफ कान्ति छिटकती है। उसके आकार के अनुसार एक गोल या चतुष्कोण मण्डल बन जाता है। दमयन्ती के मुखचन्द्र से जो लावण्य कान्ति छिटक रही है उसका परिवेष बन गया है। गौरवर्ण की छिटकती हुई कान्ति चम्पे के फूल की तरह कर्णपुष्प का कार्य देती है। गौर वर्ण का होने के कारण कपोलस्थल को स्वर्णमयी शिला कहा गया है ] ॥ ३२ ॥

एतदाकर्ण्य राजा रञ्जितस्तत्कथया पुनरुद्गच्छदुच्चरोमाञ्चकञ्चुकितकायस्तत्कालमेवान्तः स्फुरन्मन्मथमनोरथभरभज्यमानमानसस्त हंसमपृच्छत् ॥

'पक्षिराज राजीववनावतंस हंस, पुनः कथ्यतां तस्याः संप्रति वयोवृत्तवृत्तान्तव्यतिकरः' ॥

यह सुन राजा ( नल ) उस कथा से अनुरक्त हो गया। रोयें खड़े हो गये जिससे ऐसा प्रतीत होता कि उसका शरीर कञ्चुक पहन लिया हो। उसी समय अन्तरात्मा में उभड़ती हुई कामवासना से उसका मानस व्यथित होने लगा। उसने हंस से पूछा— पक्षिराज कमलवन को मण्डित करने वाले राजहंस फिर कहो इस समय उसकी वय सन्धि की कथा को।

इत्युक्तः पुनरेव स बभाषे—

'देव किमेकोऽस्मद्विधः पक्षी क्षीरतरङ्गधवललोचनां तां वर्णयेत् यस्याः सर्वदेवमय इवाकारो लक्ष्यते ॥

ऐसा कहे जाने पर फिर उसने कहा—

"देव, क्या एक मेरे जैसा पक्षी उस दुग्धतरङ्ग-सदृश शुभ्र दृष्टि वाली सुन्दरी का वर्णन करे जिसकी आकृति सर्वदेवमयी की तरह है ॥

तथाहि—

सुतारा दृष्टिः, सकामाः कटाक्षाः, सुकुमाराश्चरणपाणिपल्लवाः, सुधाकान्ति स्मितम्, अरुणो दन्तच्छदः, भास्वन्तो दन्ताः, सकृष्णाः केशाः, प्रबुद्धा वाणी, गौरी कान्तिः, गुरुः स्तनाभोगः, पृथ्वी जघनस्थली, सुरभिर्निःश्वासः, मुगन्धवाहः प्रमोदः, सश्रीकः सकलाङ्गभोगः ॥

सुतारेति। तारा कनीनिका देवी च। कामः अभिलाषः स्मरश्च। सम्यक् कामो येषु। सुमः समस्त कामसनसोर्मलोपः। सुकुमारः कोमलाः। तथा महेन्द्रवत्

कार्तिकेयोऽपि सुकुमारः। सुधावत्कान्तिरस्येति सुधाकान्तिः शुभ्रं चन्द्रश्च। अरुण आरक्तो रविसारथिश्च। भास्वान् दीप्यमानः सूर्यश्च। कृष्णो मेचको विष्णुश्च। प्रबुद्धा चतुरवचा। बुद्धः सुगतः गुरुर्विस्तीर्णो बृहस्पतिश्च। पृथ्वी पृथुला भूश्च। सुरभिः सुगन्धिर्वसन्तश्च। गन्धवहः परिमलवाही वायुश्च। श्रीः कान्तिर्लक्ष्मीश्च॥

क्योंकि उसकी दृष्टि सुतारा (सुन्दर कनीनिका वाली) है। कटाक्ष सकाम (अभिलाषपूर्ण) हैं। चरण एवं पाणिपल्लव सुकुमार (कोमल) हैं। मुस्कुराहट सुधाकान्ति (अमृतच्छटा या चन्द्रकान्ति सदृश) है। ओष्ठ अरुण (लाल) हैं। दांत भास्वान् (चमकीले) हैं। बाल सुकृष्ण (बहुत काले) हैं। वाणी प्रबुद्ध (प्रतिभासम्पन्न) है। कान्ति गौरी (गौर वर्ण की) है। स्तनों का विस्तार गुरु (विशाल) है। जघनस्थली पृथ्वी (बहुत बड़ी) है। श्वास सुरभि (सुगन्धित) है। पसीना सुगन्धवाह (सुन्दर गन्ध धारण करनेवाला) है। सम्पूर्ण अवयव सश्रीक (शोभा-सम्पन्न) है।

[सुतारा (तारिपत्नी) है। सकाम (कामदेवयुक्त) है। सुकुमार (कार्तिकेय) है। सुधाकान्ति (चन्द्रकान्ति) है। अरुण (सूर्य-सारथि) है। भास्वान् (सूर्य) है सुकृष्ण (भगवान् कृष्ण) हैं। प्रबुद्ध (महात्मा बुद्ध) है। गौरी (पार्वती) है। गुरु (बृहस्पति) है पृथ्वी (वसुन्धरा) है। सुरभि (बसन्त) है। सुगन्धवाह वायुदेव)। सश्रीक (लक्ष्मीयुक्त) है। विविध अवयवों का वर्णन करते समय ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया गया है कि वे विशेषण विभिन्न देवताओं के भी वाचक हैं। इसलिये दमयन्ती को सर्वदेवमयी कहा गया है।]

किं चान्यत्—

नक्षत्रमयीव निर्मिता विधिना॥

तथाहि—

भद्रपदा ज्येष्ठा सुहस्ता पूर्वोत्तरा सार्द्रहृदया मूलं कंदर्पस्य॥

भद्रेति। भद्रं पदं पादन्यासो यस्याः ज्येष्ठा प्रथमापत्यम्। शोभनौ हस्तौ यस्याः। पूर्वमुत्कृष्टमुत्तरं वचो यस्याः। सार्द्रमनिष्ठुरं हृदयमस्याः। कामस्य मूलं कारणम्। पक्षे भद्रपदा ज्येष्ठा हस्ता पूर्वा उत्तरा आर्द्रा मूलं नक्षत्राणि॥

ब्रह्मा ने इसे नक्षत्रमयी बनाया है क्योंकि—

वह भद्रपदा ज्येष्ठा (सुन्दर पदविन्यास करने वाली है और अपने पिता की ज्येष्ठ सन्तान) है। सुहस्ता (सुन्दर हाथ वाली) है। पूर्वोत्तरा (उत्कृष्ट उत्तर देने वाली) है। सार्द्रहृदया (स्निग्ध हृदयवाली) है। कन्दर्पमूल (काम की जड़) है।

[ भाद्रपद, ज्येष्ठा, हस्त, पूर्वा, उत्तरा, आर्द्रा आदि नक्षत्रों के नाम हैं। इन नामों से उसकी समानता है इसलिये उसे नक्षत्रमयी कहा गया है ॥ ]

किं बहुना—

लावण्यातिशयः स कोऽपि मधुरास्ते केऽपि दृग्विभ्रमाः
सा काचिन्नवकन्दलीमृदुतनोस्तारुण्यलक्ष्मीरपि।
सौभाग्यस्य च विश्वविस्मयकृतः सा कापि संपद्यया
लग्नानङ्गमहाग्रहा इव कृता सर्वे युवानो जनाः ॥३३॥

लावण्येति ॥ नवकन्दलीवन्मृद्वीतनुर्देहर्यस्याः ॥ ३३ ॥

और क्या कहें—

वह कोई अलौकिक ही सौन्दर्यातिरेक है। दृष्टियों के वे मधुर विलास भी अलौकिक हैं। नवीन अङ्कुर की तरह कोमल अङ्गों वाली ( उस सुंदरी ) की यौवनशोभा भी अपूर्व ही है। संसार को आश्चर्य में डाल देनेवाली वह कोई अलौकिक सौभाग्य सम्पत्ति है जिसके कारण कामरूप महाग्रह सभी युवकों को पकड़ लेता है ॥ ३३ ॥

[ महाग्रह—राहु, शनि आदि अत्यधिक अनिष्ट करने वाले महाग्रहों की तरह काम युवकों को सताता है ॥ ]

राजा—'ततस्ततः'।

राजा—"इसके आगे।"

हंसः—'ततस्तस्याः पुनरिदानीं—

दूराभोगभरेण भुग्नगतिना श्लिष्टा नितम्बस्थली
धत्ते स्वर्णसरोजकुड्मलकलां मुग्धं स्तनद्वन्द्वकम्।
आलापाः स्मितसुन्दरा परिचितभ्रूविभ्रमा दृष्टय-
स्तस्यास्तर्जितशैशवव्यतिकरं रम्यं वयो वर्तते ॥ ३४ ॥

हंस—इस समय उसके नितम्ब गति को स्खलित कर देने वाले विस्तार के भार से एक दूसरे से मिल गये हैं। मनोहर स्तनयुगल स्वर्णकमल की कलिका की शोभा धारण कर रहा है। वाणी मुस्कुराहट से मण्डित है। दृष्टि भ्रूविलास से परिचित है। शैशव अवस्था में मिलन डाँटकर यौवन की अवस्था रमणीय हो गयी है ॥ ३४ ॥

[ शैशव अवस्था यौवन की तर्जना से सङ्कुचित हो गयी है। तारुण्य अपनी तरुणाई दिखा रहा है [ ॥ ३४ ॥

तदेष तस्याः सकलयुवजनमनोमयूरवासयष्टेः समस्तसंसार-सौन्दर्याधिदेवतायाः कथितो वृत्तान्तः ॥

इस तरह सम्पूर्ण भुवनों के आनन्दपुर का निवासस्थान तथा सम्पूर्ण विश्व-सौन्दर्य की अधिष्ठात्री, उस सुन्दरी का वृत्तान्त मैंने कह सुनाया।

किञ्चान्यत्

हरचरणसरोजाराधनावाप्तपुण्यः
परमसुभगकान्तो भाजनीयः स कोऽपि ।
अपि जगति स यस्तां दुर्लभां लप्स्यतेऽमि-
ति कथितकथः सन्नरोऽपि हंसो व्यरंसीत् ॥ ३६ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टस्य कृतौ दमयन्तीकथायां हरचरणसरो-
जाङ्कायां तृतीय उच्छ्वासः समाप्तः ॥

---

इति [illegible] दमयन्त्याः नलं [illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥

इति श्री[illegible]विरचिते दमयन्तीकथाविवरणे तृतीय उच्छ्वासः समाप्तः ॥

---

यथा अधिक —

भगवान् शंकर के चरणकमल की आराधना के कारण पुण्यात्मा तथा उत्कृष्ट गुणों का पुंज वह सुन्दर भाग्यवान् है। मैं उसकी शिवकामना करता हूँ जो उस दुर्लभ को प्राप्त करेगा। इस तरह सारी कथा कहकर वह हंस भी विराम ग्रहण कर लिया ॥ ३६ ॥

तृतीय उच्छ्वास समाप्त

---

# चतुर्थ उच्छ्वासः

एवमेतदाकर्ण्य राजा तत्कालमाघूर्णितमाश्चर्येण, आकुलितमौत्सुक्येन, आमन्त्रितमुत्कण्ठया कटाक्षित कन्दर्पेण, अभिवादितं रणरणकेन, उत्सारितमाग्रहग्रहेण, पृष्ठकुशलमकालतरलतया, स्वीकृतम स्वास्थ्येन, अवलोकितं चिन्तया चेत स्वं स्वयमेव स्वस्थीकृत्य वितर्कितवान् ॥

यह सुन राजा शीघ्र ही आश्चर्य मे पड गया। उत्सुकता से व्याकुल हो उठा। उत्कण्ठा से भर गया। कामदेव के कटाक्षो का विषय बन गया। चिन्ता ने नमस्कार किया। चित्तवृत्ति आग्रही बन गयी। असामयिक चञ्चलता से कुशलता पीछे पड गयी। चित्त ने चिन्ता का अवलोकन किया। राजा ने स्वय ही किसी किसी तरह चित्त को स्वस्थ कर अनुमान लगाया ॥

प्राय सैव भवेदेषा पान्थादश्रावि या मया।
युगायितं विनिद्रस्य यत्कृते मे त्रियामया ॥ १ ॥

प्राय इति ॥ यदर्थं मे मम विगतनिद्रस्य त्रियामया रात्र्या युगेनेवाचरितम् ॥ या च पथिकान्मया श्रुता। सैवेयं हसेनापि कथिता प्रायो भवेत्। युग कृतयुगादि ॥ त्रियामयेति त्रिसख्यामितप्रहररात्रिवाचकत्वेन साभिप्रायम्। प्राय शब्दो वितर्के ॥ १ ॥

प्राय वही यह सुन्दरी है जिसके सम्बन्ध म मैंने उस पथिक से सुना था और जिसके लिये न सोने के कारण तीन ही प्रहर की रात मुझे युग की तरह प्रतीत हुई थी ॥ १ ॥

तदेतन्मे—

तद्वार्तामृतपानार्थि भूयोऽपि श्रवणेन्द्रियम्।
तृप्यते केन वानन्दकन्दे कान्ताकथानके ॥ २ ॥

दमयन्ती सम्बन्धी वार्तामृत पीने के लिये कान उत्कण्ठित हो गय, क्योकि आनन्द के मूल प्रियाविषयक चर्चा से कौन तृप्त होता है ॥ २ ॥

तत्किमेनं पुन पृच्छामि ॥
नेदं नायकस्थानम् ॥

नेदमिति ॥ नायकस्य ईदृश स्थान स्थितिरौचित्य न भवतीत्यर्थ। यतो धैर्यं हि नायकपद परम वदन्ति ॥

प्यास के भार को समाप्त कर देने वाला, सरोवर-जल अपनी लहरियों के कारण बहुत मनोहर लग रहा है। यहाँ के कमल भनभनाते हुए भ्रमरों तथा महत्त्वपूर्ण परागों को धारण कर रहे हैं ॥ ५ ॥

'त्वमपि भद्रे वनपालिके कृतकमलमालानितम्बकक्रीडमिममादाय भुक्तावसानास्थानगोष्ठीस्थितस्य मम समीपमेष्यसि' इत्यभिधाय राजा राजभवनमयासीत् ॥

कल्याणी वनपालिका, तुम भी जब यह कमलश्रेणी के नीचे पूरी क्रीडा कर ले तो भोजन के बाद विश्राम-गोष्ठी में बैठे हुए मेरे पास इसे लाना" यह कह कर राजा राजभवन चले गये।

गते च राजनि राजीविनीनां जीवितसमाः समास्वादयन्स्वादुकोमलमृणालकन्दली, दलयन्दलानि, कवलयन्बहलमधुरस्निग्धमुकुलानि, अनुशीलयञ्शीतलशैवलावलीः, विलासेन स हंसस्तरंस्तरङ्गान्तरेषु चिरं चिक्रीड ॥

राजा के चले जाने पर कमलिनियों के प्राणसदृश कोमल मृणालमूलों को आस्वादित करता हुआ, पुष्पपत्रों को विदलित करता हुआ, पर्याप्त मधुर तथा चिकनी कलियों को खाता हुआ, ठंडी शैवल (सेवार) पंक्ति को छूता हुआ, विलासपूर्वक जलतरङ्ग में तैरता हुआ वह हंस देर तक खेलता रहा।

चिन्तितवांश्च तेन राज्ञा कृतकमलमालानितम्बकक्रीडमिममादाय मत्समीपमेष्यसि' इति श्लिष्टार्थमिवादिष्टा वनपालिका। 'तन्न युक्तमिह चिरं स्थातुमिति' ॥

चिन्तितवांश्चेति ॥ तेन राज्ञा इत्यमुना प्रकारेण श्लिष्टार्थमिव यथाभवति तथैव वनपालिकादिष्टा। इतीति किम्। यत् कृता कमलमालाया नितम्बके घनप्राये मध्यप्रदेशे क्रीडा येनेति राजाभिप्रायः। मालाशब्दगतस्त्रीत्वेन कमलमालाया मालाशब्दस्त्रीत्वसामान्यविवक्षया स्थानद्वयेऽपि तदर्थमात्रे प्रयुक्तः। हंसेन त्वेवं प्रतीतम्। यथा कृतक कापटिकं वा। यथा अलमत्यर्थम्। आलानित बद्धम्। यथा बकवत् क्रीडा यस्य। तादृशमिमं गृहीत्वा मत्समीपमायास्यसीति ॥

उसने सोचा भी कि राजा ने "कृत-कमल" इत्यादि द्व्यर्थक वाक्यों में वनपालिका को आज्ञा दिया है।

[अर्थात् कृतक (छद्मवेषधारी) को अलम् (पूर्णरूप से) आलानित (शृङ्खलित) कर बकक्रीड (बगुले की तरह छटपटाते हुए की स्थिति में) मेरे पास लाना।] इसलिये यहाँ बहुत देर तक ठहरना अच्छा नहीं है।

इत्यस्थान एवाशङ्कमान सह तेन राजहंसकदम्बकेनाम्बरतल-मुदपतत् ॥

तत्र च व्यतिकरे दिवापि स्फारस्फुरत्तारामण्डलमिव, विकचनवकुवलयवनगहनमिव, अन्तरान्तरोद्भिन्नकुमुदखण्डमुद्गीनास्ते क्षणमशोभयन्त नभस्तलम् ॥

अनवसर मे ही इस तरह की आशका करता हुआ राजहस वर्ग के साथ आकाश मे उड गया ॥

उस समय, दिन म भी स्पष्ट चमकते हुए तारों की तरह, खिले हुए नवीन कमलवन की घनता की तरह, बीच-बीच में खिले हुए कुमुदखण्ड की तरह उडे हुए वे हस आकाश को सुशोभित किये।

[ आकाश मे जहाँ हसो को पक्ति घनी हो जाती थी वहाँ वे घने कमलवन की तरह लगने थे। जहाँ एक दूसरे से कुछ अन्तर पड जाता था वहाँ बीच बीच में खिले हुए कुमुदखण्ड की तरह लगते थे। ]

अविलम्बिताश्च न चिरादवापुर्वैदर्भमण्डलमण्डनं कुण्डिनपुरम्—

अवतेरुश्च चकितचलच्चक्रवाकालोक्यमानकृतान्धकारविभ्रमभ्रमद्भ्रमरभरभज्यमानाम्भोजभाजि राजभवनासन्नकन्यान्तःपुरोद्यानक्रीडासरसि ॥

बिना कहीं रुके जल्दी ही विदर्भ देश के अलङ्कार स्वरूप कुण्डिन नगर मे पहुँच कर राजभवन के पास कन्याओ के अन्तपुर के उपवन वाले क्रीडासरोवर में उतर गये जहाँ घूमते हुए चक्रवाक चकित दीख पड रहे थे। अन्धकार का दृश्य उपस्थित कर देने वाले घूमने हुए भ्रमरो द्वारा कमल खण्डित किये जा रहे थे।

[ भ्रमर इतना अधिक थे कि उनकी कालिमा रात्रि की भ्रान्ति उत्पन्न कर देती थी। इसीलिये चक्रवाक डर जाते थे। रात को चक्रवाक दम्पती का एक दूसरे से वियोग हो जाता है अत रात से तो वे डरते ही हैं, रात के सदृश पदार्थ से भी डर जाते हैं। ]

सरभसमभ्यागतेन सरस्तीरविहारव्यसनिना कन्यकाजनेन निवेदितांस्तानवलोकयितुमतिकौतुकेन दमयन्ती कन्यान्तःपुरात्पुराणमदिरारुणायताक्षी क्षिप्रमाजगाम ॥

आगत्य च चटुलतरचरणचञ्चुप्रहारविदलितारविन्दकन्दलानुचालयालनलिनीवनविहारिणस्तान्ग्रहीतुमेनैकशः सखीजनमादिदेश ॥

स्वयं च चलवलयचारुरवचालितप्रकोष्ठेन सविलासं विस्मयकरं करपल्लवेन तं राजपुत्री राजहंसमुच्चिक्षेप ॥

शीघ्रता से दौड़ी हुई, सरोवर तटपर विहार के अभ्यासी लड़कियों द्वारा बताये जाने पर उन्हें देखने के लिये बड़ी उत्सुकता से पुरानी मदिरा की तरह लाल आँखों वाली दमयन्ती शीघ्र अन्तःपुर के बाहर आ गयी। और आकर चंचल चरण तथा चञ्चुओं के प्रहार से कमलदलों को तोड़ देने वाले, छोटी छोटी कमलिनियों के वन में प्रगल्भतापूर्वक विहार करनेवाले उन हंसों को एक-एक कर पकड़ लेने के लिये सखियों को आज्ञा दी। स्वयं भी (वह राजकन्या दमयन्ती) चंचल कंकण की मनोहर ध्वनि से युक्त मणिबन्ध वाले करपल्लव से उस विस्मयकारी राजहंस को लीलापूर्वक उठाली।

पाणिपङ्कजस्थित एव सोऽप्यभिमुखीभूय विभाव्य च चेतश्चमत्कारकारिणमस्याः कान्तिविशेषमाशिषमदात् ॥

वह भी उनके हाथ में ही स्थित रहकर, उनकी ओर मुख कर चित्त को चमत्कृत कर देने वाले उनके अलौकिक स्वरूप को पहचान कर आशीर्वाद दिया। हे रम्भोरु, (कदली-सदृश ऊरुवाली दमयन्ती,)

'कन्दर्पस्य जगज्जैत्रशस्त्रेणाश्चर्यकारिणा।
रूपेणानेन रम्भोरु दीर्घायुः सुखिनी भव ॥ ६ ॥

कन्दर्पस्येति ॥ रूपेणेत्युपलक्षणे तृतीया। रम्भावदूरू यस्याः। 'ऊरूत्तर—'इत्यूङि सवृद्धौ इत्याकम् ॥ ६ ॥

आश्चर्य उत्पन्न कर देने वाले कामदेव के जगद्विजयी अस्त्र, तुम इस सौन्दर्य से मण्डित होकर चिरकाल तक जीओ और सुखी रहो ॥ ६ ॥

अपिच—

निर्माय स्वयमेव विस्मितमनाः सौन्दर्यसारेण यं
स्वव्यापारपरिश्रमस्य कलशं वेधाः समारोपयत्।
कन्दर्पं पुरुषाः स्त्रियोऽपि दधते दृष्टे च यस्मिन्नलति
द्रष्ट यावधिरूपमाप्नुहि पतिं तं वीरसेनं नलम्' ॥ ७ ॥

निर्मायेति ॥ दर्पमहंकारं पुरुषाः क दधते। न कमपीत्यर्थः। स्त्रियाः पुनः कन्दर्पं मन्मथं दधते। सकामा भवन्तीत्यर्थः। अपि पुनरर्थे समुच्चये वा ॥ ७ ॥

सौन्दर्य के उत्तम भाग से जिसका निर्माण कर स्वयं ब्रह्मा आश्चर्य में पड़ गये और वे अपने व्यापार श्रम का कलश जिसके ऊपर रक्खे, जिसे देखकर पुरुष दर्पहीन हो जाते हैं और स्त्रियाँ कामपूर्ण हो जाती हैं। दर्शनीय

रूप की सीमा को धारण करने वाले उस विशाल नेत्र नल को पति रूप में प्राप्त करो ॥ ७ ॥

[ कलाकार मन्दिर बना कर कलश को सबसे ऊपर रखता है। कलश लगा देने के बाद उसे और करने के लिए अवशिष्ट नहीं रह जाता। कलश रख देने का तात्पर्य है कि उसे जितना कौशल दिखाना था वह दिखा चुका। कलाकार ब्रह्मा भी अपनी कला का कलश नल पर ही रखते हैं। नल ब्रह्मा की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है ॥ ७ ॥

दमयन्ती तु तस्मिन्क्षणे 'क्व संस्कृतवाचः पक्षिणो विवक्षितवाचश्च' इति मनसि विस्मयं भयं च, 'नामाप्याह्लादजननं नलस्य' इति वपुषि वेपथुं रोमाञ्चं च हृदयेऽनुरागमौत्सुक्यं च, समकालमुल्लोलायमानमुद्वहन्ती विस्मयांचकार ॥

दमयन्ती तो उसी समय, "कहाँ ये संस्कृत बोलने वाला और तथ्यपूर्ण बातों को कहने वाला पक्षी!" यह सोचकर मन में आश्चर्य और भय, "नल का नाम ही आह्लादजनक है।" इस अनुभव से शरीर में कम्प और रोमाञ्च तथा हृदय में प्रेम औत्सुक्य, सब को एक ही साथ तरङ्गित स्थिति में धारण करती हुई सोचने लगी।

'सोऽयं यस्तेन पान्थेन यान्त्या गौरीमहोत्सवे।
नलोऽप्यनल एवासीद्वर्णितो मे पुरः पुरा' ॥ ८ ॥

सोऽयमिति ॥ यो नलः स एवमनलः। परिहारे त्वनलो वह्निः। स्मरसंतापहेतुत्वात् ॥ ८ ॥

गौरी महोत्सव में जाते समय मेरे सामने उस पथिक ने इसी नल के बारे में वर्णन किया था जो नल होता हुआ भी अनल था ॥ ८ ॥

अथास्याः सखी परिहासशीला नाम नाम्नैव नलस्योद्भिन्नबहलपुलकाङ्कुरामिमामवलोक्य नर्मालापमकरोत् ॥

इसके बाद इसकी परिहासशीला नाम की सखी नल के नाम से ही इसे पूर्ण रोमाञ्चित देखकर कुछ मधुर चर्चा प्रारम्भ कर दी।

कोष्णं किं नु निषिच्यते तव बलान्नैलं सखि श्रोत्रयो-
रन्तस्तित्तिरिपक्षि पत्रमथवा मन्दं मृदु भ्राम्यति।
येनाङ्गेषु निखातमन्मथशरप्रस्फारपिच्छच्छवि-
र्नीलीमेचकितोच्चकञ्चुकरुचं रोम्णां वहत्युद्गमः ॥ ९ ॥

कोष्णमिति ॥ सखीत्यामन्त्रणे । न्विति वितर्के । तव कर्णयोर्मध्ये किं बलात्तैल निषिच्यमानमस्ति । किं वा मृदुतित्तिरिपिच्छं मन्दं प्रमर्दास्ति । येन हेतुना । अङ्गेषु शरीरावयवेषु । निमग्ना ये कामशरा तेषां प्रस्फाराणि पिच्छानि तद्वच्छविर्यस्य स तथोक्तो रोमणामुद्गमो रोमाञ्चो नील्या ओषधिविशेषेण मेचकितस्य श्यामलितस्य उच्चकञ्चुकस्य कान्तिं दधाति। प्रस्फारस्व पिच्छानामप्रवेशे हेतु । अन्यथा शरेषु प्रविष्टेषु पिच्छान्यपि कथं न प्रविष्टानि तेन पिच्छच्छविरिति कविराचष्टे ॥ ९ ॥

सखी ! क्या तुम्हारे कानों में कुछ गरम बला तैल छोड़ा गया है ? या तित्तिर पक्षी का कोमल पंख कानों में धीरे-धीरे घुमाया जा रहा है, जिससे तुम्हारे अङ्गों में घुसे हुए कामबाण के स्पष्ट पङ्खों जैसी कान्ति वाला उठा हुआ रोम-समूह नीली ( रङ्ग ) से रङ्गे हुए चमकीले उत्कृष्ट कञ्चुक की कान्ति को धारण कर रहा है ॥ ९ ॥

[ बाणों की पूँछ पर पङ्ख लगाने की परम्परा थी । दमयन्ती के रोमाञ्च के रोम कामबाण के पङ्ख सदृश दीखते हैं । रङ्ग की दृष्टि से वे नीले कञ्चुक की तरह दीखते हैं ] ॥ ९ ॥

दमयन्ती तु तस्याः सवैलक्ष्यस्मितमेवोत्तरं कल्पयन्ती शनैः शिरःकम्पतरलितावतंसोत्पला सलज्जा वलद्विलोचनान्तेन ताम-तर्जयत् ॥

अवादीच्च तं राजहंसम् 'अहो महानुभाव, सर्वथाश्चर्यहेतुरसि ॥

विस्मय के साथ मुस्कुराती हुई धीरे-धीरे शिर कम्पित करने से हिलते हुए कर्णाभरण वाली लज्जावती दमयन्ती भी अपने चञ्चल कटाक्षों से उसे तर्जित की और राजहंस से बोली—' ओ महानुभाव, सब तरह से आश्चर्य के हेतु हो ।

तथाहि—

द्रष्टव्यानुरूपं रूपम्, महाश्चर्यगर्भाः प्रपञ्चितवाच्या वाचः, सूचितसंस्कारातिरेको विवेकः, सौजन्याश्रय प्रश्रय, निष्कारणोप-कारधात्री मैत्री ॥

क्योंकि—

तुम्हारा रूप सर्वथा दर्शनीय है। बहुत आश्चर्यपूर्ण तथा विशिष्ट अर्थों से सम्पन्न वाणी है। विचार शक्ति अद्भुत संस्कार की सूचना दे रही है। नम्रता सौजन्य व्यक्त कर रही है। अकारण उपकार करने वाली मैत्री से आप सम्पन्न हैं ।

तत्त्वमनेकधा जनितविस्मयो बहु प्रष्टव्योऽसि ॥

इस तरह बहुत से आश्चर्यों को जन्म देने वाले आप से मुझे बहुत कुछ पूछना है।

किं तु प्रस्तुतं पृच्छामः ॥

कथय। योऽयमात्मरूपसम्भावितकन्दर्पदर्पदावानलो नलो नाम ॥ यस्यैतानि मन्दरमथनक्षणक्षुभितक्षीरसागरतरङ्गभ्रमभ्रान्तिभाञ्जि भ्रमन्ति यशांसि' ॥

किन्तु प्रासङ्गिक बात ही पूछती हूँ।

कहिये, यह नल नाम का व्यक्ति कौन है? जो अपने रूप से कामदेव के अहङ्कार रूप वनाग्नि को उद्दीप्त कर दिया है, जिसके यश मन्दराचल से मथे जा रहे क्षीरसागर की तरङ्गों की तरह चक्कर काटते हुए घूम रहे हैं

इत्येवमुक्तः सोऽपि सुन्दरि, यद्येवमुपविश्यताम्। अवधीयतां मनः। श्रूयतां सविश्रम्भम्' इत्यभिधाय कथयितुमारब्धवान् ॥

ऐसा कहे जाने पर उसने भी, 'सुन्दरि!,

यदि ऐसी बात है तो बैठिये, चित्त एकाग्र कीजिये, निश्चिन्त होकर सुनिये।' यह कह कर कहना शुरू किया।

'अस्ति समस्तसुरासुरलोकवर्णपूरितमहाकान्तकीर्तिकुन्दकुसुमः, कुसुमायुधरूपरमणीयदेहप्रभः, प्रभावयुक्तो विग्रहमायश्च, शुचिरुपतापहारी च, घनागमसमयो न वारिवल्लभश्च, शिशिरस्वभावो न आह्लादकश्च, राम इव कुशलवयोरमणीयत्वेन जनक इव वैदेहभागेन, नैषधः प्रजानां पतिः, विरञ्चिरिव नाभिभूतः समरे वीरो वीरसेनो नाम ॥

प्रभावेति प्रभावो माहात्म्यम्। विग्रहो मे तेजोऽस्यास्तीति। विरोधे विग्रहे मायं शुचि पुण्यम्। विरोधे तु ग्रीष्मः। वह्निग्रहकाल—शुचि शुद्धेऽनुपहते श्रृङ्गाराषाढयो' इति। 'ग्रीष्मे हुतवहेऽपि' इति। घनः प्रचुर आगमः सिद्धान्तो यस्य। स प्रमुखवक्ता। अपि तु। विरोधे घनागमसमयो वर्षाकालः। स च वारिवल्लभो भवति। शिशिरः शीतो माघफाल्गुनौ च। आह्ले शौत्यं हिमं च। इत्युभयत्रानीतिकामनिरेकः। तथा कुशलेन चतुरेण वयोदशायामीदृशमल राम आह। तथा विदेहा देशास्तेषु भवः वैदेहो भागस्तेन जनकावस्थाभूतनिरतिम। अन्यत्र रामो दाशरथि। वै विग्रहे। इहस्य मा कान्ति यस्य इति समस्तोति इति कृत्वा इत्यस्य देहप्रभावत्व स्वरूपान्यनुहारिणा रामणीयत्वेन सौन्दर्येण। कुशस्य लवस्य च जनको जनयिता। नैषधो निषधदेशीय प्रजापती राजा। समरे युद्धे न कदाचिदभिभूतः। विरञ्चिस्तु विष्णुनाभेर्भूतो जातः ॥

अपने उज्ज्वल कीर्तिकुन्द के फूलों से सुरलोक तथा असुरलोक के कानों को भर दिया है। कामदेव की तरह रमणीय शरीर शोभा से सम्पन्न है। प्रभावयुक्त होता हुआ भी विप्रभाव ( प्रभावहीन ) है। विरोध। प्रभाव-सम्पन्न है और विप्र + भाव ब्राह्मण मे रहता ) है। परिहार। शुचि ( ग्रीष्म ) है लेकिन ताप नही देता। ( वि ) शुचि ( पवित्र ) है। किसी को ताप ( दु ख ) नही देता। परि। घनागम समय ( बादल आने का समय ) है लेकिन वारिबहुल ( जलबहुल ) नही है। वि०। घनागम-समय ( पर्याप्त वैदिक सिद्धान्त वाला ) है और ( वा ) अरिबहुल ( शत्रुबहुल ) नही है॥

शिशिर स्वभाव ( ठंडा ) है लेकिन उसमें जड़ता नही है। ( वि० ) ठंडे स्वभाव का है लेकिन जडबुद्धि का नही है। परि। कुश और लव की रमणीयता मे जैसे राम ( प्रशस्त ) थे वैसे वह भी कुशल ( सुन्दर ) अवस्थागत सौन्दर्य के कारण राम ( रमणीय ) है। वैदेह ( राज्य भाग ) के कारण जैसे जनक ( प्रशस्त ) थे वैसे ही वे ( निश्चित रूप से ) देह ( शरीर ) की कान्ति के कारण यह भी ( आह्लाद का ) जनक है। ब्रह्मा जैसे नाभिभूत ( नाभिदेश-उत्पन्न ) है वैसे वह भी समर ( युद्ध ) में कभी भी न + अभिभूत ( पराजित नही ) है। निषध देश की प्रजा वह पराक्रमी स्वामी है। उसका नाम वीरसेन है॥

**यस्य च बहुशोभयाङ्गप्रभया सह स्फुरत्युदारा मनोवृत्तिः, अखण्डनयाज्ञया सदृशी राजते राज्यस्थितिः, सज्जया सेनया सह श्लाघनीया कृपाणयष्टिः॥**

यस्य चेति॥ अत्र प्रथमातृतीययो श्लेष। बहुश इति। अभया भयरहिता। तृतीयान्ते बह्वी शोभा यस्यां तया। तथा अखण्डो नय षाड्गुण्य यस्याम्। तृतीयायां न खण्डनमस्या। तथा सज्शोभनो जयो यस्या। सेनापक्षे सज्जया प्रवणया॥

उसकी बहुश अभया ( पूर्ण निर्भीक ) मनोवृत्ति बहुशोभा ( पूर्ण सौन्दर्य-सम्पन्न ) अङ्गप्रभा ( देहकान्ति ) से ही प्रकट होती है। अखण्डनया ( पूर्ण नीतिसम्पन्न ) राज्य-स्थिति अखण्डना ( अलङ्घनीय ) आज्ञा से सुन्दर लग रही है। सज्जया ( सुन्दर विजय देने वाली ) तलवार सज्जा ( तैयार ) सेना के साथ सुशोभित हो रही है॥

[ इस अनुच्छेद मे विभक्ति श्लेष है। एक शब्द से सभङ्ग श्लेष के आधार पर तृतीया के एकवचन और प्रथमा के एकवचन दोनो निकलते हैं। बहुशोभया—मनोवृत्ति शब्द के विशेषण पक्ष मे बहुश + अभया ( अधिक निर्भीक )

और अङ्गप्रभा पक्ष में बहुशोभा ( अत्यधिक शोभायुक्त ) शब्द के तृतीया का एकवचन ।

अखण्डनया—राज्यस्थिति पक्ष में प्रथमा का एकवचन है अर्थात् राज्यस्थिति अखण्ड ( पूर्ण ) नीति से सम्पन्न है । आज्ञा पक्ष में अखण्डना शब्द के तृतीया का एकवचन है। अर्थात् अनुल्लङ्घनीय आज्ञाओं से नीति सम्पन्न राज्यस्थिति सुदृढ है ।

सज्जया—कृपाणयष्टि पक्ष में प्रथमा का एकवचन है । अर्थात् सुन्दर जय देने वाली कृपाणयष्टि । सेना-पक्ष में सज्जा शब्द के तृतीया का एकवचन है । अर्थात् विजय देने वाली कृपाणयष्टि से तैयार सेना से सुशोभित है । }

यश्च सशृङ्गारो नारीषु, वीरो वैरिषु, बीभत्सः परदारेषु, रौद्रो द्रोहिषु, सहास्यो नर्मालापेषु, भयानकः संग्रामाङ्गणेषु, सकरुण शरणागतेषु ॥

वह नारियों पर शृङ्गारवान् रहता है । शत्रुओं पर शौर्य दिखाता है । दूसरे की स्त्री को अपने लिए अग्राह्य समझता है। द्वेषियों पर क्रोध प्रदर्शित करता है । नम्रतापूर्ण बात के प्रसङ्ग में मुस्कुराता है । लड़ाई के मैदान में भयङ्कर बन जाता है। शरण में आये हुए लोगों पर दया दिखाता है ।

यस्य च चतुरुदधितटीटीकमानशरच्चन्द्रविशदयशोराशिराजहंसस्य निस्त्रिंशता कृपाणेषु, कुचातुर्यं कलत्रेषु, कूपदेशसेवा पापर्धिकेषु लुब्धकपर्यायः कैवर्तकेषु तीक्ष्णता शस्त्रेषु धर्मच्छेदो धनुर्विद्यायाम् ॥

यस्य चेति ॥ निस्त्रिंशता खड्गत्वम् । कुचाभ्यामातुर्यं दुर्वहभारत्वात् । कूपप्रदेशस्य सेवाऽमृगयाभ्यासेषु तथा लुब्धक इति 'पर्याय एकार्थे शब्दान्तरम्'. तथा धर्मनामा गुणं यन्मय धनुर्विधीयते। तस्य च्छेद कर्तनम् । कृपाणादिष्वेव निस्त्रिंशतादीनीति परिसंख्योक्त्या न तस्येति शेषः । तस्य राज्ञः 'न । निस्त्रिंशता क्रूरकर्मत्वम् । कुत्सित चातुर्यम् । तथा कुत्सित उपदेशो येषां तेषां दाम्भिकानां सेवा। तथा कुत्सितो लुब्धो लुब्धकः । तस्य पर्यायः परिणामः । तीक्ष्णता आयःशून्यत्वम् । धर्मस्य पुण्यस्य च्छेदः ।

उसने शरत्कालीन चन्द्रमा की तरह अपनी शुभ्र कीर्तिराशिरूप राजहंसों से चारों समुद्रों के तट को चिह्नित कर दिया है । उसके यहाँ निस्त्रिंशता खड्ग ( तलवार ) में है, निस्त्रिंशता ( क्रूरता ) किसी और में नहीं है । कुचातुर्य ( कुचों स्तनों ) के भार से आतुरता ) केवल स्त्रियों में है । कुचातुर्य ( अनैपुण्य ) किसी और में नहीं है । कूपदेश सेवा ( कूप के पास बैठकर मृगया अभ्यास करने का कार्य ) केवल व्याधों में है। दूसरे लोग कु + उपदेश

( अनुचित उपदेश ) का सेवन नहीं करते । लुब्धक शब्द का समानार्थक कुछ है तो केवल कैवर्त ( केवट ) वर्ग ही है । लुब्धक ( अनुचित लोभ का पर्याय परिपाक और किसी में नहीं हुआ है । तीक्ष्णता शस्त्रों में है, कोई आदमी कटु स्वभाव का नहीं है । धर्मच्छेद ( धर्म नामक पेड की लकडी से बने हुए धनुष का भङ्ग ) धनुर्विद्या के अभ्यास के प्रसङ्ग में ही होता है । धर्मच्छेद ( पुण्य का विघटन ) कहीं और जगह नहीं होता ॥

एवमस्य हरस्येव करस्थं कृत्वाशेषमण्डलमनवरतविख्यातविजयाभिनन्दिन, सुन्दरकैलासनाभिरम्यवनान्तरेषु विहरत मदननिरुद्धनैषधीपीनोच्चकुचकुम्भावष्टम्भमसृणितवक्ष स्थलस्य सुखेनाभिक्रामन्ति दिवसा ॥

एवमस्येति ॥ करे राजभागे स्थितमशेष मण्डल देशम् । अनवरतप्रथितविजयैर्हृष्टस्य । क जलम् । एला लता । असन पीतसाल । तै सुन्दरैरभिरम्येषु काननविशेषेषु । विचरतस्तस्य सकामनिषधस्त्रीपीनोच्चकुचकुम्भयोरवष्टम्भेन मसृणित वक्ष स्थल यस्य तथोक्तस्य सत सुखेन यान्ति दिवसा । विहरणकृतमिह हरेण महीवर्णनम् । नदा । कर पाणि । शेषाख्यो नाग तस्य मण्डल कुण्डलाकार वपु । विजया गौरीसखी । नन्दी हरप्रतीहार । कैलासो गिरि नाभिर्मुख्याश्च ॥

इस तरह भगवान् शकर जैसे हाथ मे शेषनाग लिये रहते है और सदा पार्वती की विजया नामक सखी या भग के कारण प्रसन्न रहते है, सुन्दर कैलास पर्वत के नाभि ( उत्कृष्ट स्थल ) मे विहार करते रहते है वैसे अशेष मण्डल ( सम्पूर्ण देश ) को करस्थ ( अधिकार मे रख ) कर सदा प्रशस्त विजयो को प्राप्त कर प्रसन्न होते हुए, सुन्दर + क ( जल ) एला ( इलायची ) तथा असन ( पीतसाल ) के कारण अभिरम्य ( रमणीय ) वन मे विहार करते हुए कामुक निषध देश की रमणियो के कलशसदृश उच्च स्तनो के सस्पर्श से कोमल वक्ष स्थल वाले उस राजा के भी दिन सुख से बीत रहे है ॥

कदाचिच्चतुरुदधिवेलावलयितवसुधराविख्यातमपत्यमभिलषन्नादरचरणाङ्गुष्ठनिष्ठ्यूतकैलासोन्मूलनागतपतद्दशवदनविरसविरुतविहसिताभरमण्डलामाहनमहिमानमनवरतविरञ्चिरचितविचित्रनामसामयन्तुस्तुतिमनवरतसकललोककल्याणकामधेनुमनुपमवर्चसमर्चयाञ्चकार भगवन्तमम्बिकापतिम् ॥

कदेति ॥ निष्ठ्यूत निरसनम् । 'निष्ठापितम्' इति पाठे तु नि शेषेण स्थापनम् । अविरतम् । विचित्रनामभिर्मार्गमयवलित्रेत्रादिभि । सामवेदार्थैश्च । विरञ्चेन विरचितस्तुतिम् ॥

किसी समय, चारों समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी भर म प्रसिद्ध एक सन्तान की इच्छा से भगवान् शकर की स्तुति किया जो ( भगवान् शकर ) कैलास

पर्वत को उखाड फेंकने के लिए आये हुए पर्वत सहित, रावण को अनायास ही पैर के अंगूठे से दबा देने के कारण, उसके करुण चीत्कार से हंसते हुए देवसमूह द्वारा पूजनीय महिमा वाले हैं, ब्रह्मा जिनके नामो पर आधारित सामवेद के माध्यम से सदा स्तुति किया करते हैं, सम्पूर्ण संसार के लिए जो सदा कामधेनु हैं और जिनका तेज अनुपमेय है।

अतिभक्तितोषितहरलब्धवरश्च निरुपमरूपयानुरूपया रूपवत्यभिधानयाप्रधानया प्रियया सह मकरकेतनकेलिफलमनुभवन्नतिचिरमासांचक्रे ॥

अत्यन्त भक्ति से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कर उन्होंने वर प्राप्त किया। अनुपम रूप वाली रूपवती नामकी मनोनुकूल अपनी प्रधान पत्नी के साथ काम क्रीडा के फल का अनुभव करते हुए बहुत दिनों तक सुखपूर्वक रहे।

अतिक्रामति तु कियत्यपि समये संपन्नसत्त्वा समपद्यत रूपवती ॥

कुछ समय बीतने पर रूपवती गर्भवती हुई ॥

तेन च समस्तसंसारवस्तूद्धृतकान्तिकणकलितगर्भारम्भेण, नारायणनाभिरिव विरञ्च्योत्पत्तिकमलकन्दयन्त्रेण, कल्पपादपलतेव पल्लवारम्भोच्छ्वासेन, मनाङ्मेदुरितोदरा रराज राजीवनयना राजपत्नी ॥

सम्पूर्ण संसार के पदार्थों से निकले हुए कान्तिकणों से निर्मित गर्भ के कारण उस कमलनयना राजपत्नी का उदर थोडा बढ गया था, अतः वह ब्रह्मा को उत्पन्न करने वाले कमल मूल से (सुशोभित) नारायण के नाभिदेश की तरह और नवीन पल्लव का आविर्भाव करने वाली कल्पवृक्ष की लता की तरह सुन्दर लग रही थी।

क्रमेण च मेचकोच्चचूचुककुचकुम्भकपोलिपाण्डिम्ना निम्नयन्ती मृगलाञ्छनच्छायमवाञ्छदच्छामृतपयः पिष्टमूर्तिमन्मधुमनमथमदनमृगाङ्कमण्डलरसेनात्मानमालेप्तुम् ॥

क्रमेणेति ॥ कुचकुम्भस्य चन्द्रमाः। मेचकचूचुकस्य लाञ्छनमुपमानम्। अच्छमन्तर्मन्थ पयसो नीरं तेन पिष्टो घृष्टो योऽसौ मूर्तिमतां मधुमन्मथमदनमृगाङ्कमण्डलानां रसः तेनालेप्तुमात्मानमिच्छेत् ॥

क्रम से श्यामल कान्ति वाले उठे हुए चूचुक विशिष्ट स्तनकलश तथा कपोल की शुभ्रता से मृगलाञ्छन विशिष्ट चन्द्रमा को भी नीचा दिखा रही थी। मूर्तिमान् वसन्त, कामदेव और चन्द्रमण्डल के रस से अपने आपको लिप्त करने की इच्छा कर रही थी।

अग्रतः सखीजनविधृतमपास्य मणिमयमुकुरमण्डलमनवरतनिशानिर्मलकरवालतलेष्वात्ममुखकमलमवलोकयांचकार ॥

सखियों द्वारा गृहीत रत्नमय दर्पण को छोड़कर शान धराने के कारण निर्मल ( चमकती हुई ) तलवार में ही हमेशा अपने मुखकमल को देखा करती थी।

[ उत्पन्न होने वाली सन्तान अत्यन्त बली एवं साहसी हो, इसलिये, विलासिताद्योतक मणिमय दर्पणों को छोड़कर तलवार से ही दर्पण का कार्य ले रही है। ]

निरस्य नीलोत्पलमजरठकण्ठीरवकण्ठकेसरस्तबकमकरोत्कर्णावतंसम् ॥

नीलकमल को छोड़कर युवक सिंह के केसर के गुच्छे को कर्णभूषण बना रही थी।

अतिबहलकुङ्कुमाङ्ककस्तूरिकापङ्कमपहाय मत्तमातङ्गमदकर्दमेन निजभुजशिखरयोर्विचरयाञ्चकार विचित्रपत्त्रभङ्गान् ॥

अत्यन्त गाढे कुङ्कुम में मिश्रित कस्तूरी लेप को छोड़कर मतवाले हाथी के मदपङ्क से अपनी बाहुओं पर सुन्दर पत्र रचना करती थी।

एवमन्तःस्फुरद्गर्भानुरूपदोहदसुखमनुभवन्ती कदाचिदुच्चस्थानस्थिते सौम्यग्रहग्रामे, महाराजजन्मोचितेऽह्नि शुभसंभारकारणायां कालवेलायां जातप्राये प्रभाते प्रभाप्रतानजनितपरिवेषमशेषतेजस्वितेजःपुञ्जापहारिणमालोहितपादपल्लवोल्लसितपङ्कजच्छायम्, द्यौरिव रविमण्डलम्, उन्नमन्मेघमालेव विद्युल्लोलम्, अरणिरिव वितानवैश्वानरम्, नरपालप्रिया प्रीणितलोकं पुत्रमजीजनत्।

एवमन्तरिति ॥ द्यौरपि प्रभे रविमण्डलं जनयति। तमपि दीधितिकृतवेष्टनम्। तथा समस्तदीपप्रभृतितेजस्वितेजोमुषम्। पादाः किरणाः। पुत्रपक्षे आ ईषत् लोहितौ पादपल्लवौ तयोरुल्लसितपङ्कजवच्छाया यस्य। तथा विद्युतां लोलनं लोलो विलासः। मण्डलः पुरुषपि ॥

इस तरह भीतर स्पन्दित होते हुए गर्भ के अनुकूल इच्छा विशेष के सुख का अनुभव करती हुई, किसी समय, जब सुन्दर ग्रहों का समुदाय उच्च स्थान पर था, एक महाराज के जन्म के लिए उचित दिन में, सुखसमूह के कारणीभूत मुहूर्त में, जब भोर हो चला था, अपनी कान्ति के विस्तार से गोलाकार परिवेष बनाये हुए समस्त तेजस्वियों के तेजपुञ्ज का अपहरण कर लेने वाले

तथा अपने लाल किरण पल्लव से कमलकान्ति को उल्लसित कर देनेवाले सूर्य-मण्डल को जैसे आकाश, बिजली के विकास को जैसे उमड़ती हुई मेघमाला और विस्तृत अग्नि को जैसे अरणि ( लकड़ी ) जन्म देती है वैसे ही राजपत्नी ने वंश को तृप्त कर देने वाले पुत्र को जन्म दिया।

तत्र च दिवसे—

सांशुकोद्यतवंशस्य तस्य राज्ञः पुरस्य च।
बभूव लक्ष्मीः सा कापि यया स्वर्गोऽपि निर्जित.॥ १० ॥

सांशुकेति॥ राज्ञः पुरस्य च सा काचिद्जनि शोभा। यथा स्वर्गशब्दानिकुत्वा स्वर्गो देव, स्वर्गशब्दो लोकश्च जित॰ अधुना रविणा सह सांशुक वंशतो वंशो यस्य। रवेर्वंशस्य च तुल्यमुदयमभिष्टम्। अग्रे तस्याप्युदितत्वात्। पुरं च सध्वजा-कोच्छ्रितवेणुकम्॥ १० ॥

उस सांशुकवंश ( सूर्यवंशी ) कुलीन राजा को और सांशुकवंश ( वस्त्रविशिष्ट ध्वजा के बांसवाले ) उस नगर की ऐसी शोभा हुई कि स्वर्ग में रहने वाले देव और स्वर्ग दोनों ही जीत लिये गये॥ १० ॥

[ अंशुक किरण और वस्त्र दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वीरसेन सूर्यवंशी राजा था। स्वर्ग शब्द देव और स्वर्गलोक दोनों का वाचक है। राजपुत्र के जन्म के उपलक्ष्य में नगर में बड़ी ऊँची-ऊँची ध्वजाएँ फहरा रहीं थी। अत. नगर ने अपनी शोभा से स्वर्ग को जीत लिया और राजा भी अपने नवीन वंशाङ्कुर से देवताओं की अपेक्षा अधिक महिमावान् हो गया॥ १० ॥ ]

अपिच—

सवृद्धबालाः कालेऽस्मिन्मुक्ताहारविभूषणाः।
प्राताः प्रीति पुरे पौरा वनेषु च तपस्विन॥ ११ ॥

सवृद्धेति॥ वृद्ध॰ पितामहादि॰ बाल पुत्रादि॰। ताभ्यां सह। मौक्तिकहारालं-कारणा॰ पौरा॰। मुनयस्तु सवृद्धकेशाः क्षुधादेरसंस्कारात्। तथा मुक्ता आहारा यैः। तथा व्ययेनमूताश्च॥ ११ ॥

और—

उस समय में नगर में नगर निवासी बालक और वृद्ध मुक्ताहार विभूषण (मुक्ताहार से अलङ्कृत) थे और वन में तपस्वी लोग मुक्ताहार विभूषण ( उपवास व्रत के कारण मण्डित ) थे॥ ११ ॥

[ इतना दान दिया गया कि आबाल वृद्ध सभी मुक्ता के हार से अलङ्कृत हो गये। तपस्वी लोगो ने वन में नृप की मङ्गलकामना से उपवास आदि अपने व्रतों को और तेज कर दिया॥ ११ ॥ ]

सूतीगृहे च—

अलंकृतनिशान्तेन तरुणारुणरोचिषा।
प्रदीपानां प्रभा तेन प्रभातेन यथा जिता ॥ १२ ॥

अलमिति ॥ येन प्रभातेनेव प्रदीपानां प्रभा जिग्ये। अलंकृतं निशान्तं गृहं येन। तथा तरुणारुणो मध्याह्नार्कस्तद्वद्रोचिर्यस्य। अत एव दीपप्रभा निष्प्रभा। महात्मना हि भूयिष्ठेन तेजसा दीपप्रभाप्यभिभूयते। प्रभातेन अलमत्यर्थम्। तरुणया नूतनया अरुणस्य रविसारथे रोचिषा। कृतो निशाया रात्रेरन्तो येन। यदि वा अरुणरोचिषा लोहितकान्तिना तरुणोपलक्षितेन प्रभातेन तत्समये हि दिनकरकर-स्पर्शात्तरवो रक्तीभवन्ति ॥ १२ ॥

रात्रि के अन्तिम प्रहर को अलङ्कृत कर देने वाले तथा मध्याह्नकालीन सूर्य की तरह पर्याप्त कान्ति वाले उस ( नवजात शिशु ) ने प्रदीपों की कान्ति को जीत लिया ॥

प्रभात पक्ष—नवीन एवम् अरुण कान्ति वाले, रात्रि के अन्तिम क्षण को मण्डित कर देने वाले उस प्रातः काल ने प्रदीप की प्रभा को जीत लिया ॥ १२ ॥

[ रात्रि के अन्त में आने वाला प्रभात जैसे तरुण अरुण की कान्ति से प्रदीप की प्रभा को नष्ट कर देता है उसी तरह उस नवोदित बालक ने अपने भास्वर तेज से दीपकों को हतप्रभ बना दिया। बड़े तेज के सामने छोटा तेज विलीन हो जाता है। उस तेजस्वी बालक के सम्मुख दीपक का तेज म्लान हो गया ॥ १२ ॥ ]

चिरात्पल्लवितं राजवंशेन, समुच्छ्वसितं राज्यश्रिया, प्रीतं प्रणयिभिः, प्रनृत्तं पौरैः, प्रमुदितं बान्धवैः, विद्राणं द्रोहिजनैः, उत्सवितं वियत्यदृष्टमङ्गलवादित्रैः, चित्रायितमनिबद्धलपरिमलपतत्पुष्पवृष्ट्या, विकसितं दिग्वधूवदनारविन्दैः, विलसितमतिसुरभिसुखस्पर्शसमीरणेन, स्वच्छन्दायितं वन्दीकृतारातिरमणीभि, आप्यायितमर्थिलोकेन ॥

चिरादिति ॥ चित्रायित भक्तिविशेषविन्यासमायितम्। कुमारजन्मोत्सवे गुप्तीनां मोचणाद्बन्दीनां स्वाच्छन्द्यम्। आप्यायने त्यागातिशयो हेतुः ॥

बहुत दिनों के बाद राजवंश ने नवीन अङ्कुर धारण किया। राज्यलक्ष्मी ने श्वास लिया। प्रेमी लोग प्रसन्न हो उठे। नागरिक लोग नाचने लगे। बन्धु लोग प्रसन्न हो गये। द्वेषी लोग विदीर्ण हो गये। आकाश में मङ्गल बाजे बज उठे। अत्यन्त गाढ़े पराग बरसते हुए फूलों की वृष्टि से आकाश चितकबरे रङ्ग का हो गया। दिगङ्गनाओं का मुखकमल खिल उठा। अत्यन्त सुखद एवं सुगन्धित वायु ने अपना विलास प्रदर्शित किया। बन्दी बनाये गये शत्रुओं

की पत्नियों ने स्वच्छन्दता का अनुभव किया । याचक लोग धनवान् जैसे हो गये ।

किं बहुना—

अवृष्टिनष्टधूलीकमशरन्निर्मलाम्बरम् ।
अपीतमत्तलोकं च जगज्जन्मोत्सवेऽभवत् ॥ १३ ॥

अवृष्टीति ॥ वृष्ट्या हि धूली नश्यति । शरदा चाम्बरमलता । पानेनोन्मादः । तच्चेदं तदन्तरेणापि जगद्जायत स तदुत्पत्तिप्रभावः ॥ १३ ॥

उसके जन्मोत्सव में संसार वर्षा के बिना ही धूलिहीन हो गया । बिना शरद् काल आये ही आकाश निर्मल हो गया । बिना मदिरा पीये ही सब लोग मतवाले हो गये ॥ १३ ॥

[ वर्षा से धूलि को नष्ट होना चाहिये, शरत्काल के प्रभाव से आकाश को निर्मल होना चाहिये । मदिरापान से ही लोगों को मस्त होना चाहिये । इन कारणों के बिना ही ये सब कार्य हो रहे हैं, यह सब उस नवजात शिशु का प्रभाव है ॥ १३ ॥ ]

भूते च विभवभूयिष्ठे षष्ठीजागरणव्यतिकरे, अतिक्रान्तेषु च सूतकदिवसेषु नामकरणोचितेऽह्नि 'न लास्यति धर्मधनान्येष साधुभ्यः' इति ब्राह्मणाः, प्रविश्य तस्य 'नलः' इति नाम प्रतिष्ठापयामासुः ॥

भूते चेति ॥ प्रविश्येति । निमित्तान्यामुष्मिकलक्षणान्यमलत्वाद्वा साधूनां धनाग्रहणे अस्यानुत्कलमभिप्रायनाम्निर्देश्यम् ॥

ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण में छः दिनों के बीत जाने पर और प्रसूति दोष वाले दिनों के समाप्त हो जाने पर नामकरण के लिए उचित दिन में ब्राह्मण लोगों ने आकर "साधुओं की धर्म सम्पत्ति को यह नहीं लेगा" इसलिये नल नाम रक्खा ॥

क्रमेण च चतुरुदधिवेलावनविकासोचितकीर्तिकुन्दकन्दलैर्विश्वविश्वंभरामिलम्भलग्नपाकैः कुमारसेवकैरिव सकलचक्रवर्तिचिह्नैरलंकृतावयवो विस्तरजटालवालः, कल्पपादपाङ्कुर इव वर्धितुमारभत ॥

क्रमेणेति ॥ कुमारसेवका युवराजानुचराः । तद्वदस्मै राजचिह्नं रेखारूपैश्चक्रचापकुलिशादिभिर्मुद्रितः । तथा विस्तरन्तो जटाला स्वभावजटाबन्धा वालाः कचा यस्य । वृत्तचूडाकरणस्य हि केशा विजटीभवन्ति । कल्पवृक्षस्तु प्रसरन्मूलालवालः ॥

चारों समुद्रों के तट ( पृथ्वी ) के विकास के उपयुक्त कीर्ति के मूल, सम्पूर्ण पृथ्वी की प्राप्ति के सूचक, चक्रवर्ती सम्राट की रेखायें उस बालक को सेवक की तरह अलङ्कृत कर रही थीं । कल्पवृक्ष का अङ्कुर जैसे विस्तर जटाल्वाल

[ आलवाल ( थाले ) में फैलती हुई जटा ( जड ) वाला ] होकर बढता है वैसे वह विस्तर जटालबाल ( बढते हुए जटा युक्त केशो वाला ) बालक बढना शुरू किया।

[ उसके शरीर में चक्रवर्ती सम्राट् के लक्षण थे। उन लक्षणों से ज्ञात होता था कि वह समुद्रान्त पृथ्वी का विकास करेगा और सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन स्थापित करेगा। यहाँ कल्पवृक्ष और बालक में केवल शब्दसाम्य है। दोनो ही विस्तर जटालबाल हैं। कल्पवृक्ष का अङ्कुर ऊपर की ओर तब बढता है जब उसकी जड उसके आलवाल में खूब फैल लेती है। नियम सर्वविध वृक्षों के लिये है। जड जब नीचे फैलेगी तभी अकुर ऊपर की ओर अधिक पल्लवित होगे। उस बालक के बढते हुए बाल स्वाभाविक जटाओ से युक्त है चूडाकर्म सस्कार के पहले बच्चो के बालो में जट बध जाता है। उसी अवस्था का यहाँ वर्णन है। चूडाकर्म सस्कार के समय मुडन कराया जाता है। मुडन के बाद के बालो का स्वाभाविक जटबन्ध नहीं होता। ]

विरचितचूडाकरणादिसंस्कारक्रमश्च प्राप्ते विद्याग्रहणकाले निमित्तमात्रीकृतोपाध्यायः स्वयमेव समस्तानवद्यविद्याम्भोनिधेः परं पारमवाप ॥

चूडाकरण सस्कार हो जाने पर विद्याग्रहण के लिये उचित समय में निमित्तमात्र के लिये अध्यापक का अवलम्बन लेकर उसने सम्पूर्ण पवित्र विद्याओ के सागर को अनायास ही पार कर लिया।

तथाहि—

प्रबुद्धबुद्धिर्बौद्धे, सविशेषशेमुषीको वैशेषिके, विख्यातः सांख्ये, रञ्जितलोको लोकायते, प्राप्तप्रभः प्राभाकरे, प्रतिच्छन्दकश्छन्दसि, अनल्पविकल्पः कल्पशास्त्रे, शिक्षाक्षमः शिक्षायाम्, अकृतापशब्दः शब्दशास्त्रे, अभियुक्तो निरुक्ते, सज्ज्ञो ज्योतिषि, तत्त्ववेदी वेदान्ते, प्रसिद्धः सिद्धान्तेषु, स्वतन्त्रस्तन्त्रोवायेषु, पटुः पटहे, अप्रतिमल्लो झल्लरीषु, निपुणः पणवेषु, प्रवीणो वेणुषु, चित्ररुचिश्चित्रविद्यायाम्, उद्दामः कामतन्त्रे, कुशलः शालिहोत्रे, श्रेष्ठः काष्ठकर्मणि, सावलेपो लेप्ये, पण्डितः कोदण्डे, शौण्डः शारिषु, गुणवान्गणिते, वल्लो बाहुयुद्धेषु चतुरश्चतुरङ्गद्यूतक्रीडायाम्, उपदेशको देशभाषासु, अलौकिको लोकज्ञाने ॥

प्रबुद्धेति ॥ चित्रवृत्तलक्षण छन्द । कल्प पितृदेवताद्याराधनविधिशास्त्रम्। अकारादिवर्णजन्मस्थानानां बोधिका शिक्षा। अन्वयस्य प्रकाशक निरुक्तम्। अतीन्द्रियशुभाशुभकर्मणां प्रकाशक ज्योतिषम् ॥

बौद्धदर्शन में उनकी बुद्धि प्रबुद्ध हो गयी। वैशेषिकदर्शन में विशेष पद्धतियों के जानकार हो गये। सांख्यदर्शन में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली। चार्वाकदर्शन से लोगों को प्रभावित करने लगे। प्राभाकर ( मीमांसा ) में भी अच्छी प्रतिभा प्राप्त कर ली। छन्दःशास्त्र में भी नूतन-नूतन कल्पनायें करने लगे। कल्प (विप्र लोगों की अर्चना विधि के) शास्त्र में पर्याप्त कल्पना प्रवण हो गये। शिक्षा ( वर्णों का उत्पत्ति विषयक ज्ञान देने वाले ) शास्त्र को तो पढ़ा देने में समर्थ हो गये। व्याकरणशास्त्र के अनुकूल ही पदों का उच्चारण करने लगे। निरुक्त में भी प्रवीणता प्राप्त कर ली। ज्योतिषशास्त्र में भी तैयार हो गये। वेदान्त के रहस्यों को भी जानने लग गये। सिद्धान्त ज्ञान में भी प्रसिद्ध हो गये। वीणा बजाने में भी कुशलता प्राप्त कर ली। नगाड़ा बजाने में पटु हो गये। झाल बजाने में अनुपम हो गये। पणव बजाने में नैपुण्य प्राप्त कर लिया। वेणु विद्या ( वंशी बजाने ) में प्रवीण हो गये। चित्र विद्या में आश्चर्य उत्पन्न करने लग गये। कामशास्त्र में प्रशस्त, अश्वविद्या ( शालिहोत्र ) में कुशल, बाहुकला में श्रेष्ठ, रुजन कला में साहंकार, धनुर्विद्या के विद्वान्, द्यूत खेलने में उत्कृष्ट, गतिनिर्बन्ध में गुणी, बाहुयुद्ध में सफल, चतुरङ्ग द्यूत क्रीडा ( एक विशिष्ट ढंग के द्यूत ) में चतुर, विभिन्न देश भाषाओं के शिक्षक तथा लोकज्ञान में सर्वथा व्यावहारिक बन गये॥

किं बहुना—

रसे रसायने ग्रन्थे शस्त्रे शास्त्रे कलास्वपि।
नले न लेभिरे लोकाः प्रमाणं निपुणा अपि॥ १४॥

रस इति॥ रसः पारदः। रसायनम् आमरणाद्दृढ औषधयोगः। ग्रन्थः काव्यशास्त्रादिरचना। शस्त्रं खड्गादि। शास्त्रं व्याकरणतर्कादि। कला गीतनृत्यवाद्यम्। एतेषु निपुणा अपि मनुष्या लोका नले राज्ञि प्रमाणमियत्तां न प्रापुः॥ १४॥

अधिक क्या कहें—

रस, रसायन, ग्रन्थ, शस्त्र, शास्त्र और कलाओं में निपुण लोग भी नल में ( रहने वाले ज्ञान की सीमा तक ) नहीं पहुँच सके॥ १४॥

[ रस शृङ्गार आदि काव्यरसों और पारद आदि द्रव्य रसों के प्रसङ्ग में प्रयुक्त होता है। पारद आदि रसों से मोक्ष की प्राप्ति होती है, इस तरह की बात रसेश्वरदर्शन में मिलती है। रसायन भौतिक विज्ञान या औषधि विज्ञान के लिये प्रयुक्त हुआ है। ग्रन्थ काव्य, शास्त्र आदि रचनाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। तात्पर्य यह है कि विद्या के एक एक क्षेत्र के विशेषज्ञ भी अपनी अपनी विद्याओं में भी यदि नल की परीक्षा करते हैं तो उन्हें पता नहीं लगता कि नल कितनी गहराई में है॥ ]

**क्रमेण शैशवमतिक्रामतोऽस्य सेवकैरिवाङ्गावयवैरप्यनुवृत्तिः कृता ॥**

सेवक जैसे स्वामी का अनुकरण करते है वैसे उसके विभिन्न अङ्गावयवो ने भी शैशव अवस्था पार करने के समय उसका अनुगमन किया ॥

[ नल जब शैशव अवस्था को छोड़कर तरुणता की ओर चला तो उसके अङ्ग भी तरुण हो गये ॥ ]

तथाहि—

**श्रवणासक्तस्य लोचनद्वयमपि श्रवणसगतिमकरोत् ॥**

श्रवणेति ॥ श्रवणे शास्त्राकर्णने आसक्त । श्रवणसगति कर्णसगति ॥

श्रुतियों को सुनने मे वह आसक्त था । इस कार्य म उसके दोनो ही ( आन्तरिक एव बाह्य ) नेत्रों ने कान की सगति की ॥

**उन्नतस्वभावस्य नासावंशोऽप्युन्नतिं जगाम ॥**

उसके उच्च स्वभाव के साथ साथ नासिका का अग्रभाग भी उच्च हो गया ॥

**वक्रोक्तिकुशलस्य केशकलापोऽपि वक्रता भेजे ॥**

वक्रोक्तियो की कुशलता के साथ साथ उसके केश भी वक्र हो गये ॥

**शङ्खनिर्मलगुणस्य कण्ठोऽपि शङ्खाकारमधारयत् ॥**

शख सदृश निर्मल गुणो के साथ उसका कण्ठ भी शख की आकृति जैसा हो गया ॥

**पृथुलतेरंसकूटद्वयमपि पृथुलमभूत् ॥**

पृथुलेति ॥ असकूटेति कूटशब्द शिखरार्थ ॥

बुद्धि की पुष्टता के साथ उसके कन्धे भी पुष्ट हो गये ॥

**प्रमाणवेदिनो वक्षःस्थलमपि सुप्रमाणमजायत ॥**

प्रमाणेति । प्रमाण तर्कशास्त्र मान च ॥

( प्रत्यक्ष अनुमान आदि ) प्रमाणो के ज्ञान के साथ उसका वक्ष स्थल भी सुप्रमाण ( विशाल ) हो गया ॥

**मध्यस्थस्य तस्य रोमराजिरपि मध्ये स्थिता शुशुभे ॥**

मध्येति ॥ मध्यस्थोऽकृतपक्षपात । अन्यत्र मध्ये उदरे तिष्ठतीति ॥

सभी बातों में मध्यस्था करने वाले उस ( नल ) की रोमपङ्क्ति भी उदर मध्य म सुशोभित हो गयी ॥

सुवृत्तस्य बाहुद्वयुगलमपि सुवृत्तमभवत् ॥

सुवृत्तेति । वृत्तं शीलं वर्तुलं च ॥

उस सुवृत्त (सुन्दर स्वभाव वाले) की भुजाएं भी सुवृत्त (सुडौल) हो गयीं ॥

गम्भीरप्रकृतेर्नाभिरपि गम्भीरा व्यराजत ॥

गम्भीरेति । गम्भीरप्रकृतिरलक्ष्यकोपप्रसादः । निम्ना च गम्भीरा ॥

उस गम्भीर प्रकृति (गम्भीर स्वभाव वाले) की नाभि भी गम्भीर (गहरी) हो गयी ॥

पल्लवसुकुमारहृदयस्य हस्तचरणैरपि पल्लवसौकुमार्यमङ्गीकृतम् ॥

उस पल्लव सुकुमारहृदय (पल्लव सदृश कोमल हृदय वाले) के हाथ-पैरों ने भी पल्लव की कोमलता को अपना लिया ॥

अथ किं बहुना—

सोष्णीषमूर्धा ध्वजचक्रपाणिरूर्णाङ्कविस्तीर्णललाटपट्टः ।
सुस्निग्धमूर्तिः ककुदुन्नतांसः कस्यैष न स्यान्नयनाभिरामः ॥१५॥

सोष्णीषेति ॥ उष्णीषाकारं शारीरिकं लक्षणमुष्णीषम् । ऊर्णा भ्रूमध्ये शुभरोमावर्तः ॥ १५ ॥

अधिक क्या—

पगड़ी से मण्डित सिर, ध्वज तथा चक्र से चिह्नित हाथ, ऊर्णा (भौहों के बीच की भ्रमरी) से चिह्नित विशाल ललाट, कोमल आकृति तथा उन्नत कन्धे वाला वह (नल) किसकी आँखों के लिये रमणीय नहीं है ॥ १५ ॥

अपि च—

यान्त्यश्रीः संनिभेन्दोः सनदवृषककुद्बन्धुरः स्कन्धसंधिः ।
स्निग्धा दृक्कान्तलानामनुहरति हृद्योर्द्वन्द्वमिन्दीवरस्य ।
स्थानं वक्षोऽपि लक्ष्म्याः, स्पृशति भुजयुगं जानुनो, वृत्तरम्ये
जङ्घे, क्षामोऽवलग्नः किमु निषधपतेः श्लाघनीयं न तस्य ॥१६॥

मुख की कान्ति चन्द्र की तरह है। कन्धों की सन्धियां मदवाले साँड के डील की तरह मनोहर हैं। बाल तथा नेत्रों की मधुर कान्ति नीलकमल युगल की कान्ति का अनुकरण कर रही है। वक्षस्थल लक्ष्मी का स्थान है। दोनों हाथ जानु को छूते हैं। सुडौल जङ्घे बड़े मनोहर हैं। मध्य (कमर) कृश है। इस निषधपति का क्या प्रशंसनीय नहीं है ॥ १६ ॥

[ सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार इन लक्षणो से युक्त मानव चक्रवर्ती सम्राट् होता है ॥ ]

अस्ति च तस्य नरपतिसूनोः समानशीलवयोविद्यालंकारकान्ति- कलापपरिपूर्णदेहः शरीरमात्रद्वितीयोऽप्यद्वितीयहृदयमेकं जीवितमपर उच्छ्वासः सालङ्कायनसूनुः श्रुतशीलो नाम मन्त्री मित्रं च ॥

अस्तीति ॥ अपर उच्छ्वास इति । न परोऽस्मादित्यपर उत्कृष्ट' ॥

उस राजपुत्र के समान स्वभाव, अवस्था, विद्या, भूषण, सौन्दर्य तथा कला से पूर्ण शरीर से दो रहने पर भी–हृदय से एक, प्राणो की तरह प्रिय, श्वास की तरह अनिवार्य, सालङ्कायन का पुत्र मन्त्री और मित्र है ॥

एकदा तु पूर्वदिग्वधूकुङ्कुमपङ्कपल्लवितवदनायमाने निरुद्धान्ध- तमसे सौगन्धिकबन्धुनि बन्धूककुसुमारुणे वियति तरतीव तरुणतरे तरणिमण्डले, मण्डयति कुसुम्भकुसुमकेसरप्रकरायमाणे गगनाङ्गण- मम्भोजमुकुलनिद्रामुपि रोचिषां चये, चलिते च विचरितुमुपवनतरु- राजिकर्णोत्पले निद्राविरामविधुतपक्षे पक्षिकुले, कृतप्राभातिककर्मणः सभाङ्गणमण्डपमध्यवर्तिनो दत्तसेवावसरस्य राज्ञः प्रविष्टे मन्त्रिणि सालङ्कायने प्रणामपर्यस्तकर्णोत्पलधवलितसभाङ्गणे यथासनमुपविष्ट प्रस्तुतसेवालापरञ्जितराजनि राजन्यचक्रे, प्रक्रान्ते शास्त्रीयविनोदे, श्रुतिशीलेन सममन्यैश्च क्रीडासहायैरनुचरैरनुगम्यमानो नलः सेवा सुखमनुभवितुमागतवान् ॥

एक समय पूर्व दिग् वधू के कुङ्कुम पङ्क से निर्मित पल्लव सदृश मुख की तरह प्रतीत होने वाला, कमला का मित्र बन्धूक फूल की तरह लाल सूर्यमण्डल अन्धकार को नष्ट कर आकाश मे तैर रहा था । कुसुम्भ पुष्प के केसरपुञ्ज की तरह गगन प्राङ्गण मे कमल कलियो की निद्रा को चुरा लेने वाली किरणे बिखर रही थी । उपवन का तरुसमूह रूप कर्ण पुष्प विहार के लिये स्पन्दित हो उठा था । निद्रा समाप्त होने के कारण पक्षी अपना पक्ष फडफडा रहे थे । ( ऐसे समय मे ) सभामण्डप मे बैठे हुए राजा द्वारा सेवा का अवसर प्राप्त कर मन्त्री सालङ्कायन सभाभवन आये । आश्रित राजाओ के वर्ग ने प्रमाण के अवसर पर अपने कर्णाभरणों की कान्ति से सभाभवन को धवलित कर दिया, उचित आसन पर आसीन होने के बाद प्रासङ्गिक सेवा विषयक चर्चा से राजा को प्रसन्न कर दिया । शास्त्रीय चर्चा विषयक मनोविनोद प्रारम्भ हो गया । श्रुतिशील के साथ अन्य क्रीडा सहायक अनुचरों को लिया हुआ नल सेवासुख का अनुभव करने के लिये आया ॥

आगत्य च क्षितितलमिलन्मौलिमण्डलः प्रणम्य पितुः पादारविन्दद्वयमदूरदत्तमासनं भेजे ॥

आकर पृथ्वी तक सिर झुकाता हुआ पिता के पदकमल युगल को प्रणाम कर समीप में दिये हुए आसन पर बैठा ॥

उपविष्टे च तस्मिन्ननभिवादनादुत्पन्नमन्युरीषत्कोपकम्पितकरपरामृष्टकूर्चाग्रग्रन्थिरग्रणीर्मन्त्रिमण्डलस्य भ्रूभङ्गभीषणया शोणकोणान्तरतरत्तरलतारया दृशाऽभिमुखमस्य शालङ्कायन प्रणयपरुषाक्षरमभाषत ॥

उपविष्ट इति ॥ आत्मनोऽप्रणामाद्धितविनयाकौशलं मत्वा प्रीतिभाक् पैतृको मन्त्री शिक्षाबुद्ध्या परुषवर्णमवादीत् ॥

उसके बैठ जाने पर प्रणाम न करने के कारण क्रुद्ध कोप के कारण कुछ कांपते हुए हाथ से अपनी मूंछ की सिरा को छूते हुए भौंहों की वक्रता के कारण भयङ्कर तथा लाल कोनों के बीच तैरती हुई कनीनिका वाली आँखों से देखते हुए मन्त्रिमण्डल के मुख्य शालङ्कायन ने सामने बैठे हुए नल से प्रेम और रूक्षता भरी बातें कहनी शुरू कीं ॥

कुमार, राजहंसोऽपि 'अहंसरूपः' इति मा स्म मोहवान्भूः ॥

कुमारेति ॥ कुमारेत्यामन्त्रणे । राजमुख्योऽपि हंसस्त्वं सरूपो रूपवानहमित्यमुना प्रकारेण मोहवान् मा स्म भूः मोहं मा गाः । रूपमदो हि नीचचिह्नम् । यत्र राजहंसः स कथमहंसरूप इति विरोधस्तत्कोऽपि सन्देहः ॥

राजकुमार, तुम राजहंस होकर भी अहंसरूप ( हंससदृश रूप वाले नहीं ) हो । विरोध ।

राजहंस ( राजाओं में मुख्य ) हो । यह ठीक है । लेकिन "अहं + सरूपः" ( मैं सुन्दर रूप वाला हूँ ) यह अहङ्कार मत करो । परिहार ।

अनुभवति चमूढः शत्रुसंधान इव कोशशून्यताम् ॥

ननु यदि रूपदर्हंकाराद्वा नृपो मूढः स्यात्तत्को दोष इत्याशङ्क्याह—अनुभवतीति ॥ चकारो यौगपद्ये । यदैव कुतः सुखानि तदैव कोशेन गन्त्रेन शून्यता स्यानिरेकमनुभवति । यथा चमूर्वा शत्रुसेनया छटा पुनः शस्त्रनिचयं प्रत्याकारशून्यतामायाति ॥

मोह से घिरा हुआ आदमी कोशशून्यता का अनुभव करता है जैसे चमू ( सेना ) द्वारा शत्रुओं के उठा ले जाने पर शत्रुसमूह कोशशून्यता का अनुभव करने लगता है ॥

[ मोहसम्पन्न व्यक्ति अपने कोश ( निधि ) को नहीं संभाल पाता । वह तो मूर्च्छा में विवेकशून्य पड़ा रहता है । मोह शब्द यदि अहंकार के अर्थ में

लगाया जाय तो भी तात्पर्य यह होगा कि अहंकारी व्यक्ति कहीं कुछ अनुचित कर बैठता है और पर्याप्त निधि का दुरुपयोग करता है। अतः एक दिन कोश शून्य हो जाता है ॥

इस पक्ष में च बलम पद है और मूढ अलग। बहुसंघात पक्ष में चम्वा ऊढ' ( सेना द्वारा ढोया हुआ ) विग्रह करना चाहिये। चमू + ऊढ भिन्नभिन्न पद हैं ॥ ]

अविभवः पुरुषो मेष इव कम्बलस्योपयोगं गच्छति ॥

भ्रष्टकोशस्यापि किं तदाह—अविभवेति ॥ निर्धनः पुमान् अज इव बलस्य सैन्यस्य शक्तेर्वा कमुपयोगं साफल्यं याति न कमपीत्यर्थः एतेन निष्कोशस्या बलित्वमिति ख्यापितम्। अजस्तु अवेर्मेण्ढाद्भवति स्म। तथा कम्बलस्याच्छादनविशेषस्योपयोगं याति ॥

अविभव ( निर्धन ) पुरुष बल ( शक्ति ) के किस उपयोग में आ सकता है। अवि ( भेडो ) से भव ( उत्पन्न ) होने वाला ( भेडा ) कम्बल के उपयोग में आता है ॥

[ अविभव शब्द का विच्छेद जब अवि + भव है तो इसका अर्थ है 'भेड से उत्पन्न"। जब अविभव शब्द "नास्ति विभवो यस्य' इस अर्थ का वाचक है तब 'ऐश्वर्यहीन" अर्थ का वाचक है। इसी तरह कम्बल शब्द के भी सभङ्गश्लेष के आधार पर दो अर्थ हैं। 'अविभवः पुरुषः बलस्य कम् उपयोगं गच्छति। इस पक्ष में कम्बलस्य का "कम्" उपयोग का विशेषण है। भेड वाले पक्ष में 'कम्बलस्य" एक शब्द है। तात्पर्य यह कि कोशशून्य आदमी अविभव ( धनहीन ) हो जाता है। अतः कोई भी बल का कार्य वह नहीं कर सकता ॥

प्रद्युम्नजातोऽपि बाणयुद्धव्यतिकरकारिण्या सदोषया यौवनावस्थया निरुद्धोऽनिरुद्ध इव को नाम न क्लेशमनुभवति ॥

तस्मादबलस्य का कथेत्याह—प्रद्युम्नेति ॥ यतः प्रद्युम्नजातोऽपि प्रकृष्टौजःपुत्रोऽपि। बाणैः शाब्दैश्च युद्धकोलाहलस्तत्सम्पर्ककारिण्या। सह दोषैरिति दोषा रात्रिस्तया। तारुण्यावस्थया। निरुद्धः आत्मवशीकृतः को नाम क्लेशं दुःखं नानुभवति। सर्वोऽप्यनुभवत्येवेत्यर्थः। नामाभ्युपगमे। द्युम्नं द्रव्यमपि। यशोधातु शब्दार्थो घसन्तः। प्रद्युम्नः कामः। तस्माज्जातोऽनिरुद्धाभिधो बाणाख्येन दैत्येन समं युद्धसम्बन्धविधायिन्या यौवनेऽवतिष्ठन इति कृत्वा तारुण्ये स्थितया उषया उषाख्यया पत्न्या सदा निरुद्ध आत्मीकृतो दुःखमनुभूतवानित्यागमः। युद्धव्यतिकरोऽनङ्गसूनोः क्लेशानुभवहेतुः ॥

प्रद्युम्न ( पूर्ण तेज ) से उत्पन्न होकर भी बाणयुद्ध ( शब्दकलह ) करने का अवसर देने वाली दोषपूर्ण यौवनावस्था से घिरा हुआ कौन नहीं अनिरुद्ध की तरह क्लेश का अनुभव करता ॥

अनिरुद्ध पक्ष—बाण ( बाणासुर ) के साथ युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर देने वाली, यौवनावस्था में स्थित सदा उषा के प्रेम में घिरे हुए प्रद्युम्नजात ( कामपुत्र ) अनिरुद्ध ने क्लेश का अनुभव किया।

[ प्रद्युम्नजात—द्युम्न शब्द तेज का वाचक है। उत्कृष्ट तेजसम्पन्न व्यक्ति भी यौवनावस्था में यदि विचार में नहीं रहता तो अनिरुद्ध की तरह बांधा जाता है। अनिरुद्ध प्रद्युम्न का पुत्र था और कृष्ण का पौत्र। बाणासुर की लड़की उषा की प्रेरणा से एक चित्रकला प्रवीण दैत्यपत्नी ने अनिरुद्ध को उषा के पास उड़ा कर पहुँचा दिया। जब बाणासुर को पता लगा कि अन्तःपुर में एक युवक आ गया है तो उसे पकड़ लिया गया।

प्रद्युम्नजातोऽपि ( प्रकृष्ट तेज से जन्मा हुआ भी ) बाणयुद्धव्यतिकर-कारिण्या ( वाक्कलह का अवसर देने वाली ) सदोषया यौवनावस्थया ( दोषपूर्ण यौवनावस्था से ) निरुद्ध ( घिरा हुआ ) कः ( कौन ) अनिरुद्ध इव ( अनिरुद्ध को उषा के पास उड़ा कर पहुँचा दिया। जब बाणासुर को पता लगा कि की तरह ) क्लेशम् न अनुभवति ( दुःख का अनुभव नहीं करता )।

अनिरुद्धपक्ष—प्रद्युम्नजातोऽपि ( प्रद्युम्न का लड़का होता हुआ भी ) बाण-व्यतिकरकारिण्या ( बाणासुर के साथ युद्ध का अवसर ला देने वाली ) यौवना-वस्थया ( यौवन की अवस्था में स्थित ) सदा उषया ( हमेशा उषा से ) निरुद्धः ( घिरा हुआ ) अनिरुद्धः ( अनिरुद्ध ) क्लेशमनुबभूव ) क्लेश का अनुभव करने लगा। ]

तत्तात, सुविषमेघवर्त्तिनि विद्युद्विलास इवास्थिरे स्थितस्तारुण्ये मा स्म विस्मर स्मयेन विनयम् ॥

तत्तातेति। तदिति उपसंहारे। तातेति प्रणयपूर्वामन्त्रणे। तस्मादुपरम। सुष्ठु अति-शयेन। विषमे। तथाऽघवर्त्तिनि पाप कारयितरि। अस्थिरे चञ्चले। तथा विशेषेण द्योतन्त इति विद्युतो रोचमाना विलासा शृङ्गारादयो यस्मिन्। तथाविधे तारुण्ये स्थित. सन्स्मयेन गर्वेण विनयं मा स्म विस्मार्षीः। विद्युद्विलासोऽपि सुष्ठु विषं यल यत्रेति कृत्वा सुजले मेघे वर्तते। तथा अस्थिरो लोलः। तथाविधे ॥

अत. हे वत्स, बिजली के विलास की तरह चञ्चल, उत्कृष्ट ( विषम ) पाप में रहनेवाली इस यौवन की अवस्था में आकर अहंकार के कारण नम्रता को मत भूलो।

[ विद्युत्पक्ष—सुविष ( सुंदर जल वाले ) मेघ मे रहनेवाला नितान्त चञ्चल बिजली का विलास । तारुण्यपक्ष मे सुविषमेऽप्यवर्तिनि ( उत्कट पाप म रहने वाला ) पदच्छेद है । विद्युत् विलासपक्ष मे सुविष + मेघ + वर्त्तिनि ( सुन्दर जलवाले मेघ मे रहने वाला ) ।

अविनीतोऽग्निरिव दहति ॥

विनयविरहूतौ दूषणमाह—अविनीत इति ॥ अविनयी पुमानग्निरिव दाहमुत्पादयत्यात्मन परस्य वा । अविरूर्णायुस्तेन नीतो यथाग्निस्तत्स्वेतारं दहति । ज्वलन्ती हि गबदरिका स्वीकृता दहतीति लोकोक्ति । अथवा अविरम्निवाहनम् ॥

अविनीत ( उद्दण्ड ) आदमी आग की तरह स्वयम् जलता है और दूसरो को भी जलाता है । अथवा अवि ( कम्बल ) मे नीत ( लगी हुई ) आग की तरह जलता है ।

[ कम्बल मे लगी हुई आग कम्बल को तो जलाती ही है उसके ओढ़ने वाले को भी जला देती है । अविनीत स्वय नष्ट होता ही है, सम्पर्क रखनेवालो को भी दूषित करता है । ]

[ यह सोचो कि स्वय जलने वाले या दूसरो को जलाने वाले कामदेव आदि स्तुति के पात्र बनते हैं । अत ऐसा करने से हम भी स्तुत्य बन जायेंगे । यह भी नहीं होगा । ] क्योकि—

अजातनयश्छाग इव नाभिनन्द्यते जनेन ॥

नन्वात्मदाहका पतिव्रिपत्नी स्यादय परदाहका कामत्रिपुरान्तकप्रभृतयश्च श्रूयन्ते । ततश्चाविनयाद्दाहात्मकमपि मां जन स्तोष्यतीति ः निरस्यन्नाह—अजातेति ॥ न जातो नयो यस्य स छाग इव न स्तूयते जनेन । स्तुतिमपि न प्राप्नोतीत्यर्थं । छागश्चाजायास्तनय सुत ॥

जो अजात + नय ( नीति हीन ) होते हैं वे अजा + तनय (बकरी के बच्चे) छाग की तरह लोगो की स्तुति का पात्र नही बनते ।

[ यह सोचो कि मैं जैसा भी रहूँगा, मेरे सहायक तो अच्छे है । अत उनकी सहायता से मेरा कार्य चल जायगा । यह भी सोचना ठीक नहीं है । ]

किं च यूम —

गुरुसहायदान्यस्य भवतो यस्यामीमांसाभियोगा राक्षसा इव, अन्याया पारदारिका इव, अयोगप्रिया लोहकारा इव अश्रुतागमा शोकवेगा इव सहाया ॥

नन्वात्मन स्वामी यादृक्तादृग्वा भवतु चेत्सुसहाय । तदपि त्वयि नास्तीत्याविष्कुर्वन्नाह—सत्सहायेति ॥ यस्य ते ईदृशा सहाया । न मीमांसाभियोगो

विचारो मन्त्रो येषाम्। राजपक्षस्तु मात्रेऽभियोगो येषां ते। अमी इति नद्धिन्न-पन्न्। न विद्यते न्याये पथनिबन्धनं या न्यायरहिता। उपमाने तु अन्यानन्दमवद्यानपन्नं गच्छन्तीत्यन्याया। परकीया इत्यर्थः। अलब्धलाभो लब्धपरिरक्षणमिति विवर्धनं च योगः। तस्य क्रिया नास्ति येषां ते नयोगक्रियाः अप्रवृद्धकर्माणो वा। पक्षे अयः लौहं तस्य क्रिया येषाम्। तथा न श्रुत आगमः शास्त्रं यैस्ते। शाकरमास्तु अश्रुतानां नववश्रवणत्वस्यागमो येषु॥

यह भी कह रहा हूँ —

आप सुन्दर सहायकों से युक्त हैं। राजन जैसे मन्त्राभियोग (मात्र भोजन में तत्पर) रहते हैं वैसे ये (आपके सहायक) अमीमांसाभियोग (विचार करने की शक्ति से शून्य) हैं। दूसरे की स्त्री में आसक्त लोग जैसे अन्या + अय (परकीया के पास गमन करने वाले) होते हैं वैसे ये भी अन्याय (अनीति) करने वाले हैं। लोहकार (लोहार) जैसे अयोगक्रिय (लोह सम्बन्धी कार्य में लगे हुए) होते हैं वैसे ये तुम्हारे सहायक भी अयोगक्रिय (अप्रासङ्गिक एवं निष्प्रयोजन कार्य में लगे) रहते हैं।

शोक वार्ता में जैसे अश्रुता (आँसू के भाव) का आगम होता है वैसे ये (नायक सहायक) अश्रुतागम (वेदों का श्रवण नहीं करने वाले) हैं॥

[ राजपक्ष में अमी + मन्त्राभियोगा पदच्छेद है। अमी का अन्वय सहायों के साथ है। सहाय पक्ष में अमीमांसाभियोगा ज्यों का त्यों है। पारदारिका—दूसरे की दारा में आसक्त लोग अन्याय होते हैं। अर्थात् अन्या (परकीया) के पास अय (गमन) करते हैं। इस पक्ष में अन्याय का अन्या + अय विग्रह है। सहाय पक्ष में तो अनीति का वाचक अन्याय पद ज्यों का त्यों है। अयोगक्रिय—ऐसा व्यापार जो लोह से सम्बन्ध रखता हो। सहाय पक्ष में अप्रासङ्गिक तथा निष्प्रयोजन कार्य। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति तथा प्राप्त वस्तु की रक्षा को योग कहते हैं। इससे विरुद्ध व्यापार को अयोगक्रिया कहते हैं। अश्रुतागम—शोकवार्ता में अश्रुतागम इस समास में अश्रु के भावों का आगम अर्थ है। सहाय पक्ष में "न श्रुता आगमा यैः" इस समास में आगम ज्ञान विहीन अर्थ है। अर्थात् शोक वार्ता जैसे आँसुओं का भाव ला देता है वैसे उसके सहायकों ने आगम (वेद) को नहीं सुना है। अश्रुतागमत्व रूप साधारण धर्म दोनों में है। अश्रु शब्द से तल् प्रत्यय करने पर अश्रुता बना है॥ ]

न च ते दुःशिक्षितनृपकलव्याकरणमार्गेषु निपुणा नर्तकीव मित्रमण्डली॥

एव सहायसंपद निषिध्य मित्रमण्डलीमवद्यमाह—न चेति॥ दु शिक्षितेति नृपकलभेति चाम-त्रणम्॥ ते तव मित्रमण्डली न च व्याकरणमार्गेषु कुशला। शब्दतत्त्वावबोधे हि नीतिशास्त्राधिगम। नीत्यवगमे हि कृत्याकृत्यविमर्शनम्। तस्मात्सपद न च तन्नैपुण्य भवन्मित्रमण्डल्यामस्तीति भाव। नर्तकीपक्षे दु शिक्षितनृपकलेति सबोधनम्। सा च भरतोक्तेषु करणमार्गेषु भव्या प्रशस्ता॥

हे दु शिक्षित नृप कलभ (ओ अशिक्षित नृप के बच्चे), तुम्हारी मित्र मण्डली व्याकरण मार्ग म (नीति शास्त्र के उचित व्याख्या मार्ग) मे मतकी की तरह निपुण नही हैं।

नर्तकी पक्ष—हे दु शिक्षित नृपकल। (नृपनीति को न जानने वाले) नर्तकी (नाचने वाली) भव्याकरण (उचित अनुकरण करने और हाव भाव दिखाने) म निपुण होती है॥

[मित्र मण्डली पक्ष मे अर्थ करते समय "दु शिक्षितनृपकलभ' इतना सम्बोधन का रूप है। व्याकरण मार्ग म जो निपुण नही रहेगा उसे नीति शास्त्र के ग्रंथ अच्छी तरह समझ मे नही आयेंगे। नर्तकी पक्ष मे "दु शिक्षित-नृपकल" इतना सम्बोधन है। अर्थात् नृपकला मे तुम अप्रशिक्षित हो। भव्या-करणमार्ग एक पद है। नर्तकी भव्य (सुन्दर) आकरण (अनुकरण) मे निपुण होती है। यदि 'भव्या" को नर्तकी का विशेषण बनाया जाय तो अथ होगा—भरत के बताये हुए विभिन्न करण मार्गों मे भव्या (उत्कृष्ट) है॥]

तदायुष्मन्नहितया प्रकृत्या भुजङ्ग इव भयाय लोकस्य॥

तदेति॥ तदित्युपसहारे। आयुष्मन्नित्यामन्त्रणे। अहितया हितेतरया। प्रकृत्या अविनयादिस्वभावेन। अयुक्तसहायमित्रलक्षणया चामात्यादिकया युक्त सबद्धो भवाँल्लोकस्य भयहेतु। भुजङ्गस्तु अहेर्भावोऽहिता तया दशनलक्षणया प्रकृत्या युक्त॥

आयुष्मन्, आप अपनी अहित प्रकृति के कारण सर्प की तरह लोगो के लिये भयदायक हैं। भुजङ्ग (सर्प) अहिता (सर्प स्वभाव) से लोगो के लिये भयदायक होता है॥

[अहित शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप अहिता है। प्रकृति शब्द का विशेषण जब वह बनता है तो उसका अर्थ होता है अहितकर स्वभाव। सर्प पक्ष मे अहि शब्द से तल् प्रत्यय कर अहिता बनता हैं। भुजङ्ग अपनी अहिता (सर्पोचित भाव) के कारण भयङ्कर हुआ करता है॥]

उग्रसेन कंसानुरागं जनयेत्॥

दुष्टप्रकृतिर्नृपश्चेल्लोकस्य भयाय तत किमित्याशङ्क्याह—उग्रेति॥ उग्रा सेना यस्य स क प्राणिन सानुराग कुर्यात्। न कमपीत्यर्थ विरागहेतुरेवेति भाव।

उचितपरिवारो हि जनानुरागाय। परिवारो हि लोकस्योपद्रवं रक्षणं वा कुरुते। उग्रसेनो दैत्य स कस्यानुरागं जनयतीत्याशयोऽत्रोल्लिखितम्।

उग्रसेन ( क्रूर शासक ) किसको अपने प्रति सानुराग कर सकता है? ( किसी को नहीं )। उग्रसेन दैत्य कंस में अनुराग उत्पन्न करता है॥

कंसानुराग पद का क्रूर शासक पक्ष में "कम् सानुरागम्" पदच्छेद होगा और उग्रसेन दैत्य पक्ष में "कंस नाम के राजा में अनुराग" अर्थ है। "उग्र है सेना जिसकी" इस विग्रह में तो क्रूरतासूचक अर्थ है। दैत्यपक्ष में उग्रसेन एक दैत्य का नाम है।

अमृतमथनोद्यतहरिबाहुपञ्जर इव मन्दरसानुगतः को न घृष्यते॥

चेद्यनी स्थिर इत्युद्वयः महाबाहव। पृथ्वी वा अपि मन्दानुरागा। तत किं समेति निरन्तरमह—अनन्तर॥ मन्द रस प्रीतिर्येषां तैर्मन्दानुरागाः पृथ्या सानुगत को न घृष्यते। उग्रमाने तु पुरा देवैर्दैत्यैश्चामृतार्थमब्धिर्मन्थे। तत्र च भुजया धन्ष्टिश्च विष्णु। तस्य भुजपञ्जरो मन्दराचलो गिरेर्मन्थानभूतस्य सानूनि तदानि तत प्राप्त मन्दरः॥

अमृत मन्थन के लिये तत्पर भगवान् विष्णु के बाहु जैसे मन्दर + सानुगत ( मन्दर पर्वत की चोटी में संयुक्त ) होकर रगड़े गये वैसे मन्द + रसानुगत ( मन्द प्रीति वाले लोगों से घिरा हुआ ) कौन आदमी नहीं रगड़ा जाता॥

शुनीमिवास्थिरतां परिहर॥

शुनीमिति अस्थ्याश्रितरता चञ्चलत्व त्यज। शुनी स्थिरता॥

शुनी ( कुतिया ) अस्थि + रता ( हड्डी चबाने में लगी रहती ) है। आप अपनी अस्थिरता ( चञ्चलता ) छोड़ दें॥

कुशीलताग्राही मा स्म तैलिक इव केवलं खलोपभोगाय भूः॥

कुशीलतेति कुत्सितं शील लौल्यादिरूपं यस्य स कुशीलः, तस्य भावः कुशीलता। तां गृह्णातीत्येवंशीलस्त्वमपि केवलं दुर्जनानामुपभोगाय मा स्म भूः। कुशीलं हि दुर्जनानामेवोपयोगी न साधूनाम्। तैलिकस्तु कुशीलत्वात् तिलान् गृह्णाति। स्वतः तिलाख पयोरूपमसलद्य। अतोऽविकारं इति।

कुशीलताग्राही ( दुष्ट स्वभाव वाला ) बनकर खलोपभोग ( दुष्टों के उपयोग ) की सामग्री मत बनो। कुशीलताग्राही ( कुशी नामक अस्त्र को ग्रहण करने वाला ) तैलिक ( तेली ) केवल खलोपयोग ( खली के ही उपयोग में आता ) है॥

[ तेली का उपयोग खल में ही होता है। अर्थात् तेल पेरने के ही काम में आता है॥ ]

आवर्जय गुणान् ॥

अकृत्यानि परिहार्य कृत्यमुपदिशन्नाह—आवर्जयेति ॥

[ इन त्रुटियों के छोड कर ] गुणो को अर्जित करो ॥

निर्गुणे धनुषीव सुवंश्येऽपिकस्याग्रहो भवति ॥

सुवंशत्वादेवास्माक लोकग्रहो भविष्यतीति न विमृश्य यत —निर्गुण इति ॥ गुणानामेवाग्रह आदरो जनस्य न केवल कुलीनानाम्। वेणुसभूतस्य धनुषोऽपि गुणेन ज्यया आ आभिमुख्येन बाणाकर्षणाय ग्रह आग्रह ॥

खूब सुन्दर वश ( बास ) से बने हुए धनुष मे यदि गुण ( प्रत्यचा ) न हो तो उसका कौन सम्मान करता है। उसी तरह सुन्दर वश ( कुल ) मे उत्पन्न हो कर भी निर्गुण ( गुण हीन ) होने पर तुम्हारा कौन सम्मान करेगा ॥

अभ्यस्य कला ॥

अभ्यस्येति ॥ कला विद्युत्तादिका तामभ्यभ्यस्य। अस्यैवादिको लुग्रहिप्रत्यय ॥

कला का अभ्यास करो ॥

निष्कलो वीणाध्वनिरिव प्रशस्यते न पुरुष ॥

निष्कल इति ॥ वीणाध्वनिरतु निष्कल कलयितुमशक्य ॥

वीणा की आवाज निष्कल ( सुदर स्वरहीन ) हो तो जैसे मनुष्य की प्रशसा का भाजन नही होती वैसे निष्कल ( वैदुष्य शौर्य आदि कलाओ से हीन ) व्यक्ति को लोग आदर नही देते ॥

त्यज जाड्यम् ॥

आवर्जितशौर्यादिगुणोऽभ्यस्तसमस्तकल पुरुषो य स्तब्ध स मरयते इत्याह—त्यजेति ॥

जडता छोडो ॥

जाड्ययोगेन हिमानी दूष्यतां याति ॥

जाड्येति ॥ हि यस्माज्जाड्ययोगेन मानी स्तब्ध पुमान्दूष्यत्वमाप्नोति। हिमानी हिमसहति। सापि जाड्यतोऽतिशैत्याद् दूष्येत्यर्थान्तरम् ॥

जडता के योग से निश्चित ( हि ) रूप से मानी ( अहकारी आदमी ) दूषित हो जाता है, जैसे जाड्य ( अत्यन्त शीतलता ) के योग से ( हि मानी ) हिमालय दूष्य ( अप्रशसनीय ) हो गया है ॥

मा स्म मुखरो भू ॥

वाचाल मत बनो ॥

आडम्बरित्याये किं चित्रमन्त्रिमुखरस्तर्हि स्वामिन्येनदपि निषिध्यन्नाह—मा म्नेति ॥ मुखरो वाचालोऽपि साधु ॥

कर्णाटचेटीमिव मुखरतां न शंसन्ति साधवः ॥

कर्णाटेति ॥ यस्मान्मुखरस्य भाव मुखरता वाचालतां साधवो न स्तुवन्ति । कर्णाटचेटी तु मुखे रत सुरत यस्या ॥

जैसे मुख + रता ( केवल मुख में ही सौन्दर्य रखने वाली ) कर्णाट देश की चेटियों की प्रशंसा साधु लोग नहीं करते वैसे मुखरता ( वाचालता ) की भी प्रशंसा साधु लोग नहीं करते ॥

भज माधुर्यम् ॥

स्वभाव से मधुर बनो ॥

धवलबलीवर्दपङ्क्तिरिव समाधुर्या वाणी मनो हरति ॥

धवलेति ॥ यस्माद्या वाणी मह माधुर्येण या मनोहारिणी । न च वाचालतायां वाचो माधुर्यम् । वृषश्रेणी तु समा अविषमा । धुर्या धुर्वाहिनी । धुरं वहतीत्यर्थे 'धुरो यड्ढकौ' इति यत् । अन॰ शाकटम् । अर्गी वा । अत्रापकीलिकामिव हरति वहतीत्यर्थः । वा अयथार्थे ॥

समा + धुर्या ( बराबर धुरा को ढोने वाली ) उजले बैलों की जोड़ी जैसे मन का हरण करती है वैसे समाधुर्या ( माधुर्य गुण विशिष्ट ) वाणी मन का हरण कर लेती है ॥

वर्जय वैपरीत्यम् ॥

वर्जयेति ॥ पूर्वोक्तादस्मदुपदेशाद्वैपरीत्यमन्यथाभावं त्यज ॥

विपरीत आचरण को छोड़ो ॥

विपरीतं शवमिव को न परिहरति ॥

यत —विपरीतेति ॥ विपरीताचारं को न परिहरति । शवं तु विभिः पक्षिभिः परीतं व्याप्तम् ॥

वि ( पक्षियों ) से + परीत ( घिरे हुए ) मृतक की तरह विपरीत ( प्रतिकूल ) आचरण करने वाले लोगों को कौन नहीं छोड़ देता ॥

कमलदीर्घाक्ष, शिक्षाक्रमेऽस्मिन्नपरमप्यभिधीयसे ॥

सुविनीतानामावर्जितगुणानामभ्यस्तकलानामपि प्रायः प्रभवन्ति व्यसनानि, रक्षितव्यप्रमादाश्च । व्यसनेषु स्त्रीष्वत्यासक्तिर्महद्व्यसनम् । द्रव्यशरीरयोः क्षयहेतुत्वात् । स्त्रीव्यसने हि राजयक्ष्मादय । तत स्त्रीव्यसन लक्ष्मीप्रमादं च परिहारयन्नाह—कमलेति ॥ रूपवान्भवान् सर्वस्त्रीप्रिय स्याद्तस्तासु विश्वासकरणं तव तत्कमलदलेक्षणामन्त्रणेनाभिहितम् ॥

कमल सदृश विशाल नेत्र वाले राजकुमार, इसी उपदेश परम्परा मे कुछ और आप से कहता हूँ ॥

**मा गा स्त्रिया. श्रियो वा विश्वासम् ॥**

मा गा इति ॥ स्तृणाति दुर्विनीता सती आत्मन परस्य वा गुणगण प्रच्छादयतीति स्त्री । यस्यां तु सतीधर्मयोगादस्यार्थस्या-यथात्वम् । तत्रावृणोति कल्याणपरम्पराभि स्वकुल पतिकुल चेत्यर्थं । तस्या दुर्विनीताया स्त्रिया सकाशात् विश्वास विश्रम्भ मा गा गासी । स्वलोभात्स्वभावाद्वा ता अनीत्वानुराग दर्शयन्ति । पर परिणामे विरुद्धा एवेति भाव । तथा विश्वसिम-सर्वत्र निक्षेपस्य योग्यऽयोग्य वा आस उपवेशन स्थापन विश्वास । त श्रिया लक्ष्म्या मा गा । धनार्थं हि पितर पुत्रेभ्य पुत्राश्च पितृभ्यो द्रुह्यन्तीति । तस्मात् एवाद्रोहण उपधाशुद्धेश मनुजाम्भो निक्षेपणीयेति भाव ॥

स्त्री और श्री ( लक्ष्मी ) पर विश्वास नही करना ॥

[ स्तृञ् आच्छादने धातु से स्त्री शब्द निष्पन्न हुआ है । जो अपने तथा दूसरे के गुणो को छिपाकर रक्खे, मोहकता शक्ति के कारण गुणी लोग भी जिसमे कर्तव्यच्युत हो जायँ, वह स्त्री पदार्थ है । कुलाङ्गना या पतिव्रता स्त्री के पक्ष मे इसी व्युत्पत्ति का भाव होगा—अपने गुणो और सौभाग्य से पतिकुल को जो आच्छादित कर ले वह स्त्री है पहले भाव वाली स्त्री पर अविश्वास करने के लिये मन्त्री ने उपदेश दिया है ।

श्री शब्द के साथ विश्वास शब्द का अर्थ भिन्न है । श्री को विश्व ( सब लोगो ) पर आस ( स्थापन ) नही करना । अर्थात् रुपये पैसे का देन लेन सबके साथ नही रखना चाहिये । जिसे ऋण आदि दिये जायँ उसकी योग्यता आदि पर विचार कर लिया जाय । अन्यथा यह एक ऐसी चीज है कि अत्यन्त आत्मीय लोग भी इसके लिये विरोध करने लगते है ॥ ]

**अधिकमलवसतिरनार्यसगता स्त्री श्रीश्च कं न प्रतारयति ॥**

किमिति स्त्रिया [illegible] विश्रम्भगायम् । श्रीश्च सर्वत्राप्यविश्वास्याह—अधीति । अधिका योऽसौ मल पाप तस्य वसतिरास्पदम् । तथा अनार्यैरसाधुभि कृत मैत्रीका स्त्री क पुरुष न वञ्चयति । सर्वमपि प्रलम्भयतीत्यर्थ । श्रीस्तु अधिकमलं पद्मे वसतिर्यस्या । कमल हि तरणस्थानम् । सा च तत्राधिवासावसन्नद्धा । तत पद्मासना श्री क पुरुष न प्रकर्षेण तारयति । निर्विशिष्टा । स नारी अनारी अमा दुर्गा । तथा श्री विष्णु । तत्सगता अमगता ॥

स्त्री पक्ष—अधिक मल ( पाप ) की वसति ( निवासस्थान ) तथा अनार्य ( दुष्टो ) के साथ सगत ( मैत्री स्थापित की हुई ) स्त्री किसको धोखा मे नहीं डाल देती।

श्रीपक्ष—अधिकमलवसति ( कमल पर निवास करने वाली ) अनारी ( अमानुषी देवी ) च ( विष्णु ) से समत ( युक्त ) लक्ष्मी किसका नहीं पतारित करती ॥

[ श्री पक्ष में अनार्य समता पद को "अनार + अ+समता" रूप में तोड़ना चाहिये। लक्ष्मी अनारी है। अर्थात् नर पत्नी नहीं है विष्णु देव की पत्नी है। अत देवी हैं। असमता हैं। अर्थात् अ ( विष्णु ) से समत संयुक्त हैं। लक्ष्मी का निवास कमल पर है। कमल पानी के साधारण झोंके से भी कम्पित होता रहता है। ऐसी स्थिति में उस पर रहने वाली लक्ष्मी का कम्पित होना या तरल्ति होना स्वाभाविक ही है। लक्ष्मी जब स्वयं तरल्ति है तो उस पर विश्वास करने वाला भी तरल्ति हो ही जायगा ॥ ]

या कालकूटद्वितीया नीरायिनापि नार्द्रहृदया भवति । स्वीकृतापि विरहेण कंसानलद्धनचापलेनोद्वेजयति ॥

या इति ॥ या स्त्री अकालेऽकस्मादुत्कूट कपट द्वितीयं यस्याः । तथा नीरोत्पत्ते कर्मेण निरोपित्तः प्रमादिनाप्यार्द्रहृदया स्निग्धहृदया न भवति । तथा विवाहेनोपार्जन मातलप्रभिवाहिक स्वीकृतापि या स्त्री क पुरुष धनेन लौल्येन नोद्वेजयति । श्रीपक्षे कालकूट विष द्वितीयमस्याः । तदनन्तरमुत्पन्नत्वात् । तथा नीरे जले उषिता । जलनिधेर्जातत्वात् । पर नार्द्रहृदया । किं तु निर्दयहृदया । दैवनानुभावा उक्षेन तद्धर्ष देवदत्त न नीमनिति भावः । तथा आप्तोऽपि वरप्रतिष्ठापी स्मृत-मात्राभ्युदिता पा हि पक्षी गरुडस्तेन वाहो वाहन यस्य । तथा कमलासुरस्य न चकृणमत्त्वमनम् । अर्थात्कंसस्य लक्ष्मन मारणात्मकम् । तथामून चापल यस्य । अर्थात् विष्णुस्तेन स्वीकृता । तथा उग्र नग्न वा शिवविष्णू उत्कृष्टौ वौ यस्य स उग्र ( ईश्वरो विष्णुश्च पत्र पत्रम ) सखिनत् जयति । अथवा या श्रं विष्णुना स्वीकृतापि मनो मेरे उषिता । कालकूटद्वितीयापि मनो धनस्य मेघस्य वारणेन विस्मितेन कमलेन जन मनापकारि वाहनमुद्वेजयति पीडयति अर्थान्तरमपि विवाहे गरुडवाहन नार्द्रहृदया न न भवति । भवन्त्येवेत्यर्थः । या किं कालकूटद्वितीया सा कथं सुहार्द्रहृदयेति विरोधोऽत्रान्तरापि तान्न्यै निबन्धने । आर्द्रहृदयोऽव स्नेहार्य । यदि वा विवाहो विष्णुनापि श्री स्वीकृता । तत पत्युर्दर्पम् । नरिरक्ति नितरां ॥

काल ( समयसमय ) पर कूट ( कपट ) ही को साथ बनाती है। ( अनुनय-विनय कर ) रागहीन कर देने पर भी जिसका हृदय नहीं पिघलता। अग्नि आदि को साक्षी देकर विवाह द्वारा स्वीकार करने पर भी लंघनचापल ( अव-हेलनापूर्ण चपलता ) से जो किसे नहीं व्यथित करती।

लक्ष्मी-पक्ष—कालकूट ( विष ) ही जिनका द्वितीय ( सहोदर बन्धु ) है, जो जल में रहती हुई भी स्निग्ध हृदय वाली नहीं है, वि ( गरुड ) को वाह

( वाहन ) बनाने वाले और ससार को सन्तप्त करने वाले कस रूप अनल ( अग्नि ) को ( मारने ) मे घनचापल ( अतिशय चपलता प्रदर्शित करने वाले ) विष्णु द्वारा अङ्गीकृत हो कर भी अन्य लोगो पर जाकर सुशोभित होती है ॥

[ लक्ष्मी की उत्पत्ति के ठीक बाद कालकूट ( विष घट ) की उत्पत्ति हुई थी। इसी लिये उसे कालकूटद्वितीया कहा गया है। समुद्र की पुत्री होने के कारण नीरोषिता (जल मे निवास करने वाली) कही गयी है। लक्ष्मी का पिता समुद्र है। अत जलीय परमाणुओ का बाहुल्य उसमे स्वाभाविक है। फिर भी उसका हृदय आर्द्र नहीं है। लक्ष्मी किसी का परिग्रह कभी कभी कर लेती है और निष्ठुरतापूर्वक कभी भी उस व्यक्ति को छोड देती है। यहां विष्णु को विवाह कहा गया है, क्यो कि वि ( गरुड पक्षी ) उनका वाह ( वाहन ) है।

आपि शब्द को वि का विशेषण बनाया जा सकता है। यथेच्छ क्वचिदपि आप्तुं प्राप्तु गन्तु शीलमस्य इति आपी, आपी असौ च वि आपिवि आपिवि वाहो वाहन यस्य असौ आपि विवाह तेन आपिविवाहेन। अर्थात् स्मरण मात्र करने से जो कहीं पहुँच जाय ऐसे गरुड रूप वाहन वाले भगवान् विष्णु द्वारा लक्ष्मी गृहीत हैं।

उद्वेजयति—उद्वे+जयति ये दो पद हैं। उश्च अश्च इस इतरेतर योग द्वन्द्व का रूप होगा वो। इको यण चि से उ का व यण हो जायगा। व के द्विवचन का रूप होगा वो। वो उत्कृष्टो यस्य इस विग्रह मे उद्व रूप बनेगा। उद्व शब्द के सप्तमी का एकवचन होगा उद्वे। उ का अर्थ शिव है और अ का विष्णु। अर्थात् शिव और विष्णु जिनके उत्कृष्ट हो। शिव और विष्णु जिन पर प्रसन्न हों, वह हुआ उद्व। उद्व पर लक्ष्मी प्रसन्न रहती है।

**अस्या कारणेऽभ्रान्त समस्तोमन्दराग सदालोक, लोलनेनी-कृता घृष्टा भुजङ्गमण्डली, प्राप्तो जलधौ राजकुमारपराभवम् ॥**

अस्या इति ॥ अस्या श्रिया हेतोर्लोक समस्तोऽप्यमन्दरागो दृढानुराग सन्सदा भ्रान्त। तथा भुजङ्गाना विटाना मण्डली चपलाचीकृता सती घृष्टा विप्रलब्धा। तथा जडा धीरस्येति जडधीर्जडबुद्धिः। राज्ञ सकाशात् कुत्सितो योऽसौ मार पञ्चविधवादिबन्धनेन विशेष्यहिंसा स एव पराभवस्त प्राप्त। अथवा राज्ञस्तथा कुत्सिताच्च मारात् स्मरात्पराभव प्राप्नोति कुबुद्धि। "अपि भ्राता सुतोऽर्घ्यो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा। नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्धि चलित स्वकात्" इति स्मार्ता। तत स्वपितुरपि राज्ञ सकाशाद्राजकुमारस्याऽस्याग्रहन परिभ्रंशो युज्यत एव। पक्षे अस्या श्रियो निमित्ते। मन्दरोऽद्य पर्वत। अभ्रमाकाशमन्तो ऽस्येत्यभ्रान्तो व्योमावसान। सन् शोभन आलोकोऽस्यति सदालोक। सम्य-गस्त: क्षिप्त इत्यर्थ। समुद्रादस्यते च। यद्वा सम्यगस्त सत्सु भ्रान्त सुधोऽ वभ्रान्त ( अर्थान्तरे भद्रित्वेन न दोष )। तथा अलोलनेत्र लोलनेत्रं कृता

भुजंगमण्डली। नेत्र मन्थानरज्जुः। तथा जलधिरब्धिः पराभवं मन्थनलक्षणं प्राप्त। राजकुमारेत्यामन्त्रणे॥

इसी स्त्री पदार्थ के कारण सभी लोग अमन्द राग ( गाढ़ अनुराग ) से फँसकर सर्वदा भ्रान्ति में पड़े रहते हैं। चंचल नेत्र (स्वभाव ) वाली भुजग-मण्डली ( धूर्त्त परिषद् ) हमेशा धोखे में पड़ा करती है। जड़ बुद्धि का आदमी कुत्सित स्वभाव वाले राजा कामदेव से पराजय प्राप्त करता है।

[ स्त्रीपक्ष म अर्थ करते समय भ्रान्त शब्द के पूर्व खण्डाकार नहीं रखना चाहिए। मन्द राग के पूर्व खण्डाकार समझना चाहिए। जलधी की जगह जडधी समझना चाहिये। डलयोरभेदात् के नियम से ड और ल में अभेद माना गया है। राजकुमार शब्द में राज और कु दोनों ही अंश "मार" शब्द का विशेषण बन कर आये हैं। ]।

श्री-पक्ष में—इस लक्ष्मी के लिए अभ्र ( आकाश ) के अन्त तक फैला हुआ सदालोक ( सुन्दर कान्ति वाला ) मंदराचल समस्त ( सम्यक् प्रकार से समुद्र के मथन के अवसर पर समुद्र में डुबाया-फेंका गया )। अचंचल आँख वाली भुजगमण्डली ( सर्प-मंडली ) भी चचल आख वाली बना दी गयी। और रगड़ी गई। हे राजकुमार! इसी के लिए जलधि ने पराभव प्राप्त किया॥ १०४॥

[ इस पक्ष में अभ्र + भ्रन्त विच्छेद किया गया है। समस्त सम् उपसर्गक असु क्षेपणे धातु से क्त प्रत्यय करने पर इसका अर्थ हुआ फेंका हुआ। अर्थात् लक्ष्मी के कारण इतनी सुन्दर कान्ति का पर्वत फेंका गया। मन्दराग पद से मन्दर + अग विच्छेद कर मदराचल अर्थ निकाला गया। लोलनेत्रीकृता शब्द दो अर्थों की ओर सकेत करता है। वासुकि आदि सर्पों को मथन-रज्जु बनाकर समुद्र मथा गया था। पर्वत की रगड़ खाकर दुःखी सर्पों की आँखें नाच उठी थीं। नेत्र शब्द का 'मथने वाली रस्सी' अर्थ भी होता है। अर्थात् जल्दी जल्दी खींची जाने वाली मथन रस्सी की तरह सर्पमण्डली रगड़ दी गई। सांपों की एक ही हड्डी होती है। उन्हें यदि एक दो बार भी रगड़ दिया जाय तो वे निर्दन्त हो जाते हैं। इस लक्ष्मी के निमित्त बिचारे सर्प बहुत दुःख पाये। जलधी शब्द का इकार दीर्घ रूप में इस लिए दीखता है कि 'ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' से यहाँ दीर्घ हो गया है॥

धनयावष्टब्धः को न गुरुवारणयोग्यो भवति, को न वाजिपृष्ठमारोहति न कर्णावबन्धनानः प्रकटयति, कः कण्ठे हारावमोचनं न कुरुते, को न काञ्चनशृङ्खलामनुभवति। कुरङ्ग इवान्धीभूत को वागुराबन्धनं करोति, कः कार्मुकनिर्मुक्तशिलीमुख इव न वैलक्ष्यमागच्छति॥

अनयेति ॥ अनया श्रिया आश्रित कः पुरुषो गुरूणां वारणे निषेधे। वा अथवार्थे। आजि कलह वञ्चनाया वञ्चनात् (पञ्चम्यास्तसिल) प्रतारणात्। क सुख वञ्चनाकृत सुखमित्यर्थं। कणन् शब्दायमान। को न प्रकटयति। कण्ठे गलात् हा इति य आरावस्तस्य मोचनम्। काचनेति काचिदर्थे। शृङ्खलां बन्धनम्। गुरौ गुरुविषये अञ्चना पूजा। कुरङ्गपक्षे वागुराया मृगजालिकाया वञ्चना। पराभवादे प्रागवस्थाया विसदृशो लक्ष्यन इति विलक्ष। तस्य भावो वैलक्ष्यम्। धनुर्मुक्तबाणस्तु वै स्फुट लक्ष वेध्यमायाति। पक्षे अनया लक्ष्म्या। गुरुर्महान् वारणो गज। वाजिपृष्ठ तुरङ्गपृष्ठम्। ककण हस्तसूत्रम्। नवमभिनवम्। च समुच्चये। नेति निषेधे। अतोऽस्या इत्यर्थ। हारस्य मुक्तासरस्य। अवमोचन बन्धनम्। काञ्चनस्य शृङ्खलामाभरणविशेषम्। अगौरवार्हं नीचं। अन्धीभूतो निर्विवेक। अपि तु सविवेक सन्गुरूनेव पूजयति। वै स्फुटम्। लक्ष शतसहस्रं नाप्नोति ॥

इससे घिरा हुआ कौन आदमी गुरुओ के निषेध का पात्र नही बनता अथवा कौन कलह की भूमिका मे नही चढ जाता, कौन धूर्तता से बोलता हुआ सुख प्रदर्शित नही करता। कौन कण्ठ से 'हा' आराव (आवाज) नही निकालता। कौन (किसी के प्रेम बधन मे पडकर) किसी तरह की श्रृखला का अनुभव नही करता। कौन गुरु (विशाल) (वासना) का पूजक नही बन जाता। धनुष मे निकला हुआ बाण जैसे वै+लक्ष (निश्चित रूप से लक्ष) पर पहुँचता है वैसे (स्त्रियो मे रागान्वित होकर कौन नही वैलक्ष (हतश्री) बन जाता।

मृगपक्ष मे—मृग भी अन्धीभूत (भय से विह्वल) होकर वागुरा) जाल के तन्तुओ) से मुक्ति पाने की चेष्टा करता है।

लक्ष्मीपक्ष मे—लक्ष्मी मे घिरा हुआ कौन आदमी महान् हाथी और घोडो की पीठ पर नही बैठता अत (लक्ष्मी की कृपा से) नवीन कङ्कण (सोने से बना हाथ का वलय) कौन नही पहनता, कौन आदमी अगुरु का पूजन करता है (अर्थात् लक्ष्मी का कृपापात्र गुरु (बडे) की ही पूजा करता है। कौन आदमी है (निश्चित रूप से) लाख रुपये नही प्राप्त करता।

[स्त्री पक्ष मे गुरु का अर्थ आचार्य तथा वारण का अर्थ निवारण है। वाजि शब्द मे वा+आजि विच्छेद कर कलह अर्थ किया जाता है। कङ्कणप्र-वञ्चनात—(धूर्तता से) कणन् (बोलता हुआ) क (सुख को) कौन नहीं प्रकट करता। हारावमोचनम्—हा (दुःखव्यञ्जक) आराव (ध्वनि) कौन नही छोडता। काचनशृखला—(किसी स्त्री के स्नेहविषयक बधन) वागुरा वञ्चन—वा+गुरो+अञ्चन—किसी स्त्री विषयक विशिष्ट वासना मे ही पूज्य भाव रखना। मृगपक्ष मे वागुरावञ्चन—वागुरा (जालतन्तु) से मुक्ति पाने की चेष्टा। वैलक्ष—कान्तिहीनता।

लक्ष्मी पक्ष—मुखारूढ विशाल हाथी, वाजिपृष्ठ—घोड़े की पीठ, करना नवत्वनात —आत -श्रा (लक्ष्मी) तद्वित् (लक्ष्मी की कृपा प्राप्त कर लेने से) मद करना च क न प्रकटयति—नवीन मद को कौन नहीं प्रकट करता। कञ्चन शृङ्खला—स्वर्णमयी शृङ्खला साथ पुष्प। को वा अगुरो कञ्चन कराति कौन आदमी अगुरु (अश्रेष्ठ) व्यक्ति की पूजा करता है अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्ति की ही पूजा करता है। वैमल—निश्चित रूप से लक्ष्य पर पहुँचता है॥

यस्य न पराभूतिर्भवति। यस्य नापूर्वं यशः समुच्छलति॥

यस्येति स्त्रीजनस्य पराभूतिः पराभवः। प्रतिपक्षवाची ५. पूर्वो यस्यास्तत् [illegible] यशोऽयश इत्यर्थः। पक्षे यशःस्पृहा भूतिरैश्वर्यं अपूर्वमुत्कृष्ट यश॥

स्त्री पक्ष—स्त्री के कारण जिसका पराजय नहीं होता। जिसका अपयश नहीं मिलता।

श्री पक्ष—जिसका परा (उत्कृष्ट) कोटि का ऐश्वर्य (भूति) नहीं मिलता। जिसका अपूर्व यश नहीं फैलता।

स्त्री पक्ष—नापूर्वयश—यश के पूर्व में निषेध ही है, अर्थात् यश नहीं है। जिस (दुर्विनीता) स्त्री के प्रेमी का अयश नहीं फैलता॥

किमन्योऽप्यस्याः परमुच्यते॥

इससे अधिक और क्या कहूँ॥

यादवमिव शार्दूलमिव क्रूरं महत्तरं भयान्नोपसर्पति। सुनयना- र्हेरं सिंहमिव बलभद्रं दृष्ट्वा प्रपलायते। न वसुदेवेऽपि चक्षु पातयति॥

यस्याश्चञ्चला लैशिन्या बद्धलाङ्गूलपराक्रमवाद्दीर्घमभिभूय समपि पर परिगामं यत्नात् [illegible] दलनुखाय प्रीणाति दृशमिव शालिनम्। अथवा दुर्मानानि इव कनकिङ्किणिनूपुरखनत्क्षमका व प्रिय कातरा शूर विक्रान्त महत्तरं वृद्धं सभाव भयात् व्रजति। अत्र वार्धक भय च शूरत्व हेतु। शार्दूल पक्ष इव काननम्। सुनयान नयवनप्रधान सहनायालानन्त्रन्। भाव ताद्दे, बर निपद्द, बलन गात्र वा भद्र, इष्टवान प्रपश्यति। सिंहमिव च। सिंहस्तु न द्रष्टव्य वर सिंहनादस्य प्रमाणत्वात्। तथा वसुदे धनप्रदे। नत्र रत्नकेऽपि चक्षुर्नयनं न पातयति। मनुजमपि नालोकत इत्यर्थः। यदि वा वन्नऽवरपतिति वदन्ति चक्षुर्विक्षेपात्। पक्षे यादवा यदुवंश्यास्तथा प्रिय शूरनामाद्युग्रसेन भयात् नित्य निन्दनलम्भनात् नाप्सर्पति न तत्समीपे व्रजति। एतेन अक्रूरो बभ्रु न स्पृश्यत इति स्थितिरुक्ता। शोभने नयने यस्या सा देवर यदुनामान कृष्णस्य गदाग्रजत्वात्। बलभद्रमपि ज्येष्ठपत्नीत्वेन प्रतीत वाच्य प्रकर्षेण पलायते स्पर्श भयात्। तथा वसुदेव कृष्णस्य पिता॥

या+दव ( जो क्लेश जनक ) वीर तथा महान् ( वृद्ध ) प्रिय के पास नहीं जाती है । जैसे दवप्रिय ( जगलप्रिय ) विशाल एव वीर शार्दूल के पास कोई डर मे नही जाता ॥

[ प्रिय के पास स्त्री के न जाने मे उसकी बुढापा कारण है तथा उससे डरने मे उसकी वीरता कारण है । स्त्रीपक्ष मे या अलग पद है तथा दवप्रिय अलग पद है । दवप्रिय का अर्थ क्लेश देने वाला प्रिय है । दव का दूसरा अर्थ जगल है । शार्दूल पक्ष मे—दवप्रिय का अर्थ अरण्यप्रिय है । ]

हे सुनय ! ( अच्छी नीति के जानकार ) नाद ( बोलने ) मे श्रेष्ठ शक्ति के कारण कल्याणकर व्यक्ति को भी देखकर भाग जाती है जैसे पूर्ण बलिष्ठ तथा गभीर गर्जन करने वाले सिंह को देखकर लोग भाग जाते है ।

वसुद (सपत्ति देने वाले) अव (रक्षक) पर भी दृष्टि नहीं गिराती । वसुदेवेऽपि इसमे वेपि अश को निकाल कर चक्षु का विशेषण बनाते है । वेपि का अर्थ हुआ 'अधिक कपनशील । )

श्री पक्ष—लक्ष्मी यदुकुल मे उत्पन्न व्यक्तियो के प्रिय शूर नाम के महान् ( यदुराज ) के पास भय से नही जाती है । वह सुनयना देवर ( कृष्ण के छोटे भाई गद ) तथा बडे भाई बलभद्र को भी देखकर हट जाती है । वसुदेव ( कृष्ण-पिता ) पर भी दृष्टि नही गिराती ।

शूर और वसुदेव लक्ष्मी के श्वशुर कोटि मे आते हैं इसलिए उनका स्पर्श करना परपरा विरुद्ध है । यही बात बलभद्र के लिए भी कही जा सकती है । देवर मे भी भागने का तात्पर्य वासनात्मक रूप से न देखना ही है ॥

केवलमनवरतशिक्षितवैदग्ध्यकलापराधात्मिकात्रपापरा परिहृत्य गुणिनो गुरुन्परपुरुषे मायाविनि कृतकेशिवधे धृतमन्दरागे रागं बध्नाति ॥

यदीदृशो परमोपकारिणि न प्रेमवती स्त्री, तदान्यत्र कस्मिन्नपि गुणिनि प्रेमबन्धं विधास्यतीति निरस्यन्नाह—केवलेति । नूयते इति नवः प्रशस्य न नवमनवमप्रशस्य रत यस्या । केवल बीजक्षयहेतुत्वात् । नहि तस्या सतति । रत च 'सततस्या फलम् । तथा विशेषेण दग्धो विदग्ध । तस्य भावो वैदग्ध्य सतापस्तस्य कला वैदग्ध्यकला शिक्षिता यया । पश्चात्कर्मधारय । अपराध एवात्मा स्वरूपं यस्या' । तथा न त्रायते नरकाद् अत्र तथाभूत यत्पापं कर्मण्युपसर्ग राति ददातीत्यत्रपापरा । गुरून् पित्रादीन् गुणिन सगुणांश्च प्राद्यपुरुषान् परिहृत्य परस्या पुरुषेऽन्यनारी कान्ते मायाविनि कापटिके कृतके कृत्रिमे अशिवमकल्याण दधातीत्यशिवधे मन्द-रागे क्षणप्रेमण्यनुरज्यते । परपुरुष इत्यत्र सर्वनामत्वाद् वृत्तौ पूर्वपदस्य पुंवत्त्वम् । पक्षे अनवरतं शश्वच्छिक्षिते वैदग्ध्यकलापो दक्षतातिशयो यया सा चासौ राधा-

त्मिका। राधा च कृष्णपत्नी। सापि श्रिया एव भेद। त्रपापरा सलज्जा सती। गुणिनो गुरून् शूरादीन् यदूनामादिपुरुषान् परिहृत्य परपुरुषे मुरारौ रागं प्रीतिं बध्नाति। किम्भूते माया त्रिलोकीनिर्माणलक्षणा वामननृसिंहमहिलात्वादिलक्षणा वा विद्यते यस्य। तथा कृतः केशिनोऽश्वरूपस्य दैत्यस्य वधो येन। तथा धृतो मन्दरनामाऽगोऽद्रिर्येन॥

केवल अनघ (अप्रशंसनीय) रत (प्रेम वाली) होती है। वैदग्ध्य कला (पीड़ा देने की ही कला) पढ़ी रहती हैं। अपराधात्मिका (अपराध की प्रतिमूर्ति) होती है। अत्रपापरा (जिस पाप से अपनी रक्षा न की जा सके ऐसे पापों को उपस्थित कर देने वाली) होती हैं। गुरुजनों (पिता आदि पूज्य जनों) तथा गुणी पुरुषों को छोड़कर मायावी,—कृत्रिम अहितवश (अकल्याणकर पक्ष के पोषक तथा निम्न कोटि के प्रेम वाले लोगों के साथ प्रेम करती है।

श्रीपक्ष—हमेशा जिसने केवल वैदग्ध्य कलाप (ज्ञान की विविधता) की ही शिक्षा ली। राधात्मिका (कृष्णपत्नी होने के कारण लक्ष्मी का ही एक रूप) है। त्रपापरा (लज्जाशीला) है। गुणवान् गुरु (शूर आदि श्वशुर कोटि के पुरुषों) के स्पर्श आदि को छोड़कर पर पुरुष (उत्कृष्ट कोटि के पुरुष, पुरुषोत्तम) जिन्होंने मंदर नामक अग (पर्वत) का (धारण) किया था—से प्रेम करती है।

तदायुष्मन्नतिगम्भीरगुहा गिरीन्द्रभूरिव हृदयहराश्रेयोऽर्थिनां शरणं न स्त्री श्रीर्वा॥

एवमुक्तरूपाणामनार्द्रहृदयत्वादिदोषान्वितानां स्त्रीणां विश्वासं विश्रम्भं श्रीणां च विश्वासं यत्र तत्र निक्षिप्य सर्वथा परिहरन्सर्वोऽप्यायुष्मान्भवतीति संबोधनेनाभिहितम्। सद्भिरुपसंहारे। श्रेयोऽर्थिनां स्त्री न रक्षित्री। कीदृशी। हृदयं चेतो हरति मोहकारिणी। एतेन क्षयहेतुत्वमुक्तम्। तथा अतिगम्भीरातिशयेन विलीनेति गम्भीरा कुटिलस्वभावत्वात्। अथवा गम्भीरपङ्केतुल्यत्वात्। दुष्टाशयत्वात्। तथा न गौर्वाग्यस्य सोऽगुरुस्तं जहाति अगुहा। य एव मायामयं वक्तुं वेत्ति क्षणमपि तमेव श्रयतीत्यर्थः। अथवा गौर्धनं वर्णः। तच्चोपलक्षणम्। तेन निर्धनं विहाय धनिनमेवाश्रयतीति। यदि वा नतौ नम्रतायां गम्भीरा गौर्वाग्यस्य तमपि जहातीत्यर्थः। न च मदादव्याप्तानि कुत्रापि वक्तुं प्रभविष्णुः। सर्वोन्नतत्वात्। यदि वा अतिशयेनातिशयं श्रियं राति ददातीति श्रीरा गौर्यस्य तमतिगम्भीरं जहाति। हिमाचलभूरपि अतिगम्भीरा गुहा पाषाणसन्धयो यस्याम्। स्त्रीश्च श्रेयोऽर्थिना न शरण्यम्। किन्तु श्रेयोऽर्थिनाम्। कीदृशी हृदयहारिणी तथाऽस्य शुभकर्म हरति। तस्मा-त्सा शुभकर्मणो मुक्तत्वात्। यदुक्तं नैषधे—'पूर्वजन्मविभवव्ययसृष्टा' संपदेऽस्य विपदश्च विसृष्टा" इति। गौरी अपि हृदये हरो यस्या। तथा नतिगम्भीरः प्रणामप्रगल्भो गुहः कार्त्तिकेयो यस्याः। तत्पुत्रत्वात्॥

अत हे आयुष्मन् ! श्रेयोऽर्थी ( क याण चाहने वाले ) लोगो का शरण स्त्री कभी नही होती। वह हृदयहरा मन को चुरा लेती है। अतिगम + भी ( अत्य त भयकर ) होती है।

अगुहा—( जिसके पास चाटुकारितापूण वाणी नही है उसे छोड देती ) है।

( अगुहा—गौ का अर्थ वाणी है ) जिसके पास गो नहीं है उसे बहुव्रीहि समास के आधार पर अगु कहते है। ओहाक त्यागे धातु के आधार पर अगु को छोडने वाले को अगुहा कहा गया है। अर्थात् जो छद्मपूण कि तु मधुर मधुर बोलता है उसी के वश मे स्त्री रहती है। जो ऐसा करना नही जानता उसको छोड देती है। अर्थात् अति गभीर भय को जो देता है ( राति ) वह अतिगभीर गु हुआ और उसे छोडने वाली को अति गभीर गुहा कहेगे। गिरी द्र भू ( हिमालय पवत की भूमि को भी अतिगभीरगुहा कहा जा सकता है, क्योकि उसकी भी गुफाए बडी विशाल विशाल है। ]

श्रीपक्ष म—अश्रेयोऽर्थी अकल्याण चाहने वाले ) लोगो का शरण लक्ष्मी नहीं बनती। हृदयहरा—हृदय की आसक्तिरू वृत्तियो का हरण कर शाश्वत मुक्ति देने वाली तथा अति गभीर गु ( अत्य त गभीर आशय वाली है )

पार्वतीपक्ष म— गिरी द्र भू ( हिमालय उनका उत्पत्ति स्थान है ) अपने हृदय मे हर ( शिव ) को रक्खी हुई है। तथा उनके पुत्र गुह ( कार्तिकेय ) नति गभीर ( प्रणाम करने मे पूर्ण प्रवीण ) है ॥

शृङ्गारप्रधानास्तास्ता, गाव इव विचारिता सरसा भवन्ति न स्त्रिय ॥

अगुहा दु खिव मवथा परिहार्या साध्या अन्यस्य तविश्वासप्रतिषेधद्वारेण सेवन विषया ग्राने सुत वा त परना वशी। पुरा हि फलमथस्य तन्निरोधे वृथा श्रिय इति पूवरविकथितनुगासुकोऽ यार्माक न निषेधय नाह—शृ...ाराल। रूपणिस्वरचोभिरास्मात्तैरसौ विमनस्को भविष्यतीति चित्त धारयन् कृ य चोप दिशन् नानेति कामलमाम श्रयति। शृङ्गारो रस प्रधान यास्। तथा विचारिता विचरिता गावो गिर एव सरस्या प्रीतिदनवा भवन्ति। अथवा गावो विशेषेण चारिता दृत्ताग्वाद्वसनरवजा। तथा शृङ्गारसमय प्रधान यासु तास्तथोक्ता। तथा सरसा सदुग्धा। स्त्रियस्तु शृङ्गारो मण्डन प्रघ न यासाम्। विचारिता स्तृणं ति दु शीला मयो गुणगण छादय तीति तत्त्वता विमृष्टा सत्यो न सरसा। किंतु वैराग्यहेतव ॥

हे तात ! स्त्रियों में शृङ्गार की प्रधानता रहती है। विचार देखन पर वे सरस नहीं होतीं। उनके ऊपर नन्वन विचार किया जाय तो वैराग्य ही उत्पन्न हो जाता।)

गाएम म शृङ्ग का पर। अग्रभाग ) उसम प्रधान होता है। विशेष रूप म ( मन्य घाओं का वरान पर ही सरस होता है

सहैवा कन्दर्पकण्डूजयगरिनादमाजापदारिण्या नात्यन्तविश्वास योग्या ललनया विश्रम्भं ते यामि सप्त तर तुनन्ति हिनय ॥

अन्य एव नसकनादिनीणना स्त्रियो नाम विश्रम्भार्हा । किमङ्गार्थं । मत्र न्यस —कडपचाद। पवया हि च नर मिया विरानवासमिव कुर्वीत। तत् मान्ये ऽपि मायगत निश्चलमौ । तथा च चाण्डा—अन्तर्गोहगत क्वचित् प्रीतिमुद्धा दृष्टा दरम्य। अपरिमुद्धा न कान्त्याभात्त्वन् । अयत हि—स्व गृहगता आना सम्यक् अदान मातु नव्यान्तगतस्य पत्र कान्मय इत्यादि॥

य स्त्रियां कामान्ध पुरुष को विदारकर मनोविनोद कराने में ही उपकारी है। उनपर सर्वथा विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि विश्वास किये हुए आदमी को स्त्रियाँ मृत ) बना देती हैं।

स्त्रियोऽपि दानोपभोगाभ्यामुपयोग नयेत् न लाभ कुर्यात्। रट लोभानुगत किरणकलापोऽपि सनापयति जनम्।

श्रीगा हु पल्लकडूविनादमात्रफल सम्भिमान समान श्राणा फल्नाह—श्रियोऽपि त्यज़ हाम दूरान्नाद—श्रहिति। ए मनानुगत। कर्षीयस्तु बहुल प्राय। यथा भानु रवि सभा मानवीय स्पर्श ॥

स्त्रियां भी अगर हों तो दान और उपभोग के मार्ग में उनका उपयोग करना चाहिए। उसम लाभ नहीं करना चाहिए। बहुत लाभ में पड़ा हुआ आदमी लोगों को सन्तप्त करता है जैसे बहुत ( पचान्त ) भानुगत ( सूर्यकिरणा ) किरण लोगों को सन्तप्त करती हैं॥

तत पुन प्राप्स्यसि नवियानिनकुलकमलपराजहसा दात्रश्रियम् ॥ अनन्तरन कृतयशोदानन्देहि नारायण इव त्वयि चिर रम्यते खल्विय लक्ष्मी ॥

यदि ए भवता तथा मनन्यत चलस्नारकमिचाराङ्कथ्य इ—अत इत। अत एव इमात्रगचिनुमारयसि। चलानुरागयमता हि सम्पद। अथवा एतस्मात्पूर्वोक्तादस्मदुपदेशात। प्राप्य च श्रिय निरन्तर उत यन पन तहान इति धर्मादपात्रेषु श्रिय नियुञ्जानि भाव। खलु निश्चिनमिव रक्ष्मा पात्रेषु व्ययकल्पनि त्वयि विष्णाविव बहुकाल सहर्षं स्यास्यति। विष्णौ कीदृशि। कृतो यशोदायाया जनन्या आनन्दो येन तस्मिन्। हि स्फुटम ॥

अत हे पुत्र ! शीघ्र ही अपने कुलकमल की राजहंसी राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करोगे। हमेशा ऐसा दान करो जिसमे यश उत्पन्न हो। यशोदा को आनंदित करने वाले नारायण की तरह तुम में यह राजलक्ष्मी चिरकाल तक रमण करती रहेगी। पहले उपदेश दिया गया है कि संपत्ति का उपयोग उचित स्थान या पात्र मे करना चाहिए। कृतयशोदानंदेहि—मे सभङ्गश्लेष के कारण चमत्कार है। कर दिया है यश जिस दान ने ऐसे—कृतयशोदान को दो। नारायण का विशेषण बनाने के लिए—कर दिया है यशोदा के आनंद को जिसने उसमे—कृतयशोदानन्दे—सप्तमी का एक वचन है। हि पृथक् पद रहेगा जो निश्चय अर्थ का बोधक होगा॥

पाहि प्रजा.॥ प्रजापो ब्राह्मण इव क्षत्रियोऽपि न लिप्यते पातकैः॥

बलादपि प्रजाभ्यो वित्तमादाय पात्रेषु मयोपकरणीयमिति मा कृथा हृदि तदाह—पाहीति॥ पालय प्रजा यस्मात्प्रजा पाति यः क्षत्रियः स न पापी। ब्राह्मणस्तु प्रकृष्टो जपो यस्य स प्रजापः। जपनं जाप॥

प्रजाप ( प्रकृष्ट जप करने वाला ) ब्राह्मण जैसे पापो से लिप्त नही होता वैसे प्रजाप ( प्रजा का पालन करने वाला ) क्षत्रिय भी पापो से लिप्त नहीं होता।

मा च वृद्धिं प्राप्य गुणेषु द्वेषं कार्षीः। व्याकरणे हि वृद्धिर्गुणं बाधते, न सत्पुरुषेषु॥

मा चेति॥ वृद्धिं राज्यादिसमृद्धिम। गुणेषु पाण्डित्यादिषु। हि यस्माद्गुणबाधिका वृद्धिरिति वैयाकरणसमयः॥

वृद्धि ( राज्यसमृद्धि ) प्राप्त कर गुणवान् व्यक्तियो से द्वेष मत करना। व्याकरण शास्त्र मे ही वृद्धि गुण को बाधती है। किसी सज्जन पुरुष की वृद्धि ( प्रगति ) गुण से विद्रोह नहीं करती।

[व्याकरण शास्त्र के अनुसार अपवाद शास्त्र उत्सर्ग शास्त्र को बाध लेता है। गुण शास्त्र उत्सर्ग शास्त्र है और वृद्धि शास्त्र अपवाद शास्त्र है। इसीलिए गुण को वृद्धि बाध लेती है। व्याकरण शास्त्र मे ही गुण और वृद्धि का बाध्य-बाधकभाव चलता है। आप जैसे राजकुमार की वृद्धि ( प्रगति ) किसी गुण या गुणी की बाधिका न बने।]

वत्स, मा चैवं चेतसि कृथाश्छान्दसोऽयम्। छान्दसश्च गुरुर्वक्रस्वभाव एव भवति तत्किमनेनेति। यस्माच्चतुरानन्दिपदः पुण्यश्लोको भवान्। अतोऽङ्गभावं यान्ति ते वक्रोक्तयोऽपि गुरवः।

सरलतया लघवोऽप्यन्तरङ्गा भवन्ति । किन्तु ते ह्यवसाने कुटिलतामपि दर्शयन्ति ॥

इदानीं निधानमिषाय्याननोपदिष्टे आदरपरं कुमारं कुर्वन्मृदुवचोभिः श्लोकमा-हवन्नाह—वक्रेत्यादि ॥ छन्दो वेदः छन्दःशास्त्रं च । गुरवस्तत्त्वोपदेष्टा छन्दोऽस्त्वगुद्धि-नीद आकारादिश्च । यस्मात्कारणाद्भवान्पुण्यश्लोकः पवित्रयशाः । तथा चतुरानां-नन्दयति तथाविधं पदं राज्यलक्षणं यस्य । अतो वक्रवचसोऽपि गुरवः । तेन च अङ्ग-मव भावं भावना यान्ति । त्वयि भाविनात्मानो भवन्तीत्यर्थः । अङ्गेति । कोमला-मन्त्रणे । सरलतया एकमार्गतया लघवो लघुवृत्ता अप्यन्तरङ्गाश्चेतोभिप्रेताः स्युः । परं तेऽन्ते कौटिल्यमपि प्रकाशयन्ति । अथ च पुण्यः श्रेयान् श्लोकः पद्यम् । तथा चत्वारि आनन्दीनि पदानि पादा यस्य ते प्रसिद्धा गुरवो वक्राकृतयोऽङ्गभावमव-यवत्वं यान्ति । श्लोकस्येति शेषः । सरलतया ऋजुतया लघवो लेखाकृतयोऽन्तरङ्गा-न्यपगताः स्युः । परमन्ते पादान्ते कुटिला अपि स्युः । 'वा पादान्ते त्वसौ वक्रः' इति वचनात् ॥

वत्स, यह न सोचना कि यह सब छन्द (गपोड या कपट की उक्तियां) हैं । छान्दस (वेदवेत्ता एवं कल्पनाप्रवीण) गुरु टेढ़े स्वभाव का (कुछ बोलने वाला) होता है, लेकिन उससे कोई हानि नहीं होती । उनकी वक्रता पर आपको ध्यान नहीं देना चाहिये, क्योंकि आप पुण्यश्लोक (पवित्र यश वाले) हैं तथा चतुर लोगों को आनन्द देनेवाला राज्य पद आपको प्राप्त है । अत टेढ़े बोलने वाले भी गुरुजन (अपनी चतुरता के कारण) आपके अङ्गभाव (आत्मीयता) को प्राप्त कर लेंगे । सरल (सीधे स्वभाव के) हो जाने पर लघु (छोटी बुद्धि या छोटे स्वभाव के) लोग भी अन्तरङ्ग (आत्मीय) हो जाते हैं, किन्तु अन्त में वे अपनी कुटिलता दिखाने ही लगते हैं ।

[ छन्दःशास्त्रपक्ष—इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों को बताने वाले छन्दः शास्त्र में गुरु (दीर्घवर्ण) वक्र स्वभाव (टेढ़ी आकृति (S) के होते हैं । छन्दः शास्त्र में गुरुवर्ण का चिह्न (S) टेढ़ा और लघुवर्ण का चिह्न सीधा (।) होता है । लेकिन टेढ़ा होने से क्या होता है ? वक्र आकृति वाले भी गुरु वर्ण चतुरानन्दिपद (आनन्द देने वाले चार चरणों से युक्त) पवित्र श्लोक के अङ्ग भाव (अवयवत्व) को तो प्राप्त करते ही हैं । अर्थात् गुरुवर्णों को भी तो श्लोक के विभिन्न चरणों में स्थान मिलता ही है । लघु वर्ण सीधे (।) लिखे जाते हैं, वे भी श्लोक के भीतर आते हैं किन्तु पाद (श्लोक चरण) के अवसान (अन्त) में कुटिल (टेढ़े-गुरु-S) हो जाते हैं । पादान्तस्थं विकल्पेन—श्लोक के पाद के अन्त में आने वाला ह्रस्व वर्ण भी गुरु हो जाता है ।

[ मा चैवं कृथा —उपर्युक्त योजना के अतिरिक्त इसका यह अर्थ भी सम्भव है—

वत्स, मेरी इन बातो को ज्यो त्यो ( अवहेलनापूर्वक ) मन मे नही रखो। वेद वाक्य की तरह इसे समझो। छान्दस गुरु प्रियवक्ता नही होता, वह तथ्य वक्ता हुआ करता है। तथ्य बोलने वाले लोग आप जैसे पवित्र आदमी के अङ्ग ही बन जाते हैं। राजा को अत्यन्त सरल भी नही होना चाहिए। सरल होने पर लघु ( बुद्धि के ) लोग उसके विश्वास भाजन बन जाते है और अन्त मे अपनी कुटिलता दिखाने लगते हैं।

यहाँ छन्द शास्त्र के आधार पर निर्मित पवित्र श्लोक म पुण्यश्लोक नल की तुलना की गयी है। एक श्लोक जैसे चतुरानन्दिपद ( चार आनन्द देने वाले पदो ( चरणो ) से युक्त होता है वैसे नल चतुरानन्दिपद ( चतुर लोगो को आनन्द देने वाले ( राज्य ) पद पर प्रतिष्ठित ) है एक श्लोक म जैसे टेढी आकृति वाले गुरु वर्ण स्थान पा जाते ह वैसे तथ्यविद् गुरु वक्र स्वभाव वाले होने पर भी अपनी चतुरता के कारण राजा क अङ्ग बन जाते है। आचार्य चण्डपाल ने अङ्ग शब्द को सम्बोधन माना है। अर्थात् हे अङ्ग (प्रिय)। वक्र बोलने वाले भी गुरु तुम्हारे भाव ( श्रद्धा ) के पात्र बनते हैं। लघु ( ह्रस्व ) वर्ण जैसे लिखने मे सीधा होता है और पाद क मध्य मे रहता है तब तक तो ज्यो का त्यो रहता है किन्तु ज्यो ही पाद क अन्त मे पहुँचता है गुरु ( ऽ टेढा ) बन जाता है वैसे लघु स्वभाव के लोग अन्तरङ्ग तो बन जात हैं किन्तु पूर्णत उन्नति कर जब अन्तिम पद पर पहुँचते है तो अपनी कुटिलता दिखाने लगते हैं। ]

किंच बहुना—

तथा भव यथा तात त्रैलोक्योदरदर्पणे।
विशेषैर्भूषितस्तैस्तैर्नित्यमात्मानमीक्षसे ॥ १७ ॥

तथेति ॥ तातेति कोमलामन्त्रणे। तथा तेन प्रकारेण भव यथा तैरस्मदुपदिष्टे प्रजात्राणादिभिर्विशेषैरुपलक्षितमात्मानं भुवुषित पृथ्वीस्थित एव त्रैलोक्यमेव योऽसौ दर्पणस्तत्र नित्यमविनश्वरं पश्यसि। अन्योऽपि तैस्तैराकल्पविशेषैर्मण्डितमात्मानं दर्पणे पश्यतीति। यशोऽर्थमेव प्रयतितव्यमिति भाव ॥ १७ ॥

अधिक क्या कहें—

वत्स! ऐसा बनो जिससे त्रैलोक्य के आंगनरूप दर्पण मे अपने विशेष ( दान आदि ) गुणो मे अलङ्कृत हो कर तथा इस भू ( पृथ्वी ) मे उषित ( स्थित ) होकर सदा अपनी पवित्र आत्मा को देख सको।

[ अत्यन्त यशस्वी कार्य करोगे तो समूचे ब्रह्माण्ड म तुम्हारा यश फैल जायेगा। इस पृथ्वी मे रहते ही रहते अपने यशरूप निर्मल आत्मा को देख

सकोगे। अधिकांश लोग मरने के बाद अपने कार्यों के कारण यशस्वी होते हैं। तुम ऐसा यत्न करो कि जीते हो जीते तुम्हारा अमर यश संपूर्ण संसार में फैल उठे॥ १७॥ ]

किं चान्यत्—

बिभर्ति यो ह्यर्जुनवारि पौरुषं करोति नम्रे च न वा रिपौ रुषम्।
न तेन राज्ञा सहसागराजिना भवेन्मही किं सहसागरा जिता॥१८॥

बिभर्तीति॥ अर्जुनमिव वृणोत्याच्छादयति वारयति वस्त्वदशात् निजप्रकर्षेण सच्चरित्रावष्टम्भकारि पौरुषं यो राजा धत्ते। अथवा नम्रे रिपौ शत्रावपि रुषं कोपं न च नैव करोति। धर्मविजयत्वात्। तेन राज्ञा अगराजिना। अष्टमहाकुलाचलाः पर्वताः। तथा सहसागरा समुद्रा सहसा वसुमती किं मही न जिता भवेत्। जितैवेति भावः॥ १८॥

जो अर्जुन के यश को भी ढँक लेने वाले पराक्रम को धारण करता है तथा नम्र शत्रु पर भी क्रोध नहीं करता वह राजा शीघ्र ही अगराजित (पर्वतों से सुशोभित) तथा सहसागरा (समुद्र सहित संपूर्ण पृथ्वी) को नहीं जीत लेता (जीत ही लेता है।)

( अर्जुनवारि—आच्छादन अर्थ में वृ धातु से तद् स्वभाव अर्थ में णिनि प्रत्यय हुआ है। इसका अर्थ हुआ अर्जुन को ढक लेने वाला। सहसागराजिता—सहसा+अग+राजिता—(शीघ्र पर्वत मंडित पृथ्वी) सहसागराजिता—सह+सागरा+जिता—समुद्र सहित पृथ्वी जीत ली जाती है। सरल शब्दों से यमक अलंकार का बड़ा भव्य निदर्शन है॥ १८॥

अपि च—

'किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा।
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा'॥ १९॥

किमिति॥ मातुर्यौवनस्यापहारकस्तेन तेन जातेन किम्। किमपि नेत्यर्थः। यो जातु कदाचिदपि स्वस्य वंशस्याग्रे नारोहति। अग्रे गण्यतां न यातीत्यर्थः। ध्वज एव वंशो वेणुः॥ १९॥

और भी—जैसे वंश (बाँस) के अग्रभाग में ध्वजवस्त्र लम्बित होता है वैसे जो पुत्र अपने वंश (कुल) में अग्रगण्य नहीं बन जाता तो उस माता के यौवन का हरण करने वाले पुत्र से क्या लाभ।

एवमुक्त्वा विश्रान्तवाचि वाचस्पतिसमे मन्त्रिणि राजापि प्रेमार्द्रया दृशा नलमवलोक्य वक्तुमारभत॥

ऐसा कहकर बृहस्पति सदृश मंत्री के चुप हो जाने पर राजा भी स्नेहपूर्ण दृष्टि से नल को देखकर बोलना शुरू किया ॥

'तात, युक्तमुक्तोऽसि सालङ्कायनेन । कस्यान्यस्य निर्यान्ति वदनारविन्दादेवंविधा· पदे पदेऽर्थसमर्था मृद्वयो मृष्टा· श्लिष्टाश्च वाच ॥ तद्दर्शितस्तथानेन निर्वापितदेहः स्नेह· । स्वीकृतस्त्वं मनसा समस्तसाम्राज्यभारोद्वहनधुर्यता प्रति । तेनायमनुशास्ति ॥

वत्स, सालकायन ने बहुत अच्छा कहा है । किसके मुखकमल से प्रत्येक पद से गभीर अर्थों को व्यक्त करती हुई कोमल शुद्ध तथा श्लेषयुक्त वाणी इस तरह निकल सकती है । शरीर को तृप्त करने देने वाले स्नेह को इन्होने तुम्हारे ऊपर दिखाया । तुमने भी हृदय से समस्त संसार के भारवहन मे अपनी समर्थता स्वीकार की । इसीलिए ये तुमको अनुशासित करते है ।

युज्यते चैतत् ॥

यह उचित भी है ।

तथाहि—

संग्रहं नाकुलीनस्य सर्पस्येव करोति य· ।
स एव श्लाघ्यते मन्त्री सम्यग्गारुडिको यथा ॥ २० ॥

समहमिति ॥ न निषेधे । अकुलीनस्यानभिजातस्य । सर्पस्य तु नाकुर्वल्मीकस्तत्र लीनस्य । कर्मणामारम्भोपाय· पुरुषद्रव्यसम्पत् , देशकालविभागो विनिपातप्रतीकार', कार्यसिद्धिश्चेति पञ्चाङ्गो मन्त्र गारुडादिविषयश्चेति योगान्मन्त्रिणावभास्याहितुमिह्को ॥ २० ॥

नाकु ( बिल ) मे लीन ( घुसे हुए ) सर्प को पकडकर जैसे गारुडिक ( साप बझाने वाला ) प्रशंसा का पात्र बनता है वैसे ही अकुलीन ( निम्नपरपरा ) के लोगों का संग्रह न कर मन्त्री भी प्रशंसा का पात्र बनता है ।

अच्छे मन्त्री का यही लक्षण है कि वह भव्य परपरा के कुलीन लोगो का संग्रह करे ॥ २० ॥

किं च—

न पश्यसि सांप्रतमिदमस्माकमतिभीरुभूपालमण्डलमिव वलिभिराक्रान्तम् , अशेषमङ्गम् , अतिजीर्णशीर्णकर्पटमिवावरीतुं न शक्यते । क्वाप्युपरिपतितभ्रूचका भीरुमटपेटीव नष्टा दृष्टि· ॥

नेति ॥ वलयस्त्वग्शैथिल्यानि । बलिनो बलवन्तश्च । आवरणं संध्यानम् । अङ्गपक्षे संवरणम् । नि सौष्ठवादशक्यम् । उपरिपतितं शैथिल्यात्स्रस्तं भ्रूचक्रं

यस्याम्। भीरुभूपालमण्डलीपक्षे तु प्रतिभटानामिति शेषः। भीरवो हि वैरिणि विलोकयन्ति पलायन्ते। पेटशब्द संघाते त्रिलिङ्गः॥

नहीं देखने—इस समय मेरे सभी अंग वलियो ( चमड़े की सिकुड़न ) से आक्रान्त हैं जैसे डरपोक राजे बलि ( बलवान् लोगों ) द्वारा आक्रान्त होकर शिथिल पड़ जाते हैं। अत्यन्त पुराना फटा हुआ कपड़ा जैसे शरीर को ढक नहीं पाता वैसे ये सिकुड़े हुए चमड़े शरीर के संवरण में असमर्थ हैं। आंखों पर भौंहों के लटक आने के कारण दृष्टि वैसे ही नष्ट हो गई है जैसे डरपोक वीर मंडली पर वज्र गिर जाय और वह नष्ट हो जाय॥

ये हितवर्गोपदेशिनो मुख्यास्तेऽपि सालङ्कायनप्रभृतयो मन्त्रिण इव विरलीभूता दन्ताः। शब्दशास्त्रे हि राजादीनामदन्तता श्लाघ्यते। नान्यत्र॥

य इति॥ हितवर्गं हितसमूहमुपदिशन्ति मुख्याश्च प्रधानभूताः सालङ्कायनप्रभृतयोऽमात्या यथा विरलीभूता इव केचित्। न सर्वे तथाविधाः। तथा ये दन्ताः हि स्फुटं तवर्गमुपदिशन्त्युच्चारयन्ति। तवर्गस्य दन्त्यत्वात्। तथा मुखे भवा मुख्याः। तेऽप्यविरला विरला अन्तरला विरलीभूताः। वलिग्रस्तानां हि प्रायमुखा दन्ता विरला स्युः। मुख्यास्तु मन्त्रा राजदन्ताः। 'राजाहः—' इति सूत्रोक्ता राजादयः॥

हित-समूह के उपदेश देने वाले सालङ्कायन आदि—प्रमुख मंत्री जैसे थोड़े हैं वैसे दांत भी अब थोड़े ही रह गये। व्याकरण शास्त्र में राजादि शब्दों की अदन्तता (अकारान्तता) प्रशंसित होती है—दूसरी जगह नहीं ( लोक में राजाओं की अदन्तता ( दंतहीनता ) प्रशंसा की बात नहीं। )

राजाहः सखिभ्यष्टच्—सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय होने के कारण ये शब्द अकारान्त रह जाते हैं।

तदिदानीं मम वन्यश्वापदमिव विषयविमुखं मनो वनाय धावति। कृतं च यन्मनुष्यजन्मनि क्रियते॥

तदिति॥ विषया इन्द्रियार्था देशाश्च॥

तो इस समय मेरा मन जंगली जानवर की तरह सांसारिक विषयों से विमुख होकर वन की ओर भागता है। मनुष्य जीवन पाकर जो किया जाता है मैंने सब कर लिया।

जंगली पशु भी विषय (देश या गाँवों) को छोड़कर वन की ओर भागता है।

तथाहि—

धना प्राप्य परोपकारविधिना नीताः श्रियः श्लाघ्यता-
मापूर्वापरसिन्धुसीम्नि च नृपाः स्वाज्ञां चिरं ग्राहिताः।

भूभारक्षमदोर्युगेन भवता जाता वयं पुत्रिण-
स्तत्सम्प्रत्युचितं यदस्य वयसस्तत्कर्म कुर्मो वने ॥ २१ ॥

एता इति ॥ यथाक्रम धर्मार्थकाममोक्षाणामुपन्यास ॥ २१ ॥

इन सम्पत्तियो को प्राप्त कर तथा परोपकार के कार्यों मे लगा कर इन्हें प्रशंसा भाजन बना दिया। समुद्र की पूर्वी सीमा से लेकर पश्चिम सीमा तक राजाओ से चिरकाल तक अपनी आज्ञाओ का पालन कराया। पृथ्वी के भार सहने मे समर्थ बाहुयुगल वाले आपको प्राप्त कर हमलोग पुत्रवान् भी कहला गये। अत इस समय इस अवस्था मे जो कर्म किया जाता है उसे जगल मे करेंगे।

( भविष्य के अर्थ में वर्तमान का प्रयोग 'वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद् वा' के नियम से किया गया है। वन जाने के लिये पैर नही बढाये है किंतु शीघ्र ही जाने वाले है इसी लिए वर्तमान का प्रयोग किया गया है। ) ॥ २१ ॥

इत्यभिधाय तत्कालमेव मौहूर्त्तिकानाहूयादिदेश-'कथ्यतां यौवराज्याभिषेकोत्सवाय दिवसः' इति ॥

ऐसा कह कर ( उसी समय ज्योतिष् शास्त्रियो को बुलाकर आज्ञा दिये—कहिये यौवराज्याभिषेक के लिए दिन।

अथ कथयामासुस्तेऽपि—'देव, श्रूयतामनवद्यतनमेव राज्याभिषेकयोग्यमहः। केन्द्रस्थानवर्त्तिन. सर्वेऽप्युच्चग्रहा, पुण्यो मासः, पूर्णा तिथिः, श्लाघ्यो योगः, प्रशस्तो वारः शुभ नक्षत्रम्, कल्याणी वेला, विधीयतां यद्विधेयम्' इत्यभिधाय स्थितेषु तेष्वनन्तरमेव 'सुश्रोणि, श्रूयतां यदस्माभिः श्रुतमाश्चर्यम् ।।

अथेति ॥ केन्द्रस्थानं शुभस्थानम् ॥

वे भी बोले—'देव ! सुनिये राज्याभिषेक के लिए अत्यन्त श्लाघ्य दिन है। सभी उच्चग्रह शुभ स्थान मे हैं। पवित्र महीना है। पूर्णा तिथि है। प्रशसनीय योग है। श्रेष्ठ वार है। शुभ नक्षत्र है। कल्याणकर समय है। करिये जो करना है।' ऐसा कहकर अभी ठहरे ही हुए थे तब तक राजा ने कहा—'सुमध्ये ! सुनो यह आश्चर्य।'

उचितमुचितमेतद्वैर्यधाम्नां नृपाणां
वयसि फटुनि कान्तालोचनानां तृतीये।
इति रभसमिवास्य प्रस्तुतं श्लाघमानो
वियति पटुरकस्मादुत्थितस्तूर्यनाद' ॥

उचितेति। कटुत्वमप्रियत्वमेव ॥ २२ ॥

तीसरी ( वानप्रस्थ ) अवस्था में जब रमणियों के लोचन कटु ( अप्रिय ) हो जाते हैं, धैर्य रूपी तेज रखने वाले राजाओं के लिए यह अत्यन्त उचित है। बड़ी शीघ्रता से प्रस्तुत कार्य की प्रशंसा करती हुई अचानक आकाश में वाद्यध्वनि गूंज उठी ॥ २२ ॥

अपि च—

उपरि परिमलान्धैः सस्वनं संचरद्भि-
र्मधुकरनिकुरम्बैश्चुम्ब्यमाना भरेण ।
अविरलमधुधारासारसंसिक्तभूमिः
सदसि सुरविमुक्ता प्रापतत्पुष्पवृष्टिः ॥ २३ ॥

पराग के कारण मस्त, घूमते एवं भनभनाते हुए भ्रमर-समूह से पूर्णरूप में चुम्बित लगातार मधु धारा की वर्षा से भूमि को सींचती हुई, देवताओं द्वारा की गई पुष्पवृष्टि राजभवन में उपस्थित हुई ॥ २३ ॥

अथ तेऽथ तत्कालमेवाम्बरतलादुल्लसद्ब्रह्मकान्तिकलापपवित्रीकृताखिलदिग्भागभूमयः सकलसागरसरित्तीर्थाम्बुपूर्णकमण्डलुमृत्कुशकुसुमौषधिरुद्धपाणयो दर्शनादेवापनीतसमस्तकलिकल्मषाः केऽपि कुतोऽपि ब्रह्मर्षयः ॥

उसी समय आकाश से कुछ अलौकिक तपस्वी महर्षि उतरे जो अपनी ब्रह्मतेजराशि से आठों दिशाओं की भूमि को पवित्र कर रहे थे। समस्त समुद्रों एवं नदी तीर्थों के जल से पूर्ण कमण्डलु, मिट्टी, कुश, पुष्प तथा ओषधियों को हाथ में लिए हुये थे तथा दर्शन मात्र से समस्त कलि के पापों का हरण कर ले रहे थे।

सहर्षेण सविनयेन सपरिवारेण च चलत्कर्णोत्पलगलद्बहलरजःपुञ्जपिञ्जरितकपोलपालिना पृथ्वीपालेन प्रणम्य कृतातिथेयाः समुचितान्यलंचक्रुरासनानि ॥

प्रसन्नता एवं विनय के साथ परिवार-सहित, दोलायित कर्णपुष्प से गिरते हुए पराग-समूह से पिंजर गण्डस्थल वाले राजा द्वारा प्रणामानंतर अतिथि सत्कार पाकर उचित आसन को सुशोभित किये।

कृतकुशलप्रश्नालापाश्च प्रस्तुतकुमाराभिषेकस्य नरपतेः स्वस्वकमण्डलुवारीणि दर्शयामासुः ॥

कुशल प्रश्न-विषयक चर्चा के बाद प्रासंगिक, कुमार ( नल ) के राज्याभिषेक के लिए ( लाये हुए ) अपने-अपने कमण्डलु के जल राजा को दिखाये।

इदं मन्दाकिन्याः सलिलमवगाहागतमरुत्-
पुरन्ध्रीणां पीनस्तनशिखरभुग्नोर्मिवलयम्।
इदं कालिन्द्याश्च प्रविकसिततीरद्रुमलता-
पतत्पुष्पैरन्तःसुरभितरङ्गं नृप पयः॥ २४॥

स्नान के लिए आई हुई देवताओं की रमणियों के स्थूल स्तनों के अग्रभाग से टूटी हुई तरंग पंक्ति वाला यह जल मंदाकिनी का है। तट के खिले हुए तरुओं एवं लताओं के फूलों से पूर्ण सुगंधित तरङ्गों वाला यह जल हे राजन्! यमुना का है॥ २४॥

इदं गोदावर्यास्त्रिनयनजटाखण्डगलितं
महाराष्ट्रीनेत्रैः कृतकुवलयं मज्जनविधौ।
इदं चापि भ्रेम्यन्मुनिजनविकीर्णार्धकमलं
पयो विन्ध्यस्कन्धस्थलविलुलितं नार्मदमपि॥२५॥ युग्मम्।

भगवान् शंकर के जटा खण्ड से गिरा हुआ तथा महाराष्ट्र की रमणियों के नेत्रों से स्नान के समय नीलकमल बना हुआ यह जल गोदावरी का है। घूमते हुए मुनियों ने कमलों को आधा-आधा तोड़कर जिनमें बिखेर दिया है तथा जो विन्ध्याचल की चोटी से आविर्भूत हुआ है वह यह जल नर्मदा का है।

( महाराष्ट्र की रमणियों का नेत्र नीलकमल सदृश है। स्नान के समय उनके नेत्रों के प्रतिबिम्ब से जल भी नीलकमलमय बन गया है )॥ २५॥

इतश्च—

तदेतत्पुण्यानां परममवधिं प्राप्तमुदधेः
पयः प्रक्षाल्याङ्घ्री शयनसमये शार्ङ्गधनुषः।
विहारायोन्मज्जद्वरुणवनितावृन्दवदनैः
क्षणं यत्रोत्फुल्लाभ्यकमलखण्डश्रियमधात्॥ २६॥

तदेतदिति। शयनसमये युगान्ते शार्ङ्गधनुषो विष्णोः सम्बन्धिनौ चरणौ प्रक्षाल्य पुण्यानां परमसीमानं गतमुदधेः समुद्रस्य तदेतत्पयो वर्तते। यत्र विहाराय क्रीडार्थमुन्मज्जन्ति यानि वरुणवधूवृन्दवक्त्राणि तैः कृत्वा विकसदम्भोजखण्डशोभां क्षणं दधौ॥ २६॥

सोने के समय, शार्ङ्ग नामक धनुष् वाले भगवान् विष्णु के पैरों को धोकर पुण्य की अन्तिम सीमा तक पहुँचा हुआ यह जल समुद्र का है। जहाँ यह (जल) क्रीडा प्रसंग में स्नान करती हुई वरुण पत्नियों के मुख से खिले हुए नवीन कमल-समूह की शोभा प्राप्त किया था।

[ वरुण-पत्नियों के मुख जब जल के ऊपरी भाग में दिखाई पड़ते थे तो लगता था कि नये कमल ही खिले हुए थे ]॥ २६॥

राजा तु तत्कालमुन्मीलद्बहलपुलकाङ्कुरकोरकितदेहः किमप्यद्भुतरसेनावेशित इव विधूय शिरश्चिन्तयाञ्चकार ॥

उसी समय राजा का शरीर पूर्ण रूप से रोमांचित हो उठा। कुछ अद्भुत रस के आवेश में आए हुए की तरह सिर को हिलाता हुआ सोचने लगा—

'नूनमयमस्मद्गृहे हरिहरब्रह्मणामन्यतमः कोऽप्यवतीर्णो भविष्यति। यतः क्वायं शिक्षाक्रम, क्वेयमस्माकमाकस्मिकी यूनोऽस्याभिषेकाय बुद्धिः क्व चानुकूलकालसंपत्तिः, क्व चामी समस्ताभिषेकोपकरणपाणयो महामुनयः ॥

निश्चित ही यह मेरे घर में विष्णु, शिव या ब्रह्मा में से कोई एक होकर आया होगा। क्योंकि कहाँ यह उपदेशक्रम, कहाँ इस युवक के अभिषेक के लिए अचानक हमलोगों का विचार, कहाँ यह अनुकूल मुहूर्त, कहाँ समस्त सामग्री को हाथ में लिए हुए ये महर्षि।

सर्वथा नमोऽस्तु घटितदुर्घटाय वेधसे। यस्यायमेवमद्भुतो व्यापारः, इत्यवधारयन्नुत्थाय गृहीत्वा तानि तीर्थोदकानि कृत्वा कनककुम्भेषु तात्कालिकास्फालितमृदङ्गझल्लरीरवरमसोल्लास्यविलासिनीवृन्दैरानन्द्यमानो मङ्गलोद्गारमुखरपरिवृतः सह सालङ्कायनेन 'सहस्रं समास्तात् पवानुपालयतु राज्यम्' इत्यभिदधातमनिच्छन्तमपि नलं नलाभिषेक्याभिषेकपट्टे स्वयमेवाभिषेकमकरोत् ॥

मन्दिर॰॥ घटित योजित दुर्घटं शिक्षाक्रमादिलक्षणं येन तस्मै वेधसे नमः ॥

असम्भव पदार्थ को भी सर्वथा सम्भव कर देने वाले ब्रह्मा को नमस्कार है, जिसका इसी तरह अद्भुत कार्य हुआ करता है। यह सोचता हुआ उठकर उन तीर्थजलों को लेकर एक सोने के घड़े में रखकर तत्काल बजते हुए मृदंग एवं झाल की आवाज पर वेग से उत्कृष्ट लास्य (नृत्य) करती हुई वारांगनाओं के आनंद का अनुभव करता हुआ नल की इच्छा नहीं थी तो भी उसे अभिषेक के आसन पर बैठाकर स्वयम् अभिषेक कर दिया।

परिधाप्य च मङ्गलाभरणवाससी सिंहासनमारोप्य पुत्रप्रेम्णा पुरः स्थित्वा कनकदण्डपाणिः स्वयं प्रातिहार्यमन्वतिष्ठत् ॥

मंगलभूषण तथा वस्त्र पहनाकर, सिंहासन पर बैठा कर, पुत्र स्नेह के कारण स्वयम् हाथ में स्वर्ण दण्ड लेकर प्रतिहारी का कार्य सम्पन्न किया।

सालङ्कायनोऽप्यतिस्नेहेनास्योपरि लम्बितमुक्ताकलापमास्रवत्सुधाधारमिन्दुमण्डलमिव कनकदण्डमापाण्डुरमातपत्रमधारयत् ॥

सालकायन भी बड़े प्रेम से उसके ऊपर मुक्ता-समूह से खचित अमृत बरसते हुए चन्द्रमण्डल की तरह स्वर्णदण्ड वाले अत्यन्त शुभ्र छत्र धारण किया।

सामन्तचक्रं च चलच्चामीकरचारुचामरकलापव्यापृतकरपल्लवमस्याग्रे विनयमदर्शयत ॥

सामन्त वर्ग भी हिलते हुए सुवर्ण सदृश सुन्दर चमर-समूह में अपने कर-पल्लव सदृश हाथों को सक्रिय बनाकर उसके आगे विनय प्रदर्शित किया।

मुनयोऽप्युच्चार्याश्चतुर्वेदप्रशस्तमन्त्रान्। उत्थाय च गृहीत्वाक्षतांश्शिरसि विकिरन्तोऽस्य पुनरिदमवोचन् ॥

मुनि लोग भी चारों वेदों के प्रशस्त मन्त्रों का उच्चारण किये। उठ कर उसके शिर पर अक्षत छिड़कते हुए बोले—।।

'याः स्कन्दस्य जगाद तारकजये देवः स्वयम्भूः स्वयं
स्व साम्राज्यमहोत्सवेऽपि च शचीकान्तस्य वाचस्पतिः।
ताभिस्तेऽद्य विरिञ्चिवक्त्रसरसीहंसीभिराशास्महे
वैदीभिर्वसुधाविवाहसमये मन्त्रोक्तिभिर्मङ्गलम् ,॥ २७ ॥

तारक विजय के अवसर पर ब्रह्मा ने स्कन्द को, स्वर्ग की साम्राज्य प्राप्ति के अवसर पर इन्द्र को, बृहस्पति ने ब्रह्मा के मुख सरोवर में विहार करने वाली हंसी स्वरूप जिन वैदिक मन्त्रोक्तियों से आशीर्वाद दिये, आज पृथ्वी के साथ अपने इस विवाह के अवसर पर उन्हीं उक्तियों से आपकी मंगल कामना हम लोग करते हैं ।। २७ ।।

अन्यदपि तत्र दिवसे शुभ्रु समाकर्ण्यतां यदद्भुतमभूत् ।।

हे शुभ्रु और भी अद्भुत घटनायें उस दिन घटी उन्हें सुनें—

दिशः प्रसेदुः सुरभिर्ववौ मरुद्दिवो निपेतुः सुरपुष्पवृष्टयः ।
कृताभिषेकस्य नलस्य निस्वनानताडिता दुन्दुभयोऽपि चक्रिरे ॥ २८ ॥

नल के अभिषेक होने पर दिशायें प्रसन्न हो गयीं। सुगन्धित हवा बहने लगी। स्वर्ग से देवताओं ने फूलों की वर्षा की। बिना बजाई हुई भी दुन्दुभि ध्वनि करने लगी ॥ २८ ॥

अन्तरिक्षे च कोऽप्यदृश्यमान एवाशी श्लोकद्वयमपठत् ॥

आकाश में अलक्षित होकर किसी ने दो श्लोक पढ़े—

'अहीनां मालिकां बिभ्रत्तथापीताम्बरं वपु ।
हरो हरिश्च भूपेन्द्र ! करोतु तव मङ्गलम् ॥ २९ ॥

अहीति—शिवोऽहीनां सर्पाणां स्रजं तथा तेन प्रकारेण हृताम्बरं शब्दवादि ध्वनि विगतमूर्तिवद्व्याप्ताकाशम् । अथ च पराचीनावस्थायां दिगम्बरत्वादि- ताम्बरं गतवस्त्रम् । यदि वा सा समन्तात्पीतं अनन्तनिविततया छन्नमम्बरमा- काशं येन । तथाविधं वपुर्बिभ्रद् । हरिश्च विष्णुरहीनमालामिति स्वनामवान् । अहीनां दीर्घामिव मालिकाम् । तथा पीताम्बरं हारिद्रवसनं वपुर्बिभ्रद् राजेन्द्र, तव मङ्गलं करोति विचार्यः । केवलं व्याप्तपृथ्वीकम् । इताम्बरमसीत्यभिप्रायः । अष्टमूर्तिर्हि भगवान् । यदाह सर्वज्ञः 'उर्वीमम्भोयजमानज्वलनानलार्कसोमाम्बरा- दिमि' ? इति ॥ २९ ॥

हे राजेन्द्र, सर्पों की माला तथा वस्त्रहीन शरीर को धारण करने वाले शिव और अहीन ( लम्बी ) माला तथा पीतवस्त्र युक्त शरीर धारण करने वाले विष्णु तुम्हारा मंगल करें।

[ शिवपक्ष में—तथापि = हताम्बर, यह विच्छेद कर हताम्बर शब्द का गत वस्त्र या वस्त्र हीन अर्थ किया जाता है। हन् गतौ से हत बना है। इसलिये गत का जो अर्थ होगा वही हत का होगा। शिव को पीताम्बर भी कहा जा सकता है, क्योंकि सम्पूर्ण अम्बर ( आकाश ) को उन्होंने पी लिया है। अर्थात् अपनी व्यापकता से उसे आच्छादित कर लिया है ॥ २९ ॥

अपि च—

लीलया मण्डलीकृत्य भुजंगान्धारयन्हरः ।
देयाद्देवो वराहश्च तुभ्यमभ्यधिकां श्रियम् ॥ ३० ॥

लीलयेति ॥ लीलयावज्ञया भुजङ्गान्सर्पान् मण्डलीकृत्य हरः । भुजं मण्डलीकृत्य गां वसुधां धारयन् वराहश्च तुभ्यं समधिकां श्रियं देयात् । अत्र वराह इति भगवराहमूर्तिर्नरसिंहवद्भुजमण्डलीकरणानुरोधात्स्वेनः ॥ ३० ॥

बिना श्रम के सर्पों को गोलाकार बना कर धारण करने वाले शिव तथा अपने हाथ को गोलाकार बनाकर पृथ्वी को धारण करने वाले वराह आपके लिए अधिक लक्ष्मीप्रद हों।

[ यहाँ भुजंगान् शब्द श्लिष्ट है। शिव पक्ष में भुजंग शब्द का अर्थ सर्प है। वराहपक्ष में—( भुजं मण्डलीकृत्य गां धारयन् ) हाथ को गोलाकार करते हुए पृथ्वी को धारण किए हुए ॥ ३० ॥

इत्याख्याय विश्रान्तायां वियद्वाचि स्थित्वा च किंचित्कृतोचितापचितिषु गतेषु सपादन्तर्धानं मुनिषु 'समुच्छ्रीयन्तां वैजयन्त्यः, बध्यन्तां तोरणानि, सिच्यन्तां चन्दनाम्भोभिः पन्थानः, मण्डयन्तां मसृणमुक्ताफलक्षोदरङ्गावलीभिः प्राङ्गणानि, कुसुमप्रभाञ्जि चत्वराणि

पूज्यन्तां द्विजन्मानो देवताश्च, दीयन्तां दानानि गीयन्तां मङ्गलानि, विसृज्यन्तां वैरिवन्द्य, मुच्यन्तां पक्षिणोऽपि पञ्जरेभ्य 'इति श्रूयमाणेषु परितः परिजनालापेषु लास्योन्मादिनि मृदुमङ्गलोद्गारमुखरे सञ्चरति पुरपथेषु पौरनारीजने स दिवसः समाप्तस्वर्गसुखस्येव भुक्ताशेषभुवनस्येवास्वादितामृतरसस्येवानुभूतपरमानन्दस्येव राज्ञः कृतकृत्यतां मन्यमानस्यातिक्रान्तवान् ॥

इस तरह का आशीर्वाद देकर आकाशवाणी के शान्त हो जाने पर कुछ देर तक ठहर कर उचित पूजाओं को कर लेने के बाद एक ही क्षण में मुनियों के अन्तर्धान हो जाने पर पताका फहरायी जाय। तोरण बाँधे जायँ। चन्दन जल से मार्ग सींचे जायें। मुक्ता-मणियों के महीन चूर्ण वाले रंगों से आँगन अलङ्कृत किये जाय। ब्राह्मण और देवता पूजे जाय। दान दिये जायँ। इस तरह चारों ओर से परिजनों की आवाज आ रही थी। नर्तन में मुग्ध तथा मधुर मंगलमय शब्दों से मुखरित नगरवनिताएँ पौर मार्ग पर विचरण कर रही थीं। वह दिन राजा को स्वर्ग-सुख प्राप्ति की तरह प्रतीत हो रहा था। अमृत रस के स्वाद की तरह लगता था। परमानन्द की अनुभूति सदृश था। इस तरह राजा अपने को कृतकृत्य समझता हुआ उस दिन को बिताया।

प्रथमतिक्रामत्सु केषुचिद्दिवसेषु, जरठीभूते महोत्सवव्यतिकरे, *गतवति यथायथमामन्त्रितायात समस्तसामन्तलोके यौवराज्यरञ्जिते* च परितः परिजने जनेश्वरो रिपुपयोधिवडवानलं नलमाबभाषे ॥

इस तरह कुछ दिनों के बीत जाने पर, महोत्सव की चहल पहल के पुराने हो जाने पर आमन्त्रण पर आये हुए सम्पूर्ण सामन्त मण्डल के चले जाने पर यौवराज्य में समस्त प्रजा के अनुरक्त हो जाने पर शत्रु सागर के वडवानल नल से राजा ने कहा—

तात किमपि ब्रूमो यदि न खिद्यसे। सम्प्रति प्रियं सख्यं श्रेयस्करमस्माकमैणम्, न स्त्रैणम्। आभरणाय योग्या जटाभारा न हाराः। साहाय्याय साधवो बुधा, न बान्धवाः। शयनायोचिता कुशपूलिका, न तूलिका। क्रीडायै वरा वेगवन्तो निर्झरप्रवाहा न वाहाः। प्रार्थनीयाश्च हरप्रसादा न प्रासादाः ॥

टिप्पणी— स्त्रीणामिदं स्त्रैणम्। 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ' इति नञ्॥

वत्स यदि तुम्हें दुःख न लगे तो कुछ कहूँ। इस समय मृग वर्ग से ही मैत्री करना श्रेयस्कर है स्त्री वर्ग से नहीं। अलङ्कार के लिए उचित जटाभार ही है हार नहीं। सहायता के लिए साधु विद्वान् ही उचित हैं बान्धव नहीं।

शयन के लिए कुश के गुच्छे ही अच्छे हैं, तूलिका ( रुई का गद्दा ) नहीं। क्रीडा के लिए वेग से बहते हुए झरनों के प्रवाह ही अच्छे हैं, वाह ( घोड़े ) नहीं। भगवान् शंकर की प्रसन्नता ही प्रार्थनीय है प्रासाद ( महल ) नहीं।

तदायुष्मन्नेष दृष्टोऽस्यापृष्टोऽस्याश्लिष्टोऽसि क्षमितोऽसि दुरुक्तमुक्तः इत्यभिधायोत्सङ्गमारोप्य च तत्कालगलद्बहलबाष्पाम्बुप्लाविते वक्षसि निधाय परिष्वज्य च पुनः पुनः पुलककोरकितभुजलताभ्यामन्तर्मन्युभरनिरुध्यमानोत्तरमजस्रमापतदश्रुक्लिन्नकपोलमाविर्भवन्मोहमूर्छान्धकारकुञ्चितलोचनमिममाघ्राय मूर्धनि वनाय वनितासहायः प्रतस्थे ॥

[illegible] । अन्तर्मन्यो मन्युभरेण दैन्यातिशयेन निरुद्ध्यमानमुत्तरं यस्य ॥

अत हे चिरञ्जीविन्, तुम्हें देखा, पूछा, आलिंगित किया, क्षमा किया, अभद्र बातें भी कहीं।' यह कह कर उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया। तत्काल निकलती हुई अश्रुधारा से भीगे हुए वक्षःस्थल पर रख कर, बार-बार रोमाञ्च के कारण कण्टकित बाहुओं से आलिंगित कर, आन्तरिक क्रोध भार के कारण उत्तर न देते हुए, निरन्तर गिरते हुए आंसुओं से भीगे कपोल वाले मोह के कारण मूर्च्छा से बन्द आंखों वाले नल के सिर को सूंघकर पत्नी के साथ वन के लिए प्रस्थित हो गये।

प्रस्थिते च तस्मिन्परित्यक्तराज्ये राजनि, रजनीवियुज्यमानचक्रवाकीष्विव कृतकरुणाक्रन्दासु प्रजासु, प्रतिभवनमुच्चलितेषु जरत्पौरजनेषु, 'कल्याणिन् एष पितृप्रणयप्रणामाञ्जलिरस्य क्रमागतकर्मकारिणः श्रुतशीलस्य कृतापराधस्यापि त्वया सहनीयाः कतिपयेऽप्यस्मदनुकम्पयाऽपराधाः। पश्य। पयोदानोद्वेगाय मृगाङ्कस्य मीलयन्तोऽपि कमलाकरान्कराः। किं न सहन्ते सुमनसोऽपि भ्रमरभरभञ्जनानि' इत्यभिधाय सलज्जं च व्यस्तुतनुच्चलिते च प्रेम्णानुगतभूभुजि भुजायामनिर्जितनाले मालङ्कायने बालमत्स्य इव शुष्यत्सरःसलिलसंतापवेपिताङ्गः, करिकलभ इव वियुज्यमानयूथपतिः पतद्बहलबाष्पबिन्दुमन्दोदेर्वक्षसि विधीयमानहारः 'हा तात' इति ब्रुवन्नलो न लोचने तं दिवसं समुदमीलयत् ॥

राज्य को छोड़ कर उस राजा के चले जाने पर रात के समय अपने पति से अलग होती हुई चक्रवाकी की तरह प्रजा ने करुण क्रन्दन किया। घर-घर से नगर के वृद्ध लोग चल पड़े। कल्याणकर! परम्परा से सेवाकार्य करने वाले इस श्रुतशील का पितृ-स्नेह से प्रणाम है। अपराध करने पर भी हम

पर अनुकम्पाकर कुछ अपराधों को क्षमा करेंगे। देखिए, चन्द्रमा की किरणें कमल-समूह को मुकुलित कर देती हैं, फिर भी समुद्र को क्या तरंगित नहीं करती ? क्या फूल भ्रमरों के भार और छेदन को नहीं सहते ?" यह कह कर अपने पुत्र को समर्पित कर अपराजेय शालङ्कायन राजा के प्रेम से उनके पीछे चल दिया। सूखते हुए सरोवर जल के सन्ताप से मछली के बच्चे की तरह, यूथपति से बिछुड़ते हुए हाथी के बच्चे की तरह छटपटाता हुआ, गिरते हुए पर्याप्त आंसुओं की पंक्ति से वक्षस्थल पर आंसुओं की लड़िया बनाता हुआ, हा पिताजी, हा, पिताजी, कहकर विलाप करता हुआ उस दिन आंख नहीं खोला।

केवलममन्दमन्युदूगारगद्‌गदया गिरा पुनः पुनरिमं श्लोकमपठत्॥
पर्याप्त क्रोध भार से विह्वल होकर इसी श्लोक को बार बार पढ़ता था।

> तत्तातस्य कृतादरस्य रभसादाह्वाननं दूरत-
> स्तच्चाङ्के विनिवेश्य बाहुयुगलेनाश्लिष्य सभाषणम्।
> ताम्बूलं च तदर्धचर्वितमतिप्रेम्णा मुखेनार्पितं
> पाषाणोपम हा कृतघ्न हृदय स्मृत्वा न किं दीर्यसे॥ ३१॥

वत्सल पिताजी का जल्दी जल्दी दूर से बुलाना, गोद में बैठा कर दोनों हाथों में आलिङ्गन कर बोलना, अत्यन्त प्रेम के कारण आधे ही चबाये हुए ताम्बूल को दे देना, आदि व्यवहारों को स्मरण करके भी, हे पत्थर सदृश कृतघ्न हृदय क्यों नहीं फट जाते॥ ३१॥

एतदाकर्ण्य दमयन्ती चिन्तितवती—'अहो, स्नेहवानार्द्रहृदयश्चासौ महानुभावः। तत्सर्वथास्मत्प्रीतिपात्रं भवितुमर्हति' इत्यवधारयन्ती पुनः पप्रच्छ॥

यह सुन कर दमयन्ती सोचने लगी। ओह, महानुभाव, प्रेमी तथा आर्द्र हृदय के प्रतीत होते हैं। अतः सब तरह से मेरे प्रेम के पात्र बन सकते हैं। यह विचार करती हुई पुनः पूछी॥

'हु हंस, ततस्ततः'॥

हु हसेति। हुमित्यव्ययं प्रश्ने॥

> इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्या ततुते स्म चण्डपालः।
> शिशुमतिलतिकाविकासचैत्रं चतुरमतिस्फुटभित्तिचारुचित्रम्॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे चतुर्थ उच्छ्वासः समाप्तः॥

---

"हाँ तो हंस, इसके आगे क्या हुआ ?

सोऽपि राजहंसः कथामुपसंहर्तुमिच्छन्निमं श्लोकमुच्चारयांचकार ॥

वह राजहंस भी कथा को समाप्त करने की इच्छा से इस श्लोक को पढ़ा—

'सुन्दरोदरि, ततश्च—

किमपि परिजनेन स्वेन तैस्तैर्विनोदैः
पितृविरहविषादं सोऽद्य विस्मार्यमाणः ।
गमयति परिवर्त्तं वासराणामिदानीं
हरचरणसरोजद्वन्द्वदत्तावधानः ॥ ३२ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरणसरोजाङ्कायां चतुर्थ उच्छ्वासः समाप्तः ॥

---

सुन्दरि, इसके बाद—

इस समय परिजन लोग कुछ कुछ मनो-विनोद द्वारा पिता के वियोग से उत्पन्न कष्ट को भुला रहे हैं। वह (स्वयम्) भगवान् शंकर के चरण कमल में ध्यान लगा कर दिनों को बिता रहे हैं ॥ ३३ ॥

चतुर्थ उच्छ्वास समाप्त ।

---

# पञ्चम उच्छ्वासः

अथ विश्रान्तवाचि वाचस्पताविवोच्चारितानघविस्पष्टवर्णे वर्णितनिषधराजे राजहंसे 'अहं सेवार्थी' इत्यभिधायोपरुध्यमाना कृतोत्तरासङ्गेन द्विजन्मना श्रुतानुरागेण। 'वत्से, चिरान्मिलितासि' इत्युक्त्वैवाश्लिष्टा हृदये प्रवृद्धया चिन्तया। 'पुत्रि, कथंकथमपि दृष्टासि' इति संभाष्येवालिङ्गिता सर्वाङ्गेषूरुकम्पजनन्या रोमाञ्चावस्थया। 'तरुणि, त्यज्यतामिदानीं शैशवव्यवहारः' इत्यभिधायेव मुग्धे स्पृष्टा प्रमुखेण मुखे वैवर्ण्येन। 'मुग्धे मुच्यतां स्वच्छन्दभावः' इत्यनुशास्येव ग्राहिता निजाज्ञा गुरुणा मकरध्वजेन दमयन्ती। तथापि क्षणमिव महानुभाव नामवलम्ब्यानुपलक्षिताकारमवतस्थे ॥

अथेति। अनन्तरं। स्तुतनले हंसे सेवितुकामोऽहमित्युक्त्वैव कृत उत्पादित उत्तरस्यां दिशि विषये आसङ्ग आसक्तिर्येन। नलाधारत्वादुत्तरस्या। तथा द्वाभ्यां (तस्मिन्निमतमखे यूनि यूपदीर्घभुजद्वये १ उ ५९ श्लोक) येनोक्ताभ्यां ब्राह्मणेनोक्तश्रवणादेकस्मात् द्वितीयादर्शनाज्जन्मोत्पत्तिर्यस्य स तथाभूत। श्रुताश्रवणाद्योऽनुराग प्रेमबन्ध। तेनोपरुध्यमाना व्याप्यमाना। कृतवैकल्यक्रेणाऽप्यमानानुरागेण विप्रेण दाक्षिण्य नीयमानेत्यर्थान्तरम्। एवंभूता दमयन्ती प्रकर्षेण वृद्धिं गतया चिन्तया पुत्रि चिरान्मिलिता त्वमित्युक्त्वेव चित्तेऽवष्टब्धा। तथा उत्कम्प जनयतीति उत्कम्पजनन्या। प्रमुखेन प्रधानेन। गुरुणा दुर्वहभारेण। अर्थान्तरे तु प्रवृद्धया जरया। उद्गतकम्पया जनन्या मात्रा। प्रकृष्ट मुख यस्य तेन प्रमुखेन। गुरुणा आचार्येण ॥

बृहस्पति सदृश स्पष्टतापूर्वक उच्चारण करने वाला वह राजहंस जब निषधराज (नल) का वर्णन कर चुप हो गया, तो उत्तर की ओर से सम्बन्ध रखने वाले तथा केवल श्रवण के आधार पर उत्पन्न होने वाले उस द्विजन्मा अनुराग ने "मैं सेवक हूँ" यह कह कर उसे घेर लिया। "वत्से, बहुत दिनों पर मिली हो", मानो यह कह कर हृदय मे बढ़ी हुई चिन्ता ने उसका आलिङ्गन किया। 'पुत्री, किसी किसी प्रकार से दिखाई पड़ी हो।" मानो यह कह कर सम्पूर्ण अङ्गो मे कम्पन उत्पन्न करने वाली रोमाञ्च की अवस्था ने आलिङ्गन किया। 'तरुणी, छोडो अब लड़कपन का व्यवहार।" मानो यह कर उसके सुन्दर मुख को अत्यधिक उदासी ने छू दिया। 'मुग्धे स्वच्छन्दता छोडो।" मानो यह अनुशासन करते हुए आचार्य कामदेव ने दमयन्ती को अपनी आज्ञा

गृहीत करायी। फिर भी वह कुछ क्षण तक अपनी गम्भीर धैर्यशीलता का अवलम्बन कर उस अवस्था को प्रकट न होने दी।

[इस अनुच्छेद में अमूर्त पदार्थों को मूर्त रूप दिया गया है। अनुराग चिन्ता, अवस्था आदि पदार्थ बोलते हुए दिखाये गये हैं। अनुराग के उत्तरोत्त रासङ्ग और द्विजन्मा दो विशेषण दिये गये हैं। नल उत्तर का राजा था, उसके प्रति इस अनुराग ने यह आसक्ति लायी है, अथवा यह उत्तर से सम्बन्ध रखने वाला है। अतः इसे उत्तरोत्तरासङ्ग कहा गया है।

द्विजन्मा—प्रथम उच्छ्वास में ही एक पथिक ने दमयन्ती से नलविषयक चर्चा कर उसके प्रति अनुराग का जन्म दिया था। इस हंस ने भी उसी आकर्षक वृत्तान्त से उसी अनुराग को पुनः उज्ज्वल बनाया है। अतः दो बार जन्म लेने के कारण इस अनुराग को द्विजन्मा कहा गया है।]

ता च तथा बलात्सरलीभवन्निश्वाससूचितान्तर्मन्मथव्यथावेगाम्, अकाण्डकुण्ठितधैर्यासिधारा, हृत्पुण्डरीके मनोरथानीतनलावलोकनार्थमिवान्तर्मुखीभूतचक्षुर्व्यापाराम्, आकस्मिकस्मरापस्मारेण दाम्यन्तीं दमयन्तीमवलोक्य तदिङ्गिताकारकुशला परिहासव्यसनिनी परिहासशीला नाम सखी 'महानुभाव, नास्माकमद्यापि तद्गुण श्रवणाय श्राम्यति श्रोत्रेन्द्रियम्। न तृप्यति प्रवदनरसायनाय जिह्वा। न सन्तुष्यति विशेषज्ञानाय शेमुषी। नानुरागायोपरमते मनः। तत्कथं कृतवानसि गीतस्येव विस्वरम्, वाद्यस्येव वितालम्, लास्यस्येवा न्यथापदप्रचारम्, अत्यन्तरसविच्छेदकारिणं कथाप्रक्रमस्य विरामम्, पतत्परमपि पिपासया पयः पातुमुद्यतस्येवाविरतायाः तृषि वारिधारा निवारणम्। इयं सा भुञ्जानस्यार्धतृप्तिः, सोऽयमप्रसरतस्य रिरंसा व्याघातः। तत्र युक्तमिवान्तरे विरन्तुम्। निष्कारणोपकारिन्, प्रवर्त्यतां पुण्यराशेर्नलस्य स्वरूपाख्यानामृतप्रपामण्डपो निर्वान्तु च चिरकालमनङ्गग्रीष्मोपतप्ता एवंविधकन्यकाः प्रसारितश्रवणाञ्जलयः' इति दमयन्तीमर्धक्षेपेण कटाक्षयन्ती तं राजहंसमालापयाञ्चकार॥

ता चेति। दमयन्तीं गृह्यमाणां स्मरणपरवशामित्यर्थः। तदिङ्गिताकारयत्नाङ्गित चेष्टितम्। आकारो मुखरागादिः। वारिधारया विधारय विच्छेदः। निवारणम्' इति वा पाठः। रिरंसाया मया व्याघातोऽन्तरायः। 'रतिव्याघात' इति पाठ तु स्पष्टमेव॥

दमयन्ती बड़ी सरलता से निकलते हुए श्वासों से आन्तरिक कामव्यथा सूचित हो रही थी। धैर्य कृपाणधारा समय में ही कुण्ठित हो रही थी। मनरूप

रथ पर बैठाकर हृदयकमल मे लाये गये नल को देखने के लिये आंखो का व्यापार कुछ अन्तर्मुख सा हो गया था।

[ नल विषयक चिन्तन के कारण भावमग्न दमयन्ती की आँखें कुछ निमीलित सी हो गयी थी। ]

अचानक आये हुए इस काम से पकडी जा रही दमयन्ती को देख कर उसके सकेत आदि को पहचानने मे निपुण, मजाकी स्वभाव की, परिहासशीला नाम की सखी आधे क्षण तक दमयन्ती पर कटाक्ष करती हुई बोली—

"महानुभाव, अभी भी उनके गुणो को सुनने के लिये हम लोगो के कान थके नही है। प्रश्न रसायन से जिह्वा तृप्त नहीं हो रही है। उनके सम्बन्ध म विशेष ज्ञान प्राप्त करने मे मन थक नही रहा है। बिना स्वर के ये कौन से गति आप गा गये। बिना ताल के कौन बाजे बजा गये। बिना पैरो को थिरकाये कौन सा नृत्य कर गये, जिसने हम लोगो को मुग्ध कर दिया। इस कथा-प्रसङ्ग की समाप्ति रस को भङ्ग कर रही है। इससे भी अधिक इस प्रसङ्ग मे यह कहा जा सकता है कि कथा की समाप्ति उसी तरह की है जैसे प्यास के कारण पानी पीने के लिये तैयार आदमी की प्यास अभी बुझी भी नही तब तक पानी की धारा रोक दी जाय। ( आपका यह कथा प्रसङ्ग ) खाते हुए आदमी की आधी ही तृप्ति है। "सभोग प्राप्त भी नही हुआ है तब तक रमण की इच्छा को छिन्न कर देना" इसी को कहते हैं। इस लिये बीच ही मे विराम करना अच्छा नही है। उस पुण्यराशि ( नल ) के रूप वर्णन विषयक कथामृत पान कराने वाले मण्डप को विस्तृत कीजिये, जिससे बहुत देर तक काम की उष्णता से तप्त होकर अपनी कर्णाञ्जलि को फैलायी हुई इस तरह की कन्यायें कुछ तृप्ति का अनुभव करें।

सोऽपि 'सुन्दरि, किमन्यत्तस्य समस्तस्त्रीहृदयप्रासादप्रतिष्ठापितप्रतिमस्याद्यापि प्रशस्यते ॥

वह भी, "सुन्दरी, और उसकी दूसरी प्रशसा क्या करूँ, जब कि उसकी मूर्ति समस्त रमणियों के हृदय-प्रसाद पर प्रतिष्ठित हो चुकी है।

यत्र श्रूयमाणे न मधुरो वेणुवीणाक्वणः, दृष्टे नाभिराम. काम.। संभाषिते न सारा सरस्वती, परिचिते न श्लाघ्यममृतम्, अभ्यस्ते नानन्दीन्दु., प्रसादिते न प्रशंसास्पदं धनदः ॥

यत्रेति। श्रूयमाणे नेत्यादौ सहस्रयन्त्वाद्यम्। अभ्यस्ते परिशीलिते ॥

जिसके सम्बन्ध मे सुनते रहने पर वंशी और वीणा की ध्वनि मधुर नहीं लगती, जिसे देखने पर काम भी मधुर नही लगता, जिससे बात करने पर

सरस्वती में भी तत्व नहीं प्रतीत होता, जिससे परिचय कर लेने पर अमृत भी प्रशंसनीय नहीं रह जाता, जिसके साथ रहने पर चन्द्रमा में भी आनन्द नहीं आता, जिसे प्रसन्न कर लेने पर कुबेर भी प्रशंसा का पात्र नहीं रह जाता।

किं बहुना—

भवति यदि सहस्रं वाक्पटूनां मुखानां
निरुपममवधानं जीवितं चापि दीर्घम्।
कमलमुखि तथापि क्ष्मापतेस्तस्य कर्तुं
सकलगुणविचारः शक्यते वा न वेति ॥ १ ॥

अधिक क्या—

हे कमलवदन, यदि बोलने में प्रवीण लोगों के सहस्र मुख हो जायँ और उन्हें एक लम्बी जिन्दगी मिल जाय, अनुपम ढंग से वर्णन में वे दत्त चित्त हो जायँ तो भी उस राजा के गुणों पर विचार कर पायेंगे कि नहीं यह सन्देह की बात है ॥ १ ॥

अपि च

संसाराम्बुनिधौ तदेतदजनि स्त्रीपुंसरत्नद्वयं
नारीणां भवती नृणां पुनरसौ सौभाग्यसीमा नलः।
सा त्वं तस्य कुरङ्गशावनयने योग्यासि पृथ्वीपते-
रेतत्ते कथितं किमन्यदधुना यामो वयं स्वस्ति ते ॥ २ ॥

समासेति स्वस्तियोगे त इति चतुर्थ्यन्तम् ॥ २ ॥

और—

इस संसार सागर में दो ही स्त्री रत्न और पुरुष रत्न उत्पन्न हुए। स्त्रियों में आप और पुरुषों में सौन्दर्य की सीमा पर पहुँचा हुआ नल। मृगशिशु नेत्रे (मृग के बच्चे की तरह आँखों वाली), उस पृथ्वीपाल के साथ विवाह की योग्यता तुम में है यही कह देता हूँ, और दूसरा क्या कहूँ। आप का मङ्गल हो। अब मैं जाता हूँ ॥ २ ॥

अन्यच्च—

चन्द्रमुखि, महानाम्नि सुसंधिकृति सुसमासाख्याततद्धिते सत्कारके परिभाषाकुशले बलाबलविचारिणि विचार्यमाणे व्याकरणे प्रेष्यमाणे च दूते नापशब्दसम्बन्धो भवति। तत्प्रेष्यतां तथाविधस्तस्यान्तिकं कोऽपि दूतः॥

चन्द्रेति। चन्द्रमुखीति सम्बोधनम्। नाम प्रातिपदिकतद्विषयं प्रकरणमपि नामेत्युपचारे सति महदिति विशेषणस्य सफलत्वम्। नाममात्रस्य महत्त्वेन

व्यवच्छेद्याभावात्। सुष्ठु सन्धिर्वर्णसंश्लेषः कृत्संज्ञकप्रत्ययश्च यत्र। समासस्तत्पुरुषादि । आख्यातं क्रिया। तद्धितोऽणादि । कारकमपादानादि । परिभाषा न्यायसूत्राणि। बलाबलं पूर्वापरविधीनां बाधस्थिति । अपशब्दोऽसाधुशब्दः । दूतपक्षे। नाम संज्ञा। सुष्ठु सन्धिं पणबन्धं करोतीति क्वौ सप्तमी। सुष्ठु समासेन संक्षेपेणाख्यातं कथितं तस्मै हितं येन तस्मिन्। सत्कारके सत्क्रियाजनके। परितो भाषा संस्कृतप्राकृताद्या कर्णाटादिदेशभाषा वा तासु दक्षे। बलाबलं शक्त्यशक्ती। अपशब्दोऽपवाद ॥

और

दूतपक्ष—

हे चन्द्रवदने, यशस्वी, दोनो पक्षो मे सामञ्जस्य स्थापित करा देने वाले, भेजने वाले का हित चाहने वाले, सुन्दर कामना करने वाले, विभिन्न भाषाओ मे प्रवीण, शक्ति और अशक्ति पर विचार करने वाले दूत के भेजने पर किसी तरह की आशका नही रह जाती। अत इसी तरह के किसी दूत को उसके पास भेजो।

व्याकरणपक्ष—प्रातिपदिक, पञ्च सन्धि, समास, आख्यात ( तिङन्त ) तद्धित, कारक, ( असिद्ध बहिरङ्गमन्तरङ्गे आदि ) परिभाषाओ के कारण कुशल, ( *विप्रतिषेधे परं कार्यम् आदि* ) शास्त्रो के पूर्वापर विचार से पूर्ण व्याकरण शास्त्र के आधार पर विचार करने पर अपशब्द से सम्बन्ध नहीं रह जाता ॥

[ प्रातिपदिक को महासंज्ञा कहा जाता है। ]

**'न च बृहत्यासंपदान्विते जगत्याख्याते संस्कृतगुरुगणे शार्दूलविक्रीडिताडम्बरिणि पुण्यश्लोके पर्यालोच्यमाने छन्दसि प्रार्थ्यमाने च तस्मिन्निषधेश्वरे वृत्तभङ्गो भवति' इत्यभिधाय गन्तुमुदचलत् ।**

ननु यद्यहं दूतं प्रेषयिष्यामि। तदा 'स्वच्छन्दचारिणीयम्' किंवदन्ती भविष्यतीत्याशङ्कयाह—न चेति ॥ बृहतीजगतीशब्दौ छन्दोजातिवचनौ तृतीयान्तौ एवात्र पदेन प्रसिद्धार्थेन योज्यौ। तथा संगते पदैरन्विते। अथवा छन्दसि कथंभूते। पदान्विते कथं यथा भवति बृहत्यासं बृहत्या आसौ आसोऽवस्थानं यस्यति पदान्वयक्रियाविशेषणम्। यदि वा बृहत्या जात्या हेतुभूतया याऽसौ संपच्छोभा तयान्विते। पक्षे बृहत्या गुर्व्या सम्पदा श्रियान्विते। जगति लोके आख्याते कीर्तिते। गुरवो विपरीतलकारादय। आचार्याश्च। शार्दूलविक्रीडितं छन्दोनाम, सिंहविलसितं च। श्लोकः पद्यं यशश्च। वृत्तं पद्यं शीलं च। इह यद्यपि श्लोकोऽनुष्टुप्छन्दो लोके प्रसिद्धम्। तथापि केचित्सर्वमपि पद्यं श्लोकमाहुः ॥

नलपक्ष—

बडी सम्पत्ति से युक्त, ससार मे प्रसिद्ध, बडो का सत्कार करने वाले,

पवित्र यश वाले निषध देश के राजा से प्रार्थना करने में किसी तरह का शील-भङ्ग नहीं है।

वेदपक्ष—बृहती तथा जगती छन्द के कारण जो वैदिक सम्पत्ति है उससे अन्वित (युक्त) तथा उसी के कारण प्रसिद्ध, गुरुवर्णों को विशेष स्थान देने वाले, शार्दूलविक्रीडित छन्द की तरह समृद्ध, पवित्र श्लोकों वाले वेद के पर्यालोचन में छन्दोभङ्ग दोष नहीं होता। यह कह कर जाने के लिये तैयार हो गया।

[ इस अनुच्छेद में प्रयुक्त बृहती और जगती शब्द में हेतौतृतीया कर सम्पदा के साथ उसका अन्वय करना चाहिये। आवृत्ति कर "अन्विते" और "ख्याते" का सम्पदा के साथ अन्वय होगा। अर्थात् बृहती और जगती छन्द के कारण जो वैदिक सम्पत्ति है उससे युक्त और उसके कारण प्रसिद्ध।

शार्दूलविक्रीडिताम्बरिणि—यद्यपि शार्दूलविक्रीडित छन्द लौकिक छन्द है, उससे वेद को समृद्ध बताना उचित नहीं है फिर भी यह कहना चाहिये कि शार्दूलविक्रीडित छन्द जिस आडम्बर या गरिमा के साथ पढ़ा जाता है उस तरह के महत्त्वपूर्ण छन्दों से युक्त।

पुण्यश्लोके—श्लोक शब्द छन्दःशास्त्र में अनुष्टुप के ही लिये प्रसिद्ध है फिर भी सामान्यतः पद्यात्मक रचनामात्र के लिये इसका व्यवहार होता है।

वृत्तभङ्ग—यह शब्द छन्दोभङ्ग और शीलभङ्ग दोनों अर्थों को व्यक्त करता है। वृत्त के अर्थ छन्द और व्यवहार दोनों हैं।

वेद के पर्यालोचन और निषधेश्वर की प्रार्थना में केवल शाब्दी समानता है। कोई आर्थी समानता नहीं है।

उच्चलितं च तं परिहासशीला पुनर्बभाषे ॥

'महानुभाव, यथेयमनुरागकन्दलैरालापैस्त्वयोक्ता, तथा सोऽपि स्पृहणीयोक्तिभिरभिधातव्यः। यतो न ह्येकहस्ततलेन तालिका वाद्यते, न चैकं तप्तमतप्तेनापरेण लोहं लोहेन संधीयते, नाप्येकं रक्तमरक्तेनान्येन वस्त्रमपि वाससा संयोजितं शोभां लभते। केवलं विघुणत्वमेव भवति' इति ॥

जाने के लिये उद्यत उस हंस से परिहासशीला पुनः बोली—

"महानुभाव, प्रेम को अङ्कुरित करने वाली जैसी बातें आपने इनसे कहीं वैसी उनसे भी उत्सुकता उत्पन्न करने योग्य बातें कहेंगे, क्योंकि एक हाथ से ताली नहीं बजती। एक ठंडा लोहा गरम लोहे से जोड़ा नहीं जाता।

एक रक्त वस्त्र यदि अरक्त ( दूसरे रङ्ग वाले या बिना रङ्गे हुए ) वस्त्र के साथ जोड दिया जाय तो शोभा नही पाता । केवल विषमता ही होती है ।

[ इस अनुच्छेद मे लोहे की उष्णता तथा आदि शब्द इस बात की व्यञ्जना करते हैं कि दमयन्ती म ही कामजन्य उष्णता तथा अनुराग का सचार नही होना चाहिये । हस को चाहिये कि नल मे भी कामविषयक अनुराग की वही मात्रा उत्पन्न कर दे । )

एवंवादिनीं दमयन्ती परिहासशीलामलपत्—

सखि, किमस्य निष्कारणवत्सलस्यैवमभ्यर्थ्यते ॥

यस्यास्मासु निरपेक्ष पक्षपात , स्वभावजं सौजन्यम् , अकृत्रिम स्नेहभाव , अनुपचरितमुपकारित्वम , अपरिचया प्रीति , अनभ्यासं सौहार्दम् , अदृष्टपूर्वा मैत्री ॥

पक्षेति । पक्षो मित्राद्यवष्टम्भ पक्षती च । अभ्यास सामीप्यम ॥

इस तरह बोलती हुई परिहासशीला से दमयन्ती ने कहा—

"सखि, इस अकारण कृपा करने वाले से इस तरह क्या निवेदन कर रही हो ?'

जिनका हम लोगो की ओर अकारण झुकाव है, जिनकी स्वाभाविक सुजनता है अकृत्रिम प्रेम है, आडम्बरहीन उपकार भावना है, अपरिचयावस्था में भी प्रेम है, बिना समीपवर्ती बने ही सौहार्द मिला है । इस तरह का स्नेह इसके पहले नही देखा गया था ।

तदेवंविधो निर्निमित्तबन्धु किमस्यर्थ्यते । केन याच्यन्ते चन्द्र-चन्दनसज्जना परोपकाराय । किन्तु कतिपयमुहूर्तमैत्रीरञ्जितास्मन्मनसो दुस्त्यजस्याकाण्ड एवाम्य गन्तुमुत्सहमानस्य किं ब्रूम । मा गा इत्यशकुनम् , गच्छेति निष्ठुरता, यदिष्टं तद्विधीयतामित्यौदासीन्यम् , आदर्शनात्प्रियोऽसीति भियाशून्यालाप , कस्त्वमेवंविधो दिव्यपान्थश्रित्नमित्यप्रस्तुतप्रश्न , केनार्यात्यप्रक्रान्मम् , किं ते प्रियमाचरामीत्युपचारवचनम् , कृतोपकारोऽसीति प्रत्यक्षस्तुति ॥

इस तरह के अकारण बन्धु म क्या निवदन करना है । परोपकार के लिय चन्द्रमा तथा चन्दन की शीतलता कौन मागता है । ( बिना माग ही मिलती है । ) कुछ ही क्षणो की मित्रता से हम लोगो के मानस को अनुरक्त कर दिया है । अत इसे छोडना बडा दुखद है । असमय म ही जाने के लिये साहस किये हुए इससे क्या कहें । "न जाओ" यह कहना अशुभ है । "जाओ' यह कहना निष्ठुरता ही है । "जो अच्छा लगे वह कीजिये ' यह कहना उदासीनता

है। "जब से दिखायी पड़े हो तब से मधुर लग रहे हो" यह व्यापारहीन चर्चा है। इस तरह की दिव्य वाणी वाले पक्षियों में रत्न आप कौन हैं ?" यह अप्रासङ्गिक प्रश्न है। "किस प्रयोजन से आये हैं ?" यह पूछने का कोई प्रकरण नहीं। "आप का क्या प्रिय करूँ ?" यह एक साधारण बात है। "आप ने बड़ा उपकार किया" यह प्रत्यक्ष स्तुति है ॥

तत्र जानीमः कल्याणबन्धो, किमुच्यसे। वरमदर्शनमेव भवादृशाम्, न तु लूयमानाङ्गावयवदुःसहो दर्शनव्याघातः। वरमनास्वादितमेवान्नम्, न तु सकृदर्पयित्वा पुनरलाभदुःखम् ॥

अतः हे कल्याणप्रद मित्र, मालूम नहीं होता कि आप से क्या कहूँ। आप जैसे लोग न दिखायी पड़ें यही अच्छा है, क्योंकि अङ्गों के काटे जाने की अपेक्षा भी अधिक दुःखद यह दर्शन का विच्छेद अच्छा नहीं ॥

अतः प्रार्थ्यसे भूयो दर्शनार्थम्, इयं भविष्यति भवत्प्रियस्य कस्याप्युपायनमात्मस्मरणनाटकसूत्रधारी हारलता' इत्यभिधाय नलमुररीकृत्य 'महानुभाव, द्वाभ्यां श्रुतोऽसि पान्थादस्माद्राजहंसाच्च, द्वाभ्यामुह्यसे वाचा हृदयेन च, द्विकालं स्मर्यसे दिवा नक्तं च, द्वयी गतिरस्माकमिदानीं त्वं वा मृत्युर्वा' इति द्विसंख्यसंदेशार्थमिव द्विगुणीकृत्योन्मुच्य च स्वकण्ठकन्दलादुत्कण्ठितामिव स्वां मूर्तिमतीं तस्य मुक्तावलीं गले व्यलम्बयत् ॥

"अब पुनः दर्शन दीजियेगा, यही प्रार्थना है। यह हार लता आप के प्रिय (नल) के लिये उपहार तथा हमारी स्मृतिरूप नाटक के लिये सूत्रधार होगी।' यह कहकर नल को हृदय से स्वीकार कर महानुभाव, दो से सुने गये हो, प्रथम बार उस पथिक से तथा दूसरी बार इस राजहंस से। दो पदार्थों से धारण किये जा रहे हो, वाणी से और हृदय से। दो समय में स्मरण किये जा रहे हो, रात और दिन। इस समय हमारी दो ही गति हैं, तुम या मृत्यु। मानो दो सन्देश के लिये अपने कण्ठ कन्दल (अङ्कुर) से निकाल कर और उसे दुगुना कर उत्कण्ठावस्था की अपनी प्रतिमूर्ति उस मुक्तावली को उसके गले में लटका दी।

सोऽपि "सुन्दरि, सोऽयं स्कन्धीकृतो मया मुक्तावलीच्छलेन तस्य पुरो भवद्वर्णनाभारः" इत्यभिधाय सह तेन विहंगमगणेनोत्पपात ॥

सोऽपीति ॥ स्कन्धीकृतोऽङ्गीकृतः ॥

"सुन्दरी, मुक्तावली के बहाने उस ( नल ) के सामने आपके वर्णन का भार ही मैंने अङ्गीकार किया है।" यह कहकर वह हंस भी पक्षियों के साथ उड़ गया ॥

**उत्पतिते च नभस्तलम् 'आगच्छत, सपद्यन्तां सफललोचनाः, पश्यतापूर्वं स्त्रीरत्नम्' इति चलत्पक्षपल्लवव्याजेन दूराद्दिक्पालानिवाह्वयति तीव्रप्रभनमयूखसंतप्तां दिवमिवोपवीजयति, दिक्कुञ्जरनिरुद्धावकाशा आशा इवाश्वासयति, पक्षिमण्डले तस्मिन्विस्मयोन्मुखी सा भूपालपुत्री निर्निमेषं निक्षिप्य चक्षुश्चिरमूर्ध्वैवायतस्थे ॥**

उत्पतित इति ॥ दिक्पालानाह्वयतीत्यनेन भाविदिक्पालागमनं सूच्यते ॥

उन पक्षियो के समूह के उड़ जाने पर आश्चर्य से मुख ऊपर उठा कर वह राजकुमारी निर्निमेष दृष्टि को उन्ही पर लगा कर चिर काल तक उन्ही की ओर देखती रही। ( उड़ते हुए पक्षियों का समूह ) अपने पल्लव सदृश पखो के बहाने मानो यह कहता हुआ दिक्पालो को बुला रहा था, "आओ देखो इस कन्यारत्न को और अपनी आँखों को तृप्त करो" या सूर्य की प्रखर किरणों से सन्तप्त आकाश को पखा झेल रहा था, या दिग्गजो से घिरी हुई दिशाओं को आश्वासन दे रहा था।

**चिन्तितवती च—**

**'तात तावन्ममाप्येवं न विधत्से प्रजापते।**
**पक्षी पक्षिवदुड्डीय येन पश्यामि तन्मुखम् ॥ ३ ॥**

वह सोचती थी—

पिता ब्रह्माजी, मुझमे भी पख क्यों नही बना देते कि उन पखो से उड़ कर उस ( नल ) का मुख देख सकूँ ॥ ३ ॥

**अपि च—**

**उड्डीय वाञ्छितं यान्तो वरमेते विहङ्गमाः।**
**न पुनः पक्षहीनत्वात्पङ्गुप्रायं कुमानुपम् ॥ ४ ॥**

उड्डीयेति ॥ यद्यपि मनोरमायां स्त्री मानुषी पुमान्मानुष इति 'स्त्रीपुंसयोरपत्यान्ता द्विचतुःषट्पदोरगाः' इति लिङ्गविवचनान्मानुषशब्दस्य स्त्रीपुंसयोर्वृत्तिता, तथापि नपुंसकत्वमपि। लिङ्गस्य लोकाश्रयत्वात्। तथा च भवभूतिः—अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः। कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तद्दुर्लभम्' ॥ ४ ॥

उड कर अपने आकाङ्क्षित स्थान पर चले जा रहे ये पक्षी अच्छे किन्तु पक्षहीन होने के कारण लंगडे की तरह यह कुत्सित मानव जीवन अच्छा नहीं ॥ ४ ॥

इति चिन्तयन्ती गतेष्वपि तेषून्मुखी तां दिशमनुविस्मयविस्फार-लोचना निस्पन्दनया काष्ठकल्पामवस्थां दधाना चिरात्सखीभिः सम्बोध्य स्वगृहमनीयत ॥

यह सोचती हुई, उन पक्षियों के चले जाने पर भी उसी दिशा की ओर आश्चर्य के मारे आँखों को फैला कर, निश्चल होकर काठ की दशा को धारण करती हुई, देर तक सखियों द्वारा बुलायी जाने पर अपने घर गयी ॥

ततः प्रभृति च तस्याः सरलीभवन्ति निश्वासा न हासाः, स्खलन्ति वाचो न शुचः, वर्धते तन्द्रा न निद्रा, स्रवति स्वेदाम्भो न स्तम्भः, मन्दायते स्वरो न स्मरः, वाञ्छा चन्दनाय न स्पन्दनाय, सन्तापशान्तये तद्गुणादानं न स्नानम्, प्रीयते हारो नाहारः, सुखायाङ्गे लगन्नुद्यानप्रभञ्जनो न जनः ॥

तत इति ॥ प्रभञ्जनो वात एवाङ्गे लगन्नुद्यान न परिजन ॥

उस दिन के बाद निश्वास ही उसके लिये सरल थे, हास नहीं। वाणी ही कम हुई, चिन्ता नहीं। तन्द्रा ( जँभाई ) ही बडी निद्रा नहीं। पसीने ही निकले, शरीर की जकड नहीं गई। स्वर ही मन्द पडा, काम मन्द नहीं हुआ। चन्दन की इच्छा हुई, स्पन्दन ( घूमने ) की नहीं। वेदना की शान्ति के लिये उस नल के गुणों का ग्रहण ( श्रवण ) ही उपयुक्त था, स्नान नहीं। ( शीतलता के लिये कमल शैवाल आदि के ) हार ही प्रिय लगते थे, आहार ( भोजन ) नहीं। अङ्गों को छूता हुआ उपवन का पवन ही अच्छा लगता था, आदमी नहीं ॥

पठति च मुहुर्मुहुरिम श्लोकम्—

श्राम्यन्ति न कुत्रचिन्न च पुनर्मुह्यन्ति मार्गेष्वपि
प्रोत्तुङ्गे विलगन्ति नान्तरतरुश्रेणीशिखापञ्जरे।
खिद्यन्ते न मनोरथाः कथममी तं देशमुत्कण्ठया
धावन्तः पथि न स्खलन्ति विषमेऽप्यास्ते स यस्मिन्प्रियः ॥५॥

चिन्तयन्तीति॥ मनसि रथा इव मनोरथा मङ्क्षवः। विश्रामादयो रथधर्माः ॥ ५ ॥

बार बार इसी श्लोक को पढती थी—ये मेरे मनोरथ उत्सुकतापूर्वक उस देश की ओर दौड रहे हैं। कहीं विश्राम नहीं लेते। मार्ग में कहीं ( थक

कर ) मूर्च्छित नहीं होते। कहीं भी ऊँचे शिखरों से टकराते नहीं। बीच की वृक्ष पङ्क्तियों की ऊँची शाखा रूप व्याकुल में फँसकर खिन्न नहीं होते। उस टेढ़े मेढ़े रास्ते में जहाँ वह प्रिय रहता है, कभी विचलित नहीं होते ॥ ५ ॥

तेऽपि राजहंसाः शशाङ्कधरेषु, सप्रपञ्चपञ्चाननेषु, शिवरूपेषु, वनेषु, सुशोभां कौमुदीं दधत्सु, शश्वदनुकृतसामुद्रवृद्धिषु, चन्द्रमण्डलरूपेष्विव सरःसलिलेषु विहरन्तस्तुहिनाद्रिकुञ्जानिव सत्रिपथगाजगनगरग्रामाग्रहारपत्तनप्रदेशानुल्लङ्घयन्तः कतिपयदिवसैरासेदुरुद्यानं निषधायाः ॥

तेऽपीति ॥ हंसा वनेषु सरोजलेषु च विहरन्तो नगरादिप्रदेशान् व्यतिक्रामन्तो निषधोद्यानमापुः। कीदृक्षु वनेषु। शशा अङ्के यस्यास्तथाभूता धरा भूमिर्येषु। तथा सप्रपञ्चाः पञ्चाननाः सिंहा येषु। शिवस्तु शशाङ्कं चन्द्रं धरति। तथा सह प्रपञ्चैः पृथग्मार्गागमोपदेशलक्षणैर्वर्तन्ते तथाभूतानि पञ्चसंख्यानि आननानि वक्त्राणि यस्य। सरोजलेषु कीदृक्षु। कुमुदानामिव कौमुदी शोभा ताम्। चन्द्रमण्डले तु कौमुदी चन्द्रिका ताम्। तद्विशेषण सुशोभामिति। अनुकरणमनुहरणम्। चन्द्रपक्षे अनु पश्चात्कृता सामुद्री वृद्धिर्येन। चन्द्रोद्गमो हि जलधिविवृद्धये। न विद्यन्ते नावो यत्र तदनु, अनु यथा भवति एव कृतवृद्धिषु। पूर्णे हि न केऽपि नाव विपन्तीति। नगरादि प्रदेशान्। कीदृशः। सत्राणि ब्राह्मणादीनां भोजनानि यत्र वा विद्यन्ते येषु। ते च ते पन्थानश्च सत्रिपथास्तान्गच्छन्ति प्राप्नुवन्तीति सत्रिपथगास्तान्। हिमाद्रिनिकुञ्जास्तु सह त्रिपथगया गङ्गया ( तस्य द्विरदम् ) ॥

वे राजहंस भी, अपने अंक ( गोद ) में खरगोशों को धारण की हुई पृथ्वी वाले, कपटपूर्ण सिंहों वाले, शिव के रूप सदृश वनों में, कुमुदों की शोभा धारण करने वाले, निरन्तर समुद्रवृद्धि का अनुकरण करने वाले, चन्द्रमण्डल रूप सरोवर जलों में विहार करते हुए यज्ञों से अलङ्कृत मार्गवाले पर्वतों, नगरों, गाँवों, दानभूमियों और नगरक्षेत्रों को लाँघते हुए कुछ ही दिनों में निषध नगरी के उपवन में पहुँच गये ॥

[ इस अनुच्छेद के प्रायः प्रत्येक शब्द श्लिष्ट हैं। वनपक्ष—शशाङ्कधर—शश ( खरगोश ) अपने अङ्क ( गोद ) में जहाँ की धरा ( पृथ्वी ) धारण करती है, ऐसे वन को शशाङ्कधर कहा गया है।

सप्रपञ्चपञ्चाननेषु—प्रपञ्च के साथ ( शिकार को पकड़ने के लिये ) चुपके से कपटपूर्ण भाव में जहाँ के सिंह बैठे हुए हैं।

इस व्याख्या के अनुसार शशाङ्कधर और सप्रपञ्चपञ्चानन, दोनों ही वन के विशेषण हैं। ये विशेषण शिव पक्ष में भी लगेंगे।

शिवपक्ष—शशाङ्कधरेषु—शशाङ्क ( चन्द्रमा ) को धारण करने वाले, सप्रपञ्चपञ्चाननेषु—साङ्गोपाङ्ग वेदों से युक्त पाँच मुखों वाले।

सुशोभा ···विहरन्त—सरोवर पक्ष में—कौमुदी शोभा—कुमुदों मे होने वाली शोभा को कौमुदी शोभा कहा गया है। शश्वदनुकृत समुद्रवृद्धिषु—सरोवरों मे इतना जल है कि बढ़े हुए पूर्णिमा के समुद्र का सदा अनुकरण करते हैं। समुद्र तो केवल पूर्ण चन्द्र को देखकर बढ़ता है किन्तु ये सरोवर तो सदा बढ़े रहते हैं।

चन्द्रमण्डलपक्ष—कौमुदी ( चन्द्रिका ) की शोभा धारण किया हुआ रहता है। शश्वदनुकृतवृद्धिषु—अपनी पूर्णता के बाद सदा समुद्र की वृद्धि करता है।

तुहिनाद्रि · लङ्घयन्त :—नगर ग्राम आदि हिमालय के कुञ्जों की तरह हैं।

तुहिनाद्रि कुञ्ज पक्ष—हिमालय पर्वत के कुञ्ज सुन्दर त्रिपथगा ( गंगा ) के साथ हैं ( अत उन्हें सत्त्रिपथग कहा जाता है। द्वितीया के बहुवचन में सत्त्रिपथगान् रूप है।

नगर-ग्राम आदिपक्ष—सत्र ( यज्ञ, दान आदि ) कार्य जिन मार्गों में चल रहे हैं वे मार्ग सत्त्रिपथ हुए। उन मार्गों के साथ जिन नगरों और गावों का सम्बन्ध है वे सत्त्रिपथग हुए। अर्थात् वे पवित्र आत्मा वाले हंस शोभा सम्पन्न धार्मिक मार्गों से गये जिनमे यज्ञ, दान आदि के कार्य चल रहे थे। ऐसे मार्ग मे जाने का फल यह भी था कि कोई व्याध आदि हिंसक तत्त्व उनकी यात्रा के बाधक नहीं हुए। दूसरा लाभ यह भी था कि धार्मिक लोगो द्वारा बिखेरे गये भोज्य पदार्थों से भोजन का काम भी सम्पन्न हो गया।

अग्रहार—अग्र ( ब्राह्मण भोजन ) के लिये राजकीय सम्पत्ति से अलग किये गये क्षेत्र को अग्रहार कहते हैं। "अग्र ब्राह्मण भोजन, तदर्थं ह्रियन्ते राजधनात् पृथक् क्रियन्ते क्षेत्रादिरिति अग्रहार" ॥ नीलकण्ठ ॥

क्षेत्रोत्पन्नशस्यादुद्धृत्य ब्राह्मणोद्देशेन स्थाप्य धान्यादि, गुरुकुलावृत्त ब्रह्मचारिणे देय क्षेत्रादि, ग्रामभेदश्च। वाचस्पत्यम्, तारानाथ।

खेत में उत्पन्न अन्न से निकाल कर ब्राह्मण के लिये जो अन्न रक्खा जाय उसे या गुरुकुल से लौटे हुए ब्रह्मचारी को दी जाने वाली भूमि को अग्रहार कहते है। ग्राम विशेष का भेद भी अग्रहार है॥

**क्रीडितुमारभन्त च स्वच्छन्दम्॥**

स्वच्छन्द खेलना भी प्रारम्भ कर दिये।

**अथ तेषामन्यतमामवलोक्य क्रीडातडागपङ्कजपञ्जरे राजहंसीमागत्य त्वरया हंसदर्शनोत्सुक सरोरक्षिका राजानं व्यज्ञिपत्—**

क्रीडासरोवर के कमलों के बीच उनमे से एक राजहंसी को देखकर सरोवरपालिका ने बड़ी शीघ्रता से हंस को देखने के लिये उत्सुक राजा को सूचित किया—

> 'देव, हंसवार्त्तामनुदिनं पृच्छति देवस्तदद्य काचित् ॥
> कुरुते नालकवलनं दूरं विक्षिपति गर्भजम्बालम् ।
> त्वदरिवधूरिव राजन्नुद्यानसरोगता हंसी ॥ ६ ॥

कुरुत इति ॥ राजन् नृप, उद्यानतडागगता हंसी नालस्य विसकाण्डस्य कवलनं ग्रासं कुरुते । तथा गर्भे मध्ये यो जम्बालः कर्दमस्तं च दूरं परिक्षिपति । वधूस्तु उद्यानेन पलायनेन सरोगता रोगवत्ता यस्याः । यथा अलकस्य वलनं न कुरुते । गर्भजातं बालं दूरे क्षिपति । भीत्या हि गर्भं पतति ॥ ६ ॥

''श्रीमन् , हंस की बात प्रति दिन पूछते रहते हैं तो आज आपके उपवनसरोवर मे कोई एक हंसी कमल तन्तुओं को खा रही है और बीच के पङ्क को बाहर फेंक रही है। (इस तरह का कार्य करती हुई) वह आप के शत्रुओं की पत्नियों की तरह लग रही है ॥ ६ ॥

[ यह पद्य श्लेष के माध्यम से अरिवधू और हंसी दोनों पक्षों में लगेगा। हंसी पक्ष :—

उद्यानसरोगता ( उद्यान सरोवर में आयी हुई ) हंसी नालकवलन ( बिस-तन्तुओं का भोजन ) करती है और गर्भ ( बीच ) के जम्बाल ( कीचड़ ) को दूर फेंकती है।

अरिवधूपक्ष —शत्रुपत्नी भी उद् + यान ( डर के मारे जोर से भागने ) के कारण सरोगता ( रोग की अवस्था ) प्राप्त कर गर्भज ( गर्भस्थ ) बाल ( सन्तान ) को फेंक देती है। और अलक ( केशों ) का वलन ( बन्धन ) नहीं करती। जोर से भागने के कारण गर्भस्राव हो जाता है। विधवा होने के कारण वेणीबन्धन नहीं करती ॥ ६ ॥ ]

अपि च—

> अभिलषति नालमशनं स्वपिति नवाम्भोजपत्रशयनेऽपि ।
> नीरागमना नृपते तव रिपुवनितायते हंसी ॥ ७ ॥

अभिलषतीति ॥ नालं कमलकाण्डमशनमाहारं वाञ्छति । स्वपित्यपि नूतनाब्जपत्रशय्यायाम् । नीरे आगमनं यस्याः । रिपुवनिता नीरागा वैराग्योपेतं मनो यस्याः । अत एवालमत्यर्थमशनं नाभिलषति । नापि कमलदलतल्पे शेते । या अथवार्थे ॥ ७ ॥

राजन्, पानी में आयी हुई यह हंसी बिसतन्तु भोजन की अभिलाषा करती है। नवीन कमलपत्रों की शय्या पर सोती भी है। तुम्हारे शत्रुओं की पत्नियों की तरह आचरण कर रही है ॥ ७ ॥

[ हंसीपक्ष—नीरागमना ( सरोवर जल में आकर ) नालम् ( बिस तन्तु रूप ) अशन ( भोजन ) चाहती है। नव + अम्भोजदल + शयन ( नवीन कमल पत्र की शय्या ) पर सोती है।

रिपुवनितापक्ष—नीराग + मना ( वैराग्यपूर्ण चित्तवृत्ति वाली ) रिपुपत्नी न + अलम् + अशनम् ( पूर्ण भोजन नहीं ) करती है। न+वा+अम्भोज पत्र+शयन ( न तो कमलपत्र की शय्या ) पर सोती है।

अर्थात् शोक सन्तप्त रिपुपत्नी का चित्त राग सम्पन्न न रहकर नीराग सम्पन्न हो गया है। उदासी के मारे उसे भोजन भी अच्छा नहीं लगता। अब वह कमलपत्रशय्या जैसे कोमल आसन पर सोती भी नहीं। नीरागमना, नालम् अशनम् और नवाम्भोजशयन ये साधारण शब्द हैं क्यों कि इनका अन्वय हंसी और रिपुपत्नी दोनों पक्षों में हुआ है ॥ )

राजापि तस्याः श्लिष्टार्थमिदमार्यायुगलमवधारयन्स्तोकस्मित-सुधाधवलिताधरपल्लवः 'लवङ्गिके, यथा कथयसि तथा तेऽप्यागता हंसाः कथमन्यथा तस्याः खल्वेकाकिन्याः संभवः' इति तद्वार्त्तया यावदास्ते ॥

तावन्नीलोत्पलदलदीर्घलोचना चन्द्रमुखी बन्धूककुसुमकान्तदन्तच्छदा नीलांशुकपटी परिदधाना पक्वकलमञ्जरीगौराङ्गी प्रकाशहासा हंसैरनुगम्यमाना। मूर्तिमती शरदिव वनपालिका प्रविश्य।

तावदिति ॥ यावद्वार्तयास्ते नृपस्तावत्। शरदुपमा वनपालिका प्रविश्य देवेत्यभिधाय तं राजहंसं राज्ञः पादयोर्निधाय प्रणामं चकार। नीलोत्पलदलदीर्घाणि लोचनानि दीर्घाणि लोचनानि यस्याः। दन्तच्छदः ओष्ठः। नीलमंशुकं वाससस्तस्य पटी उत्तरीयम्। परिपाके हि शालिर्गौरः स्यादनस्तन्मञ्जरीवद्गौरमङ्गं यस्याः। प्रकृष्टा काशा काशपुष्पमिव हासो यस्याः ॥

राजा भी श्लिष्ट अर्थों में सम्पन्न उसकी दोनों आर्याओं पर विचार करता हुआ' "लवङ्गिके, जैसे बता रही हो उससे यह प्रतीत होता है कि वे हंस भी आ ही गये हैं। अन्यथा अकेली उसकी सम्भावना कैसे की जा सकती है।" इसी तरह उसके साथ बात कर ही रहा था तब तक शरद् काल की प्रतिमूर्ति जैसी एक वनपालिका आयी। उसके बड़े-बड़े नयन नीले कमल सदृश थे। मुख चन्द्रमा की तरह था, ओष्ठ बन्धूक पुष्प सदृश मनोहर थे। नीले

वस्त्र पहनी हुई थी। उसके अङ्ग पके हुए धान की बाल सदृश गोरे थे। हास्य शुभ्र प्रकाशपूर्ण था। हंसों से अनुगत थी।

[ वनपालिका का उपमान यहाँ शरत्काल है। शरत् भी उल्लसित कमलों से सुशोभित रहता है, चन्द्रमा का प्रकाश उन दिनों में अत्यधिक भास्वर बन जाता है। बन्धूक फूल भी खूब खिलते हैं। चने, गेहूँ आदि की हरियाली भी बढ़ जाती है। धानों की बालें पक कर पीली हो जाती हैं। हंस भी मानसरोवर से लौट आते हैं। काश पुष्प खिल आता है। वनपालिका के विभिन्न अङ्गों में शरद्वधू की ये सारी समानतायें पायी जाती हैं। इसीलिए उसे शरद् की प्रतिमूर्ति कहा गया है। ]

'देव, सोऽयं कथमप्यागतो रणरणककारणमपराधी विहंगः' इत्यभिधाय तं राजहंसमुभयकरकमलाञ्जलिगतमुत्फुल्लपाण्डुपङ्कजार्धमिव पुरः पादारविन्दयोर्निधाय शाह प्रणाममकरोत् ॥

"देव, उत्कण्ठा उत्पन्न करने वाला अपराधी यह वही हंस है।" यह कह कर अपने ( लाल ) कमल सदृश हाथों की अञ्जलि में सफेद कमल के खिले हुए आधे अंश की तरह उस हंस को लेकर राजा के चरण-कमल के सम्मुख रख कर प्रणाम की।

*[ वनपालिका की अरुण अञ्जलि में वह शुभ्र राजहंस लाल कमलों के गुच्छे में खिले हुए सफेद कमल के आधे अंश की तरह लग रहा था। ]*

राजापि 'सारसिके, साधु कृतम्। तत्क्रियतामद्यापि स्वाधिकारः। गम्यतामिदानीं 'यथास्थानम्' इत्यभिधाय तुष्टिप्रदानपरितोषितां तां लवङ्गिकासहितां विसृज्य, विरलीकृतपरिजनः प्रत्युज्जीवनौषधमिव प्राणरक्षाक्षरमिव स्वस्थीकरणमणिमिवाश्वासनाभेषजमिवाह्लादनकन्दमिव तमग्रेऽभ्यिनमानन्दनिःस्पन्दपक्ष्मपालिना चिरं चक्षुषाऽवलोक्य बहुमानयन्मुग्धस्मितेन स्वागतमपृच्छत् ॥

सोऽपि 'देव' दर्शनामृतमनुभवतो ममाद्य स्वागतम्' इत्यभिधायोपश्लोकयाञ्चकार ॥

राजा भी, "सारसिके, अच्छा किया तुमने। अब जाओ अपनी जगह पर और चरितार्थ करो अपने अधिकार को।" यह कह कर सन्तोष लायक दान देकर लवङ्गिका सहित उसे विदा कर, नौकरों को भी वहाँ से कम कर सजीवनी ओषधि सदृश, प्राणरक्षा के अक्षरों सदृश, स्वस्थ करने वाले मणि सदृश

और प्रसन्नता के मूल सदृश आगे बैठे [illegible] उस हर्ष को आनन्द के मारे निर्निमेष दृष्टि से देख कर उसे बहुत आदर देता हुआ मुस्कुराहट के साथ स्वागत वचन कहा। उसने भी, "देव, आपके दर्शन रूप अमृत का अनुभव कर मेरा स्वागत हो गया।" यह कह कर उनकी स्तुति की।

देव—

प्रसृतकमलगन्धं नीरसंसक्तकण्ठं
घृतकुवलयमालं जातभङ्गोर्मिकं च ।
त्वयि कृतरुषि भीतास्त्वादृशास्तं तडागं
निजमपि च कलत्रं शत्रवो नाद्रियन्ते ॥ ८ ॥

प्रसृतेति ॥ प्रसृतः कमलानामस्त्राला गन्धो यत्र। तथा नीरेण सम्यक्तो युक्तः कण्ठः पालिप्रान्तो यस्य। तथा धृता कुवलयानां नीलोत्पलानां माला येन। तथा जाता उत्पन्ना भङ्गास्तरङ्गा ऊर्मयः कल्लोला यत्र। एतच्चतुष्टयमपि तडागस्य हेतुः। देव, त्वयि रुष्टे शत्रवो ... नाद्रियन्ते। यावत्कलत्रमपि। तद्विशिष्टम्। प्रसृतः कं मूर्ध्नि मदगन्धो यस्याः। स्नानाभावात्। तथा निर्गतो रसो यस्मात्। ... यत्र। तथा सक्ताऽऽश्लेषेण कण्ठो यस्य। तथा धृता कुत्सितवलयानां सुवर्णाद्यभावात्काचादिवलयानां माला येन। तथा जातभङ्गा भग्ना ऊर्मिका अङ्गुलीयकं यस्य ॥ ८ ॥

"देव, कमलों की गन्ध से व्याप्त जल से पूर्ण, कमलपङ्क्ति को धारण किये हुए, चलती हुई वक्र तरङ्गों वाले तडाग को कौन कहे, आपके क्रोध करने पर ( इन विशेषणों से युक्त ) अपनी भी पत्नी को आपके शत्रु आदर की दृष्टि से नहीं देखते ॥ ८ ॥

[ इस श्लोक के प्रथम दो चरण श्लिष्ट है। दोनों चरणों की पदावली तडाग और कलत्र दोनों पक्षों में लगती है। तडागपक्ष—प्रसृतकमलगन्ध—कमल की गन्ध जहाँ फैली हुई है। नीरसंसक्तकण्ठं—जिसके कण्ठ ( तट ) के बराबर तक जल लगा हुआ है। धृतकुवलयमाल—जो कुवलय ( कमल ) की माला धारण कर रक्खा है। जातभङ्गोर्मिक—जिसमें टेढ़ी टेढ़ी लहरियां तरङ्गित हो रही हैं। कलत्रपक्ष—प्रसृतकमलगन्ध—प्रसृत ( फैल गया है ) क ( सिर ) पर मल गन्ध जिनके। नीरसम्—शोक के कारण शृङ्गार आदि की विलासपूर्ण चेष्टायें जिनकी समाप्त हो गयी हैं। शोक-सन्ताप के कारण नीरस बन गई हैं। सक्तकण्ठं दुर्बल हो गयी हैं। धृत + कु + वलय + मालम्—धन के अभाव और सन्ताप की अधिकता के कारण कु ( कुत्सित काच आदि का ) वलय ( कङ्कण ) और माला धारण की हुई हैं। जातभङ्गोर्मिकम्—जिनके हाथों की ऊर्मिका ( अंगुठी ) समाप्त हो गयी है।

*जल, पुष्प, गन्ध आदि रमणीय पदार्थों से सम्पन्न आपके सरोवर की शोभा* के बारे में क्या कहना है। आप जब क्रुद्ध हो जाते हैं तो आपके उल्लास को व्यक्त करने वाले इस सरोवर को कौन कहे अपनी पत्नियो को भी नहीं देख सकते। शत्रु के उल्लास को आदरपूर्वक नहीं ही देखा जाता है। अत आपके सरोवर को वे लोग आश्चर्य से नही देखते इसम कोई आश्चर्य नही है। आश्चर्य की बात यही है कि वे अपनी पत्नियो को भी आदर के साथ नहीं देखते।

यहाँ तड़ाग और कलत्र दोनो के विशेषण समान ही हैं, किन्तु इन विशेषणो से तडाग की प्रसन्नता तथा उल्लास की स्थिति व्यक्त होती है और इन्हीं विशेषणों से कलत्र की अत्यन्त विपन्न स्थिति ज्ञात होती है ॥

किं चान्यम्—

**असमहरिततीरं विस्रजम्बालशेषं**
**स्फुटकुमुदपरागोल्लाससंपद्वियुक्तम्।**
**वयमिह बहुशोक दृष्टवन्तो वनान्ते**
**त्वदरियुवतिलोकं ग्रीष्ममासे सरश्च' ॥ ९ ॥**

असमेति। हरितते सिंहपदूते सकाशादीर चेपक्वासो हरिततीर, असमो हरिततीरो यस्य। अथवा मा लक्ष्मीस्तया सह सम, न सममसममश्रीकम्। यथा हरिततीर्वानरपङ्क्तीरीरयति त्रिपति। पश्चात्कर्मधारय। तथा विगतस्रज विगतमालम्। तथा बालशेप हतभर्त्रादित्वात्। तथा स्फुट कु कुत्सा यस्य स स्फुटकम्। तथा उद्गतोपरागस्य रागाभावस्योल्लासो यस्य। स चासौ सपद्वियुक्तश्च। अथवा स्फुटा कुत्सितोदरभरणादिमात्रमा मुदस्य स स्फुटकुमुत। तथा पगतो रागोल्लासो यस्य। स्फुटकुमुच्चासावपरागोल्लासश्च स्फुटकुमुदपरागोल्लास, स चासौ सपद्वियुक्तश्च। बहु शोको यस्य। ईदृश त्वदहितस्त्रीजनमपश्याम। ग्रीष्मे सर इव। तदपि कीदृक्। सम हरित तीर यस्य तस्ममहरिततीर, न सम हरिततीरमसमहरिततीर, विषम शुष्क च तीर यस्येत्यर्थः। तथा विस्र आमगन्धिको जम्बाल कर्दम एव शेपो यत्र। तथा विकसितकुमुदरेणूल्लाससमृद्धिरहितम्। नास्ति क अल यत्रेत्यकम्। बहुश इति क्रियाविशेषणम् ॥ ९ ॥

तीर पर अनुपम हरी हरी घास लगी है। अभद्र गन्धयुक्त कीचड ही बच गया है। कमलो की पराग सम्पत्ति का विकास स्पष्टत नष्ट हो चुका है। वन के पास ग्रीष्मकालीन सरोवर और आपके शत्रुओ की पत्नियो को बहुत शोकपूर्ण स्थिति मे मैंने बहुत बार देखा है ॥ ९ ॥

[ इस पद्य म अधिकाश पद अरियुवतिलोक और सरोवर, दोनों पक्षो मे लगते हैं।

सरोवरम्—पानी के हट जाने से भूमि की आर्द्रता के कारण ( असमहरिततीरम् ) तटीय भाग अनुपम ढग से हरा हो गया है। जल के कम हो जाने से ( विलग्नम्बालशेषम् ) दुर्गन्धपूर्ण कीचड़मात्र अवशिष्ट रह गया है। खिले हुए कुमुदों की पराग सम्पत्ति से स्पष्टतः हीन हो गया है। मैंने बहुशः ( बहुत बार ) इस ग्रीष्मकालीन अक ( अल्पजल वाले ) सरोवर को देखा। क का अर्थ जल है। क के साथ अल्प अर्थ में नञ् समास हुआ है।

अरियुवतिलोकम्—असन+हरि+तति+ईरम्—बड़े बड़े सिंहों के समूह से डरायी जा रही हैं। विस्रजम्—पति के नष्ट हो जाने के कारण माला आदि शृङ्गार के साधनों को छोड़ चुकी हैं। बालशेषम्—पति के नष्ट हो जाने पर केवल बच्चे ही अवशिष्ट रह गये हैं।

स्फुट कुमुद—भोजन मात्र प्राप्त हो जाने से होने वाली कुत्सित प्रसन्नता का पात्र बन गयी है। उनमें ( अपराग ) वैराग्य का ही उल्लास है। संपद्वियुक्त—सम्पत्ति से हीन हो गयी हैं। मैंने उन्हें वनों के बीच बहुशोक (शोक पूर्ण स्थिति ) में देखा है॥ ]

राजापि 'श्लेषोक्तिनिधे, तथा गृहीत्वास्मन्मनो गतवानसि, यथा सुखसंवित्तिशून्याः संतापारम्भिणो रणरणकाङ्कुरप्ररोहकाः कथमप्य-स्माकमेतेऽतिक्रान्ता दिवसाः॥

राजा भी, "श्लिष्ट वचनों के सागर, आप मेरे मन को इस तरह लेकर चले गये थे कि वे सुख और चेतना से शून्य, सन्ताप उत्पन्न करने वाले दिन किसी-किसी तरह बीते।

तत्कथय। का भामाभिनन्दनीया सा दिक्, यस्यां विहारमकरोः। के ते सफलचक्षुषो जनाः, यैश्चिरमालोकितोऽसि। के लब्धसुभाषिता-मृतरसास्वादाः यैः संभाषितोऽसि। के प्राप्तजन्मफलाः यैः सह गोष्ठीमनुष्ठितवानसि॥

तो कहिये, वह कौन सी प्रशंसनीय दिशा है जहाँ आपने विहार किया। वे कौन से सफल नेत्र वाले लोग हैं जो आपका चिरकाल तक अवलोकन किये। मनोहर उक्ति सुधा का आस्वादन करने वाले वे लोग कौन हैं जो आपसे बातें किये। किसने अपने जीवन का फल प्राप्त किया जिसके साथ आपने गोष्ठी की!

स्पृहणीयसंगम, गते त्वयि तर्कशास्त्रमिव प्रस्तुतपरमोहम्, व्याकरणमिव भूतनिष्ठमिदमस्माकमासीन्मनः॥

स्पृहेति ॥ प्रकृतोत्कृष्टमोहं मनः, शास्त्र तु प्रस्तुत परम ऊहो वितर्को यत्र। भूता संजाता निष्ठा क्लेशो यत्र मनसि, व्याकरणे तु भूतेऽतीतकाले निष्ठासंज्ञः प्रत्ययो यत्र ॥

आकाङ्क्षणीय संगति वाले हंस, तुम्हारे चले जाने पर मैं तर्कशास्त्र की तरह परमोह ( उत्कृष्ट मोह ) में पड़ गया। व्याकरणशास्त्र की तरह मन भूतनिष्ठ ( क्लेशयुक्त ) हो गया ॥

[ तर्कशास्त्र में परमोह ( परक+ ऊह = विशिष्ट तर्क ) किया जाता है। व्याकरणशास्त्र भूतनिष्ठ ( भूत अर्थ में निष्ठा प्रत्यय होते ) है। क्त और क्तवतु प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं। ]

तदेह्येहि' इत्यभिधाय स्वयं करकमलतलेनोत्क्षिप्य सस्नेहं परामृशत् ॥

'आओ आओ" यह कह कर स्वयं ही अपने करकमलों से उठा कर बड़े प्रेम के साथ उस पर हाथ थपथपाये।

सोऽपि 'एष महाप्रसादो यदेवमनुकम्पतेऽस्मान्देवः' इत्यभिधाय गमनादारभ्य दमयन्तीदर्शनालापव्यतिकरमशेषं हारलतार्पणपर्यन्तमाचचक्षे ॥

वह हंस भी, "यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप हम पर इतनी कृपा करते हैं।" यह कह कर दमयन्ती से साक्षात्कार और वार्तालाप विषयक चर्चा से लेकर हारलता प्रदान तक की सारी बातें उनसे कह सुनाया।

आख्याय च चरणेनैकेन ग्रीवाग्रादाकृष्य तां तथास्थितामेव मुक्तावलीमिदमवादीत् ॥

यह सब कहने के बाद एक चरण से अपनी गर्दन में से उसी तरह रक्खी हुई मुक्ता माला को निकाल कर बोला—

'उन्मादिनी मदनकार्मुकमण्डलज्या
सौभाग्यभाग्यपरवैभववैजयन्ती ।
मुक्तावली कुलधनं नरनाथ सैषा
कण्ठग्रहं तव करोतु भुजेव तस्याः ॥ १० ॥

हे नरेन्द्र, उन्मत्त बना देने वाली, कामदेव के धनुर्मण्डल की प्रत्यञ्चा, ऐश्वर्य और दैव की अत्युत्कृष्ट पताका, कुल-धन रूप यह मुक्ता की माला उस दमयन्ती की बाहुलता की तरह आप के कण्ठ का आलिङ्गन करे ॥ १० ॥

अपि च—

प्रेमप्रपञ्चनवनाटकसूत्रधारी मूर्त्ता मनोभवनृपस्य नियन्त्रणाज्ञा ।
तस्याः स्वयंवरपरिग्रहहेतुरेषा हारावली हृदि पदं भवतः करोतु ॥११॥

और—

प्रेम के विस्तार रूप नवीन नाटक का सूत्रधार, सम्राट कामदेव की निरोमाला की मूर्तिमती आकृति, उस दमयन्ती को स्वयम्वर में परिगृहीत करने के लिये निमित्तभूत यह रत्नावली आप के हृदय में स्थान प्राप्त करे॥ ११ ॥

राजा तु तामादाय निरूप्य च चिरं चिन्तयांचकार ॥

राजा तो उसे लेकर बहुत देर तक देखता हुआ सोचने लगा ॥

'आनन्दिसुन्दरगुणामलकोपमान-
मुक्ताफलप्रचयमद्भुतमुद्वहन्ती ।
एषा च सा च नयनोत्सवकारिकान्ति-
श्चेतोहरा हृदि पदं न करोति कस्य' ॥ १२ ॥

आनन्दीति ॥ गुणस्तन्तुः शौर्यादिश्च । आमलकोपमानानां मुक्ताफलानां मौक्तिकानां प्रचयं समवायम् । अद्भुतमाश्चर्यकारिणम् । वहन्ती । दमयन्ती तु मदात्सानन्मालिन्याद्वा, कोपः क्रुधो, मनाहङ्कारमाहरयाद्वा मुग्धा भ्रष्टा । तथाद्भुतं चित्रं फलानां प्रचयं वहन्ती परिकेतुरिति शेषः । चेतोहरा मनोज्ञा । अन्यत्र चेतसि हरोऽस्याः । एवंभूतेयं मुक्तावली सा च कस्य हृदि वक्षसि चेतसि च, पदमवस्थानं न करोति, सर्वस्यापि करोतीत्यर्थः ॥ १२ ॥

आनन्द देने वाली, सुन्दर गुणों ( सूत्रों ) में गुथी हुई, आवले सदृश मुक्ता फलों को धारण करने वाली, चित्त को चुरा लेने वाली और आखों को आनन्द देने वाली यह रत्नावली और वह दमयन्ती भी आनन्द उत्पन्न करती है— सुन्दर ( उदारता आदि ) गुणों से युक्त है। मद, कोप तथा मान ( चिन्ता ) की स्थिति में गिरी हुई है, ( पुष्पा के ) फल समूह को धारण की हुई है, चित्त में हर ( शिव ) को रखती है, शरीरकान्ति आखों को आनन्द देने वाली है, किसके हृदय में स्थान नहीं बनाती ॥ १२ ॥

इति चिन्तयन्द्विगुणामेकगुणीकृत्य पुनः सस्पृहमैक्षत ॥
हंसस्तु विहस्य परिहासमकरोत् ॥

[ यहां रत्नावली और दमयन्ती के समान विशेषण हैं ॥ ]

यह सोचता हुआ द्विगुणित की हुई उस रत्नावली को एक गुणित कर बड़ी उत्कण्ठा से फिर उसे देखने लगा ।

[ जो दोहरी की गयी उसे एकहरी कर दिया । हंस को लानी थी इसलिये दोहरी कर छोटी कर दी गयी थी । राजा ने अच्छी तरह देखने के लिये एकहरी कर दी ॥ ]

'तया दत्ता मयानीता स्वयमाह्लादिनी त्वया ।
इत्यनेकगुणाप्येषा कथमेकगुणीकृता' ॥ १३ ॥

तया दत्तेति ॥ गुणाश्चारुतादयस्तन्तुसरिका च ॥ १३ ॥

हंस ने हँसकर परिहास किया—उसके द्वारा दी गयी और मेरे द्वारा लाई गयी, स्वय ही आनन्द की अभिव्यञ्जिका यह रत्नावली अनेक गुणो वाली है। इसे आपने एक गुण वाली कैसे कर दिया ॥ १३ ॥

राजापि परिहासेनान्तःसूत्रं दर्शयन् 'पक्षिपुंगव, किं न पश्यस्येकगुणैवेयम् ॥

राजा ने भी उसके भीतर के तन्तु को दिखाता हुआ कहा, "देखते नही, पक्षिवर, इसमे एक ही गुण ( तन्तु ) है"।

अथवा—

कः करोति गुणवान्गुणसंख्यां श्लाघ्यजन्ममहसः स्फुटमस्याः ।
कुम्भिकुम्भपरिणाहिनि तस्याः स्वैरमास्यत यया कुचयुग्मे' ॥ १४ ॥

कः करोतीति ॥ परिणाहो विशालता ॥ १४ ॥

अथवा—

"उत्पत्तिकाल से ही स्पष्ट रूप से प्रशसनीय तेजवाली इस रत्नाली के गुणों की सख्या का कौन गुणी आदमी वर्णन कर सकता है। ( एक समय ) यह हाथी के कुम्भस्थल सदृश विशाल स्तनयुगल पर स्वेच्छया रह चुकी है।" ॥ १४ ॥

इत्यभिधाय नीत्वा च निजकण्ठकन्दलम्, 'इहास्ते सा तव पूर्वप्रणयिनी' इत्यन्तःस्थितां दमयन्तीं दर्शयितुमिव हृन्मध्यवर्तिनीं तामकरोत् ॥

यह कह कर अपने कण्ठदल को आगे बढा कर "यह है तुम्हारी पूर्व परिचिता प्रेमिका" मानो अपने हृदय के भीतर ठहरी हुई दमयन्ती को दिखाने के लिये हृदय के बीच मे उसे कर दिया।

[ वह रत्नावली बहुत दिनों तक दमयन्ती के हृदय पर लोट चुकी है। इस समय उसके गले से निकल कर नल के पास आ गयी है। नल उसे गले मे पहन रहा है गले से लटकती हुई वह माला हृदय तक आती है। दमयन्ती को नल अपने हृदय में ला चुका है। इसीलिए कहता है, "रत्नावली, तुम ऐसा न समझना कि दमयन्ती के हृदय से दूर आ गयी हो। लो देखो, यहीं तुम्हारी पूर्व परिचित दमयन्ती रहती है।" मानो इसी भाव से माला को पहनता है ॥ ]

कृत्वा च किंचिदनुच्चस्मितं मधुरमधुरया वाचा 'विहंगपुंगव, पुनः कथ्यतां कीदृशी सा, कीदृग्रूपा, किं च वयः, कीदृशी लावण्यसंपत्, को विनोदः, कीदृशं वाग्वैदग्ध्यम्, किं प्रियम्, का गोष्ठी इति शृण्वन्नप्यपूर्वामिव तद्वार्तामादरेण पृच्छन्नागच्छंश्च चटुलकरकलितशरसंधानस्यानवरतविरचिताद्भुतभ्रमणकर्मकार्मुकवलयस्य लक्ष्यतां मकरकेतोरविदितापक्रमानतिबहून्वेलालवानध्यास्त ॥

कुछ मुस्कुराता हुआ अत्यन्त मधुर वाणी में, "पक्षिवर, फिर कहिये। वह कैसी है, किस रूप की है, क्या अवस्था है, किस तरह की सौन्दर्य सम्पत्ति है, कैसा विनोद है, कैसा वाग्विलास है, क्या प्रिय है, कैसी गोष्ठी है", यह सुनकर भी न सुने हुए की तरह आदर के साथ पूछता हुआ चंचल हाथों से शर सन्धान किये हुए निरन्तर विलक्षण ढंग से धनुष को घुमाने वाले कामदेव के धनुष का लक्ष्य बनता हुआ बहुत क्षणों तक जिनके व्यतीत होने का प्रकार ज्ञात नहीं हुआ, बैठा रहा।

स्थिते च विमृश्य मध्यमं नभोभागं भगवति भासुरभासि भास्वति, श्रवणपुटपथमवतरति च प्रहरावसानप्रहारभांकारिभेरीरवे, 'वयस्य, विश्रम्यतामिदानीममन्दारतरुपरिकरितरोधसि मन्दिरोद्यानारविन्ददीर्घिकायामेवं प्रार्थ्यसे च न गन्तव्यमविसर्जितेन त्वया पूर्ववत्, इति नियम्य तं राजहंसं स्वयमप्याह्निकायोदतिष्ठत् ॥

कान्तिपूर्ण भगवान् सूर्य के आकाश के मध्यभाग में चले आने पर, प्रहर की समाप्ति के अवसर पर बजाये गये नगाड़े के शब्द के कानों में आते रहने पर, "मित्र मन्दार वृक्षों से घिरे हुए तट वाले इस भवन के उद्यानस्थित कमलपूर्ण बावली में विश्राम करो, यही प्रार्थना है। पहले की तरह अनुमतिविना ही फिर न चले जाना।" इस तरह राजहंस को कह कर स्वयं भी दैनिक कार्य करने के लिये उठ खड़ा हुआ।

एवं च—

शिथिलितसकलान्यव्यापृतेरस्य राज्ञः
परिहृतनिजबन्धोर्यान्ति हंसेन सार्धम्।
दिनमनु दमयन्तीवृत्तवार्ताविनोदै-
रविदितपरिवृत्ता वासराः शारदीनाः ॥ १५ ॥

शिथिलितेति ॥ दिनमनु दिनं लक्षीकृत्य। एतेन रात्रिनिषेधः। पक्षिणो हि निशि नीडे लीयन्ते। तावद्दिनतोऽपि दिवसा हंसवार्तया अविदितपरिवृत्ताः। शरदि भव शारदं रूपमुष्णत्वातिशयादि तद्विद्यते यस्यामसौ शारदी इनो येषु ते शारदीनाः ॥ १५ ॥

अपने बन्धुओं को समीप में रहने के लिये मना कर दिया था। अन्य कार्यों को भी छोड़ दिया था। हंस के साथ दमयन्ती सम्बन्धी चर्चा के विनोद में शरत्कालीन दिन यों ही व्यतीत हो जाते थे। उनके व्यतयय के प्रकार का पता नहीं चलता था। पता नहीं लगता था कि दिन कब समाप्त हो गया। ॥ १५ ॥

[ सुख के अधिक क्षण समाप्त हो जाते हैं किन्तु उनकी समाप्ति के प्रकार का पता नहीं चलता। पक्षी में वार्ता का प्रसङ्ग है इसीलिए कवि दिन की चर्चा करता है। क्योंकि रात को वे पक्षी अपने घोंसले में छिप जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी उपलब्धि असम्भव हो जाती है। इसी तरह भवभूति ने भी समयव्यत्यय की चर्चा उत्तररामचरित में की है—अविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत् ॥ १५ ॥ ]

**एकदा प्रस्फुरत्प्रभातारम्भप्रभया प्रभिद्यमाने नयनीलाञ्जनिकाकुसुमकान्तिनि तमसि, विलोनलाक्षाम्भोभिरिव सिच्यमानायां शनैः शचीदयितदिशि मन्दमुन्मिषत्कमलमुकुलोच्छलन्मधुलालिचक्रवालकलकलेनोन्निद्रितेन तन्द्रामुद्रितोन्मिषच्चक्षुषा चलच्चञ्चूकोटिकण्डूयनविरामधुतपक्षरोमराजिना राजहंसकदम्बकेनानुगम्यमानो विहाय विहंगमः सरस्तीरम्, उपसृत्य किंनरमधुरगीतध्वनिविनिद्रितमावदयकावसाने राजानम्, इदमवदत् ॥**

एकदेति ॥ नीलाञ्जनिका तापिच्छ' ॥

एक दिन प्रातःकालीन किरणें छिटक रही थीं। तापिच्छ पुष्प सदृश कान्ति वाला अन्धकार समाप्त हो रहा था। गले हुए लाह से मानो इन्द्र की (पूर्व) दिशा सींची जा रही थी। खिलते हुए कमलों की कलियों में से उछल कर निकलने वाले चपल भ्रमर समूह की गुञ्जार ध्वनि से जगा हुआ जभाई के कारण बन्द आंखों को खोलता हुआ, चपल चोंच के अग्रभाग से शरीर को खुजला लेने के बाद पक्ष के रोमों को कम्पित कर, राजहंस वर्ग के आगे आगे चल कर, सरोवर तट को छोड़ कर, किन्नरों को मीठी गीत ध्वनि से उचित समय पर जगे हुए राजा के पास जा कर बोला—

**'देव, विज्ञापयामो देवस्य दर्शनम् अनालेप्यं चन्दनम्, अस्पर्शं कर्पूरपांसुपटलोद्धूलनम्, अपानव्यमसृतम्। अनास्वाद्यं रसायनम्, अलेह्यं मधु। कुतः किलैतदनुभवतामस्माकमपि वर्षसहस्रेणापि परितोषः। किं तु तिरयति स्वातन्त्र्यं प्राणिनां परपरिग्रहो दुस्त्यजाश्च जलजन्मनोऽपि जन्मभूमयो भवन्ति। अवगमिष्यति च विश्रब्धमेतत्सर्वमपि**

देवो यादृशा येन च जन्मान्तराराधनोपरोधेन प्रेषिता वयम्। अनवसरः खल्वयमस्य कथाप्रक्रमस्य। तथापि दिशतु देवोऽस्मान्गमनाय। न च प्रस्तुतानुचरालापेषु वयं विस्मरणीयाः। किमन्यज्जन्म च जीवितं च तदेव श्लाघ्यं मन्यामहे, यत्र प्रसङ्गेन भवादृशा अनुस्मृतिं कुर्वन्ति। तदेष प्रस्थानप्रार्थनाप्रणामः' इत्युक्तवन्तमिममवनिपालः कथमपि विसर्जयामास॥

देवेति आस्तां मनुष्याणाम्, अस्माकमपि पक्षिजातीयानामपीत्यभिप्रायः। तिरयति तिरस्करोति॥

श्रीमन्, मैं आप का दर्शन चाहता हूँ जो एक तरह का न लेपने योग्य चन्दन है, अस्पृश्य कर्पूर धूलि की राशि में स्नान है। न चखने लायक पौष्टिक पेय है। न पीने लायक अमृत है। न चाटने लायक मधु है' यदि हम इसका सहस्र वर्षों तक भी अनुभव करते रहें तो सन्तोष कहाँ हो सकता है। किन्तु विवाह प्राणियों की स्वतन्त्रता छीन लेता है। जल में रहने वाले लोगों की भी जन्मभूमि दुस्त्यज होती है। जैसे और जिस जन्मान्तरीय पुण्य के कारण हमलोगों को आपने भेजा यह सब सुस्थिर हो कर आप स्वयं समझेंगे। इन सब कथाओं को कहने का अवसर नहीं है। अच्छा, अब आज्ञा दें, हम लोगों को जाने के लिए। भृत्यों की प्रासङ्गिक चर्चा में हमें भूलेंगे नहीं। उसी जीवन और जन्म को हम श्लाघ्य मानते हैं जिसे प्रसङ्गतः आप जैसे लोग याद करते हैं। अच्छा तो, यह चलते समय का मेरा प्रार्थना-द्योतक प्रणाम है।" इस तरह कहते हुए उस हंस को राजा ने किसी किसी तरह जाने की अनुमति दे दी॥

गते च तस्मिन्नविस्मरणीयोपकारे कादम्बकदम्बकेश्वरे, श्रवणप्रणालिकया प्रविश्य मानसं सरस्तरलयन्त्यां विदर्भराजहंससुतायां, प्रहरति प्रत्यङ्गमनङ्गधानुष्के, समीपवनविकासिकुसुममकरन्दास्वादमदमेदुरगिरां गच्छति श्रवणपथमतिमधुरे मधुलिहां झङ्कारे, आकर्णपूरीकृतकार्मुकगुणे रणरणकारम्भिणि तत्रावसरे॥

गते चेति॥ तस्मिन्हंसवृन्दनेतरि। श्रवणमाकर्णनमेव प्रणाली जलमार्गस्तया। कृत्वा मानसं चेत एव सरस्तडागम्। अथ च मानसाख्य देवतडाग कर्मतापन्नम्। विदर्भराज एव हंसस्तस्य पुत्र्यां तरलयन्त्यां सत्याम्। तथा श्रवणीकृतधनुर्गुणे अनङ्गधनुर्धरे। तथा मधुलिहां मधुरगिरां झङ्कारे कर्णं गच्छति औत्सुक्यकारिणि तावसरे सति। 'हंसो विहंगभेदे स्यान्निर्लोभनृपतावपि'॥

अविस्मरणीय उपकारी उस हंस वर्ग के चले जाने पर श्रवण-नालिका द्वारा मन सरोवर में प्रवेश कर विदर्भराज हंस की पुत्री विक्षुब्ध करने

लगी। प्रत्येक अङ्ग में कामदेव अपना धनुष मारने लगा। समीप के वन में खिले हुए कुन्द पुष्प के पराग का आस्वाद लेकर मद के कारण गम्भीर आवाज वाले भ्रमरों की अत्यन्त मधुर ध्वनि कानों में पहुँच रही थी। कामदेव ने अपने धनुष् को कानों तक चढ़ा रक्खा था। अतः वह अवसर बड़ा ही उत्कण्ठाकारी था।

आविर्भूतविषादकन्दमसमव्यामोहमीलन्मन-
श्चिन्तोत्तानितनिर्निमेषनयनं निःश्वासदग्धाधरम्।
जातं स्थानकमुत्सुकस्य नृपतेस्तत्तस्य यस्मिन्नभूत्
प्रेयान्पञ्चमराग एव रिपवः शेषास्तु सर्वे रसाः॥ १६॥

आविरिति॥ उत्कण्ठितस्य नृपतेस्तत्स्थानकमवस्थान्तरं जातम्। यत्र (स्थानके) पञ्चमे पञ्चमाख्ये रागविशेषे रागो रसवत्ता एव प्रियः। शेषास्तु रसा विषयानुरागा रिपवः॥ १६॥

राजा की ऐसी अवस्था हो गयी थी जिसमें विषाद का अङ्कुर निकल आया था। विषम मोह ने मन को व्यथित कर लिया था। चिन्ता के कारण आँखें निरन्तर पलकशून्य बनी रहती थीं। गरम श्वासों के कारण ओष्ठ सूख गये थे। उस समय उसे केवल कोकिल का स्वर अच्छा लगता था, शेष सभी रस शत्रु जैसे प्रतीत होते थे॥ १६॥

ततश्च वृश्चिकदंशादुःसहव्यथामवस्थामनुभवन्निव, कण्टकैश्चरणमर्मणि विध्यमान इव, मुहुर्मुहुर्मुर्मुरपुञ्जराजीवाङ्गानि धारयन्नुग्रग्रीष्मानिलोल्लोलैरालिङ्ग्यमानो, मनागपि न क्वापि शर्म लेभे॥

ततश्चेति॥ तापातिरेकात्प्रतिक्षणं क्षणमात्रशुष्कत्वान्मुर्मुरः पुञ्जो येषां तानि मुर्मुरपुञ्जानि, तथाभूतानि राजीवानि येष्वङ्गेषु तानि। मुर्मुरस्तुषवह्निः। यदुक्तं प्रकाशे—'मुर्मुरस्तुषवह्नौ स्यान्मन्मथे रविवाजिनि'॥

इसके बाद बिच्छू के डंक मारने की तरह असह्य पीड़ा की अवस्था का अनुभव करता हुआ, काँटे से चरण के मध्य भाग में बिंधे हुए की तरह, बार बार निर्धूम अंगारों की राशि में अङ्ग कमल को रखता हुआ कहीं भी थोड़ा भी आराम नहीं पा रहा था।

तथापि—

श्च्योतच्चन्द्रमणिप्रणालशिशिराः सौगन्ध्यकल्लाम्बरै-
र्निर्गच्छत्सवधूपधूमपटलैः संभिन्नवातायनाः।
सोधोत्सङ्गभुवो विकीर्णकुसुमाः पूर्णेन्दुरश्मिश्रिया
रम्यायां निशि नो हरन्ति हृदयं हृद्यं किमुद्वेगिनाम्॥ १७॥

स्रवदिति ॥ स्रवच्चन्द्रकान्तप्रणालशीताः । सुगन्धितनभोभिर्धूपधूमैर्मिश्रगवाक्षाकीर्णपुष्पाः । प्रासादभूमयः परिपूर्णचन्द्रेण रमणीयायामपि रात्रौ चेतो हरन्ति उद्वेगाधिक्यं । राज्ञ इति शेषः । युक्तं चैतत् । दुःखितानां किं हृद्यम् । न किमपीति भावः ॥ १७ ॥

जो चन्द्रकान्तमणि के चूते हुए जलप्रवाह में शीतल हो गयी है, सुन्दर गन्ध से आकाशमण्डल को घेरते हुए नवीन धूप में निकलते हुए धूम मण्डल से जिसके गवाक्ष भर गये हैं और जहाँ फूल बिखरे हुए हैं, वह भव्य भवन की भूमि पूर्ण चन्द्र की कान्ति से रमणीय रात्रि के समय उनके हृदय का हरण नहीं करती क्योंकि उद्वेगपूर्ण आदमियों के लिए कोई भी चीज रमणीय नहीं होती ॥ १७ ॥

अपि च—

हृद्योद्यानसरस्तरङ्गशिखरप्रेङ्खोलनायासिताः
सम्भोगश्रमखिन्नकिन्नरवधूस्वेदोदबिन्दुच्छिदः ।
सायं सान्द्रविनिद्रकैरववनान्यान्दोलयन्तः शनै
रङ्गेऽङ्गारसमाः पतन्ति पवनाः प्रालेयशीता अपि ॥ १८ ॥

हृद्येत्यादि ॥ रम्यतडागोर्मिनरटनेन खेदिताः । तथा किन्नरीस्वेदजलबिन्दुमुषः । वनानि कम्पयन्तः । तदङ्गे लगन्तो हिममया अपि वायवोऽङ्गारा इव पतन्ति ॥ १८ ॥

रमणीय उपवन सरोवर की लहरियों के अग्रभाग में टकराने के कारण थका हुआ, सम्भोग के परिश्रम से थकी हुई किन्नर रमणियों के पसीनों की बूँदों को समाप्त करने वाला, घने तथा खिले हुए कमल-वनों को धीरे-धीरे कम्पित करता हुआ सायंकालीन, बर्फ की तरह ठंडा पवन भी उनके अङ्गों में अङ्गार की तरह लगता है ॥ १८ ॥

तदाप्रभृति चास्य प्रायः प्रीतिरभूद्दाक्षिणात्यजनेष्वेव, पुलकमकरोन्नामापि विदर्भदेशस्य, श्रुतापि श्रवणयोः सुखमजीजनद्दक्षिणा दिक् ॥

उसी समय से इसका स्नेह दक्षिण के लोगों में ही केन्द्रित हो गया। विदर्भ देश का नाम भी रोमाञ्च उत्पन्न कर देता था। कानों तक पहुँची हुई दक्षिण दिशा सुख उत्पन्न कर देती थी।

किं बहुना—

लिप्तेवामृतपङ्केन स्पृष्टेवानन्दकन्दलैः ।
आसीद्दिग्दक्षिणा तस्य कर्णयोर्मनसो दृशोः ॥ १९ ॥

दक्षिण दिशा उसके कान, मन तथा नेत्र में अमृत पङ्क से लिपी हुई और आनन्द के अङ्कुर से स्पृष्ट सी लगती थी।

[ दक्षिण दिशा का नाम उसके सम्पूर्ण अङ्गों मे तृप्ति का अभिव्यञ्जन करता था ] ॥ १९ ॥

**दमयन्त्यपि हंसदर्शनदिवसादारभ्य भ्रमद्भृङ्गकुलकलकोलाहलादितपर्यन्तेषु, प्रत्यग्रोल्लूनपुष्पपल्लवास्तरणेषु, विचलद्विनोदविहंगेषु विहरति नासन्नोद्यानलतामण्डपेषु, न च विकचकुवलयकह्लारकुशेशयसारसारिणि रणच्चटुलचञ्चरीकचक्रवाकचक्रे क्रीडति क्रीडासरसि न च स्पृशति पाणिनापि माणिक्यमालामण्डनानि, न च रचयति रुचिरालकवल्लरीभङ्गान्तरालेषु मिषत्कुसुमविन्यासान्, न च क्वचिदुल्लसद्धंसतूलिकातल्पेऽपि कोमलकपोलावष्टम्भभाजि निद्रासुखमनुभवति, केवलमधिपाण्डुगण्डस्थलस्थापितपाणिपल्लवा प्रेषयन्ती प्रतिक्षणमुत्तरस्यां दिशि दृशं तद्देशागतान्गगने पक्षिणोऽपि सस्पृहं पश्यन्ति, तत्रस्यानध्वगानपि बन्धुबुद्ध्यालापयन्ती, तन्मण्डलगताय मरुतेऽप्यपनीतोत्तरीयांशुका हृदयमर्पयन्ती दिनं दिनमनङ्गेनाभ्यभूयत ॥**

दमयन्ती भी हंस के दर्शन के दिन से पास के ही उपवन वाले लता कुञ्ज मे घूम रही थी, जहाँ का सम्पूर्ण भाग उड़ते हुए भ्रमर वर्ग की कल-कल ध्वनि से गूँज उठा था। अभी अभी तोड़े गये पुष्पपल्लवों का विस्तार बनाया गया था। विनोद के लिये रक्खे गये पक्षी घूम रहे थे। खिले हुए नील, लाल तथा शुभ्र कमलों के कारण सरोवरजल महत्त्वपूर्ण बन गया था। चचल भ्रमरों और चक्रवाकों का समूह वहाँ घूम रहा था। वहाँ भी वह नहीं खेल सकती थी। हाथों मे अलङ्कारों को पहने हुए थी किन्तु वलय ( नामक ) भूषण को छूती नहीं थी। वि०। हाथ ही उसका भूषण था अत अलङ्कारों को नहीं छूती थी। अथवा उस समय हाथ ही अलङ्कार और अलङ्कार्य दोनों का कार्य कर रहे थे। मनोहर केशों की वेणी की वक्रता के बीच खिलन हुए फूलों को नहीं लगाती। हंस की तरह शुभ्र, रुई की गद्दी पर अपने कोमल कपोल भाग को रख कर निद्रा-सुख का अनुभव नहीं कर पाती। केवल अपने पाणि पल्लव पर ( चिन्ता के कारण ) पीले कपोल को रख कर सदा नेत्रकान्ति को उत्तर दिशा की ओर की हुई, आकाश मे उस दिशा से आये हुए पक्षियों को भी उत्सुकता से देखती हुई, उस दिशा के पथिकों को भी बन्धु समझ कर बातें करती हुई, उस दिशा से आयी हुई हवा के लिये भी ऊपर के वस्त्र को हटा कर हृदय अर्पित करती हुई दिन प्रति दिन काम से पराजित हो रही थी।

तथाहि—

**लास्यं पांसुकणायते नयनयोः, शल्यं श्रुतेर्वल्लकी,**
**नाराचाः कुचयोः सचन्दनरसाः कर्पूरवारिच्छटाः।**

तस्याः काप्यरविन्दसुन्दरदृशः सा नाम जज्ञे दशा
प्राणत्राणनिबन्धनं प्रियकथा यस्यामभूत्केवलम् ॥ २० ॥

नृत्य उसकी आंखों में धूलि कण की तरह लगता था। वीणा का स्वर कानों ने काटे की तरह प्रतीत होता था। चन्दन-रस से युक्त कर्पूरजल की धारा उसके स्तनों पर ताप की तरह लगती थी। कमल सदृश सुन्दर नेत्रवाली उस दमयन्ती की कोई अपूर्व ही दशा हो गयी थी। उस समय उसके प्राणों की रक्षा के लिये प्रिय की कथा ही उपयुक्त थी ॥ २० ॥

एवमनयोरन्योन्यप्रेषितप्रच्छन्नदूतोक्तिवर्धितानुरागयोः चलन्त्यङ्गानि न मनोरथाः परिवर्त्तते चक्षुर्न हृदयम्, कृशतामेत्यङ्गयष्टिर्नोत्कण्ठा, मन्दतां यात्युत्साहो नाभिलाषः, स्फारीभवति निःसहता न निद्रा, वर्धते चिन्ता न रतिः, शुष्यत्यधरपल्लवो नाग्रहरसः ॥

परिवर्तत इति। तां दिशं प्रति चलन्त्यभिमुखीभूय निवर्तन्ते। एवं चक्षुरपि ॥

इस तरह एक दूसरे के भेजे हुए गुप्त दूत की उक्ति से बढे हुए अनुराग वाले इन दोनों के अङ्ग तो कम्पित हुए किन्तु मनोरथ नहीं। आंखें इधर उधर चली किन्तु हृदय नहीं। अङ्गलतिका में दुर्बलता आयी किन्तु उत्कण्ठा में नहीं। उत्साह शिथिल हुआ किन्तु अभिलाषा नहीं। चिन्ता बढी किन्तु रति नहीं। असहनीयता स्पष्ट थी किन्तु निद्रा नहीं। अधरपल्लव सूखा किन्तु एक दूसरे की प्राप्ति के सम्बन्ध में आग्रह रस नहीं सूखा।

किं बहुना—

कर्पूराम्बुनिषेकभाजि सरसैरम्भोजिनीनां दलै-
रास्तीर्णेऽपि विवर्त्तमानवपुषोः स्रस्तस्रजि स्रस्तरे।
मन्दोन्मेषदृशो किमन्यदभवत्सा काप्यवस्था तयो-
र्यस्यां चन्दनचन्द्रचम्पकदलश्रेण्यादि वह्नीयते ॥ २१ ॥

अधिक क्या—

जो कर्पूर के जल से सींचा गया है, सरस कमलिनी के पत्ते बिछे हुए हैं, मालायें बिखरी हुई हैं ऐसे बिस्तरे पर भी करवटें बदलते हुए निर्निमेष दृष्टि वाले उन दोनों की दूसरी ही दशा हो गयी है। चन्दन, चन्द्रमा और चम्पे की दल पंक्ति आदि पदार्थ आग की तरह लग रहे हैं ॥ २१ ॥

आसीच्च तयोः कृतान्योन्यगुणप्रश्नालापजपयोः पुनरुक्तावर्त्तितनामधेयस्वाध्याययोः संकल्पसमागमावबद्धध्यानयोः स्मरानले स्वं हृदयं जुह्वतोस्तप्यमानयोरङ्गीकृतमौनव्रतयोरपि वियोग एव, न योगः ॥

भासीच्चेति ॥ कृतोऽन्योन्यगुणप्रश्नालाप एव जपो जाप्य याकाभ्याम् । पुनरावर्त्तित नामैव स्वाध्यायो ययो'। सङ्कल्पे चित्तकर्मणि च समागमस्तत्राबद्धं ध्यानं याकाभ्यान्। कामाग्नौ स्वचेतो होमयतो.। तप्यमानयो । मौनिनोरप्यनयोर्वियोगो विरह एवासीत्। न योग । योगः सम्बन्धोऽध्यात्मविषयश्च। अन्यस्य जपं स्वाध्याय ध्यानं होमं तपो मौन व्रत च कुर्वतो योगलाभ· स्यात्। तप्यमानेति संतापपक्षे कर्मकर्तरि, तप पक्षे तु कर्तरि, तपे कर्मविषयत्वात् ॥

एक दूसरे के गुण विषयक प्रश्न सम्बन्धी चर्चा रूप जप मे लगे हुए हैं। बार-बार का नामग्रहण ही उनका स्वाध्याय बन गया है। चित्त मे जो मिलन-विषयक धारणा बन गयी है उसी मे ध्यान को केन्द्रित कर लिये हैं। काम (यज्ञ) की आग मे अपने-अपने हृदय का हवन करते हुए मौनव्रत धारण कर तपस्या मे लीन हैं। यह दशा उन दोनो के लिये वियोग (विशिष्ट ढग की योग-साधना) की है। योग (मिलन) की नही।

[इतनी तपस्या करने के बाद भी विरह की ही मात्रा अधिक है। मिलन के लिये कोई अनुकूल सामग्री तैयार नही है।]

**कदाचित् तरुणजननयनकुरङ्गवागुरामनङ्गगजेन्द्रमदप्रवाहहकारपहसितसुरासुरसुन्दरीरूपश्रियं शृङ्गाररसराजधानीमवलोक्य यौवनावस्थां दमयन्त्या· 'कोऽस्या· किलानुरूप पतिर्भवेत्' इति, चिरं चिन्ताकुलो विदर्भेश्वरः स्वयं स्वयंवरधर्मप्रारम्भाय समं मन्त्रिभिर्मन्त्रनिश्चयं चकार ॥**

किसी समय युवक जनो के नेत्रमृग को बाध लेने वाली रस्सी, कामगजेन्द्र के मद-प्रवाह की गडगडाहट, देव और दानव रमणियो के सौन्दर्य को नीचा दिखा देने वाली, शृङ्गार रस की राजधानी दमयन्ती की यौवनावस्था को देखकर, "कौन इसका अनुकूल पति होगा" इस विषय की चिन्ता मे बहुत देर तक व्याकुल रहकर स्वय ही विदर्भ राजमन्त्रियो के साथ स्वयवर धर्म को प्रारम्भ करने का सिद्धान्त स्थिर किये ॥

**न चिराच्च प्राच्यप्रतीच्योदीच्यदाक्षिणात्यनरपतिनिमन्त्रणे सप्राभृतान्प्रगल्भप्रायान्प्रधानप्रेष्यान्प्रेषयामास ॥**

शीघ्र ही पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशाओ के राजाओ को निमन्त्रण देने के लिये उपहारो के साथ पूर्ण दृढ एवं मुख्य दूतो को भेजा ॥

**प्रस्थितं कंचिदुदीच्यनरपतिनिमन्त्रणाय प्रबुद्धवृद्धब्राह्मणमात्तसखीमुखेन दमयन्ती श्लिष्टार्थमिदमवादीत् ॥**

उत्तर के राजाओ को निमन्त्रण देने जाने के लिये तत्पर किसी विद्वान् वृद्ध ब्राह्मण से अपनी विश्वासपात्र सखी द्वारा श्लेषभरी भाषा मे दमयन्ती बोली—

'भूपालामन्त्रणे तात तथा संचार्यतां यथा।
नलोऽप्यागमबुद्धिः स्यादप्यर्थ्यसे किमतः परम्'॥ २२॥

भूपेति॥ तातेति संबोधने। नृपनिमन्त्रणे तथा सञ्चार्यतां यथा आगमबुद्धिः शास्त्रप्रवर्तिनिर्लोप्या न स्यादिति बाह्यार्थः। इष्टार्थस्तु नलनामापि नृपो यथागमनबुद्धिर्भवेदिति॥ २२॥

हे तात, राजाओं को निमन्त्रित करने में ऐसा कीजियेगा कि आगमबुद्धि (शास्त्रीय पद्धति) न लोप्य (लुप्त या तिरस्कृत न) हो। यही प्रार्थना है।

द्वितीय पक्ष—हे तात, राजाओं को निमन्त्रित करते समय ऐसी पद्धति अपनाइयेगा कि नल भी आने की धारणा बना लें। यही निवेदन है। इससे अधिक क्या कहूँ॥ २२॥

सोऽप्यवगतश्लोकार्थस्तथाविधमेव प्रत्युत्तरमदात्॥

'केनापि व्यवहारेण कयापि प्रौढलीलया।
करिष्याम्यागमस्यार्थे रभसेन नलङ्घनम्॥ २३॥

केनेति॥ आगमस्य शास्त्रस्य। अर्थे लङ्घनं न करिष्यामीति बाह्यार्थः। इष्टार्थस्तु आगमनस्यार्थे रभसेनौत्सुक्येन घनं निबिडं नलाह्वयं नृपं करिष्यामि आनेष्यामीत्यर्थः॥ २३॥

वह भी श्लोक का अर्थ समझकर वैसा ही उत्तर दिया—

किसी भी विशेष ढङ्ग तथा किसी भी विशेष युक्ति से ऐसा यत्न करूँगा कि आगम (शास्त्रीय मार्ग) का लोप न हो।

ईप्सित पक्ष—किसी भी युक्ति तथा किसी भी प्रौढ ढङ्ग से नल को शीघ्र लाने के लिये बड़ा घना प्रयास करूँगा॥ २३॥

तदायुष्मति सुखमास्ताम्' इत्यभिधाय गतवान्॥

अथ नातिचिरेणागतस्तया रहः समाहूय स ब्राह्मणः सोमशर्मा नर्मालापलीलया दमयन्त्या बभाषे॥

'आयुष्मति, आप सुखपूर्वक रहें,। यह कहकर चला गया।

बिना अधिक देर के लौटे हुए सोमशर्मा नामक ब्राह्मण को बुलाकर दमयन्ती कोमल शब्दों में बोली—

'आहूतोदीच्यभूपेन तातादेशविधायिना।
नालीकापि त्वया वार्ता विद्वन्नावेदिता मम'॥ २४॥

आहूतेति॥ आकारितोत्तरनृपेण त्वया विद्वन्नलीकापि वार्ता न कथितेति बाह्योऽर्थः। आन्तरस्तु नलस्येयं नाली वार्ता सा कापि त्वया नाभ्यधायि॥ २४॥

विद्वन्, पिता जी की आज्ञा पूर्ण करने वाले आपने उत्तर के राजाओं को निमन्त्रित किया, किन्तु इस सम्बन्ध में झूठी भी बात मुझ से नहीं बतायी ॥ २४ ॥

[ केवल 'नालीका' शब्द श्लिष्ट है। अर्थात् उत्तर के राजाओं को आपने निमन्त्रित किया किन्तु नालीक (नल सम्बन्धी कोई समाचार) नहीं बताये ॥ २४ ॥ ]

सोऽपि 'एष कथयामि श्लेषोक्तिकुशले, श्रूयताम्' इत्यभिधाय विहस्याख्यातुमारब्धवान् ॥

उसने भी, "श्लिष्ट बातों को कहने में चतुर दमयन्ती, लो, अभी कहता हूँ।" यह कह कर हँसता हुआ कथा कहना प्रारम्भ किया—

इतो निर्गत्य मया मण्डलेश्वरामन्त्रणक्रमेण परिभ्रमताऽनेकपानेककूटकोटिस्थपुटितकटकस्य निषधनाम्नो महीध्रस्य दक्षिणारण्यस्थलीषु मृगया सक्तः ॥

यहाँ से चलकर विभिन्न मण्डलाधिपतियों को निमन्त्रित कर परिभ्रमण करते हुए, अनेक कोटियों में फैले हुए निषध नामक पर्वत के दक्षिण वाले जंगल की भूमि पर शिकार खेलने में लगे हुए—

माद्यन्मांसलतुङ्गपुंगवककुत्कूटाग्रतांसस्थलः
कालिन्दीजलकान्तिकुन्तलशिराः पूर्णेन्दुबिम्बाननः।
एक कोऽपि मनोहरः पथि युवा दृष्टः स यस्मिन्सकृद्-
दृष्टे मद्यनिमेषया मम दृशा लब्धं फलं जन्मनः ॥ २५ ॥

मस्त, पुष्ट, उच्च तथा उत्तम कोटि के पर्वत शृङ्ग की तरह उन्नत कन्धे वाले, यमुना जल की नीली कान्ति की तरह केशों वाले, पूर्णिमा के चन्द्र जैसे मुख वाले किसी एक मनोहर युवक को रास्ते में निर्निमेष दृष्टि से देखकर मैंने जन्म का फल प्राप्त कर लिया ॥ २५ ॥

तेनापि 'दाक्षिणात्योऽयम्' इति निश्चित्य साभिलाषमभाषितोऽस्मि ॥ मयापि कृतोचितालापेनोक्तम् ॥

उसने भी, "यह दक्षिण देश का आदमी है।" यह समझ कर बड़ी दिलचस्पी से मुझसे बातें कीं। मैंने भी उसके उचित ढंग से बात कर लेने के बाद कहा—

'यथेयमाकृतिर्लोकलोचनानन्ददायिनी।
तथ भद्र तथा सत्यं सत्यागोऽसि नलोमवान्' ॥ २६ ॥

यदेदमिति ॥ सन् शोभनस्त्यागो यस्य। तथा न त्वं लोभवान्। असीत्यव्ययं युष्मदर्थे। पक्षे सत्यागस्त्वम्। तथा नलाख्यो भवान् इति पृथग्वाक्यद्वयम्। एकवाक्यतायां भवानसीति मध्यमपुरुषो दुर्लभ ॥ २६ ॥

श्रीमन्, लोगों के नेत्रों को आनन्द देने वाली जैसी आपकी यह आकृति है उससे यह ज्ञात होता है कि आप लोभवान् ( लोभी ) नहीं हैं और सत्याग ( सुन्दर त्याग करने वाले ) हैं।

[ सत्याग शब्द को कर्ता बनाकर त्व का आक्षेप कर असि क्रिया का उपपादन किया जायगा। अन्यथा भवान् का असि क्रिया के साथ अन्वय उपपन्न नहीं होगा। अलौकिक सौन्दर्य समन्वित आप की आकृति से यह स्पष्ट है कि "नलो भवान्" आप नल हैं। लोभवान् न ऐसा अन्वय इसलिये किया जाता है कि अपरिचयावस्था में नाम का प्रकथन अस्वाभाविक न हो जाय ॥ २६ ॥

एवमुक्तः सोऽपि मनाङ्मुग्धस्मितमेवोत्तरं कल्पितवान् ॥

अथ प्रथमवयोविभूषिताङ्गस्तुङ्गतुरंगमारूढो गाढग्रथितपरिकरः करेण कोदण्डमाकलयंस्तद्द्वितीयो युवा तमेव देशमागतवान् ॥

ऐसा कहने पर वह भी मधुर मुस्कान के साथ उत्तर सोचने लगा।

पहली अवस्था ( यौवन ) में अलङ्कृत, एक ऊँचे अश्व पर आरूढ, कमर में पेटी बाँधा हुआ, हाथ में धनुष लिया हुआ, एक दूसरा युवक उसी स्थान पर आया।

आगत्य च बालनीलनलशालिनि शिलोच्चयस्थलीप्रदेशे कांचित्काञ्चनकुम्भकान्तिकुचकण्ठलुठितकुसुममालिकामवलोकयन्निदमवादीत् ॥

आकर नवीन एवं श्यामल नल घास से सुशोभित पर्वत के उच्चतर प्रदेश पर किसी स्वर्णिम कुम्भ कान्ति वाले स्तनों एवं गले में पुष्पमाला धारण की हुई नायिका को देखता हुआ बोला—

'युवराज, पश्य—

नद्यास्तीरे विदर्भाया कापि गोपालबालिका।
गाः समुच्चारयत्येषा क्षेत्रीकृत्य नलं वरम्' ॥ २७ ॥

नद्या इति ॥ विशिष्टदर्भाया नद्यास्तीरे। काप्यनिर्दिष्टनामा। गोपी। वरं श्रेष्ठ नल ( डं ) तृणविशेषम्। केदारीकृत्य। गा धेनू। समुत सहर्षा। चारयति। श्लेषवक्रोक्त्या तु विदर्भाभिधानाया नद्यास्तीरे, कापि। महनीयमहिमा, गोपालस्य भूपस्य, बालिका सुता, नलं राजानं, वरं वरयितारं क्षेत्रीकृत्याग्रयीकृत्य, गिरः समुच्चारयति। वर ईप्सायाम्, वर्यत इति वर। क्षेत्रं सद्भूमि ॥ २७ ॥

युवराज, देखो, विदर्भ ( अधिक के कुशों से युक्त ) नदी के तट पर यह कोई

गोपालपुत्री ( ग्वाले की लडकी ) उत्कृष्ट नल सज्ञक घास वाले स्थान को खेत समझ कर गायो को प्रसन्नतापूर्वक चरा रही है ॥ २७ ॥

द्वितीय पक्ष—विदर्भ नामक नदी के तट पर कोई गोपालपुत्री ( राजा की लडकी ) नल नामक वर को अपनी इच्छा का विषय बनाकर गो ( वाणी ) का उच्चारण कर रही है ॥ २७ ॥

[ विदर्भाया —विशिष्ट दर्भों से युक्त नदी अथवा विदर्भ नाम की नदी। गा —वाणी या गाय। क्षेत्रीकृत्य—मन का विषय बनाकर या गाय के चरने का क्षेत्र ' बनाकर या समझ कर। समुत्—( मुद्रा सहिता ) प्रसन्नतापूर्वक। चारयति ( चरा रही है ) समुच्चारयति— नल विषयक बातो का सम्यक् उच्चारण कर रही है। नल एक घास का नाम है। एक पक्ष मे नल शब्द से नल राजा अर्थ है ॥ २७ ॥

एतच्चाकर्ण्य मयाप्युक्तम्—'महानुभाव, न केवलमियमन्यापि क्वापि क्वापि' इति ॥

इत्युक्तवन्तं मामवलोक्य भावितार्थः स पुनः सस्मितमवोचत् ॥

यह सुन कर मैंने कहा, श्रीमन्, केवल यही नहीं कही कोई दूसरी भी।

ऐसा कहने पर प्रासङ्गिक अर्थों को समझ कर मुस्कुराते हुए उसने कहा—

'इयं च सा च—

अनुभवतु चिराय चञ्चलाक्षीरसपरिणामफलानि गोपपुत्री।

अपसरति महोद्यमेन यस्याः कथमपि संप्रति नैषधेऽनुराग' ॥२८॥

अनुभवत्विति ॥ गोपालिका क्षीरस्य सपरिणामानि यानि फलानि चैरेयीदधिघृतप्रभृतीनि तान्यनुभवतु चिराय। चञ्चला लोला गोचारणवशात्। यस्याः सम्प्रत्येव धेनुरागो महोद्यमेन हेतुना। कथमपि केनापि प्रकारेण न निवर्तते। श्लेषे तु गोपपुत्री भूपपुत्री दमयन्तीलक्षणा चञ्चलाक्षी लोलनेत्रा शृङ्गारादिरसपरिपाकफलान्युपभुङ्क्ताम्। यस्या सम्प्रति नैषधे नले महोद्यमेऽनुराग प्रेमबन्धः। कथमपि नापसरति ॥ २८ ॥

यह भी और वह भी—

चंचला गोपपुत्री ( ग्वाले की लडकी ) जिसका इस समय यह धेनुराग ( गोविषयक प्रेम ) किसी भी तरह कम नही होता, क्षीर के सपरिणामफल ( दही घी आदि का ) चिरकाल तक अनुभव करे।

द्वितीय पक्ष—चंचलाक्षी गोपपुत्री (चंचल नेत्रो वाली पृथ्वीपाल की लडकी) जिसका नैषध ( नल ) मे लगा हुआ अनुराग बडा यत्न करने पर भी नहीं घटता, शृङ्गार प्रभृति रसो की परिपक्वावस्था का चिर काल तक अनुभव करे।

[ गो के अर्थ पशु और पृथ्वी दोनो हैं। अतः गोप के भी पशुपाल तथा

पृथ्वीपाल को अर्थ होंगे। चंचलाक्षीरसपरिणामफलानि—पशुपालपुत्री पक्ष में चचला एक पद है और क्षीर + रसपरिणामफलानि दूसरा। नृपालपुत्री दमयन्ती पक्ष में चंचलाक्षी + रसपरिणामफलानि यह विच्छेद है। अर्थात् चंचल नेत्रों वाली दमयन्ती नल के अनुराग को प्राप्त कर शृङ्गार के श्लाघनीय फल को प्राप्त करें। नैषधेनुराग—एष धेनुराग न अपसरति—इस गोपपुत्री का धेनुराग हट नहीं रहा है। दमयन्ती पक्ष में नैषधेऽनुराग न अपसरति—नल में जो इसका अनुराग हो गया है वह हट नहीं रहा है। नहीदमेन—दमयन्ती पक्ष में महाजन सम्बन्धन्त है और नल का अन्वय अपसरति क्रिया से है। ग्वाले की लड़की के पक्ष में यह पद तृतीया एक वचन है ॥२८॥]

आस्तां तावदन्यत्। अध्वन्य, कथय कुत उपयायोऽस्ति, किं च कियद्वाद्यापि वर्त्मोतिक्रमितव्यम्' इति ॥

छोड़िये दूसरी बातों को पथिक जी, कहिये, आपको कहा से पूछा जाय। अभी तक कितना रास्ता तय करने के लिये बाकी है।

अथ कथितस्ववृत्तान्तेन मयापि 'कोऽयमशेषमनुष्यमस्तकमणिः, कथं भवानपि स्वमज्ञाप्राग्भारपराङ्मुखीकृतपुरंदरगुरु' इति पर्यनुयुक्तः स पुनरुक्तवान् ॥

मैंने अपना सब वृत्तान्त कह दिया और उससे पूछा, "समस्त मनुष्यों में श्रेष्ठ ये कौन हैं, और अपनी प्रज्ञावैभव से देवेन्द्र गुरु बृहस्पति को भी नीचा दिखाने वाले आप कौन हैं?" तब उसने कहना शुरू किया—

'अयमसौ सौम्य, समस्तशास्त्रशास्त्रकोविदो विदारितवैरी वैरसेनिर्नलः। किमन्यदहमपि श्रुतशीलो नामास्यैवाज्ञाकारी, इत्यभिधाय विश्रान्तवान् ॥

"सौम्य, सम्पूर्ण शस्त्रों तथा शास्त्रों के विद्वान्, शत्रुदल को विदलित किए हुए ये वीरसेन के पुत्र नल हैं। अधिक क्या बताऊँ, मैं भी इन्हीं का आज्ञाकारी हूँ। मेरा नाम श्रुतशील है।" यह कह कर वह चुप हो गया।

नलोऽपि कृत्वा त्वदाश्रयास्तास्ताः प्रकटितप्रेमस्पन्दलाः कथा', समर्थ्य च स्वयंवरामन्त्रणमुत्सुकतया तत्कालमेवोड्डीय गन्तुमीहमान संभावितेन स्मितेनालोकिनेन च माममृतवर्षेणेवाह्लादयन्निच्छन्तमपि प्रतिग्राह्य च बलादनर्घ्याणि स्वाङ्गाभरणानि चिरादेव व्यसर्जयत् ॥

नल भी तुम्हारे निमित्त प्रेमाङ्कुर व्यक्त करने वाली उन-उन कथाओं को कह कर उत्सुकतापूर्वक स्वयंवर में आने के लिए निमन्त्रण का समर्थन कर

तत्काल ही मानो उड़कर पहुँच जाना चाह रहा था। सम्भाषण से, मुस्कुराहट से और दर्शन से मुझ अमृतवर्षा की तरह आनन्दित करता हुआ, मैं नही चाहता था तो भी बलात्कार अपने बहुमूल्य अलङ्कारो को देकर कुछ देर के बाद छुट्टी दी।

स्वयं च मृगयाव्यसनितया मृगयालुभि सह—
धीर रङ्गन्नमारुह्य सार रहसि वाजिनम्।
हार रम्यं गले बिभ्रत्स्वैरं रन्तुमगात्पुन ॥ २९॥

धीरमिति ॥ धीरमग्रास रङ्गन्त वल्गन्त, रहसि वेगे सारमुत्कृष्ट वाजिनमश्वमारुह्य कण्ठे हार गुण बिभ्राण स्वच्छन्द क्रीडितु पुनरप्यगात् ॥ २९॥

शिकार का अभ्यासी होने के कारण स्वय भी वह शिकारियो के साथ— धैर्यशील, दौड़ मे उत्कृष्ट, फड़कते हुए घोड़े पर चढ़ कर गले मे सुन्दर हार पहना हुआ, पुन स्वेच्छया विहार करने चला गया ॥ २९॥

तदायुष्मति, स्वामिसुते यथा मया तत्कथाप्रश्नानुराग उपलक्षित स्तथा निश्चितमचिरादयमेष्यति' इत्यभिधाय स ब्राह्मण स्वगृह मगात् ॥

'चिरञ्जीविनी राजपुत्री जिस तरह उसने मुझ से बातों तथा प्रश्नो मे प्रेम प्रदर्शन किया उससे निश्चित है कि वह शीघ्र ही आयेगा।" यह कह कर वह ब्राह्मण अपने घर चला गया।

गते च तस्मिन्दमयन्ती 'श्लाघ्यः स क काल, धन्य स कतमो वासर, सलक्षणा सा का नाम वेला, यस्यामिदमिन्दुदर्शनेनेव कुमुद-मस्मच्चक्षुस्तदालोकनेन कमप्यानन्दमनुभविष्यति, इति चिन्तयन्ती कान्यपि दिनानि कयाप्यवस्थया व्यनैषीत् ॥

उसके चले जाने पर दमयन्ती, 'वह कौन सा स्पृहणीय समय होगा, वह कौन सा धन्य दिन होगा, वह कौन सी शुभ शकुन की वेला होगी, जब चन्द्रदर्शन से कुमुद की तरह मेरी आँखें उनके दर्शन से आनन्द का अनुभव करगी।" इस तरह सोचती हुई कुछ दिनो को किसी किसी तरह व्यतीत किया।

अथ नलोऽप्यामन्त्रितस्तेन ब्राह्मणेन रणरणकेन च, प्रेरितो मन्त्रिणा मदनेन च, परिवृत सेनयोत्कण्ठया च, तत्कालमेव विदर्भ-मण्डलाभिमुखमुदचलत् ॥

नल भी उस ब्राह्मण और मनोगत उत्सुकता से आमन्त्रित होकर, मन्त्री और कामदेव द्वारा प्रेरित होकर सेना और उत्कण्ठा से परिवेष्टित होकर शीघ्र ही विदर्भ देश की ओर चल दिया ॥

चलिते च चतुरङ्गबलचलनचूर्णितशिलोच्चयचक्रवाले चक्रिचक्रचङ्क्रमणचीत्कारबधिरितककुभि विषमवैरिवृन्दवनवैद्युतानले नले, चलत्सु अश्वेषु तरत्तुरगचरणप्रहाररणितधरणिमण्डलाः कान्तकाञ्चनरचनारोचिष्णवश्चक्रासीनचक्रवर्त्तिवाहोचिताः साश्चर्यमपर्यन्तपर्यायाः पर्याणितास्तुरङ्गाः शृङ्गारिताश्च चलच्चारुचामरपवनधूननालंकृतकपोलभित्तिभागसंलग्नभृङ्गसंगीतमुखरितमुखमण्डलाः कथमप्याधोरणनिरुध्यमानशौर्यविस्फारस्फुरणाः स्फुरत्कुम्भभित्तिसिन्दूरा दूरापसारितस्यन्दनाः स्यन्दमानामन्दमदकर्दमितमेदिनीका कम्पयांबभूवुर्भुवं भूरिभारभुग्नाङ्गपन्नगशिरः शिथिलावष्टम्भामिभेन्द्राः ॥

उत्कृष्ट शत्रु वर्ग रूपवन के लिये अग्नि सदृश नल की चतुरङ्गिणी सेना के चलने पर शिला समूह चूर्णित हो गए। सर्पमण्डल के चीत्कार से दिशायें बधिर हो उठीं। चमकते हुए स्वर्णालङ्कारों से सुशोभित चक्रवर्ती राजा की सवारी के लिए उपयुक्त, सर्वथा अद्वितीय, सजे हुए घोड़े उद्भासित हो रहे थे। चलते हुए सुन्दर चँवर के कम्पन से गजेन्द्रों के कपोल भाग मण्डित हो गये थे। वहाँ लगे हुए भ्रमरों के संगीत से उनका मुखमण्डल शब्दायित हो उठा था। वीरता के कारण उन्मत्त वे हाथी हस्तिपालों द्वारा किसी-किसी तरह रोके जा रहे थे। वे रथों को दूर हटा दिये थे। उनकी चूती हुई मदधारा से पृथ्वी पङ्कयुक्त हो गई थी। उनके पर्याप्त भार से संकुचित अङ्गवाले सर्पों ने अपनी शिरःफणाओं की टेक को शिथिल कर दिया था। पृथ्वी काँप उठी थी।

किंबहुना। तस्मिन्नवसरे—

> पूर्वापरपयोराशिसीमासंक्रान्तसैनिके।
> तस्मिन्सस्मार भूर्भाराद्वराहवपुषो हरेः॥ ३० ॥

पूर्वेति॥ पूर्वापरसागरावधिसंक्रान्तभूधरे तस्मिन्नले भूर्मेदिनी भाराद्धेतोर्हरेः सस्मार। 'अधीगर्थ'—इति सूत्रेण कर्मणि षष्ठी॥ ३०॥

अधिक क्या कहें—

उस समय जब पूर्व और पश्चिम समुद्र तक उसके सैनिक फैले तो पृथ्वी भार के कारण वराह शरीरधारी भगवान् का स्मरण करने लगी॥ ३० है

[ वराह अवतार धारण कर पृथ्वी का भार धारण एक बार भगवान् किये थे। इसीलिये नल की सेना के असह्य भार से व्यथित होकर पृथ्वी पुनः भगवान् का स्मरण की॥ ३०॥ ]

अपि च—

> आसीत्पिण्डितपाण्डुपङ्कजवनं श्वेतातपत्रैः क्वचि-
> न्मायूरातपवारणैः क्वचिदमुद्यालनीलोत्पलम्।

उन्मेघं क्वचिदूर्ध्वधूलिपटलैस्तस्य प्रयाणेऽभव-
त्प्रोद्वीचि क्वचिदम्बरं सर इव प्रेङ्खत्पताकापटैः ॥ ३१ ॥

आसीदिति ॥ सितच्छत्रैः पिण्डितपुण्डरीकवनं, श्रीकरीभिः सनीलोत्पलं, रेणुपटलैरुद्धतमेघं, क्वचिच्चलध्वजाञ्चलैः प्रवृद्धोर्ध्वतरङ्गं, तडागमिवाम्बरमाकाशं तस्य प्रयाणेऽभूत्। प्रावृड्देशे महासरःसु मेघा अम्भो ग्रहीतुमुपगमन्त इति प्रसिद्धयो न्मेघत्वमुक्तम् ॥ ३१ ॥

उसकी यात्रा के अवसर पर आकाश मे कही शुभ्र छत्रो से मुकुलित श्वेत कमलो का वन बन गया था। कही मयूरपक्ष से बने हुए छत्रो से ऊपर की ओर नालदण्ड दिये हुए नीलकमलो का वन बन गया था। ऊपर की ओर उठी हुई धूलि से उन्नत मेघ बन गये थे। फड़फड़ाते हुए ध्वजवस्त्रों से लहरियाँ बन गयी थीं। अत आकाश सरोवर जैसा प्रतीत होता था ॥ ३१ ॥

[ राजा के सैनिक प्रयाण के अवसर पर आकाश एक महान् सरोवर बन गया था। श्वेत छत्रों का समूह शुभ्र कमलवन की शोभा सम्पन्न कर रहे थे। दण्डसहित मयूर पक्ष के छत्र नीलकमलवन की शोभा सम्पन्न कर रहे थे। उठी हुई धूलि मेघ का दृश्य सम्पादित कर रही थी। ध्वजवस्त्र सरोवर-लहरी को दृश्यपूर्ण कर रहे थे। यह जनसामान्य में प्रसिद्धि है कि मेघ बड़े सरोवरों, झीलों और सागरों में पानी लेने के लिये आते हैं। इसी प्रसिद्धि के आधार पर कवि ने आकाश को सरोवर बनाकर वहाँ मेघ दिखाने का प्रयास किया है ॥ ३१ ॥ ]

जाताश्च जङ्घाजघनस्पृशो, वक्षःस्थलीलोलनलम्पटा, ग्रीवाग्रहणाग्रहिण्यः, प्रसभं लगन्त्यो वस्त्रेषु, निस्त्रपाः स्त्रिय इव, नखपदाभिघातोद्यता चुम्बन्त्यधिचुबुककपोलाधरचक्षूंषि सैनिकानाम्, अतिप्रसरेण शिरोऽप्यलभ्या, धवला धूलयो वियदावरणाश्च चक्रुरुच्चैरतिप्रसङ्गमासन्नयननिकुञ्जेषु ॥

जाताश्चेति ॥ धूलयो निर्लज्जाः स्त्रिय इव। जंघेत्यादीन्युभयत्र समानानि। नखा अश्वादीनां खुरा, पद पादविन्यासस्तेषामभिघातादुत्थिता पक्षे नखक्षतपदयोश्चाभिघाते उद्यता स्रोद्यमा। बलात्सैन्यात्प्रवृद्धा, पक्षे प्रवृद्धवीर्या। वियदावरणा नभश्छादिन्यो विगच्छद्वृद्धाश्च। प्रियतमा। त्रिपूर्वत्वेन शतरि च वियदिति। अतिप्रसङ्गमतिव्याप्तिं, पक्षे रतिप्रसङ्गं सुरतप्रबन्धम् ॥

जघा और जघन को छूती हुई, वक्ष स्थल के मर्दन के लिये लोलुप, गलबाहीं देने के लिये आग्रह करने वाली, हठात् वस्त्रों मे लिपटती हुई निर्लज्ज स्त्रियों की तरह खुर के विघात से उठकर पदस्पर्श करने में उद्यत, अधिक प्रसार से सफेद धूलियाँ सैनिकों के सिर में लगती हुई उनके चिबुक, कपोल, ओठ तथा

नेत्रों को चूमती हुई, समीप के अरण्यकुञ्जों को आकाश का आवरण बन कर छा ली ॥

[ यहाँ धूलि और निर्लज्ज स्त्रियों में पूर्ण समानता बतायी गयी है । ]

कूजन्तश्च कोटिशः कोदण्डमण्डलाग्रव्यग्रपाणयः, पाणिनीया इवाधिकरणकर्मकुशलाः समुल्लसन्तो विचेलुर्नलग्नपटवो लाम्पट्यो-ल्लुण्ठितरिपुपुरः पुरः पदातयः ॥

कूजन्तश्चेति ॥ पदातयो विचेलुः । किं कुर्वन्तः । कोटिशोऽनेकधा कूजन्तः शब्दायमानाः । तथा कोदण्डेन धनुषा मण्डलाग्रेण खड्गेन व्याकुला पाणयो येषां ते । तथाधिक रणकर्मणि कुशलाः । पाणिनीयपक्षेऽधिकरणकर्मणी कारके । लाम्पट्येनोल्लुण्ठिता अरिपुरोऽरिनगर्यो यै । पुरोऽग्रम ॥

हल्ला करते हुए, बार बार धनुष तथा तलवार पर हाथों को चचलता से फेरते हुए पाणिनि के अनुयायियों की तरह अधिकरण कर्मकुशल ( अधिक + रण कार्य में निपुण ) थे। धृष्टता से नारियों को लूटकर बड़े उल्लास के साथ पैदल चलने वाले सैनिक आगे बढ़े ।

[ अधिकरण और कर्म कारक के विचार में जैसे पाणिनी के अनुयायी कुशल होते हैं वैसे वे सैनिक अधिक+रण+कर्म ( कार्य ) में कुशल 'निपुण' थे । ]

तत्र च व्यतिकरे—

मन्दं मन्दरमन्दिरेषु शयितानुन्निद्रयन्किनरान्-
मेरोर्मस्तककन्दरे प्रतिरवानुत्थापयन्नुल्वणः ।
आध्य धावत यात मुञ्चत पुनः पन्थानमेवंविध-
स्त्रैलोक्यं बधिरीचकार बहलः सैन्यस्य कोलाहलः ॥ ३२ ॥

उस समय—

मन्दराचल के भवनों में सोये हुए किन्नरों को धीरे से जगाते हुए, मेरु की उन्नतर कन्दराओं में उत्कट प्रतिध्वनि करते हुए, 'बैठो, दौड़ो, छोड़ो फिर इस रास्ते को ।" सैनिकों का इस तरह का कोलाहल तीनों लोकों को बधिर बना रहा था ॥ ३२ ॥

एवमसौ क्रीडितानेकपामरान् गिरीन् ग्रामांश्च बहुतरङ्गोपशोभिताः सरितः सीम्नश्च व्यूढपतत्ररथान् पथः पादपांश्च लङ्घयन्, सालसहिताः पुरीर्नारीश्च सेवमानः, पच्यमानगोधूमश्यामलाः क्षेत्रभुवो भिल्लपल्लीश्च परिहरन्, विधवाः शत्रुसीमन्तिनीरटवीश्चातिक्रामन्, परिचारीणि बन्धुकुलानि सरांसि च बहुमानयन्, नाति चिरेण रविरथतुरंगपरिहत-विषमशिरःशिखरसहस्रमजस्रममरगणगन्धर्वसिद्धरुद्धस्कन्धमध्यं विन्ध्याचलमनुससार ॥

एवमिति ॥ अमुना प्रकारेणासौ नल इदमिदं कुर्वंस्तरणिरथाश्वयत्नाधिरयका- मध्यं विन्ध्याद्रिमनु लक्षीकृत्य समार । किं कुर्वन् । लङ्घयन् । कान् । गिरीन्द्रान् ग्रामांश्च । संप्रत्युभयानपि विशिनष्टि । क्रीडिता अनेकपा गजा अमराश्च देवा येषु । पक्षे पामरा ग्राम्याः । सरितो बहुभिस्तरङ्गैरलङ्कृता । सीमानश्च बहुतरं यथाभव- त्येव गोपैर्गोपालैः शोभिता । विशेषेणोढानि पत्त्राणि वाहनानि रथाश्च यै । पक्षे पत्त्ररथः पक्षी । सालेन प्राकारेण सहिताः । नार्य सालसा हिताश्च । अलसशब्दो भावप्रधानो लघणादिवत् । पचेलिमैर्गोधूमैः सस्यविशेष श्यामला । पक्षी तु गोर्भूमेर्धूमो गोधूम । तत पच्यमान. परिपाक गच्छन्न बहुलीभवन्योऽसौ गोधूम- स्तेन श्यामला । न तु पच्यमाना चासौ गौश्चेति । टच्प्रसङ्गात् । कृष्यावनी हि कृष्णा समभिक फलतीति । तथा च ( रघुवंशे नवमे सर्गे ) कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो बीजप्ररोहजननीं ज्वलन. करोति' । गोशब्दो भूम्यर्थो न धेन्वर्थोऽ नौचित्यात् । विशिष्टे विगमे च । धवो भर्ता तरुविशेषश्च । परिवृण्वन्ति परिवारी- भवन्ति परिवारीणि । अम्भस्त्र परि समन्तात्त्वारि जल येषु ॥

इस तरह अनेक हाथियों और देवताओ से युक्त गांवो और पर्वतो मे क्रीडाकर, बहुत तरङ्गो से सुशोभित नदियो तथा अधिकांश गोपो से अलकृत पर्वतीय सीमाओ, विशेषरूप से पत्र ( अश्व ) और रथ से युक्त मार्गों तथा पत्ररथ ( पक्षियो ) से युक्त पेडो को लांघते हुए, साल ( चारदीवारी ) से युक्त नगरियो और अलसाई स्त्रियो का सेवन करता हुआ, पकने की स्थितियो मे आये हुए समृद्ध गेहूँ के पौधो कारण श्यामल रग की क्षेत्रभूमियो और जलती हुई आग के धूम से श्यामल भीलो के गाँवों को छोड़ता हुआ, धव ( पति ) हीन शत्रुपत्नियो तथा विशिष्ट ढग के धव नामक वृक्षो से युक्त जगलों को लांघता हुआ, चारो तरफ से घेरकर रहने वाले बन्धुजनो को सम्मानित करता हुआ, चारो तरफ से जल से भरे हुए सरोवरो की प्रशसा करता हुआ, शीघ्र ही, भगवान् सूर्य के रथो के घोडो से वञ्चित, हजारो उच्च शिखर रूप सिरों को धारण करने वाले, निरन्तर देवो, गन्धर्वों और सिद्धो द्वारा घिरे हुए मध्यभाग वाले विन्ध्याचल को लक्ष्य कर चला ।

ततश्च—

दिशि दिशि किमिमानि प्रच्यवन्तेऽन्तरिक्षा-
दविरतमुत देवी भूतधात्री प्रसूते ।
इति शबरवधूभिस्तर्क्यमाणान्यवापुः
सपदि विपुलविन्ध्यस्कन्धमध्यं बलानि ॥ ३२ ॥

इसके बाद—

"सभी दिशाओ मे आकाश से यह क्या चू रहा है, अथवा समस्त प्राणियों को धारण करने वाली देवी पृथ्वी निरन्तर यह सब क्या उत्पन्न कर रही

है ?" इस तरह की उद्भावना करती हुई शबर युवतियां विशाल विन्ध्याचल की चोटियों के बीच शीघ्र ही इस सेना को प्राप्त करें ( देखें ) ॥ ३३ ॥

श्रुतशीलस्तु तुङ्गशृङ्गरङ्गत्सारङ्गाङ्गनासु नक्षत्रासन्नाकाशावकाश-निशाङ्कराजालजटिलासु चलच्चित्रचित्रकककरिकलभकदम्बकसंचारशार-लासु हारिहरिताङ्कुररमणीयासु वनस्थलीषु निक्षिप्तचक्षुरुपमवलोक्य राजानमिदमवादीत् ॥

ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखरों पर मृगवधुएं घूम रही थी। तारों के समीप रिक्त आकाश म प्रवेश करते हुए बाँसो के कारण वह भूमि घनीभूत प्रतीत हो रही थी। चलते हुए आश्चर्यजनक रङ्ग-बिरङ्ग के हाथियों के बच्चो से विविध रङ्गों से चित्रित हो गयी थी। सुन्दर हरे अङ्कुरो के कारण रमणीय थी। ऐसी उस वनस्थली पर दृष्टि देकर श्रुतिशील ने राजा से कहा ॥

'देव'—

माद्यद्दन्तिकपोलपालिविगलद्दानाम्बुसिक्तद्रुमाः
क्रीडत्क्रोडकुलार्धचर्वितपतन्मुस्तारसामोदिताः।
अन्तःसुस्थितपान्थमन्थरमरुल्लोलल्लतामण्डपाः
कस्यैता न हरन्ति हन्त हृदयं विन्ध्यस्थलीभूमयः ॥ ३४ ॥

माद्यदिति ॥ मुस्तायाः कन्दविशेषस्य रसेन निर्यासेनामोदिताः । अन्तर्मध्ये सुस्थिताः पान्था यासु । तथा मन्थरमरुता मन्दानिलेन लोलन्तश्चलन्तो लता-मण्डपा यासु । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ ३४ ॥

देव, क्या ही सुन्दर यह विन्ध्याचल की भूमि है जहाँ मतवाले हाथियों के कपोलस्थल से बहते हुए मदजल से पेड़ सींच उठे हैं, खेलते हुए सूकरो के आधे चबाये हुए मुस्ता के रस से जो सुगन्धित हो गयी है, भीतर की ओर पथिकजन मजे में बैठे हुए हैं, मन्द-मन्द हवा से लतामण्डप डोल रहा है, किस का मन नहीं हर लेती ॥ ३४ ॥

इतश्च पश्यतु देवः—

एषा सा विन्ध्यमध्यस्थलविपुलशिलोत्सङ्गरङ्गत्तरङ्गा
सम्भोगश्रान्ततीराश्रयशबरवधूशर्मदा नर्मदा च।
यस्याः सान्द्रद्रुमालीललिततलमिलत्सुन्दरीसंनिरुद्धैः
सिद्धैः सेव्यन्त एते मृगमृदितदलत्कन्दलाः कूलकच्छाः ॥३५॥

इधर देखें श्रीमान्—

विन्ध्याचल के बीच की बड़ी-बड़ी शिलाओं की गोद मे थिरकती हुई लहरियों वाली, तीरभूमि पर स्थित, सम्भोग श्रम से श्रान्त शबर युवतियों

को आराम देने वाली यह वह नर्मदा नदी है जिसकी घनी वृक्ष-पंक्तियों की मधुर छाया से सुन्दरियो से लिपटे हुए सिद्ध लोग मृगो द्वारा रौंदे गये अङ्कुरो वाले तटप्रदेश का उपभोग कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

अपि च। अन्तरेऽप्यस्याः—

मज्जत्कुञ्जरकुम्भमण्डलगलद्दानाम्बुनः सौरभाद्
भ्राम्यद्भृङ्गकुलावलीः कुवलयश्रेणीः समाबिभ्रतः ।
कल्लोलाः कलिकालकल्मषमुषः प्रोल्लीलललीलाकृतः
स्वःसोपानपरम्परा इव वियद्वीथीमलंकुर्वते ॥ ३६ ॥

मज्जदिति ॥ भृङ्गकुलानां कुवलयान्युपमानम् । बिभ्रत इति कल्लोलविशेषं असमतम् । 'नाभ्यस्ताद्'–इति नुमभावः ॥ ३६ ॥

स्नान करते हुए हाथियों के कुम्भस्थल से चूते हुए मद जल की सुगन्ध के कारण गूँजते हुए भ्रमर वर्गों और कमलश्रेणियो को धारण करने वाली, उत्कृष्ट विलास सम्पन्न, कलि के पापो को नष्ट करने वाली नर्मदा की तरङ्गें स्वर्ग सीढ़ियो ( सोपान ) की पङ्क्ति की तरह आकाश मार्ग को अलङ्कृत कर रही हैं ॥ ३६ ॥

इतश्चास्यास्तीरे—

अंसस्रंसिजलार्द्रजर्जरजटाजूटैर्मनाङ्मन्थरा-
स्तिग्मत्सारयतन्तुनिर्मितकुथत्कौपीनमात्रच्छदाः ।
शीतोत्कण्टकितास्थिशेषतनवः स्नात्वोत्तरन्तः शनै-
रेते पश्य पतन्ति पिच्छिलशिलाजाले जरत्तापसाः ॥ ३७ ॥

अस्तेति ॥ तरवु जातास्तारवाः । ते च ते तन्तवश्च । पिच्छिलं मसृणं कर्दमिलम् ॥ ३७ ॥

देखिये जल से भीगी हुई शिथिल जटाये कन्धे तक लटक रही हैं, आर्द्र वल्कल तन्तुओ से निर्मित अत्यन्त पुराना कौपीनमात्र वस्त्र धारण किये हुए हैं, ठंडी के कारण रोंगटे खडे हो गये है, शरीर मे हड्डी ही अवशिष्ट रह गयी है, देखिये, ऐसे वृद्ध तपस्वी स्नान कर धीरे-धीरे पिच्छिल ( फिसलने वाले ) शिला समूह पर उतर रहे हैं ॥ ३७ ॥

इतोऽपि—

पश्यैताः करिकुम्भसंनिभकुचद्वन्द्वोल्लसद्वीचयः
क्रीडन्त्यब्जविकासभासि पयसि स्वैरं पुलिन्दस्त्रिय ।
उन्मीलन्नवनीलनीरजधिया पक्ष्मान्तरे नेत्रयो-
र्यासां हस्तलताहता अपि परिभ्राम्यन्ति भृङ्गाङ्गनाः ॥ ३८ ॥

इधर भी—

देखो, हाथियों के कुम्भस्थल सदृश स्तनयुगल से जल तरङ्ग को सुशोभित करती हुई, कमलों के विकास के कारण इस मनोहर जल में शबर युवतियाँ खेल रही हैं, जिनके नेत्र भाग के पलकों को विकसित हो रहे कमल समझ कर (आयी हुई) भ्रमर बधुएँ हस्तलता से भगायी जाने पर भी चक्कर काट रही हैं ॥ ३८ ॥

[ शबर युवतियाँ स्नान कर रही हैं। उनके उन्नत स्तनों के होने से पानी तरङ्गित हो उठा है। उनके पलकों को कमल समझ कर भ्रमरियाँ उनके सामने भनभना रही हैं। युवतियाँ अपने हाथों से उन्हें किसी-किसी तरह हटा पाती हैं ॥ ३८ ॥

इतोऽप्यवलोकयतु देवः—

बालोन्मीलत्कुवलयवनं विस्तरद्गन्धरुद्ध-
भ्राम्यद्भृङ्गैस्तुमुलपयःपूर्णमेघान्धकारम् ।
हर्षात्पश्यत्ययमतितरां तीरवारां मयूरो
मुग्धः पार्श्वे भ्रमति च भयाच्चक्रवाकः ॥ ३९ ॥

बालेति ॥ विस्तरता प्रसरता गन्धेन रुद्धाः। अत एव भ्राम्यन्तो भृङ्गास्तैः तुमुलः पयःपूर्णमेघोऽन्धकारश्च येनेति वनविशेषणम् । मेघाद्धि मयूरस्य हर्षः। अन्धकाराच्च रात्रिशङ्कया चक्रवाकस्य भयम् ॥ ३९ ॥

नवीन, विकसित हो रहे, कमलवन की फैलती हुई गन्ध से बधे हुए और चक्कर काटते हुए भ्रमरों के प्रतिबिम्ब से सरोवर का जल पूर्ण मेघ की तरह अन्धकाराच्छन्न दीखता है। अतः तटप्रदेश पर घूमने वाले मयूर उसे प्रसन्नता के साथ देख रहे हैं किन्तु भोला-भाला चक्रवाक डरता हुआ उसके पास चक्र की तरह घूम रहा है ॥ ३९ ॥

[ भ्रमरों का प्रतिबिम्ब काले मेघ और रात्रि दोनों तरह की भ्रान्तियों को उत्पन्न कर रहा है। मयूर तो उसे मेघ समझ कर आनन्द मानते हैं किन्तु चक्रवाक उसे रात्रि समझ बैठता है। रात्रि में वह अपनी प्रियतमा से वियुक्त हो जाता है। अतः रात्रि से वह खूब डरता है। इस प्रतिबिम्ब को रात्रि समझ कर दुःख के मारे चक्र जैसा नाच रहा है। वर्णित सामग्री से जल की अतिशय सौरभसम्पन्नता व्यक्त हो रही है ॥ ३९ ॥ ]

इदं च—

कुररमरसहं सहंसमालं मुदितमयूरचकोरचक्रवाकम् ।
क इह सुरुचिरं विलोक्य प्रवरमते रमते नरो न रोधः ॥ ४० ॥

कुररेति ॥ प्रवरा मतिर्यस्य तत्संबोधनम् । इह रोधस्तटं विलोक्य को नरो न रमते क्रीडत्येव सर्व.। कथंभूतम् । कुरराणा भरमतिशय सहते। तथा सह हंसमालया तथा मुदिता मयूराश्चकोराश्चक्रवाकाश्च यत्र । यतः सम्दु हचिरम् ॥४०॥

ओ प्रज्ञासम्पन्न महाराज, जहाँ कुरर भरे हैं, हंसो की पङ्क्ति है, प्रसन्न मयूर ओर चक्रवाक हैं ऐसे इस रमणीय तट को चिरकाल तक देख कर किस आदमी का मन यहाँ नहीं लगता ॥ ४० ॥

इतश्च—

बककृतनिनदं नदं न दम्भात्कृतसवनं सवनं भजन्त एते ।
निरुपमविभवं भवं स्मरन्त प्रशमधना मुनयो नयोपपन्नाः ॥ ४१ ॥

बकेति ॥ प्रशम एव धनं येषा ते मुनयो नययुक्ता । अनुपमसामर्थ्यं भवमीश्वरं स्मरन्तो बकै कृतशब्दम् । तथा न दम्भात्कपटादपि तु धर्मवासनया कृत सवनं स्नान यत्र तम् । तथा सह वनै सवन वनयुक्तम् । नद जलाधारविशेषम् । एते भजन्ते ॥ ४१ ॥

इधर—

शान्ति सम्पत्ति को रखने वाले नीतिसम्पन्न ये मुनि इस नदी तट पर जहाँ कपटपूर्वक स्नान करने वाले बगुले बोल रहे है, अनुपम ऐश्वर्य को धारण करने वाले भव ( भगवान्, शकर ) को स्मरण करते हुए आडम्बर-शून्य यज्ञ कर रहे हैं ॥ ४१ ॥

[ बगुले पानी मे गोता इसलिये नही लगाते कि उन्हें पवित्र होना है । उनका उद्देश्य होता है पानी मे कपटपूर्ण ढग से चोच दबाकर मछलियो को पकडना ॥ ४१ ॥ ]

विधुतपाप्मानः खल्वमी महानुभावा. ॥

तथाहि—

मुहुरधिवसतां सतां मुनीनामपविपदां विपदाङ्कपङ्कभाञ्जि ।
तटनिकटवनानि नर्मदायाः कथमिभवन्ति भवन्ति कल्मषाणि ॥४२॥

मुहुरिति ॥ इभवन्ति गजवन्ति तथा वीनां पक्षिणां पदमङ्कं यत्र तथोक्तं पङ्कं भजन्ते तानि नर्मदायास्तटसमीपवनानि कर्मभूतानि अधिवसतां सतां विदुषाम् । अपगता विपद्येभ्यस्तादृशां मुनीनां कथं कल्मषाणि पापानि भवन्ति । भवन्त्ये-वेत्यर्थ. ॥ ४२ ॥

निश्चित ही ये लोग सर्वथा निष्पाप हैं, क्योंकि—

पक्षियों के चरणों से चिह्नित पङ्क वाले तथा हाथियों से भरे हुए नर्मदा नदी के समीपवर्ती वनों में निवास करने वाले सज्जनों एव मुनियों को पाप कैसे छू सकते हैं ॥ ४२ ॥

[ वि + पद + अङ्क—पक्षियों के पैरों से चिह्नित। इभवन्ति—हाथियों से युक्त। नर्मदा नदी के पवित्र जल से समीपवर्ती वन भूमि पङ्किल हो ही गयी है। रेंगते हुए पक्षियों के पैरों ने चिह्न उस पर पड़ गये हैं। जङ्गल इतने घने हैं कि हाथी आदि महान् एवं हिंस्र जानवर वहां मजे से रह सकते हैं। भयंकर जङ्गलों तथा कठिन परिस्थितियों में रहने के कारण मुनियों का तपस्यात्मक महत्त्व और बढ़ गया है ॥ ४२ ॥ ]

इतश्च—

क्वचित्प्रवरगैरिकासमसमुल्लसत्पल्लवं
लवङ्गलवलीलतातलचलच्चकोरं क्वचित्।
क्वचिद्गिरिसरित्तटीतरणविस्फुरत्कन्दलं
दलन्निचुलमञ्जरीमधुनिरुद्धभृङ्गं क्वचित् ॥ ४३ ॥

क्वचिच्चटुलकोकिलाकुलितनूतचूताङ्कुरं
कुरङ्गकुलसेवितप्रबलसालमूलं क्वचित्।
क्वचित्प्रवरखेचरसुरवधूपदैः पावनं
वनं नयति विक्रियामिह मनो मुनीनामपि ॥ ४४ ॥ युग्मम् ॥

क्वचिदिति ॥ प्रवरं गैरिकं यत्र। तथा असममप्रतिमम्। सर्वोत्कृष्टमिति यावत्। तथा समुल्लसन्तः पल्लवा यत्र। पश्चात्पदानुक्रमं कर्मधारयः। गैरिकशब्दो नपुंसकः। 'प्रवरगैरिकोपम' इति वा पाठः ॥ ४३-४४ ॥

कहीं लाल रंग के अनुपम ढंग से चमकते हुए पल्लवों वाली लवङ्ग और लवली लताओं के नीचे चकोर घूम रहे हैं। कहीं पर्वतीय नदियों के तट पर होनहार चमकते हुए अङ्कुरों वाले बेंत की खिली हुई मञ्जरियों के पराग में भौंरे अटके हुए हैं ॥ ४३ ॥

कहीं आम का नवीन कलिकाङ्कुर चंचल कोयलों से भरा हुआ है। कहीं विशाल साल वृक्षों की छाया मृगसमूह से सेवित हो रही है। कहीं उत्तमकोटि की देवाङ्गनाओं के चरणों से पवित्रित यह अरण्य मुनियों के चित्त में भी विकार ला देता है ॥ ४४ ॥

तदिदमद्यतनं दिवसमस्य सैन्यस्याध्वश्रमापद्यखेदापनुत्तिनिमित्त-मधिवसतु देवः ॥

तदिति ॥ खेदापनुत्तिः खेदापनोदः ॥

अतः सैनिकों के मार्गश्रम की निवृत्ति के लिये आप आज के दिन यहाँ निवास करें।

यत्र—

वायुस्कन्धमवष्टभ्य स्फारितैः पुष्पलोचनैः ।
वियद्विस्तारमेते हि वीक्षन्त इव पादपाः ॥ ४५ ॥

वायुस्कन्धमिति ॥ स्कन्ध संहत्यर्थोऽसार्थश्च । कुतोऽत्रावास । हि यस्मात् तुङ्गा॰ पुष्पिताश्चात्र पादपाः सन्ति ॥ ४५ ॥

जहां हवा के कन्धे पर चढ़कर पुष्परूप नेत्रों को खोल कर ये पेड मानो आकाश का विस्तार देख रहे हैं ॥ ४५ ॥

अपि च येषाम्—

स्कन्धशाखान्तरालेषु पश्य जीमूतपङ्क्तयः ।
लम्बमाना विलोक्यन्ते चलद्वल्गुलिका इव ॥ ४६ ॥

और जिनकी मुख्य शाखाओं के बीच लटकती हुई बादलों की पंक्तियाँ रेंगती हुई वल्गुलिका की तरह दीख रही है ॥ ४६ ॥

येषां च—

उच्चैः शाखाग्रसंलग्ना मन्ये नूनं वनौकसाम् ।
कुर्वन्ति पुष्पसंदेहं निशि नक्षत्रपङ्क्तयः ॥ ४७ ॥

उच्चतर शाखाओं से संयुक्त ये नक्षत्र पंक्तियां रात में निश्चित ही वन॰ वासियों को फूल का सन्देह उत्पन्न कर देती हैं ॥ ४७ ॥

[ पेड इतने ऊँचे है कि रात को ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी शाखायें तारों को छू रही हैं। शाखाओं से सम्बद्ध प्रतीत होने वाले तारे फूल की तरह लग रहे है। वनवासी अचानक उन्हें फूल समझ बैठते हैं ॥ ४७ ॥ ]

इतश्च—

एतेषु प्रचण्डपवनाहततरुतलगलितसुगन्धिविविधविकचकुसुम॰ प्रकरमकरन्दमापीय पुन शिखरशाखाभिमुखमुत्पतन्त्यो विभान्ति दुरारोहतया कृता॰ केनापि निःश्रेणय इव श्रेणयो मधुलिहाम् ॥

इधर—

प्रचण्ड वायु के झोंके से पेडों के नीचे गिरे हुए तरह-तरह के खिले हुए फूलों का मधु पीकर पुन पेडो की ऊँची शाखाओं की ओर उडती हुई भ्रमर पङ्क्तियाँ मानो किसी के द्वारा निष्पत्तिबद्ध की तरह कर दी गयी हैं, क्योंकि पेड इतने ऊँचे हैं कि भ्रमर उन पर चढ नहीं पाते ॥

इतश्च—

निश्चलानां सैन्यभयेन तुङ्गतरुशिखरपञ्जरपुञ्जितगोलाङ्गूल॰

मण्डलानां निर्यन्नवप्ररोहाङ्कुराकाराः कुर्वन्ति वनदेवतानां क्रीडान्दोलनदोलाज्जुदाङ्कामधोविलम्बिलाङ्गूललतिकाः ॥

सैनिकों के भय से चुपचाप बड़े बड़े पेड़ों की ऊँची डालियों की छाया में इकट्ठे हुए लंगूर बन्दरों की, निकलते हुए नवीन अङ्कुर के आकारवाली नीचे लटकती हुई पूँछें वनदेवताओं के खेलने के लिए झूला की रस्सी की आशङ्का उत्पन्न कर दे रही हैं।

[ बन्दरों की लम्बी-लम्बी पूँछें रस्सी की तरह लटकी हुई हैं। ऐसा लगता है कि वनदेवता लोगों की झूले की रस्सी लटकी हो। ]

इतश्च—

चकासत्युड्डीयमानास्तरुशिरःशिखरशाखाप्रस्खलनविलग्नग्रहगणविमानपङ्क्तिपताका इव विहगावलयो निश्चलम् ॥

इधर उड़ती हुई पक्षिपंक्तियाँ पेड़ों की ऊँची डालियों से टकरा कर अंटके हुए तारों के विमानसमूह की पताका की तरह सुशोभित हो रही हैं।

[ पेड़ इतने ऊँचे हैं कि ग्रहगण ( तारकगण ) उनसे चिपके हुए-से प्रतीत होते हैं। पेड़ों की शाखाओं के अग्रभाग में उड़ती हुई पक्षियों की मण्डली उन तारक विमानों की पताका की तरह प्रतीत होती है ]।

इतश्च—

विजृम्भमाणमञ्जरीजालेषु सर्वर्तुर्धिकासिसहकारवनेषु वनदेवताभिरुद्दामदवदहनमर्नाकारार्थमनागतमेव संगृहीतवारिगर्माम्भोदपटलमिवालोक्यते कोकिलाकुलकदम्बकम् ॥

इधर—

सभी ऋतुओं में विकसित होने वाले आम के बगीचों में खिलती हुई मञ्जरियों पर कोयलों के घने समूह को वनदेवताएँ जंगल की विशाल अग्नि को बुझाने वाले जल भरे मेघ की तरह देख रही हैं।

इतश्च—

विकसितसितपुष्पपिण्डपाण्डुरशिखराः सुधाधवलितोर्ध्वभूमयो विलासप्रसादा इव कुसुमसायकस्य जराधवलमौलयः कञ्चुकिन इव वनदेवतानाम्, उन्मादयन्ति मनोऽमन्दमुचुकुन्दपादपाः ॥

दरदेति ॥ गोलाङ्गूलानां कृष्णमुखमर्कटानां लाङ्गूललतिका पुच्छवल्लय। अतिलोमशत्वान्निर्यन्नवप्ररोहाङ्कुर आकारो यासाम् ॥

खिले हुए सफेद पुष्पों के कारण श्वेत शिखर वाले मुचुकुन्द के पेड़ चूने

से पुते हुए विलास भवन की छत की तरह तथा कामदेव के पके बाल वाले कञ्चुकी की तरह वनदेवताओं के मानस को उन्मत्त बना देने है।

तदेवंविधेषून्मुकुलविगलितबहलमकरन्दसीकरासारसुरभितभूतलेषु मुग्धमृगपरिहृतदावानलज्वालायमानोन्मदशबरसीमन्तिनीचरणप्रहारविकसिताशोककाननेषु नवजलधरनिकुरम्बकान्तितमालतरुशिरःस्थितशब्दानुमेयमायन्मयूरमण्डलेषु मदनालसपुलिन्दराजसुन्दरीशिक्ष्यमाणवनकपोतकुक्कुटकुक्कुहकुलकुहरितेषु कूजत्कुररपरिवारितसरःपरिसरेषु चलत्चकोरसारसरवरमणीयेषु विहरतु देवः सह सैन्येन नर्मदोर्मिमन्दानिलान्दोलितलतापल्लवेषु वनेषु ॥

तदेवमिति ॥ मुग्धमृगेत्यादि वनविशेषणम् । लौहित्यान्मुग्धमृगैर्दावानलभ्रान्त्या कुसुमिताशोककाननानि परिहृतानीति भावः ॥

इस तरह के जंगल मे आप ससैन्य विहार करें। यहां की पृथ्वी खिलती हुई कलियों के गाढ़े पराग बिन्दुओं की वर्षा से सुगन्धित हो गई है। अशोकवन शबर युवतियो के पद प्रहार से खिल उठे हैं। इनके इस विकास को दावाग्नि की ज्वाला समझ कर भोले मृग ( जगल ) छोड़ दिये है। नवीन मेघसदृश कान्ति धारण किये हुए तमाल वृक्ष के ऊपर बैठे हुए मतवाले मयूर केवल शब्दमात्र से पहचाने जाते हैं। कामातुर, तन्द्रायुक्त शबरपतियो की युवतियों द्वारा सिखाये जाते हुए कुक्कुटो और कुक्कुहो की ध्वनि से गुञ्जित हो उठा है। सरोवर का तट कूजने हुये कुररो से घिरा हुआ है और भ्रमणमग्न सारसो की ध्वनि से रमणीय प्रतीत हो रहा है। नर्मदा की लहरियो के कारण बोझिल बने हुये मन्द पवन से लता पल्लव कम्पित हो रहे हैं।

राजापि श्रुतशीलेन दर्शितांस्तांस्तान्देशानवलोक्य चिन्तितवान् ॥

राजा भी श्रुतिशील द्वारा दिखाये हुये उन-उन स्थानो को देखकर सोचने लगा।

'कृतक्रीडाः क्रोडैर्मदकलकुरङ्गीहृतमृगाः
परिभ्राम्यद्भृङ्गाः परभृतकुलाक्रान्ततरवः।
वनोद्देशाः पौष्पैः सुरभितदिगन्ताः परिमलै-
र्न चेतः कस्यैते विलसितविकारं विदधति ॥ ४८ ॥

शूकर खेल चुके हैं, मद के कारण मनोहर मृगियां मृगों को अपनी ओर आकृष्ट कर ली हैं और भ्रमर घूम रहे हैं, कोयल से वृक्ष भरे हुये हैं, पुष्पों के पराग से दिशायें सुरभित हो गयी हैं, ऐसा यह वनप्रदेश किसके चित्त मे विकार का विलास नहीं उत्पन्न कर देता ॥ ४८ ॥

तथा—

> वीचीनां निवहा स्पृशन्ति जलदानुद्गन्धिसौगन्धिका
> नृत्यत्केकिकदम्बकानि विकसद्दीर्घन्धि रोधांसि च।
> धत्ते सैकतमुग्धदन्तदलक्रौञ्चावलीसारसा-
> न्यस्याः पद्मपरागपिङ्गपयसः सेव्यं च सिन्धोर्न किम् ॥४९॥

वार्वीनामिति॥ उद्गन्धिभिः सौगन्धिका वीचिनिचया जलदान् स्पृशन्ति। रोधांसि च स्फुरन्ति। तदेवं यस्या सिन्धो, किं वा न सेव्यम्। चकारो वाक्ये ॥ ४९ ॥

उत्कृष्ट गन्ध वाले कमलों से पूर्ण तरङ्गों का समूह मेघों को छू रहा है, तट-प्रदेश पर मयूर-वृन्द नाच रहा है, लताएँ पल्लवित हो रही हैं, बालुकामयी भूमि शोभित हुए सुन्दर युवक क्रौञ्चों के समूह तथा सारस पक्षियों को धारण कर रही है, कमलों के पराग से पीले जल वाली इस नदी की कौन सी चीज ग्रहण करने योग्य नहीं है ॥ ४९ ॥

तदुचितमिहाद्य दिवसमावासं कर्तुम्' इति विचिन्त्य अङ्कोत संज्ञार्पितसेनासन्निवेशस्तत्कालमेव 'विरचयत तुरङ्गममन्दुरा: सरसदीर्घदूर्वानलनीलनिम्नस्थलीषु, कुरुत कायमानानि सरित्सैकतेषु, उन्नमयत पटकुटीः कूलकाननेषु, आलानयत मदमत्तमतङ्गजान् मदकण्डूकपोलकाषसहेषु सरलसालसल्लकीसर्जार्जुनस्कन्धेषु, दूरमुत्सारयत शैवलशिलाजालकाष्ठकूटकण्टकपटलानि, समीकुरुत विषमभूभागान्' इति सेनापतिप्रमुखमुखरलोककलकलमुत्तालमुत्थित मसहमानस्तद्विरामावसरं प्रतिपालयन्नेकान्तेऽन्यतमप्रदेशे तस्याः सरितः सूक्ष्ममुक्ताफलसोदरधवलवालुकापुलिनपृष्ठे पथास्यानगोष्ठी बबन्ध ॥

तदुचितमिति॥ मन्दुरा वाजिशाला। कायो मीयन्ते कायमानानि लोकप्रसिद्धया रौहिषादितृणमयावासविशेषाः। मदमत्तमतङ्गजानिति। मदेन वीर्यविपाकेन मत्ता मदमत्ताः प्रशस्तियोगात्। आलानि मर्कटिकाख्यकर्णिकृतगृहाणि। कूट समूहम् ॥

अतः आज यहीं पर ठहर जाना अच्छा है। यह सोचकर कमलनाभ के सङ्केत से सेना के विश्राम की सूचना दिया। "अत: तत्काल ही लम्बी-लम्बी दूब और नल घासों वाली हरी जगह पर घोड़ों के रहने की जगह बनाओ। निवास के लिए बालुकामय तट पर कुटीर बनाओ। नील पत्थरों वाले उपवनों में तम्बू तानो। अधिक खुजलाहट उत्पन्न करने वाले कपोलों के घर्षण को सह सकने में समर्थ सीधे-सीधे इन साल, सल्लकी, सर्ज और अर्जुन वृक्ष के तनों में मदमत्त हाथियों को बाँध दो। शैवालों, पत्थरों, काष्ठों तथा काँटों को दूर

हटाओ। ऊँची नीची जमीनो को बराबर करो।" इस तरह सेनापति आदि मुख्य लोगो के बोलने पर जनसामान्य से उठी हुई जोरो की कलकल ध्वनि को न सहता हुआ उस कोलाहल बन्द होने के अवसर की प्रतीक्षा मे उस नदी का एक एकान्त स्थान पर जहाँ बालुकामयी भूमि मुक्तामणि के चूर्णित सूक्ष्म कणो के कारण धवल हो गयी थी, अपनी निवास गोष्ठी की रचना किया।

**अथ नातिदूरे पुरोऽस्य शीतशैवलचक्रवाले चरतश्चक्रवाककदम्बकस्य मध्ये कोऽप्युत्क्षिप्य पक्षपुटम्, उद्गमय्य ग्रीवाग्रम्, अनङ्गपरवशो दूरादुपसर्पन्ननुरागिणीं काञ्चिच्चक्रवाकीं, दर्शितचाटुचातुर्यश्चक्रवाकयुवा दृष्टिपथमवातरत्॥**

इनके समीप ही शीतल शैवालपुञ्ज मे चरते हुए चक्रवाक वर्ग के बीच से अपने पखो को फड़फड़ा कर, गर्दन को ऊपर उठाकर, कामवशीभूत कुशल, चाटुकारिता दिखाता हुआ, किसी अनुरागिणी चक्रवाकी की ओर आता हुआ कोई चक्रवाक युवक उन्हे दीख गया।

**अपरे च चत्वारो राजहंसास्तामेव चक्रवाकीं कामयमानास्तमापतन्तमन्तरान्तरा निपत्य स्खलयाम्बभूवुः॥**

और भी चार राजहस उसी चक्रवाकी को चाहते थे। अत आते हुए उस चक्रवाक युवक को बीच-बीच मे हमला कर रोक दिये।

**तांश्चावलोक्य राजा विहसन्नासन्नवर्तिनं श्रुतशीलमायभाषे॥**

**'वयस्य, विलोक्यतामिदमसमञ्जसम्॥**

उन्हे देख कर हसते हुए राजा ने श्रुतिशील से कहा—

मित्र, यह विषमता देखो।

**अमी राजहंसाः सतीष्वपि स्वजात्युचितानुचरीषु कथमन्यासक्तामपीमां चक्रवाककामिनीं कामयन्ते॥**

**न खल्वेषामियमनङ्गभूमिः॥**

न खल्विति॥ यथा चक्रवाकी चक्रवाकस्य सजातीया, एव मनुष्यजातेर्नलस्य मानुषी दमयन्त्युचिता। यथा हसानां सानुचिता, एवं लोकपालानामपि दमयन्तीति॥

इन्ही की जाति वाली, इनके पीछे चलने वाली राजहंसियो के रहने पर भी ये राजहस दूसरे मे अनुरक्त इस चक्रवाक युवती को क्यो चाह रहे हैं?

इन लोगो के काम का पात्र यह नहीं है।

**अथवा—**

**किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्य-**
**स्त्रिदिवपतिरहल्यां तापसीं यत्सिषेवे।**

हृदयतृणकुटीरे दीप्यमानेऽस्मरागना-
गुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि ॥ ५० ॥

किनु इति ॥ ह्रस्वा कुटी कुटीर । 'ह्रस्वे' इत्यधिकारे 'कुटीशम'-इति सूत्रेण रप्रत्यय ॥ ५० ॥

या—क्या नीलकमल सदृश नेत्र वाली स्वर्ग की रमणियां नहीं थी कि स्वर्ग के स्वामी इन्द्र तपस्विनी अहल्या के साथ रमण किये ? जब हृदयरूप तृण मन्दिर म काम की आग धधक उठती है तो विद्वान् भी उचित अनुचित पर विचार नहीं करता है ॥ ५० ॥

एवंवादिनि राजनि, अकस्मात्कोमलकण्ठकुहरप्रेङ्खोलनालंकार-सुन्दरोऽमन्दमूर्च्छनाविच्छिन्नसरसस्वरस्वरूपः प्रसन्नमप्रयुज्यमानतान-विशेषाभिव्यक्तिस्पष्टश्रुतिसुभगो गगने गान्धारग्रामगामी गीतध्वनि-रुदचरत् ॥

राजा इस तरह कह ही रहे थे कि अचानक कोमल कण्ठनली से निकलने के कारण अलङ्कार सदृश, सुन्दर द्रुतगामी मूर्च्छनाओं से युक्त मधुर स्वर विशिष्ट, बहुत अच्छी तरह प्रयुक्त तान के माध्यम से प्रकट, स्पष्टरूप से कानों को मधुर लगने वाली, गान्धारपद्धति की गीतध्वनि आकाश में गूंज उठी ।

अवाहीच्च चलदलिपटलपीयमानापूर्वपरिमलोद्गारिपारिजात-मञ्जरीमकरन्दबिन्दुवर्षवाही वायुः ॥

भनभनाते हुए भ्रमर वर्ग द्वारा पीये जाते हुए अपूर्व पराग बरसने वाले पारिजात पुष्पों की मञ्जरी के परागकणों की वर्षा होने वाली हवा बही ।

अथ कौतुकोत्तानितानेन नरपतिनाप्यदृश्यत, शातकुम्भभङ्ग-पिशङ्गप्रभामण्डलमध्यवर्तिनः प्रधानपुरुषस्याग्रे गृहीतजात्यजाम्बूनद-दीर्घदण्डः कुण्डलालंकारवानुम्मिषन्मन्दारमुकुलमालामण्डितमौलिर-म्बरत्लम्बरान्निर्निमेषः सुवेशः पुरुषः ॥

स्वर्णखण्ड की तरह पीत कान्ति राशि के बीच किसी प्रमुख पुरुष के आगे उत्तम स्वर्ण का दण्ड लिये हुए, कुण्डल पहने, खिलती हुई मन्दार कलियों की माला से शिर को अलंकृत किये, पलकहीन, सुन्दर वेष से मण्डित, आकाश से उतरते हुए किसी पुरुष को उत्सुकता से ऊपर की ओर मुँह उठाकर राजा ने देखा ।

अवतीर्य च सोऽतिविस्मयविस्फारितविलोचनमवनिपालमवादीत् निषधेश्वर, त्वरितमुत्तिष्ठ । अर्घाय सज्जो भव ॥ किं न पश्यसि—

उतरकर उसने अत्यन्त आश्चर्य के कारण खुली हुई आँखों वाले उस पृथ्वीपाल से कहा—"निषधपति, शीघ्र उठिये। पूजन के लिये तैयार हो जाइये। क्या देखते नहीं ?

अवतरति घृताचीस्कन्धविन्यस्तहस्तः
श्रुतिसुखकृतगीते किंनरे दत्तकर्णः।
किमपि सपरिरम्भं रम्भयारभ्यमाण-
व्यजनविधिरधीशः स्वर्गिणामेष देवः ॥ ५१ ॥

यह देवताओं के स्वामी इन्द्र हैं। घृताची नामक अप्सरा के कन्धे पर हाथ रक्खे हैं। कानों को सुख देने वाली गीतियों को गाने वाले किन्नरों की ओर कान लगाये हैं। अपूर्व आलिङ्गनपूर्वक रम्भा (अप्सरा) पंखा झेल रही है ॥५१॥

अपि च—

विरचितपरिवेषाः स्वाभिरङ्गप्रभाभि-
र्भुवनवहनभारोद्धारधुर्यांसपीठाः।
उरसि परिविलोलद्दीर्घदामान एते
यमवरुणकुबेरा स्वामिनो लोकपालाः ॥ ५२ ॥

और—संसार का भार धारण करने में समर्थ उत्कृष्ट कन्धों वाले, अपनी अङ्गकान्ति से छटा मण्डल बनाये हुए, वक्षःस्थल पर हिलती हुई लम्बी मालायें पहने हुए, ये लोकपाल स्वामी यम, वरुण और कुबेर हैं।" ॥ ५२ ॥

राजा तु तदाकर्ण्य ससंभ्रमोत्थानवशचलितोत्तरीयाञ्चलस्खलत्कनककङ्कणरणत्कारमुखरितमाधाय मूर्ध्नि संपुटितपाणिपल्लवयुगलमाश्चर्यरसरभसवशमुच्छ्वास्यमानसर्वाङ्गपुलकः कतिपयपदान्यभिमुखं सह परिजनेनोच्चलितवान् ॥

राजा तो यह सुनकर घबड़ाहट के साथ उठने के कारण फड़फड़ाते हुए दुपट्टे के अञ्चल के संस्पर्श से सोने के कंकण जिनमें मुखरित हो उठे थे ऐसे करपल्लव युगल को जोड़कर सिर से लगाया। आश्चर्य रस के आवेश में लम्बी साँसें भर रहा था। पूरे अङ्गों में रोमाञ्च हो आया था ( इस तरह की मुद्रा में ) अपने नौकरों के साथ कुछ कदम सामने की ओर बढ़ा।

अथ सकलसुरशिरःशेखरायमाणचरणरेणुरनेकनाकुकामिनीकुचकुम्भकुङ्कुममञ्जरीमुद्राङ्कितविपुलवक्षः स्थलोद्दद्यमानमहानीलमणिमण्डनतिभमव्यग्रश्रवणः, श्रवणशिखरारोपितप्रत्ययग्रपारिजातमञ्जरीगलद्बहलकिञ्जल्ककणानुपान्ते गायतस्तुम्बुरोः साक्षादमृतायमान-

गातरसमनुसरतानिव परिपूर्णकर्णोद्गीर्णान् कपोलपालिलग्नानुद्वहन्, अनवरतशचीचुम्बनसंक्रान्तताम्बूललाञ्छनायमानाकठाच्छहरिचन्दन निष्कलङ्कस्कन्धसंधि, अन्धक इव हारयष्ट्यास्फालितवक्षःस्थल, विन्ध्यगिरिरिव सहस्राक्ष, पन्नगेन्द्र इव कुण्डली पातालमुद्भासमानश्च, *कलिकालदोषावतीर्णसरस्वतीगातप्रवाह इव मत्तमातङ्गगामी दिशि दिशि विकीर्णैर्नखकरपिशङ्गरश्मिभिरविच्छिन्नपद्मरागारुणप्रभामण्डलमण्डन, सह लोकपालैर्भगवान्पुरंदरः पूर्वदिग्भागाम्बरादवातरत् ॥

अथ नन्तरेण अथानन्तरं पूर्वदिग्भागाम्बरात् पुरंदरोऽवातरत्। हारयष्टिर्मुक्तालता। अन्यत्र हरस्येव हारी यष्टि शूललक्षणा। अन्धको दैत्यविशेष। सहस्राक्षाणि यस्य। बहुपादो इति समासान्त एव। विन्ध्यपक्षे सहस्रशब्दः प्राचुर्यवचन। अक्षा विभीतका। कुण्डलं कर्णालंकारः महान्। तथा पाता रचिता अवस्थायां राजमानश्च। पन्नगेन्द्रस्तु कुण्डलाकारः। तथा पाताले भुजातालमुद्भासमान। मत्तमातङ्गः अपि यादृशः ऐरावत। चीवरायाणश्च। पद्मरागस्य मणेरिव लोहित प्रभामण्डलं नखेषु समस्य। अंशुमांस्तु अविकृत पद्मानां रागोऽरुणस्य प्रभा मण्डलं बिम्बम्। एतानि मण्डनं यस्य ॥

* कलिकाले पुराणेषु किल श्रूयते—पुरा सरस्वतीदधीच्यादिवृत्तविषये सवादं जायमान कुद्ध दधीचिना शप्ता सती सरस्वती। कलिकाले चाण्डालकुलेऽवतरति। अतएव कलिकाले चाण्डाला एव सस्वरं गायन्तीति विवृतिनामकटीका ॥

इसके बाद अपनी चरणधूलि से देवताओं के सिर को अलंकृत करने वाले महाराज इन्द्र लोकपालों के साथ पूर्व दिशा की ओर से उतरे। उनका विशाल वक्षःस्थल अनेक रमणियों के स्तनकलश पर बने हुए कुङ्कुम के मञ्जरी चिह्नों से चिह्नित था और उस पर वृत्रासुर के शस्त्रों के चिह्न विशाल नीलमणि के अलङ्कार की तरह सुन्दर लग रहे थे। कानों पर अत्यन्त नवीन पारिजात की मञ्जरी रक्खी हुई थी। उससे निकलते हुए गाढ़ पराग बिन्दु कपोलभाग पर अटके हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था कि समीप में लगे हुए तन्तुओं के सामान् अमृतसदृश मकरन्द के कण जब कानों में भर गये और उनके ठहरने के लिए स्थान न रहा तो बाहर निकल आये थे। सदा शची (इन्द्राणी) के चुम्बन से लगे हुए ताम्बूल चिह्न सदृश स्वच्छ हरिचन्दन के ढेर से ऊँचे-नीचे कन्धों के जोड़ सुन्दर लग रहे थे। अन्धकासुर के वक्षःस्थल पर हारयष्टि (शङ्कर जी का त्रिशूल) लगी हुई थी वैसे इनके वक्षःस्थल पर भी हारयष्टि (मुक्ता की माला) लगी हुई थी। विन्ध्याचल जैसे सहस्राक्ष (बहुत से बहेड़े के पौधों से युक्त) है वैसे वे भी सहस्राक्ष (हजार नेत्रों वाले) थे। सर्पराज जैसे कुण्डली (फेटा बनाये रहते) हैं और पाताललोक को उद्भासित करते हैं वैसे ये भी कुण्डली (कुण्डल धारण किये

हुए ) थे और पातालमुद्भासमान. (अल पाता, पूर्णरक्षक तथा भव्य कान्ति वाले ) थे। कलि के समय मे शाप के कारण अवतार ली हुई सरस्वती का गीतप्रवाह जैसे मत्तमातङ्गगामी (मतवाले चाण्डाल मे सगत रहता ) है वैसे वे भी मत्तमातङ्गगामी ( मतवाले हाथी पर चढकर चलने वाले ) थे। विभिन्न दिशाओ मे स्वर्ण की तरह पीतकान्ति बिखेर रहे थे। विशुद्ध पद्मरागमणि की अरुण कान्ति से अलंकृत होकर सूर्य सदृश प्रतीत होते थे।

[ इन्द्र-पक्ष मे पातालम् शब्द का विच्छेद अल पाता है। (पाता + अलम्)। अर्थात् इन्द्र पर्याप्त रक्षक हैं। उद्भासमान —भव्यकान्तियुक्त हैं। सर्पराज-पक्ष मे पाताल शब्द लोक का वाचक है। पाताल लोक अँधेरे से भरा रहता है। सर्पराज के मणि से ही वह उद्भासित होता है।

मत्तमातङ्गगामी—एक बार दधीचि और सरस्वती मे विवाद हो गया। दधीचि के शाप के फलस्वरूप सरस्वती को कलियुग मे चाण्डाल के घर अवतार लेना पडा। तभी से कहा जाता है कि कलि मे मधुर गीत प्रवाह चाण्डालो में ही पाया जाता है। इसी बात को ध्यान मे रखकर गीतप्रवाह को मत्तमातङ्गगामी कहा गया है ॥ ]

**अवतीर्य चक्षुषां सहस्रेणोन्मीलन्नीरजवनानुकारिणा निरूप्य पादयोः पुरः पतितमष्टाङ्गाश्लिष्टभूतलमिमम्, ऐरावतकुम्भकूटास्फालनकर्कशाङ्गुलिना, दुर्दान्तदैत्यदानववधूवैधव्यदानशालामूलस्तम्भेन, शचीकुचकलशसंस्पर्शसंक्रान्तकुङ्कुमपत्त्रवल्लीकेन, दक्षिणपाणिना, सहेलमुत्तमध्य मूर्ध्नि पस्पर्श ॥**

उन्होंने उतर कर खिलते हुए कमलवन सदृश अपने हजारो नेत्रो से, पैरो के सामने साष्टाङ्ग पृथ्वी पर पडे हुए उस ( राजा ) को देखकर शीघ्र ही उठाकर उनके सिर पर दाहिना हाथ फेरा। उनके हाथ की अगुलिया ऐरावत के विलष्ट कुम्भस्थल के स्पर्श से कर्कश हो गयी थीं। उनका हाथ बडी कठिनाई से दमन किये जाने वाले दानवो की पत्नियो के लिये वैधव्य दान रूप भवन का आधार-स्तम्भ था और उनमे शची के स्तन कलश के स्पर्श से कुङ्कुम की बनी हुई पत्र-रचना मुद्रित हो गयी थी।

**कृत्वा च कुशलप्रश्नालापव्यवहारानुच्चैः काञ्चनासनं समुल्लसन्मणिमयूखमञ्जरीजालजटिलमवनिभुजास्वभुजोपनीतमध्यतिष्ठत्॥**

कुशलप्रश्नविषयक व्यावहारिक बातो के बाद वे राजा द्वारा अपने हाथो से लाये हुए खिलती हुई मञ्जरी सदृश मणिकिरणपुञ्जवाल स्वर्ण के ऊँचे सिंहासन पर बैठे।

उपविष्टेषु यथोचितासन्नमासनेषु यमवरुणकुबेरप्रमुखेषु देवेषु क्रमेण कृतोचिताचारः पुरः पृथ्वीपृष्ठ एव विनयाद्विषद्य निषधेश्वरः पुरंदरमवादीत् ॥

समीप में ही यम, वरुण, कुबेर आदि प्रमुख देवताओं के उपयुक्त आसन पर बैठ जाने पर क्रम से उचित सत्कार कर नम्रतापूर्वक पृथ्वी पर ही उनके सामने बैठकर निषध-सम्राट् इन्द्र से बोले—

दिष्ट्या दिवौकसां नाथ जातो युष्मत्समागमात् ।
आकल्पं कीर्तनीयानां श्रेयसामस्मि भाजनम् ॥ ५३ ॥

देवताओं के स्वामी ! भाग्य की उत्कृष्टता के कारण आपके आगमन से सर्वदा के लिये मैं प्रशंसनीय मङ्गलों का पात्र बन गया हूँ ॥ ५३ ॥

अपि च—

इष्ट्वा क्रतून्युगशतानि तपश्चरित्वा
वाञ्छन्ति संगमसुखं मुनयोऽपि येषाम् ।
तेषामनुग्रहकृतां स्वयमेत्य मेऽद्य
युष्माकमादिशत किं प्रियमाचरामि ॥ ५४ ॥

और—

यज्ञ कर और सैकड़ों युगों तक तपस्या कर, मुनि लोग जिनके मिलने की आकाङ्क्षा करते हैं वह आप कृपाकर स्वयं ही आ गये हैं। अतः आज्ञा दीजिये, मैं आपका क्या प्रिय करूँ ॥ ५४ ॥

इति प्रकाशितप्रश्रयालापे पार्थिवपुंगवे पुरंदरो दरदलितकुन्दकलिकाकान्तदन्तद्युतिद्योतिताधरदलमीषद्विहस्य लीलावलितकंधरः कुबेरमुखमवलोकयाञ्चकार ॥

इति प्रकाशितेति ॥ दरदलितेत्यत्र दरोऽल्पार्थमीषदर्थे ॥

इस तरह राजा के नम्रतापूर्ण सम्भाषण व्यक्त करने पर इन्द्र थोड़ी खिली हुई कुमुद की कली सदृश चमकते हुए दाँतों की कान्ति से अधरदल को प्रकाशित करते हुए मुस्कुरा कर लीलापूर्वक कन्धे को घुमाकर कुबेर का मुख देखने लगे।

सोऽपि 'निषधेश्वर, श्रूयतामस्मदागमनकारणम् ॥

वे भी, 'निषधेश्वर, सुनिये हम लोगों के आगमन का प्रयोजन।

'अस्ति विदर्भाधिपतेर्भीमभूमिपालस्य सुता सुतारनयननिर्जितेन्दीवरा वरार्थिनी निजकान्तितिरस्कृतत्रिदिवनारीरूपसंपत्तिः कुन्ददन्ती दमयन्ती नाम ॥

विदर्भ देश के राजा भीम अपनी लड़की—जिसने अपनी सुन्दर कनीनिका वाली आंखों से नीलकमलों को भी जीत लिया है, अपनी कान्ति से स्वर्ग की रमणियों को भी तिरस्कृत कर दिया है, के लिये वर की खोज में है।

तस्याश्च चम्पकदलावदातदेहाया किल स्वयंवरमहोत्सवः सांप्रतं प्रस्तुतः' इति नारदादधिगम्य वयमपि विदर्भाधिपतिपुरं प्रस्थिताः ॥

चम्पक दल सदृश स्वच्छ देहवाली उस (दमयन्ती) का स्वयंवर महोत्सव होने वाला है। नारद द्वारा यह बात जानकर हम लोगों ने विदर्भ-नरेन्द्र की नगरी के लिये प्रस्थान किया है।

किंतु लघयति पुरुषं स्वमुखेनार्थिभावो यतस्तत्र गत्वापि दमयन्तीं किं ब्रूमो वयमिन्द्रादयो लोकपालास्त्वामर्थयामह इत्यसदृशं महिम्नोऽस्मद्विधेषु, स्पृहणीयरूपासि कं नोत्सुकयसीत्यनुचितमपरिचितेषु चाटुचातुर्यम्, अजरसः खल्वमरा वयमिति ग्राम्यः स्वप्रशंसोपक्रम, प्राप्नुहि त्रयाणामपि लोकानामाधिपत्यमस्मत्सङ्गमादिति महत्प्रागल्भ्य-प्रलोभनम्, अल्पायुषो मनुष्यास्तदस्माकं देवानां मध्ये कञ्चिद्वृणी-ष्वेति पापीयः परदोषोदाहरणद्वारेणाभ्यर्थनम् ॥

किन्तु अपने ही मुख से अपनी याचकता का वर्णन करना व्यक्ति को हलका बना देता है। वहाँ जाकर भी हमलोग दमयन्ती से क्या कहें। यदि यह कहें कि "हम इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारी याचना करते हैं", तो यह हम जैसे लोगों की मर्यादा के प्रतिकूल है। "तुम्हारा रूप बड़ा ही आकाङ्क्षणीय है अतः किसे नहीं उत्कण्ठित कर देती हो" इस तरह की चाटुकारितापूर्ण कुशलता किसी अपरिचित व्यक्ति पर दिखाना अनुचित है। "हम देवजन कभी वृद्ध नहीं होते" यह असभ्य ढंग की अपनी प्रशंसा होगी। "हम लोगों के साथ से तीनों लोकों का साम्राज्य प्राप्त करो" यह अत्यन्त धृष्टतापूर्ण प्रलोभन होगा। "मनुष्य अल्पायु होते हैं अतः हम देवताओं में से ही किसी को चुनो" इस तरह दूसरों में दोष दिखाकर याचना करना पापपूर्ण कार्य है।

अतो देशकालकार्योक्तिकुशलस्त्वमुच्यसे। गच्छाग्रे, भव दूतो देवानामशेषवैदग्ध्यविशेषोक्तिकोविद, किमन्यदिह शिक्ष्यसे, तैस्तैरुपायैः ताभिस्ताभि कलाभिः, तैस्तैः प्रलोभनप्रकारैः, क्रियतां देवकार्यम्, आर्याणां प्रायः परोपकारकरणार्थमेव जन्म च जीवितं च, न च भवन्तमस्मदनुभावादन्यः कोऽपि कन्यान्तःपुरे रहस्यपि वर्त्तमानां विदर्भेश्वरसुतामुपसर्पन्तमुपलक्षिष्यते' इत्यभिधाय व्यरंसीत् ॥

तुम देश, काल, कार्य तथा बोलने में अत्यन्त निपुण हो। अतः तुम से कहा जाता है, "आगे चलो। देवताओं का दूत बनो। समस्त सहृदयोचित

विशेष शक्तियों के विद्वान्, तुम्हें क्या सिखाना है। उन उन उपायों से, उन उन कलाओं से, उन उन मनोज्ञ-प्रकारों से, देवताओं का कार्य करो। आर्यों को प्राय परोपकार ही करने के लिये जीवन और जन्म मिला है। हम लोगों के प्रभाव से कन्यान्तःपुर के एकान्त में भी बैठी हुई विदर्भराज की लड़की के पास जाते हुए तुम्हें कोई भी दूसरा आदमी नहीं देख सकेगा।' यह कहकर रुक गये।

नलोऽप्येतदाकर्ण्य तदिदं सङ्कटम् 'इतो व्याघ्र इतस्तटी, इतो दवाग्निरितो दस्यवः, इतो दुष्टदन्दशूक इतोऽप्यन्धकूपः' इति न्यायात्। इतः कर्णान्तिकृष्टशरासनो मर्मप्रहारी प्रहरति मकरध्वज इतश्चायमेतेषामलङ्घनीय आदेशः। तन्न जानीमः किमत्रोत्तरम्। एकत्रार्थेऽस्माकं भवतां च प्रवृत्तिरिति प्रणयप्रार्थनाभङ्गकारिणी विहतविनया प्रतिकूलोक्तिः, अनभिज्ञोऽस्मि दूतोक्तीनामिति शाठ्यम्, असमर्थोऽस्मि संदिग्धक्रियाकारितायामित्याज्ञालङ्घनम्, आज्ञालङ्घनं च सेतुबन्धनमिव स्खलयति श्रेयःस्रोतः, षण्डमुखदर्शनमिव वर्धयत्यलक्ष्मीम्, रजस्वलाभिगमनमिव हरत्यायुः, इत्यनेकविधमवधार्य 'न नाम दुरधिगमा केऽपि पदार्थास्त्वत्रभवतामशेषजगदीश्वराणाम्, न च न जानीथ ममापि प्रसिद्धमध्यवसायम्, एवं स्थितेऽप्येष वः करोम्यादेशम्, आदिष्टपरामर्शी न श्रेयानादेशकारिणि, किंतु बलीयान्परतो विधि प्रमाणम्' इत्यभिधाय सत्रपया भयेन च देवानां दौत्यादेशं समर्थितवान्॥

नल ने भी सुनकर, "यह बड़ा संकट है। 'एक ओर व्याघ्र है तो दूसरी ओर खाई का किनारा। एक ओर जङ्गल की आग है तो दूसरी ओर लुटेरे। इधर दुष्ट सर्प है तो उधर अन्धकूप (विशाल गड्ढा)' इस न्याय के अनुसार एक ओर तो कानो तक बाणों को खींच कर हृदय पर चोट पहुँचाने वाला कामदेव प्रहार कर रहा है और दूसरी ओर इन लोगो की अलङ्घनीय आज्ञा है। मालूम नहीं होता यहाँ क्या उत्तर है।

"एक ही वस्तु के लिये हमारी और आप लोगों की प्रवृत्ति है" यह स्नेहपूर्ण प्रार्थना को नष्ट कर देने वाली विनयहीन प्रतिकूल उक्ति होगी। 'मैं दूत की तरह बोलना नहीं जानता' यह शठता होगी। "सन्दिग्ध कार्यों को करने में मैं असमर्थ हूँ" यह आज्ञा का उल्लङ्घन करना होगा। आज्ञा का लङ्घन कल्याण की धारा को सेतुबन्ध की तरह रोक देता है। नपुंसक के मुख-दर्शन की तरह अमङ्गल को बढ़ाता है। रजस्वला से मिलन की तरह आयु को नष्ट करता है। इस तरह बहुत बार विचार कर, समस्तलोकों के स्वामी, आप लोगों के लिये कोई चीज अप्राप्य नहीं है। हमारे प्रसिद्ध उद्यम को आप लोग नहीं जानते हैं ऐसी बात नहीं। ऐसा होने पर भी यह आप लोगों

की आज्ञा का पालन करता हूँ। दी हुई आज्ञा के ऊपर विचार करना आज्ञाकारियों के लिये उचित नहीं होता। बड़ों की आज्ञा ही प्रमाण होती है" यह कह कर भक्ति तथा भय से देवताओं की आज्ञा का पालन किया।

स्थित्वा च कञ्चित्क्षणमुचितालापलीलया कृत्वा च कांश्चिदन्योऽन्यप्रस्तुतप्रियव्यवहारान्, आपृच्छ्य, यथागतं गतेष्वथ तेषु देवेषु निषधेश्वरश्चिरं चिन्तयाञ्चकार ॥

उचित वार्ताक्रम में कुछ देर तक ठहर कर, प्रसङ्गप्राप्त कुछ प्रिय व्यवहारों का सम्पादन कर, अतीत के सम्बन्ध में कुछ पूछ जाँच कर देवताओं के चले जाने पर निषधपति देर तक सोचता रहा।

तदिदम्, अनुच्छ्वासविरामं मरणम्, अमोहं मूर्च्छनम्, अरोगमङ्गव्यथनम्, अशल्यप्रवेशमन्तःशूलम्, अदारिद्र्यो निद्राविघातः ॥

'यह तो श्वास के रहते ही मरण है। विना मोह की ही मूर्च्छा है। विना रोग के ही अङ्गों की पीड़ा है। विना शल्य-प्रवेश के ही आन्तरिक उग्र वेदना है। विना दरिद्रता के आये ही निद्रा का अभाव है।

किमन्यत्—

तस्यामाकर्णितानुरागायां यन्ममाद्य दीर्घदौर्जन्यदोहदिना दैवेनाकस्मिकमौत्सुक्यानुरागव्यवसाय वन्ध्यमध्यवसितं कर्तुम् ॥

और क्या—

सुन लेने मात्र से उसमें मैं अनुरक्त हो गया हूँ। आज मेरे उत्कण्ठापूर्ण प्रेमविषयक यत्न को नष्ट कर देने के लिये अपनी विशाल दुर्जनता से कष्ट देने वाले भाग्य ने ठान लिया है।

इदानीं किमत्र श्रेयो यस्माद्, अनुपयोगं गमनम्, श्लाघ्यं निवर्तनम्, अपार्थकमासनम्, असाधीयानध्यवसायः॥

इस समय यहाँ क्या मङ्गलमय वस्तु होगा जिससे गमन अनुपयोगी हो, लौटना प्रशस्त हो, वहाँ बैठना व्यर्थ हो और यत्न निरर्थक हो।

इति चिन्ताकुले नले भयान्मूकीभूतेष्वासन्नवर्तिषु परिजनेषु प्रणयात्प्रावरणप्रान्तप्राच्छादितवदनभागं किमप्यासन्नमुपसृत्य शनैस्तत्कालयोग्यालापैरनुशीलयच्छीलज्ञः श्रुतशीलो नलमाबभाषे ॥

नल के चिन्ताकुल हो जाने पर सभी समीपवर्ती मौन थे। प्रेम-पीड़ा के कारण उसने अपनी चादर से मुख ढक लिया। ऐसी स्थिति में कुछ समीप आकर

विचारवाद् श्रुतशील तत्काल प्रसङ्गानुकूल बातों से अनुरञ्जन करता हुआ नल से बोला—

'देव, जानामि देवस्य देहं दहति दहन इव दारु दारुणो दौत्यचिन्ताभारः। को नाम सामान्योऽपि स्वयमभिलषितेऽर्थे दूतत्वदासभावमङ्गीकुर्यात्। विशेषतोऽनुरागिण्यङ्गनाजने। तथापि किं न जानाति देवो, यथा याचको ब्राह्मण इव निर्वेदः कस्य संतोषाय, विषवैद्य इव विषादः संदेहकारी शरीरस्य, भीमाभिमन्युनिरुद्धं कुरुबलमिव मनो महान्तं संतापमनुभवति ॥

देवेति ॥ निर्वेदः खेदो वेदरहितश्च। विषादोऽप्रीतिः शोचनम्। यश्च विषं कालकूटमादयति। भीमो रौद्रोऽभिमो मन्युर्दैन्यं तेन निरुद्धम्। कुरुबलं तु भीमेन मध्यमपाण्डवेनाभिमन्युना चार्जुनसुतेन निरुद्धम् ॥

"देव, जानता हूँ कि यह कठिन दूत-कार्य की चिन्ता का भार आप के शरीर को काठ की तरह जला रहा है। कौन साधारण आदमी भी अपने अभिलषित तत्त्व के सामने दूत जैसे दास कार्य को स्वीकार करेगा और उसमें भी प्रेमपूर्ण अङ्गनाओं के विषय में ? फिर भी क्या आप नहीं जानते कि निर्वेद ( वेदज्ञान विहीन ) भिक्षुक ब्राह्मण की तरह निर्वेद ( खेद ) किसके लिये सन्तोष कर होता है ! विषाद ( विष खाने वाले ) विषवैद्य की तरह विषाद (पश्चात्ताप) किसके शरीर को सन्देह में नहीं डाल देता ? भीम और अभिमन्यु से घिरी हुई कुरु सेना की तरह भीम ( रौद्र ) तथा अभिमन्यु ( उत्कृष्ट क्रोध ) से घिरा हुआ मन अत्यधिक वेदना का अनुभव करता है।

तदलमनेन वातूलीभ्रमेणेव मीलयता चक्षुरुद्वेगेन ॥

तदलमिति ॥ उद्वेगो दुःखम्। वातूलीभ्रमस्तु ऊर्ध्वं वेगः ॥

ऊपर की ओर उठने वाली हवा के चक्कर की तरह उद्वेग के मारे इन आँखों को निमीलित करना व्यर्थ है।

किं देवेन न श्रुतम्, यथामृतमथनावसरे सुरासुरकरपरिवर्त्यमानमन्दरमन्थाननिर्घोषबधिरितसमस्तरोदःकंदरादपि दूरोच्छलितदुग्धनुषारासारतारकितनभसः, समुत्पन्नानेककौस्तुभादिवस्तुविस्तारादुद्गच्छदप्सरोमुखमण्डलैः क्षणमिव विहितविकचनलिनखण्डशोभात्, अनेकादवर्यकुक्षेः क्षीरसागरादजनि जनितजगद्विस्मया स्मरजननी हस्तस्थिततरुणारविन्दा देवी देदीप्यमानपुण्यलक्ष्मा लक्ष्मीः ॥

क्या आपने नहीं सुना है ? अमृत के लिये समुद्र-मन्थन के अवसर पर देव और दानव अपने हाथों से मन्दराचल रूप मन्थन दण्ड चला रहे थे।

उसकी आवाज से सम्पूर्ण क्षितिज गुफाएँ बधिर हो गयी थीं। दूर से ऊपर की ओर छलके हुए दुग्ध कणो की घनघोर वर्षा से गगनमण्डल ताराङ्कित जैसा हो गया था। कौस्तुभमणि आदि पदार्थ बिखरे हुए थे। ऊपर की ओर आती हुई अप्सराओ के मुखमण्डल से खिले हुए कमल समूह सदृश शोभा हो रही थी। इस तरह के अनेक आश्चर्यों वाले क्षीर सागर से विश्व को आश्चर्य मे डाल देने वाली काम को उत्पन्न करने वाली, हाथ मे खिला हुआ कमल ली हुई, स्पष्ट पवित्र लक्षणो से युक्त देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई।

यस्याः सर्वाङ्गलावण्यमधु विकचलोचनचषकैरापीय पीयूषभुजो मदनमदपरवशाः परस्परमेवेर्ष्यन्तश्चक्रपाणिना समं सङ्गरम् ॥

उसके सर्वाङ्ग सौन्दर्य मधु को खिले हुए लोचन-चषक (नेत्र रूप प्याले) से पीकर अमृत से स्नेह रखने वाले इन देवो ने कामोन्मत्त होकर आपस मे ही एक दूसरे से ईर्ष्या करते हुए चक्रपाणि ( विष्णु ) से लड़ाई छेड दी।

अथ सा सर्वानप्यन्तरान्तरापततस्तानुल्लङ्घ्य मन्दरगिरिशिखरशातकुम्भनिकषोपलायितबाहोर्भगवतश्चिक्षेप क्षेपीयः कण्ठे वैकुण्ठस्य स्वयंवरकुसुममालाम् ॥

अथ सेति ॥ अतिशयेन क्षिप्रं क्षेपीयः। 'स्थूलदूर'-इत्यादिना सिद्धम् ॥

इसके बाद उस ( लक्ष्मी ) ने बीच बीच मे पड़े हुए उन सभी देवताओं को छोड़कर मन्दराचल पर्वत के स्वर्णमय शिखरो के लिये कसौटी के पत्थर सदृश ( नीली ) भुजाओं वाले भगवान् ( विष्णु ) के कण्ठ मे वैकुण्ठ की स्वयंवर माला शीघ्र ही पहना दी।

एवं साऽपि कदाचिच्चम्पककलिकाकलापगौराङ्गी रागिणी त्वयि वञ्चयिष्यति देवान्। वञ्चितो यतः पूर्वमात्ममुखमण्डलश्रिया शशी, तिरस्कृतो मदनः सौभाग्येन। सकृत्प्रनृत्तायाश्च किमवगुण्ठनेन। विधेरिव वामभ्रुवामचिन्त्यानि चरितानि भवन्ति ॥

एव मापीति ॥ सकृत्प्रनृत्ताया स्तोकमपि नर्तितुमारब्धवत्या: किं नीरङ्गया ॥

इसी तरह चम्पे की कलियो के समूह सदृश गौर अङ्गो वाली, तुम मे अनुरक्त वह भी सम्भवतः देवताओं को वञ्चित कर देगी। क्योकि पहले उसने अपने मुखमण्डल की शोभा से चन्द्रमा को वञ्चित किया है। सौन्दर्य मे कामदेव को अपहसित किया है। [ अतः देवताओ की अवहेलना करने की उसकी आदत पड़ गयी है। एकबार चन्द्रदेव तथा कामदेव का तिरस्कार कर चुकी है तो अब इन्द्र आदि लोकपालो के तिरस्कार मे उसे कोई कठिनाई नहीं है। ]

क्योंकि एक बार जो नाच चुकी है उसे घूँघट लगाने से क्या लाभ। ब्रह्मा की तरह स्त्रियों का चरित भी विचारगम्य नहीं होता।

**किमु न स्मरति देवो दिवि विश्रुतमर्थसारं स्वर्लोकादवतीर्य पुरा गीतं गन्धर्वगायनैर्गीतगोष्ठीस्थितस्याग्रे युगलमिदमार्ययोर्देवस्य॥**

क्या आपको स्मरण नहीं है? गोष्ठी में बैठे हुए आपके आगे स्वर्गलोक में भी प्रसिद्ध अर्थतत्त्वों वाले दो आर्या छन्दों के गीत गन्धर्व गायकों ने गाये थे।

क्वचिदपि कार्यारम्भेऽकल्पः कल्याणभाजनं भवति।
न तु पुनरधिकविषादादात्ममन्दीकृतपौरुषः पुरुषः॥ ५५॥

क्वचिदिति॥ अकल्पोऽसमर्थः। न तु पुनरिति शब्दौ समुच्चयवाचकत्वात्पुनरर्थमेव द्योतयतः। यथापि चेति समुच्चय॥ ५५॥

असमर्थ आदमी भी कार्य के अनुकूल यत्न करते रहते हैं तो कहीं भी कल्याण का पात्र बन जाते हैं। शक्तिशाली भी अधिक विषाद के कारण अपना पुरुषार्थ यदि मन्द कर देता है तो वह कल्याण का पात्र नहीं बनता॥ ५५॥

अपहस्तितान्तरायानगणितगुरुरूढ़तान्प्रसाधयतः।
विधिरपि बिभेति तस्मान्निरतिशयं साहसं यस्य॥ ५६॥

समस्त विघ्नों को दूर कर स्वीकृत कार्यों को करते हुए अत्यन्त साहसी आदमी से ब्रह्मा भी डरते हैं॥ ५६॥

**एवमनेकधा प्रस्तुतपुराणपुरुषाख्यानप्रपञ्चप्रक्रमेणातिक्रान्ते भूम्नि दिवसे मङ्गलोद्गार इव वाञ्छितार्थसिद्धेः, तर्जनहुंकार इवान्तरायाणाम्, ओंकार इवोत्साहस्मृतेः, पुण्याहध्वनिरिव हृदयप्रसादप्रासादस्य, पुनर्नवीकृतानुरागस्तम्भोत्तम्भनस्य तस्य नरपतेः शिश्राय श्रुतिं श्रुतशीलेन आर्थितमिममेवार्थं समर्थयन्निव मध्याह्नशङ्खध्वनिः॥**

इस तरह अनेक प्रकार से प्रसङ्ग प्राप्त भगवान् विष्णु के चरित कहते कहते दिन के एक विशेष भाग के व्यतीत हो जाने पर ईप्सित पदार्थ की सिद्धि के लिये मङ्गल द्योतक उद्गार की तरह, विघ्नों को डाटने वाले हुङ्कार की तरह, उत्साहस्मृति की ओंकार की तरह हृदय की प्रसन्नतारूप भवन की पुण्याहध्वनि की तरह मध्याह्नकाल की शङ्ख ध्वनि, श्रुतशील द्वारा सुनाये हुए अर्थों को मानो समर्थन करती हुई पुनः नये किये गये अनुरागस्तम्भ से उठे हुए राजा के कानों तक पहुँची।

**राजा तु तमाकर्ण्य विसर्जितपरिजनस्तत्रैव पुलिनमध्ये मध्याह्नसमयसमुचितव्यापारमकरोत्॥**

राजा ने तो उसे सुन कर अपने परिजनों को छोड़ कर उसी तट पर मध्याह्न-कालिक सन्ध्या आदि समयोचित कार्यों को किया।

अनन्तरमतिक्रान्तेषु केषुचिन्मुहूर्तेषु गगनमध्यतलाद्विलम्ब्यमाने मनाङ्मार्तण्डमण्डले चण्डवात्याहतशुष्कपत्त्रमिव दण्डप्रान्तप्रचलितकुलालचक्रमिव तेन पुरंदरादेशभ्रमेण भ्रान्तमात्मनो मनः क्वाप्येकान्तकमनीयनर्मदाप्रदेशदर्शनविनोदेन स्वस्थीकर्तुमिच्छन्निच्छानुकूलकतिपयाप्तपरिजनपरिवृत श्रुतशीलस्कन्धावष्टम्भविहारी विहाय दूरमिव शिबिरसंनिवेशम्, इतस्ततस्तरुणतमालमण्डपमण्डलितमयूरहारिणा चलच्चकोरचक्रवाकचक्रवालवलयितेन स्नानागततापसपदपंक्तिचर्वितदूर्वाङ्कुरेणापसरत्पय पूरतरङ्गितवालुकेन पुलिनप्रान्तेन प्राचीं दिशमयासीत्॥

इसके बाद कुछ समय व्यतीत होने पर आकाश के मध्य भाग से सूर्यमण्डल के लटक जाने पर प्रचण्ड वायु के झोके से शुष्क पत्र सदृश, दण्डे के अग्रभाग से चलाये हुए कुम्भकार के चक्र सदृश उस इन्द्र की आज्ञा रूप चक्कर में घूमते हुए मन के अनुरञ्जन द्वारा कहीं नर्मदा के एकान्त और मनोहर स्थान को देखकर अपने आप को स्वस्थ करना चाहता था। कुछ आप्त अनुचरों के बीच श्रुतशील के कन्धे पर हाथ रखकर शिविर से कुछ दूर पर घूम रहा था। इधर उधर प्रौढ़ तमाल छाया के नीचे इकट्ठे हुए मयूरों के कारण मनोहर, चलते हुए चकोरो, चकवाको और चक्रवालो से घिरे हुए, स्नानार्थ आये हुए तपस्वियो की पदपंक्ति से टूटी हुई दूर्वा घास वाले, खिसकते हुए जल के नीचे गई हुई कम्पित बालुका वाले तट से होता हुआ पश्चिम दिशा की ओर गया।

[यहाँ तट का वर्णन किया गया है। पानी की साधारण लहरों से निकटतम तट की बालुकायें कभी पानी के नीचे जाती है, कभी पानी के खिसक जाने पर ऊपर आ जाती हैं। पानी के आने जाने के कारण उनमे कम्पन भी बना रहता है।]

तत्र च चटुलचञ्चरीककुलाकुलितविविधवीरुधां तलेषु विचरतोऽस्य रसातलविनिर्गताः पन्नगाङ्गना इव नागमदहारिण्यस्तमालकन्दलीकोमलाङ्ग्यश्च श्रोणीभरालसगमनास्त्रिवलीतरङ्गिततनुमध्यलतिकाः, काश्चित्कण्ठकन्दलावलम्बितमातङ्गमौक्तिकलता स्फुरत्प्रक्षवलयाः कृष्णपक्षरात्रय इव कृतक्रीडाशरीरपरिग्रहाः, काश्चिदुभयश्रवणावसक्तदन्तिदन्तपत्त्रप्रभाधवलितमुखमण्डला सुरसरित्सलिलसंवलितकालिन्दीजलदेवता इव नर्मदयामन्विताः, काश्चित्परि-

धानीकृतरक्तपल्लवास्तडित्स्तालेखामेखलाश्चलदम्बुवाहपङ्क्तय इव विन्ध्यस्कन्धानुबन्धिन्य, काश्चिन्मातङ्गमदमण्डलमिलन्मधुकरकरालिता सकलनीलोत्पलवनलक्ष्म्य इवान्यजलाशयेभ्यो महानदीमवतरन्त्य, काश्चिल्लोहिताशोककुसुमस्तबककृतकर्णावतंसोत्तंसास्त्रिपुरपुरन्ध्र्य इव हरशरानलज्वालाकुलितशिरसो धूमश्यामला सलिलमनुसरन्त्य काश्चिल्ललितलीलामृगैरनुगम्यमाना शशाङ्कवल्योऽञ्जनशैलस्थलाधिदेवता इव तीर्थावगाहनानुरागिण्य, काश्चिन्नरराजजरद्दाववरकञ्चुकिकरावलम्बलीलागामिन्य स्फुरदिन्द्रनीलशिलापुत्रिका इवेन्द्रजालिकै सञ्चार्यमाणा कृष्णाञ्जनिकाकुसुमकान्तय काश्चिच्चिपिटनासा कुन्दकान्तदन्तपङ्क्तयो मायूरपिच्छगुच्छावतंसकर्बुरकवरीकलापाश्चलद्दलयमुखरकरतलोच्चालनालिकारम्भरमणायरसिकरासकक्रीडानिर्भरा कादम्बमधुपानघूर्णितदृशो दर्पणमलोदरपयमज्जनागतनाम्नवर्णकिरातकामिन्य ॥

न्द देवि । बहुलाविकुञ्जाकुलितवीरम्मूलेषु विचरता नरपतिरेकमवर्णीर्णा किरातकामिन्यश्चिर विलोकिताति सम्बन्ध । अमूना । नागमदेन गजमदन च हारिण्यस्तमालकृशाश्च । पन्नगाङ्गनास्तु नागाना वासुकिप्रभृतीना मद गर्व हरन्ति मुष्णन्ति इति क्रीडाकारापरिग्रहा मूर्ता रात्रय सनक्षत्रा इव । मुक्तानां नक्षत्राणि स्त्रीणा रात्रय उपमानम् । वृन्तपत्रमसाला सुरसरित् श्रोणा कालिन्दुपमानम् । रक्तपल्लवाना तडित्स्त्री स्त्रोणामम्बुवाहपङ्क्तय समा । लोहिताशोककुसुमाना हरशरानलज्वाला स्त्रीणा च श्यामल धूम उपमा । कृष्णाञ्जनिका तापिच्छलता ॥

वहा दोपहर के बाद स्नान करने के लिये आया हुई किरातों की तरुण रमणियाँ चञ्चल भ्रमरों से व्याप्त विभिन्न वृक्षों के बीच घूमते हुए राजा की दृष्टि में पड़ीं। वे पाताल लोक से आयी हुई नागमदहारिणी ( सर्पों के मद का हरण करने वाली ) सर्प पत्नियों की तरह नागमदहारिणी ( हाथी के मद को अङ्गराग रूप में लगाने से सुशोभित ) थी। उनके अङ्ग तमाल के अङ्कुर सदृश कोमल थे। कुछ ने अपने नवीन अङ्कुर सदृश कण्ठ में स्था सदृश गजमुक्ता की मालाएँ लटका ली थीं। अत ऐसा प्रतीत होता था मानो चमकते हुए नक्षत्रों से युक्त कृष्ण पक्ष की रात्रियाँ क्रीडा शरीर धारण की हुई हों।

[ रात जैसी काली थीं और तारकमण्डल की तरह मुक्तामाला पहन थीं। ]

दोनों कानों में लगे हुए हाथी दाँत निर्मित कर्णभूषणों की कान्ति से कुछ के मुखमण्डल धवलित हो गये थे। ऐसा प्रतीत होता था कि देवनदी गंगा

के जल से घिरी हुई यमुना जल की अधिष्ठात्री देवियां नर्मदा के आमन्त्रण पर आयी हुई थी।

[ हाथी दाँत से बने कर्णभूषणों की कान्ति गंगा का दृश्य उपस्थित करती है और उनके शरीर की नीलिमा यमुना के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है। ]

कुछ रक्त पल्लव तथा विद्युल्लता सदृश करधनी पहने हुई थी। अतः विन्ध्याचल की चोटियों पर मंडराती हुई मेघमाला सदृश लग रही थी। हाथियों के मदपुञ्ज ( से बने हुए अङ्गराग में लिप्त शरीर ) पर भनभनाते हुए भ्रमरों द्वारा और काली बना दी गयी थी। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि सभी नीलकमल-वनों की लक्ष्मियाँ विभिन्न जलाशयों से आकर उस महानदी नर्मदा में उतर रही थी। कुछ लाल अशोक कुसुमों के गुच्छों को कानों पर रखने हुई थी। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि शिवजी की बाणाग्नि की ज्वाला से व्यग्र बुद्धि वाली, धूम के कारण नीली, त्रिपुरासुर की रमणियां पान में उतर रही थीं।

[ अशोक के लाल फूलों के गुच्छे कानों में आग की तरह लगते थे और उनकी शरीरगत नीलिमा धूम की नीलिमा की याद दिलाती थी। ]

कुछ के पीछे सुन्दर मृग दौड़ रहे थे। अतः तीर्थों के स्नान में अनुराग रखने वाली अञ्जन पर्वत की शरीरधारिणी अधिष्ठात्री देवियों की तरह लगती थीं।

[ अत्यन्त कालिमा के कारण अञ्जन पर्वत की अधिष्ठात्री देवी से तुलित की गयी हैं। सभ्य लोग अपने साथ कोई पालित जानवर लेकर चलते थे। जैसे इस शताब्दी के लोग कुत्ता लेकर चलते हैं। देवियां भी मृग लेकर चलती थी। इसीलिये मृगों से अनुगत शबर तरुणियों को अञ्जनशिला की अधिष्ठात्री देवियों से सन्तुलित किया गया है। ]

कृष्णाञ्जन पुष्प की कान्ति सदृश कान्ति वाली कुछ तो अत्यन्त वृद्ध किरात कञ्चुकियों के हाथ पर अवलम्ब देकर घूम रही थीं। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि इन्द्रनीलमणि की पुत्तलिकायें इन्द्रजाल खेलने वाले लोगों द्वारा चलायी जा रही थीं। कुछ की नाक चिपटी थी। दाँत कुन्द पुष्प की तरह सुन्दर थे। बंधे हुए मयूरपत्रों के गुच्छों से वेणियां चितकबरी हो गयी थीं। कङ्कणों के कारण अधिक शब्द करने वाले करतलों द्वारा अधिक जोर से तालियां बजाती हुई रमणीय एवं सुन्दर रास-क्रीडा में मस्त थीं। कदम्ब का मद्य पीने के कारण उनकी आँखें घुर्रायी हुई सी थीं।

ततश्च ताः सूक्ष्ममुक्ताफलधवलवालुकापुलिनपृष्ठे लब्धपदभागाः स्वैरं स्वैरमनुच्चचरणचलनक्रमात्क्वणितनूपुररवाकृष्टकलहंसकुलमनाकुलकलगीततरङ्गासन्नतरङ्गितकुरङ्गमनङ्गभावभूयिष्ठमनुभूय तीरविहारसुखम्, अनन्तरमक्रूरजलचरमवेगवहत्सलिलमुत्फुल्लविविधविकसिताम्बुजजातिजीविजीवंजीवकमुत्कूजितकुररमारसितसारसमुन्मदहासितहंसावतंसमुरःप्रमाणाच्छोदकमतिरमणीयं ह्रदमवातरन् ॥

तरङ्गेति ॥ अम्बुजजातिभिर्जीविता जीवंजीवाः पक्षिविशेषा यत्र। दीर्घाङ्गिमाया, इति रूप। अम्बुजजातिरेव जीवितं येषामिति वा। अतिप्रियावान्। उर प्रमाणं वक्षोदघ्नमुदकं यत्र। अगाधे हि पद्मिनि न जलक्रीडा ॥

इसके बाद मुक्तामणियों के चूर्ण से धवल बालुका वाले तटप्रदेश पर पैर रख कर ( इच्छानुसार बिना बहुत पैर उठाये ही चलने के कारण नूपुरों की मधुर ध्वनि से मनोहर हंसों को आकृष्ट कर लेती थीं। और गीतलहरी से समीपवर्ती मृगों के मानस को तरङ्गित कर दे रही थीं। कामभाव से सम्पन्न तट-विहार-सुख का अनुभव कर रही थीं।

इसके बाद छाती भर निर्मल पानी वाले अत्यन्त रमणीय सरोवर में उतरीं। वहाँ क्रूर जलचर नहीं थे। पानी में बहुत वेगवान् प्रवाह नहीं था। विविध ढंग के खिले हुए कमल वर्ग से जीवंजीव नामक पक्षी प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे। कुरर बोल रहे थे। सारस मधुर ध्वनि कर रहे थे। पूर्ण प्रसन्न हंस ही उसके अलङ्कार थे।

अवतीर्य च ताः काश्चित्पन्नगपतिपुरन्ध्र्य इवोद्गीर्णविषगण्डूषाः, काश्चिन्मासमदा इव रक्तोत्पलाकृष्टिव्यसनिन्यः, काश्चिद्गोपालाङ्गना इव गृहीतपुण्डरीकाक्षाः, काश्चित्कार्तिकेयशरपङ्क्तय इव विदलितक्रौञ्चाः, काश्चित्कुरुसेना इव धार्तराष्ट्रशकुनिमार्गेणानुधावमानाः, काश्चिद्राभय इव विघटितचक्रवाकमिथुनाः, काश्चिच्चकोराङ्गना इव चञ्चूकृतदीर्घकमलनालैः शशधरकरनिर्मलजलमास्वादयन्त्यः, काश्चित्करिण्य इव सरसबिसग्रासाणि ग्रसमानाः काश्चिज्जलयन्त्रपुत्रिका इव संपुटितमुखपाणिपल्लवयुगलाग्रनिर्मुक्तसूक्ष्मवारिधाराः, काश्चिच्छीलनार्य इव प्रियवारितरणाः, स्तनगण्डशैलशिखरास्फालनोच्छलत्तरङ्गान्तरतरत्तरुणतामरसरसमसुरभिसलिलमवगाहमानाश्चिरं चिक्रीडुः ॥

अवतीर्येति ॥ विषं जलं, गरश्च। रक्तोत्पलं रक्ताब्जं, रक्तेनोत्कृष्टं पलं मासं च। गृहीतपुण्डरीके अवलोकितसिताम्बुजे अक्षिणी यासाम्। चक्षुषो हि ग्रहणमवलोकनमेव। यथा श्रोत्रेणानमाकर्णनम्। अथवा दीर्घत्यान्नेत्रस्य लाञ्छा। अन्यत्र पुण्ड

रीकाशः कृष्ण' क्रौञ्चः पक्षी गिरिश्च। धृतराष्ट्रो दुर्योधनस्य पिता, शकुनिर्मातुलः। पक्षे धृतराष्ट्रो हंस । यद्विश्व—'धृतराष्ट्र सुराज्ञि स्यात्पक्षिविशेषभेदयो.'। शकुनिः पक्षी। अथच्चूनि चञ्चूनि कृतानि चञ्चूकृतानि। अन्यत्र चञ्चवो कृतानि कृतानि यानि दीर्घकमलनालानि तैः शशधरकरनिकरवन्निर्मल जलम्। अन्यत्र किरण-निकर एव निर्मलजलम्। चकोर्यो हि चन्द्रकरान्पिबन्ति। प्रिय वारिणो जलस्य तरणं यासाम्। अन्यत्र वारितो निषिद्धो रणो यकाभिः। ता वारितरणाः, प्रियाणा वारितरणा प्रियवारितरणा ॥

सर्पराज की पत्नियां जैसे विष (जहर) का कुल्ला करती हैं वैसे उनमे से भी कुछ पानी मे उतर कर विष (जल) का कुल्ला कर रही थीं।

राक्षसपत्नियां जैसे रक्तोत्पलाकृष्टिव्यसनिनी (रुधिरपूर्ण उत्कृष्ट पल (मांस) खींचने की आदत वाली) होती हैं वैसे ही कुछ रक्तोत्पलाकृष्टिव्यसनिनी (लाल कमल तोड़ने की अभ्यासी) थीं। गोपपत्नियां जैसे गृहीतपुण्डरीकाक्ष (कृष्ण को (आदर से) ग्रहण करती) हैं वैसे वे भी गृहीतपुण्डरीकाक्ष (कमल सदृश नेत्र धारण कर रही) थीं। कार्तिकेय के बाण जैसे विश्लेषित क्रौञ्च (क्रौञ्च पर्वत को छिन्न कर देने वाले) हैं वैसे वे भी विश्लेषितक्रौञ्च (पक्षियों को अलग करने वाली) थीं।

कौरवों की सेना जैसे धार्तराष्ट्र (दुर्योधन) और शकुनि के बताए हुए मार्ग से चलती थी वैसे वे भी धार्तराष्ट्र शकुनि मार्ग (धार्तराष्ट्र (हंस) नामक शकुनि (पक्षी) के मार्ग) से दौड़ रही थीं। जैसे रात्रि के कारण चक्रवाक का जोड़ा विलग हो जाता है वैसे उन्हें भी देख कर विलग हो जाता था।

[अत्यन्त काली होने के कारण इन्हें भी रात ही समझता था।]

चकोरपत्नियां जैसे चन्द्रकिरण रूप निर्मल जल का आस्वादन चोंच से करती हैं वैसे वे भी लम्बे कमल दण्ड को चोंच बना कर चन्द्रकिरण सदृश निर्मल जल पी रही थीं। कुछ हथिनियों की तरह कमलतन्तु के अग्रभाग को खा रही थीं। कुछ जलयन्त्रपुत्तलिका की तरह करपल्लव युगल की बन्द अञ्जलि बनाकर उसमे पानी की थोड़ी-थोड़ी धारा गिरा रही थीं। कायर नारियाँ जैसे प्रियवारित + रणा (अपने प्रिय को लड़ाई मे जाने से रोकती) हैं वैसे वे भी प्रिय + वारि + तरणा (वारितरण) (जल मे तैरना पसन्द करती) थीं। स्तनशिला की चोटियों मे टकराने के कारण उत्पन्न होने वाली तरङ्गों के बीच पूर्ण विकसित कमलों के मधु से सुगन्धित जल मे स्नान करती हुई वे देर तक खेलती रहीं।

[रक्तोत्पलाकृष्टिव्यसनिनी—राक्षसपत्नीपक्ष मे उत्पल शब्द का अर्थ उत्कृष्ट मांस है। राक्षसपत्नियां जैसे रुधिरपूर्ण मांस खींचने मे अनुरक्त रहती

हैं जैसे वे शबर तरुणियाँ रक्त ( लाल ) उत्पल ( कमल ) तोड़ने की अभ्यासी थीं। मनोविनोद के लिये फूलों को तोड़ लेती थीं।

गृहीतपुण्डरीकाक्ष—गोपवधुएँ पुण्डरीकाक्ष ( कमल सदृश नेत्र वाले ) भगवान् कृष्ण को आदरपूर्वक पकड़ती हैं। वे शबर युवतियाँ भी पुण्डरीक सदृश नेत्र धारण करती हैं। इस पक्ष में गृहीत शब्द धारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

विश्लेषितक्रौञ्च—कार्तिकेय जी ने अपने बाण से क्रौञ्च पर्वत का भेदन कर दिया था। शबर युवतियों ने भी क्रौञ्च पक्षियों को अलग कर दिया है।

क्रौञ्च शब्द यदि यहाँ पक्षिसामान्य का वाचक माना जाय तो भी सङ्गति बैठ जाती है क्योंकि सब पक्षी रात को अपने अपने घोंसले में चले जाते हैं। वे नायिकायें इतनी काली हैं कि उन्हें देख कर पक्षियों को रात्रि का भान हो जाता है अतः वे भाग जाते हैं। क्रौञ्च बक का ही एक भेद है। जल के समीप रहने वाली यह एक विहग जाति है। विनोदप्रिय शबराङ्गनायें सरोवर तट पर इधर उधर दौड़ती घूमती हैं अतः पक्षी वहाँ से भाग गये हैं। इस प्रकार भी विश्लेषितक्रौञ्चाः का उपपादन किया जा सकता है।

धार्तराष्ट्रशकुनिमार्गा—धृतराष्ट्र का पुत्र होने के कारण दुर्योधन को धार्तराष्ट्र कहा जाता है। कुरुसेना दुर्योधन और शकुनि के बताए हुए मार्ग के आधार पर चलती थी। तरुणियाँ भी धार्तराष्ट्रशकुनि मार्ग से दौड़ रही हैं। धार्तराष्ट्र शब्द हंस का भी वाचक है। शकुनि का अर्थ पक्षी है। अर्थात् हंस पक्षी के रास्ते से दौड़ रही हैं। विनोद के लिये हंसों को पकड़ना चाहती हैं अथवा सरोवर तट का रास्ता हंसों का ही मुख्य मार्ग है। इस समय वे युवतियाँ भी उन्हीं के रास्ते में चल रही हैं।

चकोरपृथुदीर्घकमलनाले—चकोरपत्नियाँ चन्द्रकिरण को ही अपनी चोंचों से पीती हैं। चकोरपत्नी पक्ष में शशधरकरविनिर्मलपयस्सु में रूपक है। अर्थात् चन्द्रकिरणरूप निर्मल जल को चकोरवधुएँ पीती हैं। शबर युवतियाँ कमलनाल को चोंच बनाकर चन्द्रकिरण सदृश निर्मल जल पीती हैं। इस पक्ष में उपमा है। कमलनाल का मध्य भाग पोला होता है। उसके एक भाग को पानी में लगा दिया जाय और दूसरे भाग को मुँह में लगा कर ऊपर की ओर हवा खींची जाय तो कमलनाल के मध्य से मुँह में पानी आ जायगा, शबरयुवतियाँ इसी विनोदबहुल ढंग से जल का आस्वादन कर रही हैं।

जलयन्त्रपुत्रिका—मुँह में पानी भर कर दोनों हाथों से मुँह को बन्द कर के दोनों हाथों के बीच साधारण छिद्र बनाकर धीरे धीरे पानी गिरा रही हैं। ऐसी स्थिति में वे जलयन्त्रपुत्रिका की तरह लगती हैं। पानी का फव्वारा बनाते समय लोग कहीं सर्प का मुख बना देते हैं कहीं गैंडे का

मुख बना देते हैं। उन्हीं मुखों से पानी की धारा निकलती है। कहीं-कहीं आदमी का भी आधार बना कर मुख से पानी बहाने का शौक देखा जाता है। इसी आकृति को ध्यान मे रख कर यह तुलना यहाँ निर्दिष्ट की गयी है।

प्रियवारितरणा—कायर नारियाँ अपने प्रिय को रण मे जाने से मना कर देती है। इस पक्ष मे प्रिय + वारित + रणा यह विच्छेद है। अर्थात् प्रिय को वारित (निवारित) कर दिया है रण मे जिसने। शबर युवति पक्ष मे—प्रिय (पसन्द) है वारि (जल मे) तरण (तैरना) जिनको। अर्थात् कुछ युवतियाँ जल म तैर रही हैं। तैरना उनकी मनपसन्द क्रीडा है।]

भवनिपतिरपि विस्मयविस्मृतनिमेषोन्मेषनयनस्ताश्चिरमवलोक्य चिन्तयाञ्चकार ॥

राजा भी आश्चर्य के मारे निर्निमेष दृष्टि से उन्हें देर तक देख कर सोचने लगा—

जातिर्यत्र न तत्र रूपरचना नेत्रोत्सवारम्भिणी
रूपश्रीरपि यत्र तत्र सुलभः श्लाघ्यो न जन्मोदयः।
इत्येकस्थनमस्तसुन्दरगुणप्रद्वेषमभ्यस्यतो
धातस्तात वृथाश्रमस्य भवतः सृष्टिक्रमो दह्यताम् ॥ ५७ ॥

जहाँ सुन्दर जाति है वहाँ आँखों को आनन्द देने वाली रूप रचना नहीं, और जहाँ सौन्दर्यलक्ष्मी है वहाँ प्रशंसनीय कुल नहीं उपलब्ध होता। "एक ही जगह सभी अच्छे गुण रहें" इस बात मे द्वेष का अभ्यास रखने वाले और व्यर्थ परिश्रम करने वाले, हे तात ब्रह्मन्! आप का यह सृष्टि-क्रम नष्ट हो जाय ॥ ५७ ॥

तथा हि—

ग्रीवालम्बितपद्मनालललिकाः कर्णावतंसीकृत
प्रत्यग्रोन्मिषितासितोत्पलदलैः संदिग्धनेत्रद्वयाः।
कस्यैता जलदेवता इव कुचप्राग्भारभुग्नोर्मयः
स्नानासक्तपुलिन्दराजवनिताः कुर्वन्ति नोत्कं मनः ॥ ५८ ॥

क्योंकि—

स्नान मे लगी हुई जलदेवता की तरह ये किरातपतियों की रमणियाँ—जो गले म मृणाल की माला पहनी हुई हैं, नवीन विकसित नीलकमलों के दलों को, जो दो नेत्रो की भ्रान्ति उत्पन्न कर दे रहे हैं, कानों मे पहनी हुई हैं, स्तनों के प्रथम प्रहार से लहरियों को घूर्णित कर दे रही हैं—किसके मन को उत्कण्ठित नहीं कर देतीं ॥ ५८ ॥

अपि च—

एतस्याः करिकुम्भसंनिभकुचप्राग्भारपृष्ठे लुठद्-
गुञ्जागर्भगजेन्द्रमौक्तिकसरश्रेणीमनोहारिणि ।
दूरादेत्य तरङ्ग एष पतितो वेगाद्विलीनः कथं
को वान्योऽपि विलीयते न सरसः सीमन्तिनीसंगमे ॥ ५९ ॥

एतस्या इति ॥ मौक्तिकसरो मुक्तादाम ॥ ५९ ॥

बीच-बीच में गुञ्जे से युक्त गजमुक्ता की माला की लड़ियों के कारण मनोहर इसके करिकुम्भ सदृश स्तनों के प्रथम अंश में दूर से आकर टकराता हुआ यह प्रवाह विलीन हो गया। दूसरा भी कौन ऐसा सरस आदमी है जो स्त्री सङ्गम की स्थिति में विलीन नहीं हो जाता ॥ ५९ ॥

इयं तु—

निजप्रियमुखभ्रान्त्या हर्षेणाचुम्बदम्बुजम् ।
दष्टाधरा तु भृङ्गेण सीत्कारमकरोन्मृदु ॥ ६० ॥

अपने प्रिय के मुख की भ्रान्ति से प्रसन्नता के कारण इसने कमल का चुम्बन किया। भ्रमर ने इसके अधरोष्ठ को काट लिया। अब कोमलतापूर्वक सी-सी कर रही है ॥ ६० ॥

अनयापि—

अविरतमिदमम्भः स्वेच्छयोच्छालयन्त्या
विकचकमलकान्त्योत्तानहस्तद्वयेन ।
परिकलित इवार्घः कामबाणातिथिभ्यः
सलिलमिव वितीर्णं बाल्यलीलासुखाय ॥ ६१ ॥

खिले हुए कमल सदृश हाथों को उठाकर स्वेच्छया निरन्तर इस जल को उछालती हुई ऐसी लग रही है, मानों कामबाण के अतिथियों ( कामियों ) को अर्घ दे रही है और शैशवसुलभ सुखों को तिलाञ्जलि दे रही है ॥ ६१ ॥

[ *बाल्यकाल की परिसमाप्ति तथा यौवन के प्रारम्भ का संकेत इस पद्य में किया गया है* ॥ ६१ ॥ ]

अस्याश्च—

कर्णमूलविषये मृदु गुञ्जन् पाणिपल्लवहतोऽपि हठेन ।
एष षट्पदयुवा हरिणाक्ष्याश्चुम्बति प्रिय इवास्यसरोजम् ॥ ६२ ॥

करपल्लव से मना किये जाने पर भी यह भ्रमर-युवक कानों के समीप कुछ मधुर गुञ्जार करता हुआ बलात्कार प्रिय की तरह इस हरिणसदृश नेत्रों वाली नायिका के मुख कमल का चुम्बन करता है ॥ ६२ ॥

इतोऽप्येषा—

भ्रमकरं मकरं मकरन्दिनीं कमलिनीमलिनीमलीनीकृताम् ।
तरलयन्तमवेक्ष्य महाभयादुदतरत्सरितस्त्वरितैः पदैः ॥६३॥

भ्रमकरमिति ॥ मकरन्दोऽस्त्यस्यां मकरन्दिनीम् । तथा अलिनीभिर्भृङ्गीभिर्मलिनीकृता कमलिनीं तरलयन्त क्षिपन्त भ्रमकरमावर्तकर मकर यादोविशेष विलोक्य यदुत्पन्न महाभय तस्मात्त्वरितैस्त्वालै. पादक्रमैरसौ शबरसुन्दरी सरित उत्तीर्णा ॥

इधर यह भी—

अलिनी ( भ्रमरिया ) द्वारा मलिन बनायी हुई कमलिनी को उद्वेलित करते हुए और ( पानी मे ) चक्कर उत्पन्न करते हुए घड़ियाल को देखकर डर के मारे जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर नदी से बाहर निकल गयी ॥ ६३ ॥

एताश्च—

मन्दायते दिनमिदं मदनोऽपि सज्ज-
स्तत्किं न गच्छत गृहानिति पद्मिनीभिः ।
मीलत्सरोजगतभृङ्गरुतैरिवोक्ताः
स्नात्वा शनैरुपसरन्ति तटं तरुण्यः ॥ ६४ ॥

"अब दिन समाप्त हो रहा है । कामदेव ने भी अपनी तैयारी कर ली है । तुम लोग घर क्यो नहीं जा रही हो ?" मानो इस तरह, मुकुलित होते हुए कमलो के बीच भ्रमरो की गुनगुनाहट रूप शब्दो के माध्यम से कमलिनियो द्वारा कही गयी तरुणिया स्नान कर तट की ओर आ रही हैं ॥ ६४ ॥

[ भ्रमरो के शब्द के बहाने कमलिनियो ने मानो तरुणियों से घर जाने के लिये कहा, क्योंकि सन्ध्या हो चली थी और काम ने अपनी तैयारी कर ली थी ॥ ६४ ॥ ]

एवमनेकविधविलासासक्तशबरसुन्दरीदर्शनाह्लादपुलकिते विविधवितर्ककारिणि पङ्कनिमग्नजरत्करेणुकायमाननिःस्पन्ददृशि तत्कालमुत्पन्नया मनाङ्मन्मथव्यथया धीरतया च स्पृहया च विचिकित्सया च जिघृक्षया च जिहासया च समकालमाकुलिते हृदये संकीर्णभावभाजि राजनि, राजीववनविराजिते तस्मिन्नर्मदाह्रदे सलिलक्रीडासुखमतिचिरमनुभूय तीरभुवि सेव्यसितसैकतस्थलीमलंकुर्वाणासु च तासु शबरराजसुन्दरीषु श्रुतशीलश्चिन्तितवान्—

इस तरह विविध विलासो म लगी हुई किरात युवतियों को देखकर आनन्द के मारे उसे रोमाञ्च हो गया । कई तरह के तर्क मन मे उठने लगे । कीचड़ में फसी हुई बुढ़िया हथिनी की तरह आँखें निर्निमेष हो गयी । तत्काल उत्पन्न

काम की पीड़ा की स्थिति में एक ही समय धैर्य, आकर्षण, संकोच, स्पृहा और त्याग की विभिन्न भावनाओं से उस राजा का हृदय भर गया। वनस्थल में सुशोभित नर्मदा नदी के उस सरोवर में देर तक जलविहार कर किरात पत्नियों की युवतियाँ रम्य बालुकामयी रमणीय तटभूमि पर आ गयीं। श्रुतशील सोचने लगा—

'उन्मादि यौवनमिदं शबराङ्गनानां
देवोऽप्ययं नववयाः कमनीयकान्तिः।
रेवातटं चलचकोरमयूरहारि
किं स्यान्न वेद्मि जयिनी च मनोभवाज्ञा ॥ ६५ ॥

"शबर युवतियों का यह उन्मादक यौवन है। महाराज भी अत्यन्त सुन्दर कान्तिवाले नवयुवक हैं। चञ्चल चकोर और मयूरों के कारण यह रेवा का तट अत्यन्त मनोहर हो गया है। कामदेव की विजयशील आज्ञा का वातावरण प्रस्तुत है। ऐसी स्थिति में क्या होगा, यह समझ में नहीं आता ॥ ६५ ॥

[ शृङ्गार के आलम्बन शबर युवतियाँ और नल तथा चकोर, मयूर, रेवा-तट आदि उद्दीपन सामग्री का उचित प्रयोग यहाँ हुआ है ॥ ६५ ॥ ]

तथाहि—

विकलयति कलाकुशलं, हसति शुचिं, पण्डितं विडम्बयति।
अधरयति धीरपुरुषं, क्षणेन मकरध्वजो देवः ॥ ६६ ॥

विकलयतीति ॥ अधरयति विधुरयतीत्यर्थः ॥ ६६ ॥

क्योंकि—

महाराज कामदेव एक क्षण में कलाकुशलों को भी विकल कर देते हैं। पवित्र को भी हास्यास्पद बना देते हैं। विद्वान् को भी धोखे में डाल देते हैं और धीर पुरुष को भी नीचा दिखा देते हैं ॥ ६६ ॥

अपि च—

मध्ये त्रिवलीत्रिपथे पीवरकुचचत्वरे च चपलदृशाम्।
छलयति मदनपिशाचः पुरुषं हि मनागपि स्खलितम् ॥ ६७ ॥

चंचल नेत्रवाली रमणियों के अन्दर, त्रिवली ( उदर की पेटी ) रूप त्रिमार्ग तथा स्थूल स्तनरूप चौराहे पर थोड़ा भी विचलित पुरुष को कामपिशाच परेशान कर डालता है ॥ ६७ ॥

[ यह लोकसामान्य में प्रसिद्ध है कि चौराहे पर पिशाच रहते हैं। यदि कोई अपवित्र आदमी उस रास्ते से जाता है तो उसे पकड़ लेते हैं। स्त्रियों की

त्रिवली को त्रिमार्ग और स्तनों को चौराहा कहा गया है। इन पर विचलित होने पर कामपिशाच बहुत परेशान करता है ॥ ६७ ॥ ]

तदस्तु प्रस्तुतरसानुनयेनैव प्रभूणां मतयो निवर्त्यन्ते निषिद्ध-निषेवणात्, न प्रतिकूलतया' इत्यवधार्यप्रवनिपतिमवादीत् ॥

तदस्त्विति ॥ निषिद्धस्य निषेवण सेवनमाग्रहस्तस्मात्सकाशात् प्रभूणां मतयः प्रकृतरसानुसरणैव व्यावर्त्यन्ते, न प्रतिकूलतया हठात् निषिद्धस्यानभिजातसद्गम। देराग्रह कुर्वाणः प्रभुः सहायसंपदानुजीविना निवार्य । पर तदभिमतं प्राक् पुर स्कृत्य दोष च दर्शयित्वा। सहसा निवार्यमाणो हि पराभवमिव मन्येत ॥

अच्छा, स्वामियो की बुद्धि को निषिद्ध पदार्थ के सेवन की ओर से प्रासंगिक वातावरण व अनुकूल चर्चा द्वारा ही निवर्तित किया जा सकता है, प्रतिकूल चर्चा द्वारा नहीं।" यह विचार करता हुआ राजा से बोला—

'देव' रमणीयः खल्वयं प्रदेशः ॥

महाराज, निश्चित ही यह रमणीय स्थान है।

तथाह्यत्र—

आह्लादयन्ति मृदवो मृदितारविन्द-
निष्यन्दिमन्दमकरन्दकणान्किरन्तः।
एते किरातवनितास्तनशैलगण्ड-
संघट्टजर्जररुचः सरित समीराः ॥ ६८ ॥

क्योंकि यहाँ—

आमर्दनप्राप्त कमलों से चूने वाले मधुबिन्दुओं को बिखेरती हुई, किरात-पत्नियों के स्तनशैल के तट से टकराने के कारण जर्जर कान्तिवाली नदी की कोमल ( मन्द ) हवा आनन्द दे रही है ॥ ६८ ॥

एताश्च—

उपनदि पुलिने पुलिन्दवध्वः स्तनपरिणाहविनिर्जितेभकुम्भाः।
शिथिलितसलिलार्द्रकेशबन्धाः किमपि मनोभववैभवं वहन्ति ॥ ६९ ॥

और इन—

शबर पत्नियों ने भी स्तनों की विशालता से हाथियों के कुम्भस्थल को जीत लिया है, जल से आर्द्र वेणीबन्धन को शिथिल कर दिया है और नदी के समीप-वर्ती तट पर कामदेव के अपूर्व ऐश्वर्य को धारण कर रही हैं ॥ ६९ ॥

इतश्चावलोकयतु देवः—

सरसिजमकरन्दामोदमत्तालिगीत-
श्रवणसुखनिमीलच्चक्षुषः किंचिदेते।

अपि दिवसमशेषं निश्चलाङ्गाः कुरङ्गाः
पुलिनभुवि विहाराहारवन्ध्या वसन्ति ॥ ७० ॥

मरन्दिदेति ॥ अर्धनिमीलितनेत्रं यथा स्यात्तथा । अशेषमपि दिवसमित्यर्थः ॥ ७० ॥

इधर भी देखें श्रीमान्—

निश्चल अंगों वाले ये मृग कमल की मधुमद गन्ध में मस्त भ्रमरों का गान सुनकर सुख के मारे आंखों को कुछ बन्द कर भ्रमण और भोजन दोनों को छोड़कर इस तट पर सारा दिन व्यतीत कर रहे हैं ॥ ७० ॥

इतोऽपि—

पद्मान्यातपवारणानि नलिनीपत्राणि पर्यङ्किका
दोलान्दोलनदोहदोऽपि च चलद्वीचीचयैः पूर्यते ।
आहारो बिसपल्लवं पुलिनभूर्लीलाविहारास्पदं
रेवावारिणि राजहंसशिशवस्तिष्ठन्ति धन्याः सुखम् ॥ ७१ ॥

पद्मानीति ॥ आतपवारणानि छत्राणि । धन्याः राजहंसशिशवः भाग्यशालिनः ॥ ७१ ॥

और इधर—

जहां धूप निवारण करने वाले छाते का काम कमल करते हैं, कमलिनी-पत्र पलंग का कार्य कर रहे हैं; चञ्चल तरङ्गसमूह झूला झूलने की इच्छा पूर्ण कर दे रहे हैं; भोजन का काम मृणालपल्लव से चलता है; लीलापूर्वक विहार करने का स्थान यह तटीय प्रदेश है, ऐसे रेवा के जल में भाग्यवान् राजहंसों के बच्चे सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥ ७१ ॥

इहापि—

चिरचिरचितचाटुश्चन्द्ररेखायमाणः
प्रथमरसबिसाग्रग्रासलीलार्पणेन ।
इह रमयति हंसीं राजहंसो रिरंसुः
पुलकयति च चञ्चूकोटिकण्डूयनेन ॥ ७२ ॥

यहां—

रमण की इच्छावाला यह राजहंस बहुत देर से चाटुकारिता करता है, चन्द्र की तरह अपनी आकृति बनाता है। प्रथम रस ( उत्कृष्ट प्रेम ) से मृणाल के अग्रभाग का समर्पण करता है। चोंच के अग्रभाग से खुजलाकर हंसी को पुलकित और अनुरक्त करता है ॥ ७२ ॥

अपि च—

इह चरति चकोरः कोरकं पङ्कजाना-
मिह चलदलिचक्राच्चक्रवाको बिभेति ।

इह रमयति जीवंजीवको जीवितेशा-
मिह वहति विकारं हारि हारीतकोऽपि ॥ ७३ ॥

इह चरतीति ॥ प्रतिष्ठमानभृङ्गवृन्दाच्चक्रवाको बिभेतीति तपस्विनीभार्य्येति शेष । जीवजीवक पक्षी जीवितेशा रमयतीति सम्बन्ध ॥ ७३ ॥

और इधर देखिये—

यहाँ चकोर कमल की कलियों को चर रहा है। चञ्चल भ्रमर वर्ग से चक्रवाक डरता है। जीवञ्जीवक पक्षी अपनी प्राणप्रिया के साथ खेल रहा है। मनोहर हारीतक (तोता) भी (काम) विकृति का अनुभव कर रहा है ॥ ७३ ॥

एवमसौ निषधेश्वरः श्रुतशीलेन प्रज्ञापूर्वमपरमणीयप्रदेशान्तरदर्शनव्याजेनान्तरितदायरसुन्दरीदिदृक्षाग्रहो गृहान्प्रति प्रत्यावृत्तः ॥

इस तरह श्रुतशील ने बुद्धिमानी के साथ दूसरे रमणीय प्रदेश को दिखाने के बहाने किरात कामिनियों को देखने की इच्छा को ओड़कर निवासस्थान की ओर नल को लौटा लिया।

चिन्तितवांश्च—

'कथं नु सा दमयन्ती पुरंदरप्रमुखेषु लोकपालेष्वर्थिषु मया मनुष्यजन्मना लब्धव्येति। निवारयिष्यन्ति च तां खलु दिव्यसम्बन्धार्थिनो बान्धवाः। नरकिमिह शरणम्' इति विमुक्तदीर्घनिःसहनिःश्वासमसकृच्चिन्तयति राजनि 'राजन्, रामाजनः पद्म इव वारित सुतरां प्रवर्तते। नालसस्य दीर्घमनुरक्तस्य जायतेऽपरागो नाप्यलीकाभिनिवेशोऽस्य हीयते। किंचान्यदन्यपरिग्रहवर्तिनीनामपि स्त्रीणामन्यत्रापि रागाग्रहो भवति। यतः पश्य वरुणप्रतिग्रहेऽपि प्रतीचीयं मयि रागिणी भविष्यति' इत्येवमिममाश्वासयन्निव भगवान्भानुरत्तुङ्गतरुशिखराणि करैः पतनभयादिवावलम्बमानः शनैर्गगनतलादवतीर्य प्रतीचीं दिशमयासीत ॥

कथं नु सेति ॥ इन्द्रादिवरेषु सत्सु मयि विषये कीदृगनुरागः, बान्धवोऽप्येनां दिव्यसम्बन्धार्थित्वात्तेभ्यो प्रोत्साहयिष्यन्ति, इति चिन्तयति राज्ञि शनैः क्रमेणाम्बरादवतीर्य भगवान्भानुः पश्चिमामयात्। किं कुर्वन्। इमं नृपमित्यमुना प्रकारेणाश्वासयन्निव। तमेव प्रकारमाह—अहो। राजंस्त्वया चेतसि नैतच्चिन्तनीयम्। यद्दिव्यसम्बन्धार्थिनो बान्धवा एतां निवारयिष्यन्तीति तद्वाक्यमसौ विरज्यतीति। यतो रामाजनो वारितो निषिद्धोऽपीव प्रवर्तते। तथाऽस्य स्त्रीजनस्य दीर्घमनुरक्तस्य बहुकाल सानुरागस्य सतोऽलसस्य न रागापाय स्यात्। तथास्यालीकोऽप्यभिनिवेशो न हीयते। किं पुनर्यावत्सत्याभिनिवेश। यथा पद्मोऽत्र वारितो

बलात्प्रवर्तते। तथास्य रक्तस्य मतो नालं काण्डं दीर्घमनु सह परागो मकरन्दः स्यात्। तथाली भृङ्गो कं जलं तयोरभिनिवेश प्रवेशः सोऽप्यस्य न हीयते न हीनः स्यात्। किं चान्यदुच्यते। स्वीकृतानामपि स्त्रीणां पुरुषान्तरे रागानुबन्ध। यस्मात्सप्रपति परस्य त्वं वरुणस्वीकृतापि पश्चिमाशा ममापि विषये रागिणी भविष्यतीति। पद्मशब्द उभयलिङ्ग॥

इन्द्र आदि प्रमुख लोकपाल जिसके याचक हैं उस दमयन्ती को मनुष्य योनि में उत्पन्न मैं क्यों न प्राप्त करूँ ? देवताओं से सम्बन्ध रखने की कामनावाले उसके बान्धव उसे रोकेंगे भी। ऐसी स्थिति में क्या उपाय है ? इस तरह लम्बे-लम्बे असह्य श्वासों को भरता हुआ राजा सोच रहा था तब तक, "राजन्, स्त्रीजन कमल की तरह वारित होने पर और प्रवृत्त होते हैं। पूर्ण अनुरक्त हो जाने पर इनके अनुराग का अपराग ( अभाव ) नहीं किया जा सकता। इनकी झूठी प्रवृत्ति भी निवारित नहीं की जा सकती। अधिक क्या कहूं ? विवाहित स्त्रियों का भी दूसरे लोगों में हठपूर्वक प्रेम देखा जाता है। क्योंकि, देखो, पश्चिम दिशा का विवाह वरुण से हुआ है, फिर भी यह मुझमें अनुरक्त होगी।" मानो इस तरह का आश्वासन देते हुए भगवान् सूर्य मानो गिरने के भय से ऊँचे पेड़ों के अग्रभाग से करों ( किरणों ) की टेक लेकर धीरे धीरे आकाश से उतर कर पश्चिम की ओर चले गये।

[ स्त्रियों को कमल की तरह बताया गया है। कमल वारि से उत्पन्न होते हैं। यहाँ वारि शब्द से तसिल् प्रत्यय हुआ है। स्त्रीपक्ष में वारित रामाजन. का विशेषण है। इसका अर्थ है—निवारित करने पर भी। वारित एक ऐसा साधारण धर्म है जो स्त्रीजन और कमल दोनों में लगता है। कमल वारितः ( जल से ) उत्पन्न होता है और स्त्रीजन वारित ( निवारित ) होने पर भी प्रवृत्त होता है।

रक्तस्य अस्य नालम् दीर्घम्—लाल कमल का नालदण्ड बड़ा होता है और उसमें पराग भी होता है। जायतेऽपरागः इस योग में कमलपक्ष में खण्डाकार ( ऽ ) नहीं माना जायगा। अतः इसका तात्पर्य होगा "जायते परागः" अर्थात् लम्बे नालदण्ड वाला लाल कमल परागपूर्ण होता है। नाप्यलीकोऽभिनिवेशोऽस्य हीयते—अली ( भ्रमर ) और क ( जल ) इन दोनों में इसका अभिनिवेश ( प्रवेश ) बन्द नहीं होता। अर्थात् भ्रमर और जल से इसका सम्बन्ध रहता ही है।

स्त्री भी यदि किसी में अनुरक्त हो जाती है तो निवारित करने पर भी नहीं मानती। दीर्घम् अनुरक्तस्य स्त्रीजनस्य न अलम् अपरागः जायते—स्त्रीजन जब पूर्णरूप से अनुरक्त हो जाता है तो उसके प्रेम का अभाव पूर्णतः

नहीं होता। अलीकोऽपि अभिनिवेशोऽस्य न हीयते—इसकी झूठी भी प्रवृत्ति घटती नहीं। परिणीत स्त्रीया भी दूसरे में अनुरक्त हो जाती हैं। इसी बात के समर्थन के लिये कहा गया कि पश्चिम दिग्वधू का परिणय वरुण के साथ हुआ है, किन्तु वह कान्तिशील भगवान् सूर्य को देखकर रोमाञ्चित हो रही है। उसके आकर्षण में जल्दी गिर न जाय, मानो इस भय से पेड़ो का सहारा अपने करो (किरणो) से ले रहे हैं। सन्ध्या का समय है। अस्त होते हुए भगवान् सूर्य की किरणे पेड़ों की डालियों पर दीख रही हैं। सन्ध्या राग से पश्चिम की दिशा अरुण हो गयी है।]

अम्बरान्त.प्रसारितकरे रागिणि रक्तया परियुक्ते तु पश्चिम-ककुभाऽम्भोजिनीजीवितेश्वर॥

अम्बरान्तरिति॥ नभोन्त प्रसारिताशौ रक्तान्विते रक्तया पश्चिमया दिशा युक्ते सायम्भोजिनीजीवितेश्वरे रवौ मास्या चिन्तितम्॥

अम्बर (आकाश वस्त्र) में कर (किरण पाणि) फैलाकर रागपूर्ण होकर रागिणी पश्चिम दिशा के साथ कमलिनी के प्राणप्रिय (सूर्य) के चले जाने पर—

[भगवान् सूर्य पर नायक और पश्चिम दिशा पर नायिका व्यवहार का आरोप किया गया है। अम्बर शब्द आकाश और वस्त्ररूप अर्थ का उपस्थापन करता है। कर शब्द किरण और पाणि का वाचक है। राग शब्द से लाल रंग और अनुराग दोनों अर्थ समझे जाते हैं। कमलिनी के प्राणप्रिय सूर्य अनुराग प्रदर्शन करते हुए रागिणी पश्चिम दिग्वधू के साथ चले गये।]

पूर्वाहं विहितोदयाहमसकृत्त्वमां विहायाधुना
यस्यामस्तमुपैति तां कथमयं रागी जघन्यामगात्।
इत्येवं श्लथितांशुके दिनपतौ याते दिशं पश्चिमा-
मीर्ष्यारोपविषादिनीव तमसा प्राची कलुल्लक्ष्यते॥ ७४॥

तदाह—पूर्वेति॥ आद्याहम्। तथासकृद्विहितोदयाहं तस्मादस्यामस्तमेति जघन्यां च निकृष्टां तामिमां रागी आरक्त सन् रविर्मां विहाय कथमगात्। पश्चिमां दिश गते शिथिलांशावंशुमति विषये व ईर्ष्यारोषोऽसूयाकोपस्तस्माद्विषादिनी च सती पूर्वा दिक् तमसान्धकारेण लक्ष्यते। अन्यामपि प्रथमां कृतोदयां विहाय अस्तकारिणीं निकृष्टां च यदा रागी विलास याति, तदा तस्मिन्निश्रथिलितवाससि पूर्वा स्त्रीर्ष्याविषादिनी तमसा तमोभावेन प्राप्यते॥ ७४॥

"पहली मैं हूँ। अनेको बार मैंने उसका उदय किया है। फिर भी इस समय मुझे छोड़कर बड़े प्रेम से कैसे उस पापिनी के साथ चला गया जहाँ सदा उसका ह्रास ही होता है।" इस तरह ईर्ष्या, क्रोध और विषाद से भरी हुई पूर्व दिशा

शुक ( किरण वस्त्र ) को शिथिल कर दिनपति ( सूर्य ) के पश्चिम दिशा के साथ चले जाने पर अन्धकारयुक्त दिखाई पड़ती है ॥ ७४ ॥

[ पूर्वा शब्द पूर्व दिशा और प्रथम, दोनों अर्थ का वाचक है। प्रगाढ़ अनुराग उन्नति और अवनति की प्रतीक्षा नहीं करता, भगवान् सूर्य की सदा उन्नति हुई है पूर्व दिग्वधू के साथ। पश्चिम क सम्पर्क में वे जब भी गए हैं, उनकी अवनति हुई है। उनका उदय पूर्व के साथ होता है और अस्त पश्चिम के साथ। फिर भी रागिणी पश्चिमा के साथ राग होने पर उदयदायिनी पूर्वा को उन्होंने छोड़ ही दिया। पूर्व की ओर जो अँधेरा छा गया है वह है पूर्व दिग्वधू का ईर्ष्या, क्रोध और विषाद से मलिन हुआ मुख ॥ ७४ ॥ ]

विश्लेषाकुलचक्रवाकमिथुनैरुत्पीडमाक्रन्दिते
कारुण्यादिव मीलितासु नलिनीष्वस्तं च मित्रे गते।
शोकेनेव दिगङ्गनामिरभितः श्यामायमानैर्मुख-
निःश्वासानलधूमधर्मण इवोद्गीर्णास्तमोराजयः ॥ ७५ ॥

विश्लेषेति ॥ उत्कृष्टा पीडा यत्रेत्युत्पीडमित्याक्रन्दितक्रियाविशेषणम् ॥ ७५ ॥

वियोग के भय से चक्रवाक का जोड़ा जोर से क्रन्दन करने लगा। मानो करुणा के मारे कमलिनियाँ बन्द हो गयीं। सूर्य अस्त हो गये। मानो शोक के मारे दिगङ्गनाओं का मुख काला जैसा हो गया। उनके निःश्वासरूप अनल की धूमपङ्क्ति सदृश अन्धकार श्रेणियाँ फैल गयीं ॥ ७५ ॥

[ चक्रवाक रात को अपनी प्रिया से वियुक्त हो जाता है। वियोग भय के कारण करुण क्रन्दन कर रहा है। उसकी सहानुभूति में कमलिनियाँ बन्द हो गयी हैं। दिग्वधुओं का मुख काला हो गया है। निःश्वास अनल की धूम-श्रेणी ने भूमण्डल को आक्रान्त कर लिया है ॥ ७५ ॥ ]

तथाविधे च वेलाव्यतिकरे शङ्कः संध्यावसरमावेदयितुमस्याः समविहारि हारि लीलाकिंनरमिथुनमिदमगायत्—

ऐसे ही समय सन्धि के अवसर पर सन्ध्या विधि की सूचना देने के लिये समीप में विहार करता हुआ मनोहर किन्नर युगल गान करने लगा—

'रक्तेनार्क विनिहितमधोवक्त्रमेतत्कपालं
तारामुद्राः किमु कलयता कालकापालिकेन।
संध्यावध्वाः किमु विलुठिता कौसुंभी शुचिरेवं
शङ्कां कुर्वञ्जयति जलधावर्धमग्नार्कबिम्बम्' ॥ ७६ ॥

रक्तेनेति ॥ अधस्ताद्वक्त्रं यस्य तदधोवक्त्रमधोमुखम्। तथा रक्तेन रुधिरेणाक्तं लिप्तम्। तत्पयमुत कपालं काल एव कापालिकस्तेन तारा नक्षत्राण्येव मुद्रा रुच-

कार्याणि हस्तपादादीनामस्थ्याभरणानि कलयता युञ्जानेन किमुपन्यस्तम्। किमिति वितर्के। किंवा सन्ध्यैव या वधूस्तस्याः सम्बन्धिनी कौङ्कुमी शुक्तिर्विपरीतमधोमुखी लुठिता। एवमित्थं शङ्कामुत्पादयत्समुद्रेऽर्धमग्नार्कबिम्बं जयत्यधुना ॥७६॥

"काल कापालिक रुधिर भरे कपाल का मुख नीचा कर तारक मुद्राओं को धारण कर रहा है क्या? सन्ध्या वधू की कुङ्कुमभरी शुक्ति उलट गयी है क्या?' समुद्र में आधा डूबा हुआ सूर्य का बिम्ब इन विभिन्न शंकाओं को उत्पन्न कर रहा है' ॥ ७३ ॥

[ अवघड पथ के लोग कपाल हाथ में लिये रहते है। भस्म आदि के विभिन्न चिह्नों में अपने को चिह्नित किये रहते है। रक्त, मदिरा आदि पदार्थों को पीते रहते हैं। भगवान् सूर्य का सन्ध्या के समय आधा अंश अस्त हो गया है और आधा बाकी है। वह लाल बिम्ब ऐसा लगता है जैसे कापालिक ( अवघड ) ने अपने कपाल में रक्त भरकर उसे उड़ेल दिया हो या उल्ट दिया हो। आकाश के छिटकते हुए तारे उसके शरीर के विभिन्न चिह्नों की तरह लग रहे हैं। काल ( समय ) को ही यहाँ कापालिक बनाया गया है। समय ही तो व्यापारयिता है जैसे कपाल आदि उड़ेलने का व्यापारयिता कापालिक है। दूसरी उद्भावना है शक्ति के साथ। सूर्य का बिम्ब ऐसा लगता है मानो सन्ध्या वधू की कुङ्कुम रखने वाली रंग की सिनुही उल्ट गयी है ॥ ७६ ॥ ]

अथ क्रमेण गगनमन्दाकिनीतीरतापसैर्विकीर्यमाणेषु संध्यार्घाञ्जलिजलबिन्दुबुद्बुदेष्विव किंचिदुन्मीलत्सु विरलतरतारास्तबकेषु, वासरविरामवादितवाद्येष्वमरसदनेषु, दह्यमानबहलधूपधूममञ्जरीष्विव वियति विहरन्तीषु तनुतिमिरवल्लरीषु, स्वपत्पतत्त्रिकुलकोलाहलेन वासार्थिश्रान्तागताध्वगस्वागतालापमिव कुर्वाणासु वनराजिषु, अन्यत्र परिभ्रमणपरिहारार्थमिव पद्मिनीनां कोशपानमाचरत्सु चञ्चलचञ्चरीकेषु, रत्युत्सवोत्साहावेशमहामन्त्राक्षरेष्विव श्रूयमाणेषु महासरित्कूलकुलायनिलीनजलकुक्कुटरुतेषु, रामायणध्वनिकरेष्विव मन्दोदरीप्रहस्तप्रबोधितोत्थितदशाननेषु संध्याप्रदीपेषु जाते जरत्कुम्भकारकुक्कुटकुटुम्बपक्षपिच्छविच्छाये मनाक्समोऽनुविद्धे सन्ध्यारागे राजा विषादविस्मृतसंध्याह्निकः परिजनानुबन्धात्संध्यामवन्दे ॥

अर्थन ॥ कोशः कलिका शपथविशेषश्च। वयमन्यत्र न यास्याम इत्यर्थे पद्मिनीनां समीपे कोशपानम् कुर्वत्सु भृङ्गविलासिषु। वामोदरीप्रकृष्टपाणिज्वलिततैलसिक्तवर्तिमुखेषु दीपेषु। रामायणसम्पर्केषु तु मन्दोदरीनाम्न्या पत्न्या प्रहस्तेन सेनान्या प्रकर्षेण बोधित उत्थितः उद्विग्नः सन् दशाननो रावणो येषु तथाभूतेषु। कुम्भकार कुक्कुट पक्षिविशेष ॥

इसके बाद क्रम से आकाशगङ्गा के तटप्रदेश के तपस्वियों द्वारा दी गयी सूर्यार्घ की अञ्जलि के बिखरे हुए बिन्दुओं के बुद्बुद की तरह कहीं कहीं तारा के गुच्छे निकल रहे थे। दिन की समाप्ति के अवसर पर देवमन्दिरों में बाजे बज रहे थे। जलते हुए पर्याप्त धूप की धूम मञ्जरी की तरह आकाश में पतली तिमिर (अन्धकार) लताएं फैल रही थीं। सोते हुए पक्षियों के कलरव के बहाने, निवास की कामना से आते हुए श्रान्त पथिकों के लिए वनपङ्क्ति स्वागतवाणी बोल रही थी। चञ्चल भ्रमर कमलिनियों के यह कलगान (कलकल) कर रहे थे कि अब वे किसी दूसरी जगह भ्रमण करने नहीं जायेंगे। महानदी की तटान्त कुञ्जों में घुसते हुए जल की ध्वनियां कमलोत्सव विषयक उद्घोषणा के महाशङ्खनाद की तरह सुनायी पड़ रही थीं। रामायण के प्रसङ्ग में जैसे मन्दोदरी और प्रहस्त नामक सेनापति द्वारा अन्वित घमंडी रावण पाया जाता है वैसे ही मन्दोदरी (मन्द, कृश उदर वाली) रमणियों के प्रहस्त (उत्कृष्ट हाथों) से सम्बाधित (जलाए) गए सस्नेह (तेल से भरे हुए) दीप दिखायी पड़ रहे थे। थोड़े अन्धकार से मिश्रित सन्ध्या का रंग वृद्ध कुम्भकार जाति के कुक्कुट समुदाय के पंख के गुच्छे की तरह हो गया था। राजा विषाद के कारण दैनिक सन्ध्या कार्य भूल गया था। अतः परिजनों द्वारा निवेदनपूर्वक याद दिलाए जाने पर उसने सन्ध्यावन्दन किया॥

[ रावणपक्ष में उक्त पद का अर्थ घमंडी है और दीपपक्ष में "तैलपूर्ण" अर्थ है। कुक्कुटों (मुर्गों) की एक कुम्भकार जाति होती है। घड़ा बनाने वाले कुम्भकार से यह तात्पर्य नहीं है। अर्थात् कुम्भकार जाति वाले वृद्ध मुर्गे के पंख समुदाय का जैसा रंग होता है वैसा ही रंग उस समय अन्धकार मिश्रित सन्ध्या का भी हो गया था॥ ]

तनश्च क्रमेण—

रजनिमथ निनाय सान्ध्यकर्मावसाने
हरचरणसरोजद्वन्द्वसेवां विधाय।
मृदुकलितविपञ्चीपञ्चमप्रायगीत-
*श्रवणसुखविनोदैस्तां स तल्पकल्पैर्वीरः॥ ७७॥*

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-
सरोजाङ्कायां पञ्चम उच्छ्वासः समाप्तः॥

---

इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यास्तनुते स्म चण्डपाल ।
शिशुमतिलतिकाविकासचैत्र चतुरमतिस्फुटमित्तिचारचित्रम् ॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे पञ्चम उच्छ्वास. समाप्तः ॥

---

इसके अनन्तर क्रम से—

सन्ध्या विधि के समाप्त हो जाने पर भगवान् शङ्कर के चरणारविन्द का अर्चन कर उस राजा ने मधुर वीणा के प्राय पञ्चम स्वर से अनुगत गीत के श्रवणसुख से साथ वहीं पर उस रात को बिताया ॥ ७७ ॥

पञ्चम उच्छ्वास समाप्त ।

---

## षष्ठ उच्छ्वासः

अथ द्विजजननिकायकीर्णसन्ध्याञ्जलिजलैरिव क्षाल्यमाने मनागिव मलता जहति तिमिरमलिनेऽम्बरे, मालाकारेणेव प्रभातप्रभोद्भेदेन अपचीयमानेषु गगनपुष्पवाटिकाकुसुमेष्विव नक्षत्रेषु निद्रापहार हुङ्कार इवोत्थिते प्रभातभेरीध्वनौ नरपतेः प्रबोधनार्थमदूरे वैतालिकः पपाठ ॥

अथ द्विजेति ॥ अथ निशानिशाद्धनानन्तरम्। अम्बरं व्योम वस्त्रं च। व्योम्न स्वभावकृष्णस्यापि मालिन्यवाच्ये मान्द्ये। वस्त्रपक्षे तिमिरवन्मलिनम् ॥

इसके बाद, द्विजाति वर्ग सन्ध्या कार्य के निमित्त सूर्यार्घ की अञ्जलि दे रहा था। अन्धकार से मलिन आकाश मानो उन ( अञ्जलियों ) से धोये जाने के कारण कुछ निर्मल हो रहा था। मालीस्वरूप प्रातःकालीन कान्ति के विकास द्वारा आकाश पुष्पवाटिका के पुष्पसदृश तारे चुने जा रहे थे। निद्रा को दूर करने वाले हुंकारसदृश नगाड़े की ध्वनि उठ रही थी। ऐसे समय में राजा को जगाने के लिए थोड़ी दूर पर वैतालिक ने ( एक श्लोक ) पढ़ा—

उदयगिरिगताया प्राक्प्रभापाण्डुताया
मनुसरति निशीथे शृङ्गमस्ताचलस्य।
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योममध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च ॥ १ ॥

उदयेति ॥ उदयाद्रिगतप्रथमप्रभापाण्डिमनि निशीथे चान्धकारेऽस्ताचलशृङ्गं गच्छति सम्प्रति किमपि सर्वोत्कृष्टं तेजः जयति। तत्र कविरुत्प्रेक्षते—गगनमिदानीं नभोमध्ये जाह्नवं गाङ्गं, यामुनं च कालिन्दीयं, सलिलं विभिन्नं मगनमिव स्थितं। व्याप्नोति जाह्नव्येवासीत्। यमुनाया भेदः साम्प्रतमेव। अत एवास्मिन्वृत्ते 'यमुना-त्रिविक्रम' इति नाम कविरवाप। तथा च—'प्राच्यादिष्वधुरदीदृशोऽस्पृशन्स्य त्रिविक्रम। निर्मलं विमलं व्योम्नि यत्पदं यमुनामपि'। प्रभया पाण्डुता प्रभाकृत उद्योतः प्रकाश इति यावत्। न तु प्रभाया। पाण्डुताया समास। उदयप्रभाया आरक्तत्वात्। प्रकाशस्तु इन्द्रनीलादीनामपि पाण्डुरेव। जाह्नवो देवताधिष्ठात्रा यस्येति देवताधञ्। अन्यथा शैषिकश्छः स्यात् ॥ १ ॥

प्रातःकालीन कान्ति से उदयगिरि प्रकाशित हो रहा है। रात्रि अस्ताचल की चोटियों की ओर खिसक रही है। इस समय गंगा और यमुना जल के सम्मिश्रण की तरह कोई अलौकिक तेज सुशोभित हो रहा है ॥ १ ॥

[ आकाश मे गङ्गा का ही रहना प्रसिद्ध है। गगा और यमुना का सगम पृथ्वी म ही प्रसिद्ध है। अस्ताचल की ओर अधकार की उपस्थिति बताकर और उदयाचल की ओर प्रकाश की स्थिति बताकर आकाश म भी गगा और यमुना का सगम कवि ने करा दिया है। महाकवि श्रीत्रिविक्रमभट्ट की इस अनोखी कल्पना पर सहृदयो न इ हे यमुना त्रिविक्रम की उपाधि दी है। प्रकाश गगा की धवल धारा का प्रतिनिधित्व करता है और अन्धकार यमुना की नील धारा का ॥ १ ॥ ]

अपि च—

यात्यस्ताचलमन्धकारपटले जातेऽरुणस्योदये
तापिच्छच्छदपद्मरागमहसोर्मध्यं ककुम्भागयो ।
अन्तर्विष्णुविरञ्चयोरिव मनाग्लिङ्गोद्भवभ्रान्तिकृत्
तेज. पाण्डुरपिञ्जरं च किमपि श्यामं च तद्वोऽवतात् ॥२॥

यातीति ॥ अस्तगिरिं गच्छति तम समूहे पश्चिमाया कृष्णाया, सपद्यारुणो दयाया पूर्वस्याश्च लोहिताया दिशोर्मध्ये पाण्डु पिञ्जर श्याम वा किमपि दुर्लक्ष्यमाक स्तोकोदय तेजोऽर्थात्प्रकाशात्मक वो युष्मान्पातु। प्रकाशारुणोदयतम शेष समुदायरूपत्वात् पाण्डु पिञ्जर श्याम चेत्युक्तम्। तदित्यनेन विध्त यद्वक्ष्यमाण्य मुपमानमाह—अन्तरित्यादि ॥ दिग्भागयोर्विष्णुविरञ्चौ, प्रकाशात्मकस्य तेजसो लिङ्गो द्भव उपमानम्। अथवा सत्त्व पाण्डु तदेव विष्णु, रज पिञ्जर तदेव स्रष्टा, तम श्याम तदेव च हर, एतत्त्रयीमयश्च रविरित्यागमिकसमय। तदुक्तम्—'सत्त्व शुभ्र स हरिर्लोहितपीत रज [illegible] जगत्कर्ता। कृष्णं तु तमः स भवो भानुश्चैतत्त्रयी मूर्ति'। अभिधानकारोऽप्याह—'द्वादशात्मा त्रयीतनु'। एतेन पाण्डु तेज इत्युक्ते सत्त्वस्य, पिञ्जरमित्युक्ते रजस, श्याममित्युक्ते तमस प्रतीतिरिति। ततश्च तमो-ऽन्विताया अपाच्या अरुणान्विताया श्च प्राच्या मध्ये मनागीषल्लक्ष्य किमप्यद्भुत वैभव तदुत्कृष्टं पाण्डु पिञ्जर श्याम च तेजोऽर्थात् सत्त्वरजस्तमस्त्रयीमय त्रयीतनु-लक्षण वो युष्मानवतु। अमुमेवार्थं सत्त्वरजस्तमसां सज्ञान्तरेण विष्णुविरञ्चलिङ्गो-द्भवलक्षणेन द्रढयन्नाह—अन्तरित्यादि। 'पुरा स्वमाहात्म्यार्थं विवदमानयोर्द्रुहि-णनारायणयो शिवेन स्वस्य लिङ्गोद्भवस्योर्ध्वाधोमानविज्ञान महत्त्वहेतु पण कृत' इत्यागम ॥ २ ॥

अधकार समूह के अस्ताचल की ओर चले जाने पर और सूर्य के उदित हो जाने पर दोनों दिशाओ के बीच तापिच्छ तथा पद्मरागमणि जैसी कान्ति हो गयी थी। विष्णु और ब्रह्मा के बीच लिङ्गोत्पत्ति विषयक भ्रम फैला देने-वाले स्वरूप की तरह सफद केसरिया और श्याम रग का तत्कालीन तेज आपकी रक्षा करे ॥ २ ॥

[ भगवान् सूर्य को त्रयी तनु कहा गया है। उनमे ब्रह्मा विष्णु और शिव तीनो क रग का होना आवश्यक है। उदय के समय सूर्य का समीपतर स्थान

शुभ्र दीखता है। प्रकाश और अन्धकार के सम्मिश्रण वाला स्थान पिञ्जर (केसरिया) रंग का दीखता है। जहाँ प्रकाश का पूर्ण प्रभाव नहीं पहुँच सका है वहाँ कालिमा बनी ही है। उदयकाल में सूर्य का बालतेज इन तीनों ही तरंगों का दर्शन कराता है। सत्त्वगुणप्रधान होने के कारण विष्णु को शुभ्र, रजोगुणप्रधान होने के कारण ब्रह्मा को पिञ्जर, तमोगुणप्रधान होने के कारण शिव को कृष्ण (काला) कहा गया है। इन तीनों ही रंगों के संवलित रूप को धारण करने वाले भगवान् सूर्य आपकी रक्षा करें।

एक बार ब्रह्मा और विष्णु के बीच झगड़ा लग गया कि दोनों में कौन बड़ा माना जाय। बड़े विवाद के बाद यही निश्चय किया गया कि श्री शिवजी के लिङ्ग के अन्तिम छोर का जो पता लगा लेगा उसी को बड़ा समझा जायगा। ब्रह्मा ऊपरी भाग का पता लगाने के लिये गये और विष्णु निचले भाग का। विष्णु नीचे जाते-जाते थक गये किन्तु उस लिङ्ग की सीमा का पता न लगा। उन्होंने अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली। ब्रह्मा को भी ऊपरी भाग का पता न लगा किन्तु उन्होंने बताया कि उन्हें ऊपरी सीमा का पता लग गया। उनके झूठ मिथ्या भाषण पर शिवजी नाराज हो गये और विष्णु की महत्ता स्वीकार कर ली गयी। इसी बात का यहाँ निर्देश किया गया है। विवाद के समय ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों उपस्थित हुए थे। उस समय जैसा रंग या या दृश्य था वैसा ही दृश्य सूर्योदय के समय में हुआ है ॥ २ ॥]

अनन्तरमुत्तिष्ठतोत्तिष्ठतानयत गजवाजिवेगसरीः संयोजयत शकटानि, वेष्टयत पटकुटीः, मुकुलयत मण्डपिकाः, संवृणुत काण्डपटान्, उन्मूलयत कीलकान्, उद्वहत वेगाद्वहनीयभाण्डम्, भारयत करभकलभान्, उत्क्षिपत क्षीणोक्षकान्, उत्तरत सरितम्, अपसरत पुरतः, कुरुत संचारसहं मार्गम्, इत्यनेकविधप्रयाणाकुललोककोलाहले समुच्छलति, नदत्सु प्रस्थानवादित्रेषु, समुत्थाय नरपतिरावश्यकशौचावसाने नर्मदाम्भोऽभिषेकपूततनुरनुबध्य सांध्यविधिम्, अधिकृत्य भगवन्तमुदयगिरिशिरःशिखरभाजं भास्करम्, इमं श्लोकमपठत् ॥

अनन्तरमिति ॥ वेगसरी वेसरी। काण्डपटो गुणलयनी ॥

इसके बाद, "उठो, उठो। हाथी, घोड़े और ऊँटनियों को लाओ। गाड़ियों को जोतो। पटकुटीरों को लपेटो। तम्बुओं को समेटो। तम्बुओं के किनारे वाले पर्दे को बटोरो। खूँटियों को उखाड़ो। ले चलने लायक बर्तनों को जल्दी ले चलो। ऊँटों और हाथियों के बच्चों को लादो। क्षीण (टूटे हुए) बर्तनों को फेंको। नदी में उतरो। सामने की ओर बढ़ो। रास्ते को चलने लायक

बनाओ।" इस तरह प्रस्थान कार्य में व्यग्र लोगों की अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उठ रही थीं। प्रस्थानसूचक बाजे बज रहे थे। राजा ने उठकर शौच आदि कार्य के बाद नर्मदा जल के स्नान से पवित्र होकर, सन्ध्या आदि कार्य कर, उदयाचल के शृङ्ग पर ठहरे हुए भगवान् सूर्य को प्रणाम कर यह श्लोक पढ़ा :—

'जयत्यम्भोजिनीबन्धुर्बन्धूकारुणरश्मिकः।
भैद्रुमो वासरारम्भकुम्भः पल्लववानिव' ॥ ३ ॥

बन्धूक (अड्डुल) पुष्पसदृश अरुण कान्ति वाले, कमलिनियों के प्रिय भगवान् सूर्य दिन के प्रारम्भ में विद्रुम मणि निर्मित, किसलय पल्लव से मण्डित घड़े की तरह सुशोभित हो रहे हैं ॥ ३ ॥

[उदय के समय जो पूर्ण पिण्ड का लाल गोलक दिखाई पड़ता है उससे कुम्भ की और उस गोलक से विच्छुरित होने वाली किरणों की किसलय से तुलना की गयी है ॥ ३ ॥]

अभ्यर्च्य च पञ्चोपचारैः सुरासुरगुरुं गौरीपतिं तत्प्रियस्य भगवतो नारायणस्यापि वाञ्छितार्थसिद्धये स्तुतिमकरोत् ॥

राजा ने देवों और दानवों के पूज्य, पार्वतीपति, भगवान् शंकर का पञ्चोपचार पूजन कर आकाङ्क्षित अर्थ की सिद्धि के लिये, उनके प्रिय भगवान् नारायण की भी स्तुति की।

'जयत्युदधिनिर्गतस्मरविलोललक्ष्मीलस-
द्विलासरसमन्थरस्फुटकटाक्षलक्षीकृत।
अमन्दरयमन्दरभ्रमणघृष्टहेमाङ्गद-
सुरारिवधनाटकप्रथमसूत्रधारो हरिः ॥ ४ ॥

जयत्युदेति ॥ सुरारिवधनाटकस्य प्रथमे प्रस्तावनायां सूत्रधारः ॥ ४ ॥

समुद्र से निकली हुई काम चञ्चल लक्ष्मी के रमणीय विलास रस के मन्द एवं विकसित कटाक्षों द्वारा लक्षित, मन्दराचल को बड़ी तेजी से घुमाने के कारण घिसे हुए स्वर्ण कंकण वाले, देवद्रोहियों के वधरूप नाटक के प्रथम सूत्रधार श्री हरि का मङ्गल हो ॥ ४ ॥

जयत्यमलकौस्तुभद्युतिविराजितोरःस्थलः
सदैवद्दतदानवो नवतमालनीलद्युतिः।
विनम्रसुरमस्तकच्युतविकासिपुष्पावली-
विकीर्णमधुसीकरस्नपितपादपीठो हरिः ॥ ५ ॥

कौस्तुभमणि की निर्मल कान्ति से जिनका वक्षःस्थल सुशोभित है, बिना किसी विशेष यत्न के जिन्होंने दानवों को समाप्त कर दिया है, नवीन तमाल की तरह जिनके शरीर की कान्ति नीली है, नम्र देवताओं के मस्तक से गिरी हुई पुष्पपङ्क्ति के बिखरे हुए मधुकणों से जिनका पादपीठ (खड़ाऊँ) चिह्न हो गया है ऐसे भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ५ ॥

जयत्युदरनिःसरद्वरसरोजपीठोपवि-
ष्टचतुर्मुखमुखावलीविहितरम्यसामस्तुतिः ।
अलब्धमहिमावधिर्मधुवधूविलासान्तकृ-
ज्जगत्त्रितयसम्भवो भवभयापहारी हरिः ॥ ६ ॥
जयत्यसुरसुन्दरीनयनवारिसंवर्धित-
प्रतापवदखलुसत्तवणकेकिकण्ठच्छविः ।
दलत्कनककेतकीकुसुमपत्त्रपीताम्बरः
सुराधिपनमस्कृतः सकललोकनाथो हरिः ॥ ७ ॥

जिनके उदर से निकले हुए कमल के आसन पर बैठकर ब्रह्मा चारों मुखों से रमणीय सामवेद की स्तुति पढ़ते रहते हैं, जिनकी महिमा की सीमा नहीं पायी गयी है, जिन्होंने मधु दैत्य की पत्नी के विलास का अन्त कर दिया है, खिले हुए स्वर्णकेतकी के फूल की तरह पीत जिनके वस्त्र हैं, देवेन्द्र जिन्हें प्रणाम करते हैं ऐसे समस्त लोकों के स्वामी भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥६–७॥

जयत्यखिललोकजिन्नरककालकेतुभ्रमो
मदान्धदशकन्धरद्विरदपुष्पपञ्चाननः ।
हिरण्यकशिपुप्रियामुखसरोजचन्द्रोदयः
सुरेन्द्ररिपुसिंहिकासुतशिरःकुठारो हरिः ॥ ८ ॥

दश नि। मैरको मौंमपुर ॥ ८ ॥

समस्त लोकों पर विजय करने वाले, नरकासुर के विनाश के लिये धूमकेतु के उदय की प्रतिमूर्ति, हिरण्यकशिपु की रमणियों के मुखकमल के लिये चन्द्रोदय, मदान्ध रावणरूप हाथी के लिये भयङ्कर सिंह; देवेन्द्रशत्रु सिंहिका-पुत्र राहु के शिर के लिये कुठार भगवान् हरि सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ८ ॥

[धूमकेतु का उदय किसी अलौकिक आपत्ति का सूचक होता है। नरकासुर के लिये भगवान् धूमकेतु के उदय की ही तरह थे। क्योंकि उन्होंने उसका विनाश किया था। हिरण्यकशिपु की पत्नियों का मुख यदि कमल है तो भगवान् उनके लिये चन्द्रोदय हैं। चन्द्र के उदित होने पर कमल मुकुलित हो जाते हैं। भगवान् ने हिरण्यकशिपु का वध कर उसकी कान्ताओं को म्लान

बना दिया। सिंहिका के लड़के का नाम राहु था। वह इन्द्र का विद्रोही था। भगवान् उसका शिर काट लिये थे॥ ८॥ ]

जयत्ययमरसारथिर्मदनतप्तलक्ष्मीलसत्-
पयोधरयुगस्थलीसरसचन्दनस्थासकः।
अचिन्त्यगुणविस्तरः सकलकेशिकंसाङ्गना-
कपोलफलकोल्लसत्तिलकभङ्गहारी हरिः॥ ९॥

जयतीति॥ अमराणां सारथिर्नेता अग्रणीरिति यावत्॥ ९॥

देवताओं के अग्रणी, कामसन्तप्त लक्ष्मी के स्तनयुगलरूप भूमि पर आर्द्र चन्दन के स्थासक, अवर्ण्य गुण विस्तार वाले, केशी और कंस की समस्त स्त्रियों के कपोलस्थल पर सुशोभित होने वाली तिलक रचना को समाप्त करने वाले भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं॥ ९॥

[ किसी आर्द्र पदार्थ को हाथ में लेकर किसी भित्ति या स्थान पर थापा मारते हैं। उस पर हाथ की आकृति उभड आती है। उसी उभड़ी हुई हाथ की आकृति को स्थासक कहते हैं। सरस चन्दन का स्थासक उस स्थल को शीतल और सुगन्धित बनाने के लिये लगाया जाता है। कामसन्तप्त लक्ष्मी के लिये भगवान् स्थासक हैं। सौख्योत्पादक हैं। सौभाग्यवती स्त्रियां तिलक आदि से अपने को प्रसाधित करती हैं। विधवायें अपना प्रसाधन नहीं करती। भगवान् ने केशी और कंस का वध कर उनकी पत्नियों के शृङ्गार का प्रसङ्ग ही समाप्त कर दिया है॥ ९॥ ]

जयत्यसमसाहसः सकललोकशोकान्तकृत्
महस्करमानुरस्फुरितचारुचक्रायुधः।
विहङ्गपतिवाहनः कलुषकन्दनिर्मूलन-
समस्तभुवनावलीभवनदीपधारी हरिः॥ १०॥

समस्त भुवनमण्डलरूप भवन के दीपकी भगवान् जिनका साहस अनुपम है, जो समस्त जनों के दुःख का निवारण करते हैं, सूर्य की तरह चमकने वाला, चंचल एवं मनोहर अस्त्र जिनका चक्र है, पक्षिराज गरुड़ जिनके वाहन हैं, पाप के अन्तर्निहित मूलों को जो समाप्त कर डालते हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं॥ १०॥

जयत्यमलभावनावनतलोककल्पद्रुमः
पुरन्दरपुरःसरत्रिदशवृन्दचूडामणिः।
अरातिकुलकन्दलीवनविनाशदावानलः
समस्तमुनिमानसप्रवरराजहंसो हरिः॥ ११॥

निर्मल भावना से विनम्र बने लोगों के लिये कल्पद्रुम, इन्द्रप्रमुख समस्त देववर्ग में शिरोमणि, शत्रुवर्गरूप होनहार वन के लिये वनाग्नि और समस्त मुनिजनों के मानस के मुख्य राजहंस भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ११ ॥

[ मुनिजनों का हृदय मानसरोवर है। भगवान् उसके मुख्य राजहंस हैं। राजहंस के लिये जैसे मानसरोवर बड़ा प्रिय है वैसे भगवान् के लिये मुनिजनों का हृदय बड़ा प्रिय है ॥ ११ ॥ ]

एवमभिवन्द्य देवदेवम्, समारुह्य विजयिवारणेन्द्रस्कन्धम्, अग्रतःप्रधावितानेककरितुरगपरिजनः, पुरः पुरोधसा निवर्तिते महानदीयागे, युगसहस्रपरिवर्तवृत्तान्तसाक्षिणीम्, अनवरततपस्यद्दधमहर्षिप्रतिष्ठितशिवलिङ्गरुद्धरोधसम्, अनेकसुरसुन्दरीसेवितवीरसंकेतलतामण्डपाम्, अनवरतमज्जद्वनगजमदामोदसुरभितरङ्गाम्, अपरगङ्गाम्, अपरसागरराजमहिषीम्, अपरमार्कण्डेयतपःसिद्धिस्थलीम्, समुत्तीर्य भगवतीं मेकलकन्याम्, उत्फुल्लपल्लविताङ्कोल्लसल्लकीसरलसालसर्जार्जुननिम्बकदम्बजम्बूजम्बीरोदुम्बरखदिरकरञ्जाञ्जनाशोकनीपाञ्जनकषायेस्मदभिगकीर्णम्, अभिमतं मतङ्गजानाम्, अनुभूतसारं सारङ्गैः, शिशिरतरं तरङ्गानिलैः स्वर्गवनसमं सनखरीकैर्नालिकेरवल्लैद्वय दक्षिणं नर्मदातीरपुण्यारण्यम्, अग्रतो, गगनवीथिमिव सिंहराशिराजितामुन्मत्तक्रामुल्थिरञ्चुश्चिकामाविर्भूतमार्द्ररोहिणीमूलां च, छन्दोजातिमिव शार्दूलविक्रीडितमनोहरां हारिहरिणीमन्दाक्रान्तामनवरतवसन्ततिलकोद्भासितामतिविचित्रचम्पकमालां च, सीतामिव बहुकोटराधयचूनानुरक्षकुशालयां च, लङ्कामिव संचरद्द्विगुणपञ्चाननविभीषणां चारुपुष्पकामकाण्डाडम्बरैनमेघनादां च, गीतविद्यामिव ततानद्धघनसुषिरवंशास्वनमनोहरामनेकतालभेदां निषादऋषभमध्यमग्रामयुक्तां च, चित्रविद्यामिवानेककण्टकपत्रलतास्थानकविषमानुज्ज्वलगननापसा च, कलियुगनिवसासनम्यितिमिव महाव्रतिकान्तःपातिभिः कालमुखैर्वानरैः संकुलामनेकधा भिन्नस्नोनसं च, कापालिकखट्वाङ्गयष्टिमिव समुत्कोपकण्ठलग्नाम्, मायामिव शम्बराधिष्ठिताम्, मरुभूमिमिव करीरैः केसरिप्रसरैरसंचाराम्, अतिचारुचन्दनैः कनकगोरोचनाविशेषकैरक्षतदूर्वाङ्कुरादिभिरारब्धमङ्गलाचारैरिव तृणस्थलैरलंकृताम्, विविधव्याधां विन्ध्याटवीमवगाहमानो मेघकृष्णमिथुनयुजः सधनुषः सकुम्भकन्यानेकत्र राशीभूतान् गिरिग्रामपल्लीकानालोकयन्, 'इयं गगनवीथीव चित्रशिखण्डिमण्डिता सरित्तीरभूमिः, इयं सरिदिव

बहुतरङ्गोपशोभिता गोष्ठवसतिः, इयं च नक्षत्रमध्यगतापि न विशाखा तरुपङ्क्तिः, इयं पुष्पवत्यपि न दूषितस्पर्शा वीरुत्, इयं सन्निहितमधुसूदनापि हरिप्रिया वंशजालिः, इयं कृतमातङ्गसङ्गापि न परिहृता द्विजैः सल्लकीसंततिः, इमे च केचित्सशिखण्डिनो महाद्रुपदाः, केऽपि विच्छिन्नकीचकवंशा वृकोदराः, केचित्सपुण्डरीकाक्षाः पाण्डुसंतानकाः, केऽप्युद्धृतभुवो महावराहाः, केऽप्युत्कृष्टसुरभिश्रीद्रुमावलिढहरिस्कराः कृष्णपन्नगनेत्राः स्फुरन्मणिभित्तयोः मन्दरागाः केऽपि सस्थाणवो दुर्गाश्रयाः श्रूयमाणगजवदनचीत्काराः सगुहाः कैलासकूटायमानाः सेव्याः खल्वमी विन्ध्यास्कन्धसंधिसानव इति मन्त्रिसूनुना श्रुतशीलेन सह विहितविदग्धालापः, कयापि वेलया कमप्यध्वानमतिक्रम्य क्वाप्यपरिमितपतन्निर्झरजलतुषारस्पर्शमञ्जरितपादपपुष्पपरिमलमिलन्मधुकरझङ्कारहारिणि रममाणशबरमिथुनसंमर्दमृदितामन्दमृदुशाद्वले जलस्थलीप्रदेशे श्रान्तसैनिकानुकम्पया प्रयाणविच्छेदमकरोत् ॥

एवमिति ॥ समुत्तीर्य भगवतीं मेकलकन्याम्। उत्फुल्लेत्यादौ लकारानुप्रासलोभेन केचित् 'अङ्कोल्ल' इति पठन्ति, तच्च प्राकृते। संस्कृते त्वङ्कोठ इति। तथा उल्लङ्घ्य दक्षिणभागस्थितं मतङ्गजानां गजानामभिमतं नर्मदातीरं पुण्यारण्यम्, अग्रतो विविधविन्ध्याटवीमवगाहमान इति संबन्धः। कथंभूतां विन्ध्याटवीम्। सिंहराशिर्मृगेन्द्रवृन्दं ज्योतिषोक्तः पञ्चमो राशिश्च। तेन राजिताम्। तथा पतङ्गः शरभः सूर्यश्च। वृश्चिकोऽष्टमराशिश्च। पुनः किंभूताम्। आविर्भूता सह आर्द्रेण श्रृङ्गवेरेण, रोहिणी ओषधिविशेषो, मूलो मूलकश्च यस्याम्। पक्षे आर्द्रा रोहिणी मूलानि तारा। शार्दूलविक्रीडितेन सिंहविलसितेन मनोहरा। तथा हारिणीभिश्चारुभिर्हरिणीभिर्मन्दमाक्रान्ताम्। सर्वत्र वसन्तैस्तिलकैश्च तरुविशेषैर्भूषिताम्। तथा अतिविचित्रा चम्पकानां माला श्रेणी यस्याम्। पक्षे शार्दूलविक्रीडित हरिणी मन्दाक्रान्ता वसन्ततिलका चम्पकमाला च छन्दांसि। तथा बहुभिः कोटराकीर्णैर्वृक्षैर्युताम्। कोटराणां वनमिति कृत्वा 'वनगिर्योः संज्ञायाम्—' इति सूत्रेण पूर्वपदस्य दीर्घः। 'वनपुरगा—' इति सूत्रेण णत्वम्। कुशो दर्भः। लवो लेशः। सीता॥ बहुकोटेन प्राज्यकौटिल्येन रावणेन रभसा प्रार्थिताम्। तथा उत्पन्नौ कुशलवौ रवसुतौ यस्याः। तथा सततद्विविगुणैर्विरजृम्भि पञ्चाननैः सिंहैर्विशेषेण भीषणाम्। तथा चारुतुल्यमर्यादः मनोहरमरोज क नल यस्याम्। अत एवानवसरेऽपि आडम्बरितो विस्तृतो मेघनादस्तण्डुलीयको यस्याम्। लङ्का तु द्वौ गुणौ येषां पञ्चानां ते द्विगुणा दशेत्यर्थः। तत्संख्यान्याननानि यस्य स दशमुखो, विभीषणश्च तद्भाना सचरन्त्यस्याम्। पुष्पकं विमानम्। मेघनादो रावणात्मजः। गीतविद्या मित्यतिः। तता विस्तीर्णा अवनद्धाः सुश्लिष्टा घनसुषिरा बहुविवरा वंशा वेणवस्तेषां स्वनेन रम्याम्। तालास्तरुविशेषाः। निषादा शबराः। मध्ये मत्तो मध्यमः।

मान खेटकम्। पक्षे ततेन तन्त्रीगतेन अवनद्धेन पौष्करेण च घनेन कांस्यकृतेन सुषिरमञ्जुवंशस्वनेन च मनोज्ञाम्। यद्यपि 'ततं तन्त्रीगतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्। घनं कांस्यकृतं प्रोक्तं सुषिरं वांशमेव च' इति भरतः। तथाप्यत्रानेकविषयत्वाद्वाद्यस्यनेनाशब्दत्वमसद्व्याख्यानमुचितमेव। अनेकनाट्यभेदाश्रयाद्गुणादयो यद्यपि। तथा निषादेन स्वरेण मध्यमग्रामक्रमेण युक्ताम्। चित्रविद्यामिवेति। कण्टके सूत्रे पत्रे वर्णे, एताभिश्चतुर्भिः शलाकाभिर्वा स्थानकैश्चालेख्यैर्विरचिताम्। तथा ऋज्वागतोऽनृजुरिव अगता स्वार्धं प्रशस्तमानां सुन्दरां यस्याम्। चित्रविद्यायाम् कलिकाद्यन्त-साचि-त्रिभङ्गि-सम्भङ्गि-वाम पञ्चावस्था। पूर्वैर्निर्दिष्टा ऋजु-मध्य-स्वभिन्न अर्धोन्नत-मध्योन्नतपरावृत्तानि पञ्च पत्राणि निगद्यन्ते। तदत्र नानाविधा ज्ञातव्याः। तथा स्थानकानि पार्श्वागत-ऋजु स्वागत-ऋज्वर्ध-अर्धर्जु-साचीकृत-त्रिभङ्गि-मध्यानि। तैर्विरचिताम्। स्थानकम् इत्येव स्वागत गतार्थमपि स्यादत्र गुणदुष्टम्। यथा हि चित्र स्वागतेन विरचित। तदपि सर्वाणि तानमानि। मयूरासनादीनि करणानि तानमानि। तत्र स्वागत तानमानि यस्याम्। यद्वा स्वागतेन तान स्वतीति केचित्। स्वागतेन पुष्पाधरवाहिनीमिन्दुवर्णं। कड़िगुणेन। अस्तु रक्तिरेति। महती अमनिर्यथा हे महायमिका पृथावेदयाम तमस्य परस्परं तां कृत्वा पुनर्मर्कटैरद्भुताम्। तथा स्तुतिप्रसवाम्। पक्षे महाव्रतिका कापालिका।

तदन्यपातिभिरवद्ध्वमूर्तैः कलमुण्डैर्वा देवदर्शनविशिष्टैर्नरैराचिताम्। बहुधा भिषमवाहाम्। यतो उक्तं पत्रमदा महाह। अप्सनाय इति यावत्। कृतयुगे एकमेव शिवस्याननमभूत्, कलौ तु बहुमन्त्रायमिति भावः। श्लेषविरोधेषु वयमेव यदि 'मन्दानुनामकन्दले सविकचैरापोन्नता विद्युती, चनद्रेणानमदक्षि पातसुभगेनोद्धारयन्ती स्मरम्। काञ्चीदाम नितम्बमक्षि दधती व्यालम्बिना वाससा, मूर्ति कामरिपो मिताद्युतया पायादुमायां जगत्'। अस्यार्थः—'कामरिपो शिवस्य मूर्ति पायात्। कीदृशी। विगतकेशैर्भूजगाप्रान्तरक्तशिरोद्धैरापोन्नता मन्दा विद्युती। तथा विषमदृष्टिपातसुभगेन चक्षुषा स्मरं दहन्ती। तथा नितम्बमक्षि कण्ठीदानप्राय व्याल सर्पं दधती। तथा वाससा वस्त्रेण विना व्यतिरिक्ता। तर्हि सिताद्युक चन्द्र धरतीति। एतन्नोमम्। कामिन्याम्य शिरोऽर्धम्। उमायाश्चैव व्यालम्बिना लम्बमानेन। शेषं सुगमम्'। मदुद्रदपात्नेदरदश्यं कृत्ये लग्नात्। यदिशु सदुद मुद्रान्वित यदुपकण्ठकमलसमीपतत्र लग्नात्। मुद्रा मृदगारिपमन्थिप। तन्दर श्रावद्दविद्यो दानवविशेषश्च। तस्करेण हि विनिर्मिता माना। अत्र एव तस्करी'द्युच्यत। मरन्मुक्तिमिति। न मचरो गतिर्यस्याम्। केसरिणा सिंहाना प्रसवै यैः। कीदृशैः। करिणीरयन्ति ते। पक्षे करीरैस्तरुविशेषैः। तथा केसरिणा किञ्जल्को येषां प्रसवा पुष्पाणि यत्र तथाविधे। अनिर्वेति। चन्दनस्तरुविशेषश्च। कृतो गवा रोचनाविशेषोऽभिलाषातिशायाया यैः। पक्षे गोरोचना गन्धद्रव्यविशेषः। सा चार्नीव महस्या तस्या विशेषणितत्कम्। अक्रनामदूत्ता दूर्वा बहुलपमीरणम्। पक्षेऽक्षतरतण्डुलादि। दूर्वेन समानम्। तथा एकस्मिन्स्थाने समूहीकृतनानान मानप्राकृतजनानवलोकयन्। काहलान्। मेषाणां वृषाणां मिथुनानि युञ्जन्ति धारयन्ति। तथा सह धनुषा कोदण्डेन सधनुषः। तथा सकुम्भा मङ्गलार्थं मस्तक-

न्यस्तकलशा कुमार्यो येषु। राशिसमूहो ज्यौतिषोक्तो मेषादिश्च मेषवृषमिथुनकुम्भकन्याराशिविशेषसंज्ञा। मन्त्रिसूनुना श्रुतशीलेन सह 'इय च गगनवीथ्यादि' 'इमे च केचिरसशिखण्डिन' इत्यादि च विहितविदग्धालाप प्रयाणविच्छेदमकरोत्। यदुक्त तद्व्याख्यायते। तद्यथा। चित्राश्चित्रवर्णा शिखण्डिनो मयूरा। पक्षे चित्रशिखण्डिन सप्तर्षय। बहुतरमिति क्रियाविशेषणम्। गोपैर्वल्लवै शोभिता। सरित्तु बहुभिस्तरङ्गैरुपशोभिता। गोष्ठ गोकुलम्। नक्षत्रमध्य गता। न विगतशाखा च। एतेन तरूणामुच्चता साभोगता चोक्ता। विशाखा हि नक्षत्रमध्य न गतेति विरोधसूचकोऽपिशब्द। पुष्पवती कुसुमिता रजस्वला च। मदूषितस्पर्शा मृदुत्वात्। रजस्वला त्वस्पृश्येति विरोध। सन्निहितभ्रमो मधुरक्षौद्रमद। नवा अविच्छाया। हरि सिंह। या च हरविहीना प्रिया वल्लभा सा कथमासन्नमधुसद्भक्तद्येति विरोध। मानदा गजा श्वपचाश्च। द्विजा पक्षिणो विप्राश्च। इमे चेति। महद् द्रुपद धृतरथान यषु तथाक्ता। तथा सह शिखण्डिभि मयूरै अथ च महाद्रुपदा पत्रविशया। द्रुपदतनयश्च शिखण्डी। चित्रशिखण्डिमण्डितेत्यनेन पूर्वमन्यो मयूरसद्भाव उक्त। इदानीं वि ध्यस्कन्धे ध्विति न पौनरुक्त्यम्। खिद्रिना पृथग्भूता कीचका सच्छिद्रा वशाश्च निश्छिद्रा येषु। वृका अरण्यश्वान उदरे मध्ये येषु। वृकोदरो भीमोऽपि। स विशेषेण छिन्नकीचकाख्यराजान्वय। पाण्डु सत नकुलस्तरुविशेषो येषु। तथा पुण्डरीकै सिताम्भोजैर्व्याघ्रैश्च विभीतकै सह। पाण्डो सुताना एव सतानकाः सुता पाण्डवास्तेऽपि तु पुण्डरीकाक्षेण विष्णुना सह महान्तो वराहा येषु। तथा उत्कर्षेण हता हिरण्याक्षेण दत्ता भूर्ये। महावराहो विष्णु। स चोरिवत्त पुण्डरीक। अमन्दो रागो यस्य स तस्य इरावा। तथा उत्कृष्टा मनोज्ञा मरभयश्च श्यका श्रीद्रुमाश्च पिप्पलास्तथा मालिस्तत्र इरय कपयस्तैराकृष्टानि च नगनागानि येषु। इरयम दरागत्वे हेतु। पक्षे म दरात्योऽगोऽद्रि। नदो कृष्टोपदृता सुरभिश्रीखण्डद्रुम पारिजातश्च ये। देवेन हि सुरभिप्रभृती यक्षोभोधेरद्धृतानि। सुरभिधनु। इह तु प्रस्तावात्कामधेनुः। वह्निश्च प्रकाश — र रश्मिरवस्थक स्वर्जातीफलवल्लयो। सयो पक्षे गौरभक्ष्याम् इति। तथा वलेर्दंश्यस्य हरेर्विष्णोश्च करैरारूढ भ्रामित च तयो वामकिलष्ण नेत्र मे यानम कृष्णाञ्जनयंत्र। कैलासदृशा इवाधरन्त। स्थाणु स्थिरपदं च शिवश्च। दुर्गा विन्ध्यवासिनी देवी गौरी च। दुर्गं आश्रयो यथामिति वा। तथा आश्चर्यमाना राजानो वदनघोषकारा घृहिनानि येषु। कैलासे च। गजवदनो हरम्ब। गुहा पाषाणसधि। गुह कार्तिकेय॥

इस तरह भगवान विष्णु को प्रणाम किया। विजयी गजेन्द्र पर आरूढ हुआ। अनेक हाथियो और घोड़ो पर आरूढ परिजनो को आगे दौड़ा दिया। पुरोहितो के सम्मुख महानदी याग सम्पन्न किया। इसके बाद सहस्रो युगों के परिवर्तनविषयक वृत्तान्तो को साक्षी, निरन्तर तपस्या मे लगे हुए ब्रह्मर्षियो द्वारा पूजित शिवलिङ्गो से घिरी हुई अनेक देवरमणियो द्वारा सेवित तटीय लतामण्डपो वाली, अवगाहन करते हुए बनैले हाथियो की मदगन्ध से सुगन्धित

तरङ्गों वाली, अभिनव गंगा, समुद्र की दूसरी राजपत्नी, मार्कण्डेय ऋषि की तपस्या की दूसरी साक्षी, मेकल नामक पर्वत की पुत्री नर्मदा नदी को पार किया। इसके बाद विकसित एवं पल्लवित अङ्कोल, सल्लकी, सोने जैसे साल, सर्ज, अर्जुन, नीम, कदम्ब, जामुनसमूह, कुन्दर, खैर, करञ्ज, अञ्जन, अशोक तथा संतानजनक आदि वृक्षों से व्याप्त, हाथियों का आकाङ्क्षित, मृगों का प्रिय स्थान, तरङ्ग-स्पृष्ट वायु के कारण अतिशय शीतल, मञ्जरीयुक्त लता-जाल के कारण स्वर्ग-सदृश, नर्मदा-तट के दक्षिणभागीय पवित्र अरण्य को पार किया और विन्ध्याटवी का भ्रमण किया।

आकाश-वीथियाँ ( गगन-मार्ग ) जैसे सिंह राशि ( सिंह नामक राशि ) से सुशोभित रहती हैं, उत्पतङ्ग ( उत्कृष्ट सूर्य ) से युक्त रहती हैं, वृश्चिक-संज्ञक राशि तथा आर्द्रा, रोहिणी और मूल नक्षत्रों से युक्त होती हैं वैसे वह विन्ध्याटवी भी सिंहराशि ( सिंहसमूह ) से सुशोभित थी। उत्पतङ्ग ( उत्कृष्ट पक्षियों ) से युक्त थी। डंक ऊपर किये हुए वृश्चिकों ( बिच्छुओं ), आर्द्र ( शृङ्गवेर ), रोहिणी और मूल नामक पौधों से मण्डित थी। छन्दवर्ग जैसे शार्दूलविक्रीडित, हरिणी, मन्दाक्रान्ता वसन्ततिलका और चम्पकमाला छन्दों के द्वारा मनोहर है वैसे वह विन्ध्याटवी भी शार्दूलविक्रीडित, (सिंहों के विलास) से युक्त थी। हारिहरिणीमन्दाक्रान्ता ( मनोहर हरिणियों द्वारा मन्दतापूर्वक आक्रान्त ) थी। निरन्तर वसन्त एवं तिलक ( वृक्ष ) से प्रफुल्लित थी। अत्यन्त विचित्र चम्पकमाला ( चनों की पङ्क्तियों ) से मण्डित थी। सीता जैसे बहुकोट रावण ( अत्यन्त कुटिल रावण ) द्वारा घिर गयी थीं और कुश तथा लव को उत्पन्न की थी वैसे ही वह विन्ध्याटवी बहु+कोटरावन ( बहुत से खोखलों से पूर्ण जङ्गलों ) से घिरी हुई थी और कुश के लव ( अंश ) को उत्पन्न की हुई थी।

[ विन्ध्याटवी-पक्ष में बहुकोटरावन पद का विच्छेद बहु + कोटर + वन है। 'कोटराणां वनम्' इस विग्रह में समास होने पर "वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलकादीनाम्" ( पा० सूत्र ) से वन के पूर्ववर्ती 'र' के अ को दीर्घ हो गया और 'वन पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः' ( पा० सूत्र ) से उत्तरपदवर्ती वन के न को ण हो गया। ऐसे पेड़ों के जंगल वहाँ थे जिनमें बहुत से खोखले थे। ]

लङ्का जैसे सञ्चरद् + शिशुरक्तवानन + विभीषणा ( घूमते हुए पाँच के दुगुने ( दश ) मुँह वाले रावण और विभीषण से युक्त थी, चारु + पुष्पका ( सुन्दर पुष्पक विमान से सम्पन्न ) थी, अकाण्डाडम्बरित + मेघनादा ( असमय में भी मेघनाद (रावणपुत्र) के गर्जन से व्याप्त रहती) थी वैसे वह (विन्ध्याटवी)

भी सञ्चरद् + वि + गुण + पञ्चानन + विभीषणा (घूमते हुए बन्धन-विहीन पञ्चानन (सिंहों) के कारण विभीषण (भयङ्कर) थी। चारुपुष्पा (सुन्दर फूलों से मण्डित) थी। अकाण्डाडम्बरितमेघनादा (असमय में भी बादलों के गर्जन से व्याप्त) थी।

[*विन्ध्याटवी पक्ष* में विगुण + पञ्चानन + विभीषणा पद में विगुण का अर्थ बन्धन हीन है। गुण शब्द का अर्थ रस्सी है। वि का अर्थ विगत है। अर्थात् रस्सी से रहित वे सिंह हैं। बन्धनहीनता के ही कारण वे विभीषण (बड़े भयङ्कर) हैं।]

गीत विद्या जैसे तत (वीणाध्वनि), अवनद्ध (पौष्करध्वनि), घन (ताल की ध्वनि), सुषिर (वेणु की ध्वनि), अनेक तान (पञ्चतत् पुट आदि) और निषाद, मध्यम ग्राम आदि स्वर से युक्त होती है वैसे वह (विन्ध्याटवी) भी तत (फैले हुए), अवनद्ध (काफी घने, एक दूसरे में सटे हुए), घन सुषिर (बहुत छिद्रों से युक्त), वंशस्वन (वेणुओं की ध्वनि) के कारण मनोहर, अनेक ताल वृक्षों से युक्त, निषादों (किरातों) और मध्यम ग्राम (मध्यवर्ती ग्रामों) से मण्डित थी।

[गीत विद्या और विन्ध्याटवी दोनों ही पक्षों में स्वन शब्द का अर्थ ध्वनि है। वंश के पूर्ववर्ती तत, अवनद्ध आदि सभी विशेषण विभिन्न वाद्यों की ध्वनि के ही वाचक हैं। फिर भी यहाँ वंश स्वन का उपादान स्पष्टार्थक है। आचार्य भरत ने कहा है—"तत तन्त्रीगत ज्ञेयम्, अवनद्ध तु पौष्करम्। घनं कास्यकृत प्रोक्त सुषिर वाद्यमेव च॥" वीणा की आवाज को तत कहते हैं। मृदङ्ग की आवाज अवनद्ध, ताल की आवाज घन और वंशी की आवाज को सुषिर कहते हैं।]

चित्र विद्या की तरह वह विन्ध्याटवी अनेक कण्टक (कांटे), पत्र (पत्ते), लता, स्थानक (आलवाल, थाले) के कारण ऊँची, और ऋजु तापस (सीधे सादे तपस्वियों) के आगमन से युक्त थी।

[चित्र विद्या में कलिका, कण्टक, शाखा और त्रिभङ्गी नामक चार पत्रावयव प्रसिद्ध हैं। इन्हीं के मिश्रण से शिशु, मकर, स्वस्तिक, वर्धमान और सर्वतोभद्र नामक पाँच पत्र निष्पन्न होते हैं। यहाँ शाखा शब्द लता का पर्याय है। पार्श्वागत, ऋजु ऋज्वागत, द्व्यर्धांश, अर्धऋजु, गमनालीढ, त्वरित और त्रिभङ्गी नामक स्थानक होते हैं। स्थान शब्द के कह देने से ही ऋज्वागत भी चरितार्थ हो जाता किन्तु चित्र में ऋज्वागत का अधिकांश प्रयोग होता है, इसलिये उसका पृथक् प्रयोग हुआ है। मयूरासन, उष्ट्रासन आदि को

तापस संज्ञा दी गयी है। अच्छोद नामक स्थानक की सुन्दरता मे चित्र दिया ताप का हरण करती है।]

कलियुग की शिवशासन स्थिति की तरह महाद्रतिक ( जल से प्रेम रखने वाले बड़े-बड़े पेड़ों ) के बीच कालमुख ( काले मुँह वाले ) वानरों ( बन्दरो ) से सकीर्ण हो गयी थी और वहाँ विविध झरने बह रहे थे।

[ विन्ध्याटवी पक्ष मे वृक्षों का महाद्रतिक कहा गया है। अप् का अर्थ है जल। अप् ( जल ) से जिनकी रति ( प्रेम ) हो उन्हें अब्रतिक (अप् – रतिक) कहा गया है। महत् शब्द के साथ अब्रतिक के जुड़ने पर महाद्रतिक बन गया। अर्थात् जल से स्नेह रखने वाले बड़े-बड़े पेड़ों के बीच-बीच मे काले मुंह वाले बन्दर भरे थे। जगह-जगह पर झरने गिर रहे थे।

कलियुग + शिवशासन + स्थिति—कलियुग मे शिवोपासना की पद्धति से विन्ध्याटवी की समानता बतायी गयी है। कलि की शिवोपासना-पद्धति महाव्रतिकापाति ( कापालिक लोगों के समीप रहने वाले ) लोग तथा काल-मुख-नर ( शिव की उपासना करने वाले मनुष्यों ) से व्याप्त रहती है। महाव्रतिक कापालिक को कहते हैं। काल + मुख शिवोपासक को कहते हैं। वानर शब्द मे "वा" का अथवा अर्थ है और नर का मनुष्य। शिवोपासना की पद्धति मे कापालिक समीपवर्ती लोग तथा शिवोपासक अधिक पाये जाते हैं। यह पद्धति भिन्न स्रोतस् ( विविध धाराओं ( सम्प्रदायों ) वाली हो गयी है। सत्ययुग मे इस उपासना की एक ही धारा थी अब इसकी अनेक धारायें हो गयी हैं।]

कापालिक की खट्वाङ्गयष्टि जैसे समुद्रोपकण्ठलग्ना होती है वैसे वह ( विन्ध्याटवी ) भी समुद्रोपकण्ठलग्ना ( समुद्र के तट तक फैली हुई ) थी।

[ कापालिक खट्वाङ्गयष्टि धारण करते है। खट्वाङ्ग भगवान् शिव का एक अस्त्र है। शिवोपासकों का एक वर्ग कापालिक है। ये लोग मृत मनुष्य की खोपड़ी हाथ मे लिये रहते हैं। भोजन इसी मे करते हैं और पानी भी इसी से पीते हैं। शंकर जी के अनुकरण मे उनके अस्त्र खट्वाङ्ग को भी धारण करते हैं। खट्वाङ्ग ( टेढ़ी-मेढ़ी छड़ी ) की मुठिया के पास मुद्रा लगी रहती है। अत उस यष्टि के उपकण्ठ को समुद्र ( मुद्रा सहित ) कहा गया है। उस छड़ी की मुठिया के पास अलंकार के रूप में हड्डी लगायी गयी रहती है उसे मुद्रा कहते हैं। समुद्रोपकण्ठ रूप साधारण धर्म विन्ध्याटवी और खट्वाङ्गयष्टि दोनों मे है।]

माया की तरह शम्बराधिष्ठित थी।

[ शम्बर नाम का एक दैत्य था। माया का निर्माण उसी ने किया था। इसी लिये माया को शाम्बरी कहते हैं। माया जैसे शम्बर नामक दैत्य से अधिष्ठित है वैसे ही वह विन्ध्याटवी शम्बर (हिंसक जन्तुओं) से अधिष्ठित थी। ]

मरुभूमि जैसे करीर नामक वृक्ष के केसरिप्रसव ( पराग पूर्ण फूलों ) के कारण असंचरणीय ( अगम्य ) होती है वैसे वह विन्ध्याटवी भी करीरकेसरिप्रसव ( हाथियों को चीत्कार करा देने वाले सिंहों के बच्चों ) के कारण असंचरणीय ( अगमनीय ) है।

[ मरुभूमि में करीर ( करील ) के पेड़ अधिक होते हैं। इन कटीले पौधों के कारण वह भूमि अगम्य होती है। केसरिप्रसव करीर का विशेषण है। प्रसव का अर्थ यहाँ पुष्प है। केसर से युक्त पदार्थ को केसरी कहा जा सकता है अतः केसरिप्रसव का अर्थ हुआ पराग पूर्ण पुष्प। विन्ध्याटवी पक्ष में करीर शब्द का अर्थ है हाथी को चीत्कार करा देने वाला। करी ( हाथी ) को जो ईरण ( चीत्कार ) करावे वह करीर है। केसरिप्रसव तो सिंह-शिशु अर्थ में प्रयुक्त हुआ ही है। अर्थात् वह विन्ध्याटवी हाथियों की चिग्घाड़ करा देने वाले सिंहों के बच्चों के कारण अगम्य थी। सिंह शिशुओं के डर से चलना असम्भव था। ]

मङ्गलकार्यस्थल की तरह अत्यन्त सुन्दर चन्दन, गोरोचन-अक्षत दूर्वा ( अखण्डित दूर्वा ) वाली दूर्वा-स्थली से अलङ्कृत थी। विभिन्न व्याधों से व्याप्त थी।

मङ्गल कार्य के अवसर पर भी चन्दन, गोरोचन, अक्षत ( तण्डुल ), दूर्वा आदि पदार्थों का संग्रह किया जाता है। पूजन के स्थल पर इनकी थोड़ी-थोड़ी मात्रा संगृहीत की जाती है। विन्ध्याटवी में तो इन सभी पदार्थों के विशाल वन हैं। इससे उसकी पूजनीय स्थानता और बढ़ी हुई है। ]

( विन्ध्याटवी में ही घूमता हुआ वह ) इकट्ठे हुए बहुत से पर्वतीय गाँवों व ग्रामवासियों को देखा। कुछ लोग मेष ( भेड़ ) और वृष ( बैल ) के मिथुन ( जोड़े ) को लिये हुए थे। कुछ लोग सधनुष ( धनुष के साथ ) थे। कन्यायें सकुम्भ ( घड़ा ली हुई ) थीं।

[ मेष, वृष, मिथुन, धन, कुम्भ, कन्या, ये विभिन्न राशियों के नाम हैं। श्लेष के माध्यम से इनका भी यहाँ स्मरण दिलाया गया है। अगले वाक्यांश में विन्ध्याटवी के विभिन्न पदार्थों का वर्णन है। ]

'यह नदी तट की भूमि आकाश मार्ग की तरह चित्र शिखण्डियों ( चित्र वर्ण के मयूरों ) से अलङ्कृत है।'

[ आकाश-मार्ग चित्रशिखण्डियों ( सप्तर्षि तारों ) से अलङ्कृत है । ]

नदी जैसे बहुतरङ्गौघशोभित ( बहुत जललहरियों से सुशोभित होती है वैसे यह गोष्ठवनानि ( पशु बहुत गाँव ) भी बहुतरम् + गोप + शोभित ( अधिकतर ग्वालों से सुशोभित ) है ।

यह इस पङ्क्ति नक्षत्रों के मध्य तक पहुँची हुई है और विशाखा ( शाखाओं में विहीन ) नहीं है ।

[ विभिन्न नक्षत्रों की माला में विशाखा भी एक नक्षत्र है । नक्षत्र मध्यगत होते हुए भी विशाखा ( नक्षत्र ) से हीन बताना विरोध का मूल है । क्योंकि जो नक्षत्र मध्यगत होगा वह विशाखा से भी संयुक्त रहेगा ही । विशाखा शब्द का शाखा-विहीन अर्थ कर विरोध का परिहार किया जाता है ]

यह लता पुष्पवती ( फूलों से लदी ) है और इसका स्पर्श दोषजनक नहीं है ।

[ पुष्पवती ( रजस्वला ) का स्पर्श दोषजनक माना जाता है । लता पुष्पवती है फिर भी उसका स्पर्श दोषमूलक नहीं है । पुष्पवती होती हुई भी दूषितस्पर्शा नहीं है । यही विरोध है । पुष्पवती शब्द का पुष्पपूर्ण अर्थ कर लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है । ]

यह मधुदा ( मधु देने वाले छत्तों से युक्त ) नवीन बाँसों की पङ्क्ति हरि-प्रिया ( सिंहों को प्रिय ) है ।

[ जो सन्निहित + मधुदानवा ( मधुदानव के पास रहने वाली नायिका ) होगी वह हरिप्रिया ( भगवान् विष्णु की प्रिया ) कैसे होगी । विरोध । मधुदा और नवा को वंशपालि का विशेषण बना देने पर विरोध का परिहार हो जाता है । मधु देने वाली नवीन बाँसों की पङ्क्ति । मधु के छत्तों से युक्त वंश-पालि को मधुदा कहा गया है । ]

यह सल्लकी वृक्ष की पङ्क्ति मातङ्गों ( हाथियों ) से स्पृष्ट है और द्विजों ( पक्षियों ) से छूटी नहीं है ।

[ मातङ्ग ( चाण्डाल ) से स्पृष्ट है फिर भी द्विज ( ब्राह्मण ) से छूटी नहीं है । यह विरोध है । ]

[ इसके बाद विन्ध्याचल की तटीय चोटियों का वर्णन है । ]

ये शिखर महाद्रुपद ( बड़े-बड़े पेड़ों की भूमि ) हैं और शिखण्डी ( मयूरों से युक्त ) हैं । अतः द्रुपदपुत्र शिखण्डी से युक्त महाद्रुपद ( क्षत्रिय वंश ) की तरह हैं । वृकोदर ( भीम ) जैसे विच्छिन्न कीचक वंश ( कीचक राजा के वंश को समाप्त कर दिये ) थे वैसे ये कोई शिखर भी वृकोदर ( भेड़ियों को अपने उदर ( गुफाओं ) में लिये हुए ) हैं और विच्छिन्न कीचक

वश ( सच्छिद्र तथा निश्छिद्र दोनों तरह के बास यहाँ से काटे गये ) है। पाण्डु सन्तानक ( पाण्डु की सन्तान युधिष्ठिर आदि ) जैसे पुण्डरीकाक्ष ( विष्णु ) के साथ थे वैसे ही कुछ ( शिखर ) पाण्डु सन्तानक ( पीन रंग के सन्तानक नाम के वृक्ष से युक्त ) हैं और पुण्डरीक ( कमल ) तथा अक्ष ( रुद्राक्ष आदि के पौधों ) से युक्त हैं। महावराह ( भगवान् विष्णु ) जैसे उद्धृत-भू ( पृथ्वी का उद्धार किये ) थे वैसे ये भी महावराह ( बड़े बड़े सूकरों से युक्त ) हैं और उद् + हृत + भू ( पृथ्वी के पर्याप्त भाग को अपनी विशालता से छेंक हुए ) हैं। कुछ शिखरों पर उत्तम कोटि के सुरभि ( चम्पा ) और श्रीद्रुम ( बिल्व ) की तरुपंक्तियों में ( स्थित ) हरिकर ( बन्दरों के हाथों ) ने पन्नग नग ( सर्प नगों ) का आकृष्ट कर लिया है मणिभित्तियाँ चमक रही हैं। अत अग रांग ( पर्याप्त आकर्षण वाले ) है।

[ इन विशेषणों के कारण वे शिखर समुद्र की तरह हैं। समुद्र भी उत्कृष्ट सुरभि श्री द्रुमादि हरि कराकृष्ट पन्नग नग है और स्फुर-मणिभित्ति तथा मन्दराग है। उत्कृष्ट ( उत्तम ) सुरभि ( कामधेनु ) श्रीद्रुम ( पारिजात ) आदि पदार्थों के समूह को प्राप्त करने के लिये हरिकर ( भगवान् विष्णु के हाथों ) द्वारा पन्नग ( वासुकिनाग रूप ) नेत्र ( मन्थन-रस्सी ) आकृष्ट ( खींची गयी ) थी। मणि की भित्तियाँ वहाँ स्फुरित हो रही थीं। मन्दर नाम का अग ( पर्वत ) वहाँ रक्खा गया था। मथन की रस्सी को नेत्र कहते हैं। भगवान् विष्णु ने अपने हाथों से मन्दराचल को मथन दण्ड बनाकर और वासुकि नाग को मन्थन रस्सी बना कर समुद्र का मन्थन किया था। विन्ध्य स्कन्ध पक्ष में अमन्दराग अन्वय करता है और समुद्र पक्ष में मन्दर + अग।

विन्ध्य के शिखर पर्याप्त आकर्षण वाले हैं। बन्दरों के हाथों ने सर्पों की आलों को आकृष्ट कर लिया है। चम्पे का फूल अधिक सुगंधित होता है और बिल्वफल के पेड़ में अधिक खोखले होते हैं। गन्ध और खोखले दोनों ही सर्पों को अधिक प्रिय हैं। बन्दरों के हाथों को बड़े गौर से देखते हैं कि वे किधर जाते हैं। बन्दर भी साँपों के विरोधी होते हैं। आकृष्ट शब्द के अर्थ खींच लाना और अपनी ओर आकृष्ट कर लेना दोनों हो सकते हैं। खींच लेना अर्थ ही संगत है क्योंकि बन्दर साँप के मुँह को हाथ में पकड़ लेते हैं और उसे पेड़ में या जमीन में रगड़ने लगते हैं। रगड़ते रगड़ते उसके मुँह आँख आदि को समाप्त कर डालते हैं। अत खींच लेना या समाप्त करना अर्थ भी यहाँ उचित ही है। ]

कोई ( शिखर ) सस्थाणु ( ठूँठा से युक्त ) है और दुर्गाश्रय ( दुर्ग ( अगम्य ) आश्रय ( स्थान ) वाले ) हैं।

[ सस्थाणु ( शिवजी की मूर्तियों से युक्त ) हैं और दुर्गा के भी आश्रय ( मन्दिर ) वहाँ बने हैं उन शिखरों पर कुछ सस्थाणु ( शिवोपासक ) हैं और कुछ दुर्गा ( विन्ध्यवासिनी ) को ही आश्रय ( शरण ) मानने वाले भक्त जन हैं। ]

कुछ सगुह ( गुफाओं से युक्त ) हैं। श्रूयमाणगजवदनचीत्कार ( कुछ पर हाथियों के चीत्कार सुने जा रहे ) हैं। अतः कैलाश के शृङ्गों की तरह हैं।

[ कैलाश की चोटी भी सगुह ( कार्तिकेय से युक्त ) है और वहाँ गजवदन ( गणेश ) जी का चीत्कार सुनायी पड़ता है। ]

इसलिये ये विन्ध्याचल की तटीय चोटियाँ सर्वथा सेवनीय हैं।" इस तरह मन्त्रिसुत सुवशील के साथ वैदुष्यपूर्ण बातें कर कुछ ही समय में मनोहर मार्ग को पार कर थके हुए सैनिकों पर कृपा कर एक अत्यन्त सुन्दर स्थान पर यात्रा स्थगित किया जो पर्याप्त रूप से गिरते हुए झरनों के स्पर्श से उगे हुए वृक्ष पुष्पों के पराग के लिए घूमते हुए भ्रमरों के कारण मनोहर हो गया था।

नैस्तैश्चिरन्तनवासरव्यापारैरहर्शेषसहितामतिवाह्य तामपि निशामनन्तरमुन्मिषत्पक्षमपक्षिरक्षावधूननिपवनैरिवापनीयमानेषु गगनतलरचितप्रकरपाण्डुपुष्पपुञ्जकेषु नक्षत्रेषु, त्वद्विरहोत्पन्नतमःकलङ्ककलुषितानि मनाक्कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरैः करैः परामृश्य प्रसादयति दिननाथे दिङ्मुखानि, पुनः पूर्वक्रमेण प्रस्थानमकरोत्॥

उन उन पुरातन दैनिक कार्यों के साथ अवशिष्ट दिन और रात को भी बिताकर प्रातःकाल जब अंगड़ाई लेते हुए पक्षी अपने फड़फड़ाते हुए पंखों की हवा से आकाश मार्ग में फैले हुए श्वेत पुष्पराशि सदृश नक्षत्रों को मानों बुहार रहे थे, अपने विरह से उत्पन्न अन्धकार रूप कलङ्क से कलुषित दिशाओं के मुख को भगवान् सूर्य कुङ्कुमलेप से लिप्त अपने करों से प्रसन्न कर रहे थे, पुनः पहले की तरह यात्रा शुरू किया।

[ प्रातः काल में स्वाभाविक ढंग से तारे तिरोहित हो जाते हैं। कवि कल्पना करता है कि पक्षी अपने पंख की हवा से उन तारों को बटोर रहे थे। भगवान् सूर्य के तिरोहित हो जाने के कारण दिग्वधुएँ विरहवेदना से उदास थीं उनका मुख म्लान हो गया था। अन्धकार को ही म्लानता के रूप में लिया गया है। प्रातःकाल सूर्य अपने हाथों में कुङ्कुम लगाकर दिग्वधुओं के मुख को उज्ज्वल बना रहे थे। किरणों से दिशाओं को उद्भासित कर रहे थे। ]

एवमपसरन्मार्गान्मार्गान्नीवारीणि वारीणि सहंसनिनदान् नदान् सकरेणुरेणुस्थलमाच्छादितदिशि खराणि शिखराणि लङ्घयन् सुनीरागान् गिरिगहनग्रामांस्तपस्विनश्च मानयन्नेकदा नातिदूर इवोत्कण्ठकदम्बकचुम्ब्यमानाम्बुजराजिरजोरञ्जिताम्भसि सरित्तीरे तरुतलोपविष्टमेकमध्वश्रान्तमध्वनीनमिदं चारुश्लोकयुगलमतिमधुरगीतस्वरतरङ्गिताक्षरं गायन्तमद्राक्षीत् ॥

एवमिति ॥ मार्गादीनां लङ्घनादिकं कुर्वन् । अध्वानमश्रान्तामी इत्यध्वनीनस्तं चारुश्लोकयुग गायन्तमद्राक्षीत् । अपसरत्सैन्यभयान्निवर्तमान मार्गं मृगसमूहो येष्वपरनास्तपोस्थान् । नीवारोऽस्त्येष्विति । सह हंसनिनदै । नदो जलाधार । सह करेणुभिर्गजै । आच्छादिता दिशो यैस्तान्याच्छादितदिशि । खराणि तीक्ष्णानि । सुष्ठुनीर जलमगाश्च तरवो येष्विति । पक्षे सुष्ठु निर्गतरागान् । मानयन्निति मानितवभोगार्थं पूजार्थश्च । उपभोगे यथा 'मानयिष्यन्ति सिद्धा , सोत्कण्ठानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि' ॥

भागते हुए मार्ग ( मृग समूह ) वाले रास्ते को, नीवारि ( नीवार धान से सम्पन्न ) वारि ( जल ) को, हंस ध्वनि युक्त नदो को, करेणु ( हथिनियों ) से युक्त रेणु स्थलो ( धूलिबहुल स्थानो ) को और दिशाओ को घेरे हुए तीक्ष्ण पर्वतो को पार किया । सुनीर ( सुन्दर जल ) और अग ( वृक्ष ) वाले पर्वतीय घने गाँवो और सुनीराग ( पूर्ण वैराग्य-सम्पन्न ) तपस्वियो को सम्मानित किया । समीप मे ही उत्कण्ठित हंसो का समूह कमलो को चूम रहा था । उनके पराग से नदी तट का जल रञ्जित हो गया था । वहीं पर पेड की छाया के नीचे मार्ग के थके हुए एक राही को देखा जो माधुर्य की तरङ्गो मे तैरते हुए इन दो सुन्दर श्लोको को गाया ।

तव सुहृदुपभुक्तश्रीफलः कामकेलिं
जनयति वनितानां कुङ्कुमालोहितानाम् ।
श्रयति स च समूहो मेखलाभूषितः सन्
जनयति वनितानां कुङ्कुमालोऽहितानाम् ॥ १२ ॥

तवेति ॥ तव सम्बन्धी सुहृन्मित्रजनो मुक्तलक्ष्मीफल कुङ्कुमेन आ ईषल्लोहितानां वनितानां जनितात्यर्थरागाणां योषितां मन्मथलीलां जनयति । 'वनिता जनितात्यर्थरागयोषिति' इति विश्वप्रकाश । तथा अहितानां समूहो मेखलाभुवि गिरिमध्यभुवि उपित्वा कुमाल कुत्सितस्रक् सन् वैरस्थानगतजनतायाः महापथादिषु पलितायाः बहिरन्त्रवसनादिसम्बन्धाद्वनितायाः शबरस्त्रिया कुं भूमिराश्रयति । स चेति चकारात् सुहृदहितसमूहयोरन्योन्यमयमक्तिपादरिपन विशेषणानां शब्दश्लेषद्वारेण सम्बन्ध । तद्यथा, मेखलया कटिपट्टिकया भूषित सुहृत् अहितसमूहोऽपि अनुभुक्तविदग्धः । अत्र प्रथमतृतीयपादौ विशेषणशब्दश्लेषेणालङ्कृतौ द्वितीयचतुर्थौ तु सम्पूर्णयमकेन ॥ १२ ॥

मित्र पक्ष —तुम्हारा मित्र-मण्डल लक्ष्मी के फल का अनुभव कर रहा है। कुङ्कुमराग-रञ्जित प्रेमपूर्ण कान्ताओं की कामक्रीडा को उत्पन्न कर रहा है। (कभी कभी) मेखला (करधनी) से भूषित होकर वनिता (स्त्री की कु (भूमिका) को धारण करता है। कु (पृथ्वी रूप) माला को धारण करता है।

शत्रु पक्ष:—आपके अहितों (शत्रुओं) का समूह पर्वत की तटीय भूमि पर बसता है। कुमाल (कुत्सित मालाओं को धारण करता) है। अतः सज्जन, यति (संन्यासी) और वनी (वनवासी) के धर्म का धर्म धारण करता है। और श्रीफल (बिल्व फल) का भोजन करता है॥ १२॥

[मित्र पक्ष —उपभुक्त + श्रीफल —मित्र वर्ग लक्ष्मी के फल का अनुभव कर रहा है। कुङ्कुम रंग से रञ्जित पूर्ण प्रसाधित स्त्रियों में भी अपने प्रति राग उत्पन्न कर देता है। अधिक ऐश्वर्य सम्पन्न होने के कारण उच्च वर्ग की रागपूर्ण स्त्रियों को आकृष्ट कर लेता है। रागभरी स्त्री को वनिता कहते हैं। मेखला + भूषित —करधनी से अलङ्कृत है। कुमाल—कु (पृथ्वी) ही उनकी माला है। पृथ्वी के लोगों को वे माला की तरह हृदय से लगाते हैं। कु शब्द पृथ्वी का वाचक है किन्तु यहां पृथ्वीस्थ लोगों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वनीतानां कुरु श्रयति—आपका मित्र मण्डल इतना रसिक है कि करधनी आदि पहन कर स्वयम् स्त्री की भूमिका में उतर जाता है। नृत्य आदि कार्य में भाग लेता है।

शत्रुपक्ष—आपके अहित लोगों का समूह उपभुक्त + श्रीफल (बिल्वफल खाता) है। जङ्गल में रहने के कारण उसे दूसरा कोई भोजन नहीं मिलता। कुमाल (कुत्सित मालायें धारण करता) है। मेखला + भू + उषित—(पर्वत की तराई वाली भूमि में रह रहा) है। सन्+जनयति वनितानां कुरु श्रयति। (सन्+ + जन + यति + वनितानां कुरु + श्रयति)। सन् और जन को मिलाकर सज्जन बनाते हैं जिसका अर्थ होता है शिष्ट व्यक्ति। सज्जन, यति (संन्यासी) और वनी (वनवासी) का द्वन्द्व समास हुआ है। वनी के आगे जो ता प्रत्यय दीखता है उसका सज्जन, और यति शब्द से भी अन्वय होगा, क्यों कि द्वन्द्व के अन्त में आनेवाले अंश का प्रत्येक के साथ अन्वय होता है। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं प्रत्येकमपि सम्बध्यते। अर्थात् आपके शत्रु सज्जनता, यतिता और वनिता (वनवासिता) की भूमिका में है। पर्वत के बीच जमीन पर सोते हैं। किसी से सम्पर्क न होने के कारण रागद्वेष विमुक्त हैं। अतः सज्जनता की भूमिका में हैं। पत्नियों से वियुक्त हैं। जङ्गल में मारे मारे फिरते हैं। अतः ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन हो जाता है। इसलिये संन्यासी का धर्म यतिता भी उनमें है। बाहर रहते हैं घास वल्कल आदि पहनते-ओढ़ते हैं अतः वनिता (वनवासी का धर्म) भी उनमें प्राप्त है॥ १२॥

अपि च—

त्वत्तो भयेन नृप पश्य जनो वनेषु
कान्त्या जितस्मर तिरोहितवानरीणाम्।
शाखामृगश्चपल एष गिरेरुपत्य-
कां त्याजितः स्मरति रोहितवानरीणाम् ॥ १३ ॥

त्वम इति ॥ नृपेति सम्बोधनम्। कान्त्या सौन्दर्येण जितस्मरेति तद्विशेषणम्। पश्येत्याभिमुख्यकरणे। अरीणां जनस्त्वद्भयेन वनेषु तिरोहितवान्। जितस्मरेत्यनेन 'स्मरोऽपि किल त्वया जित इति तिरोहितोऽभूत्' इति प्रतीयते स्मृतिगोचर एव न तु दृश्यते इत्यर्थात्। तथा एष प्रत्यक्षवर्ती शाखामृगो वानरश्चपलो लोलः। अनेनैव वनवासिना रिपुजनेन गिरेरुपत्यकामधोभूमिकां त्याजितो रोहित-वानरीणां मर्कटीनां स्मरति। वानरीणामिति 'अधीगर्थ—' इति सूत्रेण कर्मणि षष्ठी ॥ १३ ॥

जितस्मर, (अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीत लेने वाले महाराज) देखिये, आप के भय से शत्रुओं के आदमी जंगलों मे छिप गये हैं। यह चपल शाखा मृग ( बन्दर ) पहाड की चोटी को छोड कर रोहितवानरी ( लाल मुह वाली बन्दरी ) का स्मरण कर रहा है ॥ १६ ॥

[ द्वितीय और चतुर्थ चरण मे यमक है। द्वितीय चरण के तिरोहित-वान् + अरीणाम् विग्रहवाले पद का कर्ता जन है। अर्थात् अरीणाम्+जनः+तिरो-हितवान्। शत्रुओ के आदमी छिप गये हैं। चतुर्थ चरण के तिरोहितवानरी-णाम् एक समस्त पद है। अर्थात् लाल मुह वाली वानरियो को बन्दर याद कर रहा है। 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इस नियम से यहां कर्म मे षष्ठी हुई है। यहां राजा को जितस्मर कहा गया है। उसने अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीत लिया है। जीता तो प्रतिद्वन्द्वी को ही जाता है। अत काम भी उसका प्रतिद्वन्द्वी ( शत्रु ) हुआ। वह भी हार कर छिप गया है। इसीलिए तो दिखाई नहीं पडता। यह भी कहा जा सकता है कि वह जगत मे ही छिप गया है। इसीलिए अरण्य का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोहर हो गया है। उसकी नीरव भूमि उद्दीपक बन गयी है ॥ १३ ॥

'अहो नु खल्वयमनल्पशास्त्रीयसंस्कारामृतसंपर्कपल्लवितप्रज्ञाङ्कुरः कोऽपि कुशलः काव्यवक्रोक्तिषु पथिकयुवा योग्यः सम्भाषणस्य' इत्यवधारयति राजनि ससंभ्रममुत्थाय स्थित्वा च पुरः स पान्थः सप्रणाममिमं श्लोकमपाठीत् ॥

अहा, यह तो निश्चित ही काव्य वक्रोक्ति मे अत्यन्त कुशल पथिक युवक है। इसका प्रज्ञाङ्कुर ( बुद्धि रूप अङ्कुर ) पर्याप्त शास्त्रीय संस्कार सुधा से सींच

कर पल्लवित किया गया है। अतः इससे बात करनी चाहिए।" राजा यह सोच ही रहा था कि वह पथिक जल्दी से उठा और खड़ा होकर प्रणाम करता हुआ इस श्लोक को पढ़ा—

'वेधा वेदनयाश्लिष्टो गोविन्दश्च गदाधरः।
शंभुः शूली विषादी च देव केनोपमीयसे' ॥ १४ ॥

वेधा इति ॥ वेदनया पीडया आश्लिष्टः सम्बद्धः। गदेन रोगेण अधरो विधुरः। शूलं रुग्विशेषोऽस्य। अत एव विषादान्वितः। तस्माद् देव केनोपमीयसे त्वमिति काक्वोऽर्थः। सत्यतस्तु वेदानां नयेन मार्गेणाश्लिष्टः। गदा कौमोदकी। अथवा गदो भ्राता सोऽग्रजोऽनुजो यस्य। शूलमायुधम्। विषमत्तीति विषादी नीलकण्ठत्वात् ॥ १४ ॥

'देव ब्रह्मा वेदना (व्यथा) से युक्त हैं, गोविन्द गद (रोग) से (अधर) पीड़ित हैं, शम्भु शूल (रोग) और विषाद से भरे हैं। आपको उपमा हम किससे दें ॥ १४ ॥

[संसार के बड़े लोगों के उपमान इन्हीं तीनों देवों में से कोई बनते हैं। इन तीनों में कुछ न कुछ कमी है अतः आपकी तुलना मैं किससे करूँ?

ब्रह्मा 'वेदनया' युक्त हैं। वेदना शब्द के तृतीया का एकवचन है। गद (रोग) से गोविन्द अधर (पीड़ित) है। शम्भु शूली (शूल) रोग सम्पन्न और विषादी (विषाद) सम्पन्न हैं। वास्तव पक्ष—ब्रह्मा वेद + नय + आश्लिष्ट (वैदिकज्ञान से संयुक्त) हैं। यहाँ वेदनय शब्द के साथ आश्लिष्ट शब्द समस्त हुआ है। गोविन्द कौमोदकी नामक गदा को धारण करते हैं। शम्भु शूली (शूल अस्त्र धारण करने वाले) हैं और विषादी (विषभक्षण करने वाले) हैं। इसमें किसी एक से आपकी तुलना कैसे की जाय। आप में सबों की विशेषतायें भरी हुई हैं। ब्रह्मा की तरह आप ज्ञान सम्पन्न हैं। गोविन्द की तरह प्रसिद्ध अस्त्रधारी हैं। शिव की तरह सहिष्णु हैं। भगवान शिव जैसे विष सदृश असह्य पदार्थ को पचाकर विश्व का मङ्गल चाहते हैं वैसे आप भी स्वयं विविध परेशानियों को उठाकर भी संसार का मङ्गल चाहते हैं ॥ १४ ॥]

राजा तु तदाकर्ण्य क्षणमात्रद्धोपरोधविस्मयहर्षरसैः समकालमाप्लावितमनाः प्रथममुत्फुल्लया दृशा, ततो मुग्धस्मिताश्रयेण, तदनु सर्वाङ्गीणभूषणप्रदानेन, तमभ्यर्च्य 'पान्थ, कथय कैयमुत्तुङ्गकल्लोलदोलाधिरूढानुच्चवञ्चूत्क्षिप्तमृणालवलयान्कूजतः कलहंसानस्खलितप्रवर्तितब्रह्मयज्ञोद्गारमुखरमुखांस्तीरतापसानिव शिक्षयितुमुद्वहन्ती सरित्, तत्तटतरुतलमलंकुर्वाणः प्रसन्नसरस्वतीकः कश्च भवान्' इति सप्रणयमपृच्छत् ॥

राजा त्विति ॥ मृणालवलयानामक्षसूत्रम्, उत्कूजनस्य महायज्ञोद्गारः राजहंसानां तापसा उपमानम् । महायज्ञो वेदाध्ययनम् ॥

यह सुन कर एक क्षण तक आग्रह, बन्धन, आश्चर्य और हर्ष रस से एक ही समय राजा का मन तरङ्गित हो उठा। पहले तो प्रफुल्लित नेत्रों से, फिर मधुर मुस्कान से, इसके बाद सम्पूर्ण अंगों के भूषण दान से उसका सम्मान कर नम्रता से पूछा—"पथिक, कहो, इन उच्चतर तरङ्गरूप डालियों पर बैठे हुए अपने उन्नत चञ्चुओं से कोमल कमल-तन्तुओं को ऊपर की ओर फेंक कर झूमते हुए, अक्षसूत्र को धारण किये हुए, ब्रह्मयज्ञ में मन्त्रोच्चारण की ध्वनि में मुखरित मुख वाले तट के तपस्वियों की तरह इन राजहंसों को स्वर्ग तक पहुँचाने के लिए बहती हुई यह कौन सी नदी है? और इस घने वृक्ष की छाया में अत्यन्त मधुर बोलने वाले आप कौन हैं?॥

[ राजहंसों के उपमान तीर के तपस्वी हैं। तपस्वी जैसे पवित्र जल में स्नान करते हैं वैसे ये हंस भी उसमें गोता लगा रहे हैं। तापसजन अक्ष-सूत्र धारण करते हैं तो हंस मृणाल-सूत्र धारण कर रहे हैं। तापस लोग ब्रह्मयज्ञ वैदिक मन्त्रों की ध्वनि करते हैं तो ये हंस भी कूजन कर रहे हैं। इन सब कारणों से हंसों की पर्याप्त समानता मुनियों से हो गयी है॥ ]

**सोऽपि 'सभ्रमरया फूत्कारीचक्रवेणुलतया सदृशी नावातरण-योग्या किमियमप्रसिद्धा महानदी देवस्य' इत्यभिधाय कथयितुमारब्धवान्॥**

सोऽपीति ॥ किमियं सरिद्देवस्य न विदिता, यासौ नावा वेत्रया तरणयोग्या। शब्दायमानकीचकवंशवल्लया। सभ्रमरया सभृङ्गया। सदृशी। 'वंशवल्लयपि अवाते वाताभावे रणस्य शब्दस्य योग्या न भवति। सरिदपि सभ्रम. सावर्ता रयो जवो यस्या इति सभ्रमरया।

वह भी, "तट के छिद्र-बहुल बाँसों की तरह नावातरण योग्य (नौका से पार करने योग्य), भ्रम (आवर्त) और रय (वेग) युक्त यह महानदी श्रीमान् के लिये अप्रसिद्ध है?" यह कहकर (विवरण देना) शुरू किया॥

[ छिद्र बहुल बांस (कीचक) पक्ष—सभ्रमरया—भ्रमरों से युक्त, नावातरणयोग्या न + अवात + रण + योग्या। अवात (हवा के न रहने पर) रण (ध्वनि) के योग्य नहीं। छिद्रबहुल बांस तब तक आवाज नहीं करते जबतक हवा नहीं बहती। हवा बहने पर ही उनमें से ध्वनि निकलती है। नदी सभ्रमरया (आवर्त और वेग से युक्त) है और लता भी सभ्रमरया है। सभ्रमरा शब्द के तृतीया के एकवचन सभ्रमरया है। नावातरण योग्या भी दोनों ही हैं॥ ]

'भानोः सुता संवरणस्य भार्या तापी सरित्सेयमघस्य हन्त्री।
यस्याः कुरुः सूनुरभूत्स यस्य नाम्ना कुरुक्षेत्रमुदाहरन्ति ॥ १५ ॥

भानोरिति ॥ संवरणः क्षत्रियविशेषः ॥ १५ ॥

"सूर्य की लड़की, राजा संवरण की पत्नी, पापों की विनाशिका, यह वही यमुना नदी है जिसके पुत्र कुरु हुए। उन्हीं के नाम पर कुरुक्षेत्र कहा जाता है ॥ १५ ॥

[ तापी, यमुना और यमी ये पर्याय-वाचक शब्द हैं ॥ १५ ॥ ]

यत्तस्याः सलिलावगाहसमये कुर्वन्ति नित्यं नृणां
पीनप्रोन्नतकर्कशस्तनतटीसंघट्टपिष्टोर्मयः।
भ्राम्यद्भृङ्गनिभालकैः क्षणमिव व्यालोलनेत्रैर्मुखै-
रुत्फुल्लोत्पलगर्भपङ्कजवनभ्रान्तिं महाराष्ट्रिकाः ॥ १६ ॥

यत्तस्या इति ॥ उत्फुल्लोत्पलानि गर्भे मध्ये यस्य पङ्कजवनस्य। महाराष्ट्रिकाः स्त्रियः ॥ १६ ॥

स्नान के समय घने ऊँचे एवं कर्कश स्तनतट से इसकी लहरियों को चूर्णित करती हुई महाराष्ट्र की नायिकायें अपने चंचल भ्रमर-सदृश बालों तथा चंचल मुखों और नेत्रों से मनुष्यों को पानी के बीच सदा कमल वन की भ्रान्ति उत्पन्न करती हैं ॥ १६ ॥

[ नेत्र और मुख कमल की तरह हैं और बाल भ्रमर की तरह हैं। अचानक देखकर लोगों को भ्रान्ति हो जाती है कि पानी में आदमी के मुख नेत्र और केश नहीं हैं अपितु कमलों के ऊपर भ्रमर मंडरा रहे हैं ॥ १६ ॥ ]

अपि च—

यद्येतस्याः सकृदपि मरुन्नर्तिताम्भोजराजि-
भङ्गुरपत्रव्यजनविधुतं वारि नीहारहारि।
रोधोभाजां पिबति कुसुमैर्वासितं पादपानां
पीयूषाय स्पृहयति ततः किं कचिन्नाकिलोकः ॥ १७ ॥

तट के पुष्पों से सुगन्धित, वायु द्वारा नचाये गये कमल-समूह के चंचल पत्ररूप पंखे से कम्पित इस नदी के मनोहर जल को यदि स्वर्ग के लोग एक बार भी पीलें तो क्या वे अमृत की इच्छा करेंगे ? ॥ १७ ॥

मामपि पुष्कराक्षनामानं वार्त्तिकमवगच्छतु देवः ॥

वार्त्तिकेति ॥ वार्तायां नियुक्तो वार्तिकः।

मुझे भी आप पुष्कराक्ष नामक वार्तिक समझें ॥

[ सन्देश-वाहक या किसी वार्ता-विशेष की जानकारी के लिये नियुक्त व्यक्ति को वार्तिक कहते हैं ॥ ]

तथाहि—

स्थित्या त्वदागमनमार्गमुखे गवाक्षे
वार्ताविशेषमधिगन्तुमिहायताक्ष्या ।
संप्रेषितो निषधनाथ तथास्मि यस्याः
क्रीडागिरिस्त्वमसि मुग्धमनोमृगस्य ॥ १८ ॥

स्थित्वेति ॥ गवाक्षे स्थित्वा तया आयताक्ष्या दीर्घदृशा वार्तान्तरं ज्ञातुमिह प्रेषितोऽहम् । यस्या मुग्धमनोमृगस्य त्वं क्रीडागिरिः । मृगो हि गिरौ रमते ॥ १८ ॥

निषधराज, तुम्हारे आगमनमार्ग की सामने वाली खिड़की पर बैठ कर वार्ता-विशेष को जानने के लिये उस विशालाक्षी दमयन्ती द्वारा भेजा गया हूँ जिसके भोले मनरूप मृग के लिये आप ही क्रीडा शैल हैं ॥ १८ ॥

[ जिस ओर से आप का आगमन होगा उसी के सामने वाली खिड़की पर बैठ कर आप के सन्देश या समाचार की प्रतीक्षा कर रही है। मृग का मन जैसे पर्वत पर रमता है वैसे उस दमयन्ती का मन आप मे रमता है ॥ १८ ॥ ]

पश्यति च श्वस्तनेऽहनि मार्गश्रमक्लान्तमितो नातिदूरे दीर्घोन्नत-सरलसालसर्जार्जुननिचुलनिचयान्तरचलचटुलचकोरमयूरहारीतहंस-कुलकोलाहलिनि पयोष्णीपुलिनपरिसरे स्थितं तया प्रहितमाप्तं क्रीडाकिन्नरमिथुनम् ॥

मार्गश्रम से थका हुआ, यहाँ से थोड़ी दूर पर ऊँचे और सीधे साल, सर्ज, अर्जुन और निचुल वृक्षों के नीचे घूमते हुए चञ्चल चकोर, मयूर, हारीत और हंसों के कोलाहल से मनोहर पयोष्णी नदी के तट पर ठहरा हुआ, उस ( दमयन्ती ) के द्वारा भेजा हुआ क्रीडा किन्नर का जोड़ा कल आप से मिलेगा ।

'इयं च वाच्यतां तया स्वहस्तकिसलयलिखिताक्षरगर्भा भूर्जपत्रिका' इत्यभिधाय पुरोऽस्य लेखपत्रिकां व्यसृजत् ॥

यह वाचिये, उसके किसलय सदृश कर द्वारा लिखे गये अक्षरों से गर्भित भूर्ज पत्रिका । यह कह कर उनके सामने चिट्ठी रख दिया ॥

राजापि पार्श्वपरिजनेनोत्क्षिप्यार्पितां तामतिबहलपुलकाङ्कुरकण्टकितप्रकोष्ठकाण्डेन पाणिना स्वयमुन्मुच्य सादरमवाचयत् ॥

समीपवर्ती परिजन द्वारा बजाकर दी जाने पर राजा भी पर्याप्त रोमाञ्च के कारण कम्पित कलाई वाले हाथों से स्वयं खोलकर आदर के साथ पढ़ने लगा।

'नलोऽपि मां प्रत्यनलोऽसि यत्त्वादृशां नैषध नैष धर्मः।
तथाबलानां बलवद् ग्रहीतुं न मानसं मानसमुद्रयुक्तम् ॥ १९ ॥

नल इति । नैषध इत्यभिजनाख्यानामन्त्रणेन कुलीनत्वोद्दीपनम् । मानसमुद्रेऽपनेन च मदकलामेव परान्नयाः नाबलानाम् । मा प्रति त्वं नलोऽपि सन्ननलो वह्नि-रूपः सन्तापकारकत्वेन सन्तापक इत्यर्थः । न नलोऽनल इति विरोधः । परिहारस्तु प्रागेव व्याख्यातः । न चैष भवादृशां धर्मो यस्मादुन्नतवंशस्तस्मात्त्वयाबलानां दुर्बलानां मानसं चेतो ग्रहीतुं न युक्तम् । बलवदिति क्रियाविशेषणं हठादित्यर्थोऽप्ययम् ॥१९॥

"नैषध ! नल होकर भी तुम मेरे लिये अनल हो। मानरूप सागर से युक्त अबलाओं के मानस इस तरह ग्रहण करना तुम जैसों का धर्म नहीं है ॥ १९ ॥

[ नैषध इस सम्बोधन से उसकी उच्च परम्परा की ओर संकेत किया गया है। अर्थात् इतनी उच्च परम्परा में तुम्हारा उद्भव है फिर भी अबला (निर्बल) को तुम इस तरह सता रहे हो। तुम्हारे जैसे आदमी के लिये यह व्यवहार नितान्त अनुचित है ॥ १९ ॥ ]

अपि च—

निपतति किल दुर्बलेषु दैवं तदवितथं ननु येन कारणेन।
बलवति न यथा तथाबलानां प्रभवति कुसुमशरासनो मनोभूः ॥२०॥

निपततीति ॥ अबलाः स्त्रियोऽशक्ताश्च ॥ २० ॥

दैव भी दुर्बलों को ही सताता है, यह एक निश्चित सत्य है। इसीलिये तो कामदेव अपने धनुष को जिस तरह निर्बलों और अबलाओं पर चलाता है उस तरह बलवानों पर नहीं ॥ २० ॥

[ मुझे जितना काम सन्तप्त कर रहा है उतना आपको नहीं। यह एक सामान्य नियम है कि दुर्बल आदमी अधिक कामुक होते हैं ॥ २० ॥ ]

अपि च—

कदा किल भविष्यन्ति कुण्डिनोद्यानभूमयः।
उत्फुल्लस्थलपद्माभभवच्चरणभूषिता ॥ २१ ॥'

अतः यह जिज्ञासा है—

कब यह कुण्डिन नगर के उपवन की भूमि पूर्ण विकसित स्थल-कमल सदृश (आपके) चरणों से अलङ्कृत होगी ?" ॥ २१ ॥

इति लेखलिखितप्रणयसुभाषितामृतरसप्लवेनाप्लावितहृदय, 'विधे, विधेहि मे पक्षिण इव पक्षयुगलमुड्डीय येन तां पश्यामि' इति चिन्तयन्पश्यति पुरत स्थितं तं प्रियावार्तिकमाश्लिष्यन्निवोच्चरोमाञ्च निचयेन पिबन्निवाभिलाषपल्लवितया दृशा, स्नपयन्निव मधुरस्मितामृत रसेन, पुन पुन सादरमभाषत ॥

लेख के प्रणय-पूर्ण सुभाषित सुधा की धारा से राजा का मानस भर गया। "भगवन् पक्षियों की तरह मुझ म भी दो पख बना दो कि उड कर उसे देखू।" इस तरह सोचता हुआ राजा सामने बैठ हुए प्रिया क सन्देश वाहक से अपने रोमाञ्च समूह द्वारा मानो आलिङ्गन करता हुआ, अभिलाष पूर्ण प्यासी आँखो से मानो पीता हुआ, मधुर मुस्कान के अमृत रस से नहलाता हुआ बडे स्नेह से बार बार बात किया।

'पुष्कराक्ष, सा सर्वथा विजयते राजपुत्री। यस्या प्रसन्नमुदार-सत्कान्तिश्लिष्टं सुकुमारमनेकालङ्कारभाजनं वयो वचनं च, सप्रश्रय-प्रगल्भो विवेकवान्विदग्धबुद्धिर्भवद्विध परिजनश्च ॥

पुष्करेति ॥ प्रसन्नं निर्मलम्। उदार रम्यम्। सत्कान्ति तेजस्वि। श्लिष्ट सुघटितसर्वावयवम्। सुकुमार मृदु। अनेकालङ्कारभाजन बहुभूषणपात्रम्। वय शब्देन तदाधारभूत शरीरमुच्यते। पक्षे प्रसन्न झटितिप्रर्थप्रतीतिकृत्। महार्थमुदारम्। औज्ज्वल्य कान्ति। मसृणत्व श्लेष। अपरुष सुकुमारम्। अनुप्रासोपमा द्योऽलङ्कारा ॥

'पुष्कराक्ष, वह राजपुत्री सब तरह से उत्कृष्ट है, जिसका शरीर निर्मल, रमणीय, तेजस्वी, सुडौल, एव कोमल है और विविध भूषणो से मण्डित है, वाणी स्फुट अर्थ से सम्पन्न, गम्भीर, उज्ज्वल, मसृण एव सुकुमार है और अनुप्रास, श्लेष आदि अलकारो से युक्त है, नम्र निर्भीक, विवेकयुक्त तथा परिपक्व बुद्धि के आप जैसे लोग जिसके परिजन है।

तत्कथय 'कथनीयकीर्ति क्वास्ते कथमास्ते कं विनोदमनुतिष्ठति केन व्यापारेण परिणामयति वासरं वाऽसौ भवत्स्वामिसुता इत्येव मुक्त स पुन पल्लवयन्ननुरागकन्दलं नलमलपत् ॥

तो, कहिये प्रशंसनीय यश वाले, आपके स्वामी की पुत्री कहाँ रहती है? कैसी रहती है? किस वस्तु म मनो विनोद करती है? किस कार्य में अपना दिन बिताती है?" ऐसा कहे जाने पर उनके अनुराग को पुन पुन पल्लवित करता हुआ उनसे (पुष्कराक्ष) बोला—

त्वद्देशागतवायसाय ददती दध्योदनं पिण्डितं
त्वन्नाम्न सदृशो दृशं निदधती वन्येऽपि मुग्धा नले।

त्वत्संदेशकथार्थिनी मृगयते तान्राजहंसाननु
क्रीडोद्यानतरङ्गिणीतरुनलच्छायासु वापीषु च ॥ २२ ॥

त्वद्देशेति । नल नामापि दुर्लभं ननोऽस्य सदृशे समुचिते। 'नाम्ना त्वत्सदृशे' इत्यपि पाठः। स तु स्पष्ट एव ॥ २२ ॥

'आपके देश की ओर से आये हुए कौवों को दही-भात का कवल देती है। तुम्हारे नाम से समानता रखने वाले जङ्गली नल नामक घास पर भी आँख लगायी रहती है। तुम्हारी सन्देश-कथा की इच्छुक वह विनोदवनों, नदियों और पेड़ों की छाया तथा जलाशयों पर उन राजहंसों को खोजती फिरती है ॥ २२ ॥

अपि च। सांप्रतं तथा—

त्वद्देशागतमारुतेन मृदुना संजातरोमाञ्चया
त्वद्रूपाङ्कितचारुचित्रफलके निर्वापयन्त्या दृशम् ।
त्वन्नामामृतसिक्तकर्णपुटया त्वन्मार्गवातायने
नीचैः पञ्चमगीतिगर्भितगिरा नक्तंदिनं स्थीयते ॥ २३ ॥'

त्वद्देशेति । नीचैरिति निम्नम् । पञ्चमरागत्वात् ॥ २३ ॥

इस समय वह—

आपके देश की ओर से आई हुई कोमल हवा से रोमाञ्चित हो उठती है। आपके सौन्दर्य की प्रतिकृति वाले उस सुन्दर चित्रपट्ट पर अपनी आँखों को शान्त करती है। आपके नामामृत से अपने कानों को सींचती है। एकान्त में पञ्चम स्वर भरे गीतों को गाती हुई आपके मार्ग के सम्मुख वाले गवाक्ष के पास दिन रात बैठी रहती है।" ॥ २३ ॥

एवमनुगुणमनुरागस्य, सदृशं शृङ्गारस्य, सहोदरमादरस्य, प्रियं प्रेमप्रपञ्चस्य, प्रोत्साहनमनङ्गस्य, अनुकूलमुत्कण्ठायाः, समुचितमभिनिवेशस्य, कौतुकजननं जल्पति पुष्कराक्षे, श्रवणकुतूहलिनि विस्मृतान्यव्यापारे तन्मयतामिवानुभवति भूभुजि, जरठीभवत्सु पूर्वाह्णवेलालवेषु, गगनमध्यासन्नवर्तिनि व्रजति तीव्रतां ब्रध्नमण्डले, स्खलयति पथि पथिकानसह्योर्मिणि घर्मजाले, जलाशयाननुसरत्सु पिपासाकुलतरलिततारकेषु श्वासिषु श्वापदेषु, पङ्किलकूलकर्दमविमर्दोद्यतेषु सरित्परिसरवनविहारिकरिवराहमहिषमण्डलेषु, विटपिकोटरकुटीरनीडनिलयनिलीयमानेषु संपुटितपक्षेषु पक्षिषु, कूलकुलायकोणकूणितकोकूयमानकुक्कुटेषु गिरिसरित्सुरङ्गाङ्गणेषु रङ्कुरङ्गचर्वितखर्वदूर्वानलनीलनिम्नशाद्वलस्थलस्थितये हिण्डमानासु कारण्डवश्रेणि-

खण्डिमण्डलीषु, शिशिरनिवासवाञ्छया कूजत्सु करञ्जनिकुञ्जपञ्जिनकपिञ्जलकपोतपोतकेषु, वहति मनाङ्म्लानकोमलकुसुमकोशकोष्णामन्दमकरन्दबिन्दुद्गारिणि तापीतीरतरङ्गस्पर्शसेव्ये मध्याह्नमरुति, श्रमवशविलोलमीलन्नयननीलोत्पलासु बहलतरुतलच्छायामाश्रयन्तीषु सौदरसैनिकनितम्बिनीषु प्रस्तावपाठकः पपाठ ॥

एवमिति ॥ एवं प्रथममण्डलादिष्वीदृशेषु सत्सु प्रस्तावपाठकः पपाठ। पिपासाया आकूतेनाभिप्रायेण तरलिता तारा कनीनिका यैः। श्वापदैः। गिरिसरिता सुरङ्गाः सश्रयस्तवङ्गणेषु ॥

इस तरह पुष्कराक्ष प्रेम के अनुकूल, शृङ्गार के सदृश, आदर के समगुण, प्रेम-प्रपञ्च के प्रिय, काम के उद्दीपक, उत्कण्ठा के अनुगुण, प्रवृत्ति के उचित सभाषण कर रहा था। सुनने की उत्कण्ठा से राजा भी समस्त अन्य कार्यों को भूल कर तन्मय जैसा हो गया था। असह्य धूप पथिकों को मार्ग से स्खलित कर रही थी। प्यास की व्याकुलता से चपल-कनीनिका वाले जगली जानवर हाँफते हुए जलाशय की ओर जा रहे थे। नदी के तट तथा वन में विहार करने वाले हाथी, सूकर और भैंसों का समूह पङ्कपूर्ण नदी-तट के कीचड़ के मर्दन में व्यस्त था। पक्षी अपनी पंखों को समेट कर पेड़ों के खोखले एवं कटी के घोसले में छिप रहे थे। तट-गत घोसलों के एक देश में कुक्कुट पक्षी कूँ-कूँ कर रहे थे। मयूरों और चक्रवाकों का समूह पर्वतों, नदियों और सुरङ्गों के बीच घूमते हुए मृगों द्वारा चरे गये दूर्वादल तथा नल नामक नीले तृण वाली तलहटी की भूमि खोजी जा रही थी। कपिञ्जल और कपोत के बच्चे करञ्ज वृक्ष के नीचे इकट्ठे होकर ठण्डी जगह पर निवास की आकाङ्क्षा से कूज रहे थे। दोपहर की धूप के कारण कुछ म्लान कोमल फूलों के कोश में रहने वाले (दोपहर की धूप के कारण) कुछ उष्ण पराग बिन्दुओं की पर्याप्त वर्षा करने वाली, तापी (यमुना) नदी के तटीय तरङ्गों के सम्पर्क के कारण सेव्य, दोपहर की हवा बह रही थी। सैनिकों की थकी हुई कान्ताएँ श्रम के कारण अपने चञ्चल नयन कमल को मुकुलित करती हुई घने पेड़ों की छाया का आश्रय ले रही थीं। ऐसे अवसर पर प्रस्ताव पाठक ने पढ़ा —।

'विचित्राः पत्त्रालीर्दलयति गलत्स्वेदसलिलै-
रमन्दं मृद्नाति प्रमदकरिकुम्भस्तनतटी'।
प्रबन्धेनाक्रामञ्जनजघनजङ्घोरुयुगलं
श्रम सेनाङ्गेषु प्रसरति शनैः कामुक इव ॥ २४ ॥

विचित्रा इति ॥ अनेकविधा पत्रालीर्वाहनश्रेणीर्विलेपनपत्रवल्लीश्च दलयति। तथा मत्तकरिकुम्भानेव स्तनतटीरमन्दं खेदयति। प्रबन्धेन सातत्येन सम्बन्धेन च।

करणविक्षेपेण। यथा गाढरतखेदात्कन्दर्पभावाच्च। जघने च जङ्घे चोरुयुगलं च मान्द्यमासाद्य। तत कर्मधारय। तदाक्रमत्कामीव श्रम सेनाङ्गेषु हयादिषु प्रसरति ॥ २४ ॥

सेना के विभिन्न अङ्गों में श्रम ( थकावट ) कामुक की तरह धीरे धीरे फैल रहा है विविध पत्राल्यों ( सवारियों ) को बहते हुए पसीने के जल से क्षयित कर रहा है। मतवाले हाथियों के कुम्भस्थल रूप स्तनतट को म्लान कर रहा है। पैदल सैनिकों के जघा, जघन ऊरु-युगल पर आक्रमण कर रहा है ॥ २४ ॥

[ कामुक पक्ष—कामुक भी अपने पसीने के जल से कामिनी के अङ्गों पर की गयी पत्र रचना को विदलित कर देता है। मतवाले हाथी के कुम्भस्थल सदृश स्तनतट का जोरों से मर्दन करता है। कामिनी जन के जघन, जङ्घा और ऊरुद्वय पर गाढ बन्ध के साथ आक्रमण करता है। कहना यही है कि सेना के घोड़े हाथी पसीने से लथ-पथ हो गये हैं और सैनिक बिल्कुल थक गये हैं ॥ २४ ॥ ]

अपि च—

> कूजत्क्रौञ्चं चटुलकुररद्वन्द्वमुन्मादिहंसं
> 
> क्रीडत्क्रोडं निपतितलतापुष्पकिञ्जल्कहारि।
> 
> अस्याः सान्द्रद्रुमवनतलभ्रान्तसुप्ताध्वनीनं
> 
> रोधः सिन्धोः स्थगयति भवत्सैनिकानां प्रयाणम्' ॥ २५ ॥

कूजदिति। क्रौञ्चकूजनादीनि विशेषणानि रोधसो रम्यतादिहेतुत्वेनस्यप्रयाण-स्खलनमाचक्षाणानि ॥ २५ ॥

जहां क्रौञ्च पक्षी कूज रहे हैं, चपल कुररों का जोड़ा ( विलासमग्न ) है, हंसों का उत्तम कलरव हो रहा है, सूअर खेल रहे हैं, थके हुए पथिक घने वृक्ष-वन की छाया में सो रहे हैं, और गिरे हुए लता-पुष्पों के पराग से जो मनोहर बन गया है, ऐसे इस नदी तट को आपके सैनिकों का अभियान अवरुद्ध कर रहा है ॥ २५ ॥

राजा तु तदाकर्ण्य 'वाहुक, वाहूनां बहुमतो वाहुल्यादिहैव वासः, तद्वद सैनिकान्, अवतरत तापीतीरतरुतलाश्रयान्, आश्रयत श्रम-च्छिदच्छायाः, कुरुत पटकुटीः, कारयत क्रायमाणानि, मुञ्चतामन्द-मुद्गराद्वलेभ्यस्तान्बलीवर्दकान्, कर्दयत कर्दने महिषान्, खादयत वेसरीभिर्निदाघरीराङ्कुरान्, प्रचारयत क्रमेण क्रमेलकान्, अवगाहा-वसाने पृष्ठावकीर्णपुलिनपङ्कपांसवो विहरन्तु स्वैरं वंशस्तम्भेषु स्तम्बेरमाः, तरुकुम्भेषु बध्नीत तीव्रवेगान्वेगसरान्, अवतरन्तु

तापीतीरतरङ्गेषु तुरंगा., शिशिरतरङ्गानिलान्दोलितविविधविकच-मञ्जरीजालजटिलेषूत्फुल्ललताखण्डमण्डपेषु मध्याह्नसमयमतिवाहयन्तु किन्नरमिथुनानि' इति सेनापतिमादिदेश ॥

राजा दिवेति ॥ काम्यमानानि तृणमयगृहाणि । वशानां करीरासामङ्कुरा ॥

राजा तो यह सुन कर, "बाहुक ! अधिकांश लोगों को यहीं का वास अभिमत है। अतः सैनिकों को कहो। तापी नदी के तटगत वृक्षों की छाया के नीचे उतरें। थकावट को नष्ट कर देने वाली छाया में ठहरें। भैंसों को कीचड़ में उछालें। गदहों को बाँस और करीर के कपोलों को खिलावें। उँटों को क्रम से घुमावें। स्नान कर लेने पे बाद तट के कीचड़ कणों को पीठ पर फेंकते हुए हाथी अपनी इच्छा के अनुसार बाँध के जङ्गलों में विहार करें। जोर से भागने वाले खच्चरों को पेड़ों के मूल में बाँध दें। यमुना के तटीय तरङ्गों में घोड़े उतरें। किन्नर-मिथुन ठण्डी लहरियों से स्पृष्ट वायु द्वारा कम्पित, विविध खिली हुई मञ्जरियों से व्याप्त विकसित लता समूह के मण्डपों में दो पहर का समय वितावें।" ऐसी सेनापति को आज्ञा दिया।

स्वयमपि पुष्कराक्षसूचितार्थपथश्रमखिन्नकिन्नरमिथुनदिदृक्षया कृतमृगयाविनोदव्यपदेशो दिशि दक्षिणस्यामाप्तस्तोकपरिवारपरिवृतो झरन्निर्झरझात्कारिवारिरमणीयासु रममाणपुलिन्दनितम्बिनी-वदनचन्द्रबिम्बितासु सान्द्रद्रुमद्रोणीषु विचरितुमारभत ॥

स्वयं भी पुष्कराक्ष द्वारा सूचित, आधे रास्ते में ही श्रम के कारण थके हुए किन्नर-मिथुनों को देखने की इच्छा से शिकार द्वारा मनो विनोद के बहाने कुछ प्रामाणिक परिजनों के साथ दक्षिण दिशा की ओर विहार करने के लिये चल पड़ा। वहाँ घने वृक्षों को सींचने वाली नहरें गिरते हुए झरनों की झा झा ध्वनि से मनोहर थीं। रमण करती हुई किरात-कान्ताओं का वदनचन्द्र उनमें प्रतिबिम्बित था।

पुरः स्थितश्चास्य वर्त्म दर्शयन् जात्यतरतुरंगमारोपितः पुष्कराक्षोऽप्यभाषत ॥

एक उत्तम कोटि के घोड़े पर पुष्कराक्ष आगे आगे रास्ता दिखाता हुआ बोला।

'देव, मार्कण्डेयप्रमुखमहामुनिनिवासपवित्रिताः पुण्याः खल्विमाः पयोष्णीपरिसरवनभूमयः ॥

श्रीमान्, पयोष्णीतट के ये वन स्थल मार्कण्डेय जैसे बड़े-बड़े मुनियों के निवास के कारण पवित्र एवं पुण्य हो गये हैं।

तथाहि—

श्रूयते किलास्मादुद्देशात्पूर्वदिग्भागे भगवतः पुराणपुरुषावतारस्य परशुरामस्य जनयितुर्जमदग्नेराश्रमः। ततोऽपि नातिदूरेण सुरासुरमौलिमालामुकुलमुक्तमकरन्दबिन्दुस्नपितपादारविन्दस्य भगवतः स्वस्वेदप्रस्रवप्रवर्तितपयोष्णीप्रवाहस्य महावराहस्यायतनम् ॥

क्योंकि—

हम लोग जहाँ हैं इससे पूर्व दिशा में भगवान् विष्णु के अवतार परशुराम के पिता जमदग्नि का आश्रम था, ऐसा सुना जाता है। उस स्थान से थोड़ी ही दूर पर देवों और दानवों के सिर में लगी हुई माला की कलियों के पराग से स्नान किये हुए चरण कमल वाले भगवान् महावराह, जिनके स्वयं पसीने की धारा से पयोष्णी नदी का प्रवाह निकला है, की कुटी है।

इतोऽप्यवलोकयतु देवः—

सैषा चलच्चन्द्रकिचक्रवाकचञ्चच्चकोराकुलकूलकच्छा।
स्वःसीमसोपानपदक्रमाङ्का गङ्गाप्रतिस्पर्धिपयाः पयोष्णी ॥ २६ ॥

सैषेति ॥ चन्द्रकी मयूरः। कच्छा कूलादिबद्धप्रदेशाः। स्वःसीमेत्यत्र स्वरित्यव्ययं स्वर्गार्थम् ॥ २६ ॥

महाराज, इधर भी देखें—

जहाँ मयूर और चक्रवाक घूम रहे हैं, चञ्चल ध्वनि करते हुए चकोरों से तट व्याप्त है, स्वर्ग की सीमा तक पहुँचने वाली सीढ़ियों की तरह तरङ्गें हैं, जल जिसका गंगा के साथ प्रतिस्पर्धा करता है ऐसी यह पयोष्णी नदी है ॥ २६ ॥

यस्याः पश्यैते—

मुक्तार्धैः श्रूयमाणां सिकतिलपुलिनप्रान्तविश्रान्तपान्थैः
रुन्धानं मञ्जुगीतप्रियहरिणकुलान्यम्बुपानागतानि।
सांध्यध्यानावसाने क्षणमिव मुनयः संनिधौ पङ्कजाना-
मोङ्कारोच्चाररम्यं मधुकरमधुरध्वानमाकर्णयन्ति' ॥ २७ ॥

मुक्तेति ॥ सिकतास्यास्तीत्यर्थे इलच्। मधुकरध्वानस्योत्कण्ठाजनकत्वात्पान्थानां मुक्तार्धत्वम्। गीतप्रियत्वाद्धरिणानां रोधो मुनीनां च देवत्रयीवेदत्रयीवाचिन्योङ्कारे लीनत्वात् तत्प्रतिनिधौ मधुकरध्वाने बहुमानः। तथा च 'त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरानकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति। तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्' ॥ २७ ॥

देखिये जिसे—

यहाँ की मधुर मधुकर ध्वनियाँ कमलों के समीप पानी पीने के लिये आये हुए मधुर गीत से अधिक स्नेह रखनेवाले हरिणों को रोक रही हैं, बालू भरे तट के एक देश में विश्राम करने वाले आंसू टपकाते हुए पथिकों द्वारा सुनी जा रही हैं, सायंकाल ध्यान की समाप्ति के अवसर पर मुनि लोग (उन ध्वनियों को) ओंकार सदृश रमणीय समझ कर सुन रहे हैं ॥ २७ ॥

[ वियुक्त पथिकों के लिए नदी का बालुका-बहुल ऐकान्तिक तट ही उद्दीपन के लिए पर्याप्त था, तबतक मधुकरों की मधुर ध्वनि भी मिल गयी जो उन्हें बिना रुलाये नहीं छोड़ी। हरिण सभी सुखों की अपेक्षा कर्ण सुख को अधिक महत्त्व देते हैं। इसी लिए मधुकरों की ध्वनि उन्हें रोक रही है। मुनियों के लिए भी वह आकर्षण की चीज हो गयी है, क्योंकि उनकी प्रियतर ध्वनि ओंकार की उसमें पर्याप्त समानता है ॥ २७ ॥

राजा तु 'नमस्याः खल्वमी महानुभावाः ॥

राजा तो, 'ये महानुभाव प्रणम्य हैं।

तथाहि—

मृगेषु मैत्री मुदितात्मदृष्टौ कृपा मुहुः प्राणिषु दुःखितेषु।
येषां न ते कस्य भवन्ति वन्द्याः कौशेयकौपीनभृतो मुनीन्द्राः' ॥२८॥

मृगेष्विति ॥ मैत्री मुदिता करुणा इति तिस्रोऽपि चेतःप्रसादिन्यो भावना। कौशेयकौपीनभृत इति नि मङ्गलोक्त्या पापकारित्वं प्रत्याख्यभिहितः ॥ २८ ॥

क्योंकि—

मृगों के साथ जिनकी मित्रता है, आत्मदर्शन में ही जिनकी प्रसन्नता है, दुःखी प्राणियों पर जिनकी कृपा है ऐसे कौशेय रङ्ग के कौपीन पहनने वाले मुनि किसके लिये वन्दनीय नहीं हैं।''

इत्यवधारयंस्तानववन्दे ॥

यह सोचता हुआ प्रणाम किया।

मुनयोऽपि 'सोऽयं सोमपीथी निषधनाथ' इत्यनुध्यानादवगम्य प्रयुक्तब्रह्मोक्ताशिषः, अनुगृह्णन्त इवार्द्रार्द्रैर्दृष्टिपातैः, आश्वासयन्त इव प्रियस्वागतप्रश्नालापेन, स्नपयन्त इव दरहसितदन्तज्योत्स्नामृतप्लवेन, आह्लादयन्त इवादरेण, दत्तार्घ्यमनन्तरमिदमवोचन् ॥

मुनयोऽपीति ॥ दर अर्धं यद्धसितं तेन दन्तज्योत्स्ना सैवामृतप्लवस्तेन। दरेणेषदर्थे ॥

मुनि भी, ''यह वही सोमपान-कर्ता, निषध देश का राजा है।'' ध्यान शक्ति द्वारा यह जानकर, वेदोक्त आशीर्वाद देकर स्नेहार्द्र-दृष्टि से मानो अनु-

गृहीत कर रहे थे। मधुर स्वागत-प्रश्नविषयक बातों से आश्वासन सा दे रहे थे। मुस्कुराते हुए दाँतों की कान्ति से सुधा की धारा से नहला सा रहे थे। आदर द्वारा प्रमुदित सा कर रहे थे। (इन भावाभिव्यञ्जनों के बाद) अर्घ्य देकर बोले—

'आयुष्मन्, अस्मदीयमिह धर्मोपदेशप्रदानमेव प्रथममातिथेयम् तिथिजनेष्वनोऽभिधीयसे। पुण्यं पयोऽस्याः सरित तदेतदवगाह्य कुरु पुण्यमयमात्मानम् ॥

"आयुष्मन्, अतिथि लोगों के लिये हम लोगों का यहाँ पहला आतिथेय धर्मोपदेश ही है। अतः तुम से यही कहा जाता है कि इस नदी का जल पुण्य है। इसमें स्नान कर अपने आपको पुण्यमय बना लो।

तथाहि—

पर्वतभेदिपवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतङ्गहनम्।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्यत पयोष्णी' ॥ २९ ॥

पर्वतेति ॥ राजन्। पश्यत यूयमवलोकयत। पर्वतविदारकं पावनं नरकस्य दुर्गतेर्जैत्रं पराभविष्णु। अत एव बहुमतं बहुमाननीयम्। गहनमगाधम्। पयः पाथः। कर्मभूतम्। पयोष्णी वहति धारयति। उपमाने हरिशब्दत्रयमिन्द्रविष्णुसिंहार्थम्। साङ्कलेन विविच्यते। तथाहि पर्वतभेदी गिरिविदारको यः पविर्वज्रं त्रायते धारयति वज्रधरम्। नरकस्य भौमासुरस्य जैत्रमभिभावुकं विष्णुम्। मतङ्गानमुनिविशेषादीन्बहूना बहुमतङ्गा गजा मतङ्गास्तुरङ्गमाश्च तान् हन्तीत्येवं। क्विपा। अथवा बहुमतङ्गान्हन्तीति सिंहम् ॥ २९ ॥

क्योंकि देखो—

यह पयोष्णी नदी इन्द्र, विष्णु तथा सिंह की तरह पर्वत तोड़कर निकलने वाले, पवित्र, नरक को जीत लेने वाले (दुर्गति से बचाने वाले), अत्यन्त माननीय एवम् अगाध जल ला रही है" ॥ २९ ॥

[ विष्णुपक्ष —पर्वतभेदिपवित्रम् (गोवर्धन पर्वत उठाने वाले और पवित्र) नरकस्य जैत्रम् (नरकासुर को जीतने वाले) बहुमतम् (बहुतों के द्वारा सम्मानित) गहनम् (दुर्ज्ञेय) भगवान् विष्णु हैं।

इन्द्रपक्ष —पर्वतभेदिपवित्रम् (पर्वतों के पंखों को काट लेने वाले और पवि (वज्र) को धारण करने वाले या वज्र से लोगों को रक्षा करने वाले) जैत्रम् (विजयी) नरकस्य बहुमतम् (मनुष्यों द्वारा सम्मानित) गहनम् (अविज्ञेय)।

सिंहपक्ष —पर्वतभेदिपवित्रम् (पर्वतभेदि (कन्दराओं) में रहने वाला और नृसिंह भगवान् के आंशिक स्वरूप को धारण करने के कारण या

भगवती का वाहन होने के कारण पवित्र ) नरकस्य जैत्रम् ( मनुष्य को जीत लेने वाला ) बहु + मतङ्ग + हनम् ( बहुत से हाथियों को मार गिराने वाला ) ।

पयोष्णीजलपक्ष —

पर्वतभेदिपवित्रम्—(पर्वतीय चट्टानों को तोड़कर निकलने वाला, अत्यन्त निर्मल ) नरकस्य जैत्रम् ( दुर्गति से बचाने वाला ) बहुमतम् ( सर्व पूजित ) गहनम् ( अगाध ) ।

प्रथम एवं द्वितीय चरण के विशेषणों के चार अर्थ हैं। पयोष्णी नदी भगवान् वराह के स्वेद-बिन्दु के प्रवाह से निकलती है अतः उसका पवित्र होना स्वाभाविक है। श्लेष द्वारा कवि ने इसे बहुविध अवतार के देवों के समान सिद्ध किया है। पयोष्णी का जल पापों को नष्ट करने में सिंह, विष्णु और इन्द्र जैसा शौर्य-सम्पन्न है। यहाँ वीर रस की ध्वनि है। श्लेष से अनुप्राणित उपमा अलङ्कार है ॥ २९ ॥ ]

राजापि 'एवमेतत्—

महावराहाङ्गविनिर्गताया किमन्यदस्याः परतः पवित्रम् ।
यदीयमालोकनमप्यघानि निहन्ति पुंसां चिरसंचितानि ॥ ३० ॥

महावेति ॥ आदिवराहाङ्गनिःसृताया अमुष्याः परतः परतः परम-पदपरं किं पवित्रं न किमपीत्यर्थः ॥ ३० ॥

राजा भी, "यह ठीक ही है—

महावराह के अङ्गों से निकली हुई इस नदी से पवित्र और क्या हो सकता है जिसका दर्शन भी मनुष्यों के चिर संचित पापों को नष्ट कर देता है ॥ ३० ॥

तदेव करोमि भवतामादेशम्' इत्यभिधाय यथाविधि स्नानाय सरिन्मध्यमवातरत् ॥

अतः लीजिये, आप लोगों की आज्ञा का पालन कर ही देता हूँ।" यह कह कर विधिपूर्वक स्नान करने के लिये नदी में उतरा।

अवतीर्य च मन्त्रमार्जनप्राणसंयमसंध्यासूक्तजपपितृतर्पणादिसमुचिताह्निकावसाने रक्तकमलगर्भमर्घाञ्जलिमुत्क्षिप्य भगवतो भास्करस्य स्तुतिमकरोत् ॥

अवतीर्येति ॥ मन्त्रमार्जनं मन्त्रस्नानम् । प्राणसंयमः श्वासप्रश्वासरोधनं करन्यासोऽङ्गन्यासश्च विद्यते यत्र तत् सन्ध्यासूक्तम् ।

उतर कर मन्त्र द्वारा स्नान, प्राणायाम, सन्ध्या, पुरुषसूक्त आदि का पाठ जप, पितृतर्पण आदि दैनिक कार्यों के अन्त में लाल कमल से अर्घ्य देकर भगवान् सूर्य की स्तुति किया।

जयति जगदेकचक्षुर्विश्वात्मा वेदमन्त्रमयमूर्तिः।
तरणिस्तरणतरण्डकमघपटलपयोनिधौ पुंसाम् ॥ ३१ ॥

संसार के एकमात्र नेत्र, सम्पूर्ण विश्व के हृदय, मनुष्यों के पाप पुञ्ज रूप सागर को पार करने के लिये तरण्डक ( नौका ) भगवान् तरणि ( सूर्य ) सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ३१ ॥

[ भगवान् सूर्य को "त्रयी तनु" वेद मूर्ति कहा गया है ॥ ३१ ॥ ]

तदनु च चटुलचञ्चरीककुलाकुलितकमलकुड्मलगलद्बहलमकरन्द-सुरभिततरङ्गमुच्चलत्कपिञ्जलं जलमवगाह्य चिरमुत्तीर्य तीरमापृच्छ्य मुनिजनमभिवाद्य च पुनः पुलिनपालिपर्यटनाय प्रस्थितः प्रणयादनुव्रजतो मुनीन्निवर्तयन्निदमवादीत् ॥

तदनन्तर चञ्चल भ्रमरों से व्याप्त कमल-कलियों से गिरते हुए पर्याप्त पराग से सुगन्धित तरङ्ग तथा उड़ते हुए कपिञ्जलों से अलंकृत जल में स्नान करने के बाद तट पर आकर देर तक मुनियों का पूजन और प्रणाम कर तटपङ्क्ति पर घूमने के लिये चल पड़ा। स्नेह से पीछे पीछे चलते हुए मुनियों को लौटाता हुआ कहा—

'चक्रधरं विषमाक्षं कृतमदकलराजहंससंचारम्।
हरिहरविरञ्चिसदृशं भजत पयोष्णीतटं मुनयः।' ॥ ३२ ॥

चक्रेति ॥ चक्रवाकधरम्। विषमविभीतकम्। तथा कृतो मदकलराजहंसानां संचारो येन तथाविधम्। पयोष्णीतटं यूयं भजत। मुनय इति सम्बोधनम्। हरिहरविरञ्चिसादृश्यं विशेषणत्रयेण। तत्र चक्रं सुदर्शनं धारयति विष्णुः विषमाक्ष्य सौम्यस्य त्रिनेत्रत्वाद्धर। कृतो मदकलराजहंसेन कृपया सञ्चारो येन स ब्रह्मा, हंसवाहनत्वात् ॥ ३२ ॥

चक्रवाक को धारण करने वाले, बड़े-बड़े रुद्राक्ष आदि के वृक्षों से मण्डित और प्रौढ़ एवं सुन्दर राजहंस की गति से युक्त विष्णु, शिव और ब्रह्मा सदृश पयोष्णी तट का मुनि लोग सेवन करें ॥ ३२ ॥

[ यहाँ पयोष्णी तट के तीन उपमान हैं। हरि ( विष्णु ), हर ( शिव ) और विरिञ्चि ( ब्रह्मा )। भगवान् विष्णु जैसे चक्रधर ( चक्र धारण करने वाले ) हैं वैसे यह भी चक्रधर ( चक्रवाक पक्षी को धारण करने वाला ) है।

भगवान् शंकर जैसे विषमाक्ष ( त्रिनेत्र ) हैं वैसे यह भी विषमाक्ष ( बिभीतक वृक्षों ) से युक्त है। भगवान् ब्रह्मा जैसे मद-कल-राजहंस-सवार ( प्रौढ एवं सुन्दर राजहंस को वाहन बनाये हुए ) हैं वैसे यह भी प्रौढ तथा सुन्दर राजहंसों की गति से युक्त है ॥ ३२ ॥ ]

एवमुक्तास्तेऽप्यार्द्रहृदयाः स्वल्पपरिचयेनाप्युपचितोचितप्रणयाः प्रियंवदतया प्रियमाशशंसुः ॥

राजा के इस तरह कहने पर स्वल्प परिचय रहने पर भी प्रगाढ स्नेह वाले वे आर्द्रचित्त मुनि मधुरभाषिता के साथ प्रिय आशीर्वाद दिये—

'सुगमस्तवास्तु पन्था क्षेमा दिग्देवताः शिवा शकुनाः।
अभिलषितमर्थमचिरात्साधयतु भवानविघ्नेन' ॥ ३३ ॥

"आप का मार्ग सुगम हो। दिग्देवतायें कल्याणकर हों। मङ्गलमय शकुन हो। शीघ्र ही अपनी आकाङ्क्षित वस्तु को निर्विघ्न प्राप्त करें ॥३३॥

इत्यभिधाय व्यावृत्तेषु मुनिषु कौतुकादितस्ततः संचरच्चटुलषट्चरणचक्रचुम्बनाकूलतरलितपुष्पपरागपटलपांसुलितनगतलेषु बहलसुरभिशिशिरकोमलपवनेषु वनेषु, वनेचरमिथुनमन्मथक्रीडानुकूलेषु कच्छेषु, पुलिन्दडिम्भकाध्यासितफलितबदरीषु दरीषु, पुञ्जितकुञ्जरेषु निकुञ्जेषु, दुर्दर्शभानुषु सानुषु, सानुचरश्चान्यतमस्मिन्नतिनिबिडसंधिसंनिवेशे शिलान्तरालप्रदेशे, प्रियतममुद्दिश्य पठन्त्याः किंनर्याः साश्चर्यमार्यागीतिमिमामशृणोत् ॥

इत्यभिधायेति ॥ पुलिन्दडिम्भैरध्यासितासु कासु फलवद्बदरीषु, न केवलं फलवद्बदरीषु, तथा दरीषु। चकारादिमन्तरेणापि समुच्चयः स्यादेव। तद्यथा माघे द्वादशसर्गे,—'सावशेषपदमुक्तमुपेक्षा स्रस्तमाल्यवसनाभरणेषु। गन्तुमुत्थितमकारणतः स्म द्योतयन्ति मदविभ्रममासाम्'। अध्यासितास्विवति स्पष्टमेव। न च फलवत्यो बदर्यो यास्विति दरीविशेषणम्। 'नद्यृतश्च' इति कप्प्रत्ययस्य दुर्निवारत्वात्। बाहुलकाश्रयणात्कप्प्रत्ययाभाव इति तु न युक्तम् ॥

यह कह कर मुनि लोग चले गये। भनभनाता हुआ चञ्चल भ्रमर-समूह चूमने की उत्कण्ठा से पुष्पों को कम्पित कर रहा था। अत उनके पराग से वृक्ष केवल धूलि-धूसरित हो गये थे। वन मे सुगन्ध, शीतल एवं मन्द हवा बह रही थी। तट के स्थान शबर दम्पतियों की काम क्रीडा के अनुकूल थे। बैर फल से युक्त गुफाओ मे किरातो के बच्चे बैठे थे। निकुञ्जों मे हाथी इकट्ठे हुए थे। पर्वतो की चोटियाँ सूर्य के कारण मुश्किल से देखी जा रही थीं। परिजनों के साथ इधर-उधर उत्कण्ठापूर्वक घूमता हुआ राजा घने

पर्वत सन्निवाले एक स्थान पर एक शिला के कोने अपने प्रिय को निमित्त कर पढ़ती हुई किन्नरी की आर्या छन्द वाली इस गीति को बड़े आश्चर्य से सुना—

'विपिनोद्देशं सरसं केतकमकरन्दवासितवियत्ककुभम्।
ग्राममिमं वा सर संकेतकमकरन्दवासितवियत्ककुभम्' ॥ ३४ ॥

विपिनेति ॥ सरसं सजलम्, तथा केतकमकरन्देन वासित वियदाकाशः ककुभश्च दिशो येन तथाभूतम्। विपिनप्रदेशम्। अथवा इमं पुरोवर्तिनं ग्रामं सर गच्छ। कीदृशं ग्रामम्। संकेतयति निवासयति अनुकूलत्वान्निवासहेतुर्भवतीति संकेतकम्। तद्विशेषणद्वयमाह—अकरमिति। न विद्यते करो राजभागोंऽशो यत्र। पर्वतीयत्वादकरम्। आयतनमासित सद्भाव। दवस्यासिताद्विभ्यन्तो विक्षिप्यन्तः ककुभाश्चरवो यत्र। यदि वा 'षिञ् बन्धने' आङ्पूर्वस्य आसयनमासितम्। आबन्ध इत्यर्थः। यद्वा सिना- सम्बद्धा। दवेन असिता असम्बद्धा वयः पक्षिणो यत्र। तथा यद् वहत् क पयो यस्यां सा चासौ कुश्च तया भातीति। इणः शतरि यदिति रूपम्।॥ ३४ ॥

जगल के इस सरस स्थान पर चलो जहाँ का आकाश और दिशाएँ केवड़े के पराग से सुरभित हैं अथवा इस गाँव में चलो जहाँ के (गृहपालित) पक्षी जगल से असम्बद्ध हैं और जहाँ का बहता हुआ जल और भूतल अत्यन्त भव्य हैं ॥ ३४ ॥

[ इस पद्य में यमक की बड़ी अच्छी योजना है। ग्रामपक्ष—संकेतक—निवासयोग्य। अकरम्—कररहित। पहाड़ी गाव है। दया के कारण राजा ने कर माफ कर दिया है। दवासितवि—दव ( जगल ) से असित ( असबद्ध ) हैं वि ( पक्षी ) जहाँ के। मनोरञ्जन के लिए लोग घरो में पक्षियो को पाले हैं अत पिंजड़े में बन्द रहने के कारण उन्हें जगल में जाने का अवसर नहीं मिलता। यत्+क+कु+भ—यत् ( बहता हुआ ) क ( जल ) कु ( पृथ्वी ) भ ( भव्य ) है। 'इण् गतौ' धातु के शतृ प्रत्यय का रूप यत् है। बहते हुए अर्थ में इसका यहाँ प्रयोग हुआ है। दवासितवि और यत्ककुभ इन बहुव्रीहियों पदो का कर्मधारय हुआ है। अर्थात् इस सामने वाले गाव में चलो जो संकेतक, अकर, दवासितवि, यत्ककुभ है।

अरण्य-स्थान पक्ष में तो मकरन्दवासित-वियत्ककुभम् का सीधा अर्थ है—पराग से सुगन्धित कर दिया है आकाश और दिशाओ को जिसने ॥३४॥ ]

तदनु पुनस्तत्प्रतिवादिना किन्नरेण च पठ्यमानामिमामार्यामश्रौषीत् ॥

तदिति ॥ किञ्चिन्नरा' किञ्चित्पदयशादिरूपमिश्रा' किंनरा' ॥

तदनन्तर उसके प्रतिवादी किन्नर द्वारा पढ़ी जाती हुई इस आर्या को सुना—

'अजनि रजनिः किमन्यत्तरणिस्तरतीव पश्चिमपयोधौ ।
घनतरुणि तरुणि विपिने क्वचिदस्मिन्नेव निवसामः' ॥ ३५ ॥

अजनीति ॥ घनास्तरवो यस्मिन् तस्मिन्विपिने । तरुणीति सम्बोधनम् ॥ ३५ ॥

ओ तरुणि ! रात हो चली, अधिक क्या कहे, सूर्य पश्चिम सागर मे तैरने सा लगा है । हम लोग इसी घने वृक्षो वाले जगल मे निवास कर ले ॥ ३५ ॥

[ "घने है तरु ( वृक्ष ) जिसमे" इस विग्रह मे घनतरुणि शब्द विपिने का विशेषण है । अर्थात् सप्तमी का एकवचन है। दूसरा तरुणि पद तरुणी शब्द का सम्बोधन है ॥ ३५ ॥ ]

एवमन्योन्यालापमाकर्ण्य किंनरमिथुनस्य विस्मितो नरपतिः अहो माननीयमहिमोद्दामा दमयन्ती यस्याः परिचारिणः पक्षिणोऽपि श्रव-णस्पृहणीयामेवंविधसुभाषितामृतमुचं वाचमुच्चारन्ति ॥

किन्नर-मिथुन की इस तरह की आपस की बात सुनकर राजा आश्चर्य मे पड गया । दमयन्ती अपनी प्रशसनीय महिमा के कारण सर्वथा उत्कृष्ट है, जिसके समीप रहने वाले पक्षी कानो को प्रिय लगने वाली मनोहर उक्ति रूप सुधा बरसती हुई वाणी बोल रहे हैं ।

प्रथममिह तावदाभिजात्यवित्तविद्याविवेकविभवैरनाकुले कुले जन्म ततोऽप्यनुरूपरूपसंपत्तिस्तदनु श्लाघानुगुणगुणलाभस्ततोऽपि च शुचिविदग्धस्निग्धपरिजनावाप्तिरिति महती भाग्यपरम्परा' इति चिन्तयन्नतिदूरवर्तिनः पुष्कराक्षस्य मुखमवलोकयांचकार ॥

प्रथममिति ॥ आभिजात्यादीनि अहंकारकृतवैक्लव्यस्य कारणानि । कुले स्वेभिर-नाकुले । अनुगुणोऽनुरूपः ॥

प्रथमतः तो उत्तम परम्परा, सम्पत्ति, विद्या, विचार और ऐश्वर्य के होते हुए भी अहकार-रहित ऐसे कुल मे जन्म, इसके अतिरिक्त वशानुकूल ही सौन्दर्य-सम्पत्ति, उस पर प्रशसा के ही सदृश गुणो की प्राप्ति, इसके अतिरिक्त बुद्धिमान् एव स्नेहपूर्ण परिजनों की उपलब्धि, यह अद्भुत बडी सौभाग्य-शृङ्खला है ।" यह सोचता हुआ थोडी दूर पर स्थित पुष्कराक्ष के मुख की ओर देखा ।

पुष्कराक्षोऽपि पुरःसृत्य तं किंनरमभाषत ॥

पुष्कराक्ष भी आगे बढ कर किन्नर से बोला—

'सुन्दरक, कान्तामुखावलोकनासक्तः समीपमागतानप्यस्मान्न पश्यसि ॥

'सुन्दरक, अपनी प्रिया का मुह देखने म लगे हो ? समीप मे भी आये हुए हम लोगो को नहीं देखते ?

नन्दिनो दृत्तदृष्टिर्भव ॥

इधर जरा देखो –

स एव निषधेश्वरः कुसुमचापचक्रं विना
प्रसादितमहेश्वरः स्मर इवागतो मूर्तिमान् ।
विलोकय विलोचनामृतसमुद्रमेनं नृपं
विधेहि नयनोत्सवं कुरु कृतार्थतामात्मनः ॥ ३६ ॥

स एवेति । एष निषधेश्वरो नलः कुसुमचापचक्रं विनाभूतो मूर्तिमान् प्रसादित-महेश्वरः स्मरः । एतावता पूर्वस्मराद्व्यतिरेकोक्तिः । यतः पूर्वं कुसुमचापचक्र वान्। अयं मूर्तिमान् दग्धाङ्गवान्। तथा प्रकोपितमहेश्वरः । यद्वा तु प्रसाधितेति पाठ, तदा प्रेम विना चन्द्रकला महारत्न इंषात्त्राणादिना येन तादृग् निषधेश्वरः । स्मरस्तु साधयितु वशीकर्तुं प्रारब्धो महेश्वरः शिवो येन। कुसुमान्येव च चक्रं धनुर्मण्डलम् ॥ ३६ ।

वह निषधनरेश आ गया जो पुष्पवाण समूह को धारण किये बिना ही भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया हुआ मूर्तिमान् काम की तरह यह है। आंखों के लिये अमृत-सागर इस राजा को देखो, नेत्रोत्सव मनाओ और अपने आप को कृतार्थ करो ॥ ३६ ॥

[ यहाँ कामकी अपेक्षा नल को उत्कृष्ट बताया गया है। काम फूलों का बाण धारण करता है। नल बिना फूलों का बाण धारण किये ही काम है। काम शंकर जी को रुष्ट किया था। नल शंकर जी को प्रसन्न किया है। काम अनङ्ग ( अङ्गहीन ) है, नल मूर्तिमान् ( साङ्ग ) है। इन विचित्रताओं से सम्पन्न नल को देखकर अपने आप को कृतार्थ करो ॥ ३६ ॥ ]

त्वमपि विहंगचातुरे परमरहस्यसखी देव्याः सा हि त्वच्चक्षुषा पश्यति, त्वत्कर्णाभ्यामाकर्णयति, त्वन्मनसा मनुते ॥

पक्षिमोहिका, तुम भी ( देखलो ), क्या कि देवी की तुम एकान्त सखी हो। तुम्हारी ही आंखों से वह देखती हैं, तुम्हारे कानों से सुनती हैं और तुम्हारे ही मन से कुछ निश्चय कर पाती हैं।

तदिह दमयन्तीमनोरथपान्थपिपासाच्छिदि लावण्यपुण्यह्रदेऽस्मिन् राजनि निर्वापय चक्षु ' इति किंनरमिथुनमभिमुखीकृत्य नरपति-मवादीत् ॥

दमयन्ती के मनोरथ-पथिक की प्यास शान्त करने वाले, सौन्दर्य के पवित्र सरोवर इस राजा में अपनी आंखें तृप्त कर लो।" इस तरह बोलता हुआ किन्नर-मिथुन को सामने कर राजा से कहा —

'देव, तदेतत्किंनरमिथुनम्, इदं हि द्वितीयमिव हृदयं देव्या, प्रिय प्राणेभ्योऽपि प्रेम्णा प्राभृतमेतत्प्रहितं तुहिनाचलचक्रवर्तिना देवस्य, देवेन देव्यै दत्तम्। तया च दमयन्त्याः समर्पितं परं पात्रं मन्त्रगीते॥

देवेति॥ तुहिनाचलस्य हिमाचलस्य चक्रवर्तिना नृपेण प्राभृतं प्रहितमेतत्। भीमायेति शेषः। मन्त्रा गीयन्तेऽस्यामिति मन्त्रगीति॥

महाराज यही वह किन्नर-मिथुन है। यह देवी का द्वितीय हृदय है। हिमालय के चक्रवर्ती राजा ने बड़े प्रेम से महाराज (भीम के लिये इन्हें उपहार में दिया था। महाराज ने इन्हें देवी को दे दिया और देवी ने दमयन्ती को समर्पित कर दिया। गुप्त मन्त्रणा के ये उत्तम पात्र हैं।

तथाहि—जातख्याति जातिषु, गीतयशो गीतकेषु, वर्धितमानं वर्धमानेषु, सारमासारितकेषु, निपुणं पाणिकासु, धाम साम्नाम्, आचार्यकमृचाम्, आलयः कलादिभेदानाम्, रसगीत्यामपि सुस्वरं स्वरालापेषु, अवग्राम्यं ग्रामरागेषु, विचित्रभाषं भाषासु प्रवर्तकं नर्तनानाम्, कारणं करणमार्गस्य, वाद्येष्वपि प्रवीणं वीणावेणुषु, लब्धपाटवं पटहेषु, अप्रतिमल्लं झल्लरीषु॥

जातेति॥ जातयो नन्दयन्तीप्रभृतयः। वर्धमानाश्वासारितकानि पाणिकाः सामानि ऋचः कलादिभेदा गीतविषया भरतशास्त्रादवगन्तव्या। मध्यमाद्यः सप्तस्वराः षड्जमध्यमगान्धाराख्यो ग्रामाः। भाषा षट्त्रिंशत्। कला गीतवाद्यादौ मुहूर्तभेदाश्च। करणानि तलपुष्पपुटादीन्यष्टोत्तरशतसंख्यानि॥

नन्दयन्ती आदि जातियों में इनकी बड़ी ख्याति है। गीत के प्रसङ्ग में इनका बहुचर्चित यश है। वर्धमाना में इनका बड़ा सम्मान है। आसारितकों के ये सार हैं। पाणिकाओं में बड़े निपुण हैं। सामगान में इनका प्रशंसनीय स्थान है। ऋचाओं के आचार्यरूप हैं। कलाभेदों के मित्र हैं। रसगान के प्रसङ्ग में स्वरालाप करने में इनका स्वर बड़ा अच्छा है। ग्रामरागों में भी निपुण हैं। विभिन्न भाषाओं में भी इन्हें विचित्र चातुरी प्राप्त है। बहुत से नृत्य-प्रकारों के ये आविष्कारक हैं। (तल पुष्पपुटो आदि) करण मार्गों के जन्मदाता हैं। वीणा, वेणु आदि वाद्यों में प्रवीण हैं। नगाड़ा बजाने में भी इन्हें पाटव प्राप्त है। झाल बजाने में तो अप्रतिम हैं।

[वर्धमान, आसारितक, पाणिक, साम, ऋक्, कला आदि गीत के विषय हैं। मध्यम आदि सात स्वर हैं। षड्ज, मध्यम और गान्धार दो ग्राम कहलाते हैं। तल पुष्पपुटो आदि एक सौ आठ करण होते हैं। संगीत के ये सब पारि-

भाषिक शब्द हैं। व्यावहारिक कार्यों के अतिरिक्त किन्नरों की सबसे अधिक उपयोगिता संगीतमूलक मनोरञ्जन में ही है। अतः इस विषय में इतना अधिक नैपुण्य सर्वथा स्वाभाविक है। ]

किंबहुना—

कालमिव कलाबहुलं सर्वरसानुप्रवेशि लवणमिव।
तव नृप सेवां कर्तुं किंनरयुगलं तया प्रहितम् ॥ ३७ ॥

कालमिति ॥ कला गीतवाद्याद्या मुहूर्तभेदाश्च विद्वन्त्यधीयते वा कला कालविद्। तेषां समूहः कालम्। तद्वया। कालशास्त्रविषये। बहुलं तद्विष्टं भवति। तथेदमपि समग्रकलापर्योगम्। रसाः शृङ्गाराद्यास्तिक्ताद्याश्च। समयार्थे कालशब्दे पुंस्त्वं स्यात्। यदा तु 'काल इव कलाबहुलम्' इति पाठः। तदा काल कलाभिर्निमेषोन्मेषाद्यंशरूपाभिर्बहुलो स्यात्। इदं तु कलाभिर्गीतनृत्यादिभिर्व्याप्तम्। कालोऽवसर आत्मसमर्पणावसर इव प्रेषितं इति भावः ॥ ३७ ॥

अधिक क्या—

काल (मुहूर्त विद्या के विद्वत् समूह) की तरह ये कलाबहुल (विविध कलाओं से पूर्ण) हैं। नमक की तरह सभी शृङ्गारादि रसों में इनकी गति है। राजन्, आप की सेवा के लिये इस तरह का किन्नर-युगल उसने भेजा है ॥३७॥

[ काल :—ज्योतिष् शास्त्र में कला, उन्मेष, निमेष, पल आदि शब्द समय के अवयसूचक हैं। कला का अध्ययन करने वालों और उसके जानकारों के समूह को काल कहते हैं। अर्थात् कला पल आदि का विद्वद्वर्ग जैसे कला-बहुल होता है, दिन, रात, कला, पल का हिसाब लगाता रहता है वैसे यह किन्नर-मिथुन भी कलाबहुल (विभिन्न कलाओं का समग्र जानकार है)। लवन :—नमक जैसे तिक्त, अम्ल, कटु और कषाय सभी रसों में अपनी सत्ता रखता है उसी तरह इन किन्नरों की गति सभी रसों के प्रसङ्ग में अबाध है ॥ ३७ ॥ ]

'तदेतद्दारमपरिग्रहेणानुगृह्यताम्', इत्यभिधाय विश्रान्तवाचि तस्मिन्स किंनरयुवा किमप्युपसृत्य मृगमदमिलन्मलयजरसोल्लासिलेखालाञ्छितललाटपट्टार्पितकरकमलमुकुलं प्रणतिप्रेङ्खितमणिकर्णाभरणया सह प्रियया प्रणाममकरोत् ॥

अतः इन्हें आप अपना समझ कर अनुगृहीत करें।" यह कह कर उस (पुष्कराक्ष) के चुप हो जाने पर वह किन्नर युवक कुछ आगे बढ़ कर कस्तूरी-मिश्रित चन्दन रस के मनोहर तिलक से अङ्कित ललाट तक मुकुलित कर-कमलों को पहुँचाता हुआ, नम्र होने के कारण हिलते हुए मणिमय कर्णभूषण से मण्डित अपनी प्रिया के साथ (राजा को) प्रणाम किया ॥

उक्तवांश्च—

लब्धार्धचन्द्र ईश: कृतकंसभयं च पौरुषं विष्णो: ।
ब्रह्मापि नाभिजात: केनोपमिमीमहे नृप भवन्तम् ॥ २८ ॥

लब्धेति ॥ अर्धं चन्द्रस्य अर्धचन्द्र शशिकला गलापहस्तन च । तत्तु निन्दाभासे । तत्र ईश्वर । कृत कंसस्य भय येन तादृशं पौरुषं विष्णो । निन्दाभासे तु कृतक कृत्रिमम् । सभय भयान्वितम् । वैष्णवनो नाभेर्जातो ब्रह्मा । निन्दाभासे तु अभिजात कुलीन एवमग्निब्योन ॥ २८ ॥

बोला भी—

"राजन्, ईश ( भगवान् शङ्कर ) अर्धचन्द्र ( गलहस्त ) प्राप्त किये हुए हैं । विष्णु का पराक्रम भी कृतक ( कृत्रिम ) और सभय ( भय सहित ) है । ब्रह्मा भी न + अभिजात ( कुलीन नहीं ) हैं । आप की तुलना किससे करूँ ?" ॥ २८ ॥

[ शिव, विष्णु और ब्रह्मा जो तीन महान् देव हैं सभी में कुछ न कुछ दोष है । अत आप की तुलना किससे करूँ । वर्णित विशेषण आपातत देवताओं की निन्दा का आभास कराते हैं, किन्तु विशेषणों के वास्तविक अर्थ समझ जाने पर देवताओं का स्वाभाविक स्वरूप ही ज्ञात होता है । निन्दा की प्रतीति नहीं होती ।

प्रशंसापक्ष—ईश ( शिव ) अर्धचन्द्र ( खण्ड चन्द्र ) को धारण कर रहे हैं । विष्णु का पराक्रम कृत-कंस भय ( कंस को भय उत्पन्न कर देने वाला ) है । ब्रह्मा नाभिजात ( नाभि से उत्पन्न ) हैं ।

बलात्कार से किसी के गले में हाथ लगाकर निकाल देने की विधि को अर्धचन्द्र कहते हैं । अर्थात् शिव अपमानित हैं और आप सम्मानित हैं, विष्णु का पराक्रम कृत्रिम और सभय है जब कि आपका पराक्रम वास्तविक एवं निर्भय है । ब्रह्मा न अभिजात हैं और आप अभिजात ( कुलीन ) हैं । अत आपकी तुलना किस से करूँ ? ॥ २८ ॥ ]

इदं च—

अरुणमणिकिरणरञ्जितलिखिताक्षरमङ्गुलीयकाभरणम् ।
तस्या: करकिसलयमिव तव करकमले चिरं लगतु ॥ २९ ॥

अरुणेति । अनयाशिषा पाणिग्रहण सूचितम् । अरुणमणि पद्मरागादि । लिखितान्यक्षराणि यस्मिन् । करकिसलय स्वरुणम् । तथा मणिकिरणैराभरणरत्नकान्तिभि रञ्जितम् । तथा लिखितान्यक्षराणि येन ॥ २९ ॥

यह—

लालमणि की किरणों से रञ्जित, खुदे हुए अक्षरोंवाली अंगूठी उस

( दमयन्ती ) के कर किसलय की तरह आप के कर-कमलों में चिरकाल तक रहे ॥ ३९ ॥

[ कर किसलय पक्ष—दमयन्ती का हाथ भी अलक्तक निर्मित भूषणों के रंग से रञ्जित है। विद्याभ्यास के समय बहुत से अक्षरों को लिखा भी है। अतः अलक्तकरञ्जितत्व और लिखिताक्षरत्व दोनों धर्म अंगूठी की तरह हाथ में भी हैं ॥ ३९ ॥ ]

अनया च—

तव सुभग रम्यदशया तयेव रक्तान्तनेत्रमण्डनया।
धौतांशुकयुगलिकया क्रियतामङ्गे परिष्वङ्गः ॥ ४० ॥

तवेति ॥ दशा वस्त्रान्तसूत्रमवस्था च नेत्र चित्रवस्त्रविशेषोऽक्षि च ॥ ४० ॥

और इसने—

हे सुन्दर ! मनोहर किनारी वाली, लाल रंग तथा विविध चित्रों से अलंकृत यह सिल्क वस्त्र की जोड़ी तुम्हारे अंगों में उस ( दमयन्ती ) की तरह आलिङ्गन करे ॥ ४० ॥

[ यहाँ दमयन्ती उपमान है। रम्यदशया और रक्तान्तनेत्रया ये दोनों विशेषण धौतांशुकयुगलिका और दमयन्ती दोनों पक्षों में लगेंगे। दमयन्ती पक्ष :—रम्यदशया—विविध सौभाग्य सम्पत्ति से पूर्ण होने के कारण रमणीय दशा वाली है। रक्तान्तनेत्रया—नेत्रों का प्रान्त भाग लालिमा से मण्डित है। दशा वस्त्र की किनारी और अवस्था का वाचक है। नेत्र शब्द नयन और विविध चित्रों से चित्रित अत्यन्त चमकीले एक वस्त्र विशेष के लिये प्रयुक्त होता है ॥ ४० ॥ ]

अयं च—

उज्ज्वलसुवर्णपदकस्तस्याः संदेशकथनदूत इव।
रुचिरमणिकर्णपूरः श्रयतु श्रवणान्तिकं भवतः ॥ ४१ ॥

उज्ज्वलेति ॥ उज्ज्वल सुवर्णं पदं यस्य। पक्षे उज्ज्वलान्यग्राम्याणि शोभन वर्णानि पदानि वचनानि यत्र ॥ ४१ ॥

और यह—

उज्ज्वल स्वर्ण-निर्मित ये मनोहर मणिखचित कर्णभूषण सन्देश कहने वाले दूत की तरह आप के कानों के समीपवर्ती बनें ॥ ४१ ॥

[ सन्देशवाहक दूत भी कान्ति गुण विशिष्ट सुन्दर पदों से युक्त वाक्यों का प्रयोग कानों के पास जाकर करता है ॥ ४१ ॥ ]

किंचान्यत्—

आनन्ददायिनस्ते कुण्डिननगरे कदा भविष्यन्ति।
स्वन्मुखकमलविलोलनागरिकानयनषट्पदा दिवसाः ॥ ४२ ॥

दूसरी बात यह बतावें कि—

वे आनन्ददायक दिन कब होंगे जब कुण्डिनपुर में नगरवधुओं के नेत्र-भ्रमर आप के मुखकमल पर चञ्चल बनेंगे ॥ ४२ ॥

एवमाविर्भावितप्रश्रयमुज्ज्वलितानुरागमुदीरितादरमाप्यायितप्रणयमभिधाय स्थितवति किंनरे, नरेश्वरो दमयन्तीप्रहितप्राभृतानि स्वयमादरेण गृहीत्वा, 'सुन्दरक, तस्याः संदेश एवास्माकं कर्णपूर, परिकरोऽयं मणिकर्णावतंसः। तस्याः सुगृहीतेन नाम्नैव वयं मुद्रिताः प्रपञ्चोऽयमङ्गुलीमुद्रालंकारः तदनुरागेणैव वयमाच्छादिताः पुनरुक्तमाच्छादनयुगलमपरं च युवां प्रेषयन्त्या तया किं न प्रहितमस्माकम्, किमन्यदतोऽपि प्रियं प्राभृतं भविष्यतीति। तदेहि शिबिरमनुसराम।' इत्यभिधाय बहु मानयन्किंनरमिथुनमतिचपलकपिकुलान्दोलिततरुशिखराग्रगलितशिलास्फालनस्फुटत्फलरससुगन्धिता स्वच्छकुसुममकरन्दद्रवार्द्रितपांसुपटलेन वर्त्मना निजावासमुदचलत् ॥

एवमिति ॥ कर्णपूरोऽवतंसः कर्णयोः पूरणं च। मुद्रिता अपरस्त्रीणाम् दुष्कर प्रवेशा कृता ॥

इस तरह नम्रता-प्रदर्शनपूर्वक स्वच्छ अनुराग, आदरपूर्ण उक्ति एवं प्रगाढ़ प्रेम के साथ ( अपनी बातें ) कहकर किन्नर के चुप हो जाने पर नरपति ( नल ) दमयन्ती द्वारा भेजे गये उपहारों को स्वयम् आदर के साथ लेकर, "सुन्दरक, उनका सन्देश ही हमारे लिये कर्णपूर है। यह परिजन मणि कर्णभूषण है। उनके नाम से ही हम मुद्रित हैं। यह अंगुलि का मुद्रालंकार ( नामाङ्कित अगूठी ) प्रपञ्चमात्र है। उनके प्रेम से ही हम ढँक गये हैं। यह वस्त्रयुगल पुनरुक्त जैसा लगता है। आप दोनों को भेजकर उन्होंने क्या नहीं भेज दिया। आप लोगों से बढ़कर और क्या सुन्दर उपहार हो सकता है। अच्छा, आइये डेरे पर चलें।" यह कहकर किन्नर को बहुत मानता हुआ अपने आवास की ओर ऐसे रास्ते से चला जो चचल बन्दरों द्वारा हिलाये गये पेड़ों के अग्रभाग से गिरने और शिलातल की चोट से फटे हुए फलों के रस से सुगन्धित हो गया था और धूलि चूते हुए पुष्प मकरन्दों की तरलता से आर्द्र हो गयी थी ॥

[ इस अनुच्छेद में कर्णपूर, मुद्रित तथा आच्छादन पदों के प्रयोग महत्त्वपूर्ण हैं—

दमयन्ती का सन्देश ही कर्णपूर है। कानों को तृप्त करने में उसके मधुमय सन्देश को जितनी सफलता मिल सकती है उतनी इन बाह्य अलंकरणों को नहीं। उसके नाम से ही मैं मुद्रित हो गया हूँ। मेरे भीतर किसी दूसरे के लिये स्थान नहीं है। मैं उसके नाम से बिल्कुल सीमित हो गया हूँ। यदि वस्त्र आच्छादन का ही कार्य करता है तो उसका कार्य तो उसके स्नेह ने ही पूर्ण कर दिया। अतः किये हुए कार्य को करने के कारण ये पदार्थ पुनरुक्त मात्र हैं। ]

उच्चलिते च पश्चिमाम्भोनिधिसलिलक्षालितपादपल्लवे वासाधिनीवास्तगिरिगह्वरं विशति वियद्दीर्घपान्थे विवस्वति, क्रमेण तस्यां दिशि दिनकररथचक्रचङ्क्रमणचूर्णनोच्चलन्मन्दरगिरिगैरिकाधूलिपटलोल्लोल इवोल्लास संध्यारागः ॥

चलित इति ॥ पान्थो हि सलिलेन चरणौ प्रक्षाल्य वासागारं प्रविशति ॥

सम्पूर्ण संसार का भ्रमण कर पश्चिम समुद्र के जल में अपने पाद (किरण)-पल्लव को धोकर आकाश मार्ग के पथिक, भगवान् सूर्य निवास की कामना करते पान्थ की तरह अस्ताचल की कन्दरा में प्रवेश कर रहे थे। क्रम से उस दिशा में सूर्य-रथ के चक्कों के चलने से चूर्णित होकर उठे हुए मन्दराचल के लाल धूलि-पटल की लालिमा ( सन्ध्या राग ) उमड़ पड़ी थी।

[ पथिक दिन भर रास्ता चलकर सन्ध्या को जब कहीं ठहरता है और वास निकेतन में प्रवेश करता है तो अपने पैरों को धो लेता है भगवान् सूर्य भी दिन भर घूमे हैं। शाम को अस्तगिरि की गुहा रूप अपने भवन में जाने के पहले पश्चिम समुद्र में अपने किरण रूप पाद पल्लव को धो लेते हैं। सन्ध्या को यहाँ नायिका रूप में चित्रित किया गया है। भगवान् सूर्य को अपनी ओर आते देख उसका राग ( प्रेम ) उमड़ पड़ा है। ]

तेन च संवलितानि विजृम्भितुमारभन्त जम्भनिसुम्भनककुभि विपीनजरत्कृकवाकुकंधरारोमरोचींषि तमांसि ॥

तेन चेति ॥ जम्भनिसुम्भन इन्द्रः ॥

उस जम्भशत्रु ( इन्द्र ) की दिशा ( पूर्व ) में जंगल के वृद्ध मयूर की गर्दन की रोमपङ्क्ति की तरह अन्धकार फैलने लगा

ततश्च नष्टचर्याक्रीडरेवादर्शनभयान्तासु दिक्कन्यकासु, वनमुनि-होमधूमगन्धेन संतर्प्यमाणासु वनदेवतासु, निद्रान्धसिन्धुरयूथेष्विव वनप्रस्थलीषु परिणमत्सु शनैस्तिमिरेषु, जाते मनाग्भिन्नाञ्जनपत्त्र-स्तबकिते निशामुखे, नरपतिस्तेन किंनरमिथुनेन सार्धमर्धपथायात

प्रज्वलितदीपिकापाणिपरिजनपरिकरितः शरणागतकपोतमुत्पतितोलूककृतशब्दं शिविमिव शिविरसंनिवेशमविशत् ॥

तनश्चेति ॥ नष्टचर्या शिशुक्रीडाविशेष । निद्रान्धेत्यादौ परिणाम', परिपाकस्तिर्यक्प्रहारदान वा। निशासु हि कपोता पारावताः शरणं नीडमागच्छन्ति, उलूकाश्च घूका उड्डीयन्ते । उपमाने तु 'नारदकृतां शिविप्रशंसामशृण्वन्तौ कपोतोलूकरूपधारिणौ सुरौ सत्त्व जिज्ञासमानौ शिविनृपमागतौ' इत्थमागम ॥

इसके बाद, नष्टचर्या (एक तरह की बच्चो के खेल) की तरह दिगङ्गनाएँ अदृष्ट होती जारही थी। वन मे रहने वाले मुनियों के होम के धूम की गन्ध से वनदेवताएँ लुप्त हो रही थी। अगडाइया लेते हुए हाथियो के समूह की तरह ऊँचे स्थानो पर अन्धकार आक्रमण कर रहा था। स्वरूप विकसित अञ्जन पर्वत के गुच्छे की तरह रात हो जाने पर राजा उस किन्नर मिथुन के साथ आधे रास्ते मे जलती हुई दीपिका हाथ मे लेकर आये हुए परिजनो से समन्वित होकर शरण मे आये हुए कबूतर और उड़ते हुए उलूक की रक्षा के लिये वचन देने वाले राजा शिवि की तरह अपने शिविर मे प्रवेश किया।

[ नारद द्वारा शिवि की प्रशंसा सुनकर अग्नि और इन्द्र क्रमश कपोत और बाज बन कर शिवि की परीक्षा करने आये थे। कपोत को बाज खदेड़ता हुआ आया। कपोत शिवि के शरण मे आया। उन्होने कपोत की रक्षा के लिये कपोत बराबर अपने शरीर का मास बाज को खाने के लिये दिया।

यहाँ शरणागतकपोतम् और उत्पतितोलूककृतशब्दम् ये दोनो शब्द शिविम् और शिविरसनिवेशम् दोनो मे पृथक्-पृथक् अन्वित होते हैं।

राजा ऐसे शिविर मे प्रवेश किया जिसमे रात होने के कारण कपोत शरण लिये थे, दिन भर के छिपे हुए उल्लू रात को जहाँ से उड भागे थे और सैनिक जहाँ कृतशब्द ( बातचीत कर रहे ) थे। रात को कबूतर शिविर मे जाकर शरण लिये थे और दिन भर के ठहरे हुए उल्लू भाग चुके थे। शाम का समय था इस लिये सैनिको की धूम मची थी। उल्लू दिन भर छिपे रहते हैं रात को ही उन्हें दिखाई पडता है इसलिये घूमते हैं। कपोत रात मे अपने घोसले मे चले आते हैं।

शिवि पक्ष – शरणागत + कपोत और उत्पतित + उलूक के लिये (रक्षा का) वचन देने वाले। शिविर की तुलना शिवि से की गयी है। ]

तत्र च क्रमेण कृतकरणीयस्त्वरमाणपार्चकवृन्दोपनीनमुत्पतत्पाकपरिमलस्पृहणीयमत्युष्णमेदुरमांसोपदंशमाज्यभाज्यमुपभुज्य पुष्कराक्षकिंनरमिथुनासजनै सह मधुररससारमाहारम्, अनन्तरमाचान्त-

शुचिचन्द्रोद्वर्तितकरः कर्पूरपारीपरिकरितताम्बूलोज्ज्वलवदनारविन्द 'सुन्दरक, कमपि प्रस्तारय विद्याविनोदं त्वयापि विहंगवागुरिके, गीयतां किमपि मधुरम्' इति मृदुमणिपर्यङ्किकासुखासीनः किंनरमिथुनमादिदेश ॥

तत्र चेति ॥ कर्पूरस्य पारी शकलम् ॥

वहाँ दैनिक कार्य कर लेने के बाद पुष्कराक्ष, किन्नर-मिथुन, और शिष्ट जनों के साथ जल्दी जल्दी पाचकवर्ग द्वारा लाये हुए, उड़ती हुई भोज्य-गन्ध के कारण मनोहर, अत्यन्त गरम गोरक भातों को आस्वादित करता हुआ घी में तले हुए रसमय भोज्यों को खाया। आचमन के बाद पवित्र चन्दन से हाथ पैर कर कर्पूरखण्ड-मिश्रित ताम्बूल से मुख-कमल को सुशोभित कर, "सुन्दरक, कुछ विद्या-विनोद का प्रसङ्ग छेड़ो। पक्षि-सुन्दरी, तुम भी कुछ मधुर गाओ।" यह मणिमय कोमल पर्यङ्क पर सुखपूर्वक बैठ कर किन्नर मिथुन को आदेश दिया।

दर्शिते च वांशिकेन वंशमुखोद्गीर्णगान्धारपञ्चमरागस्थानके स्थिरीकृतमध्यमश्रुतिप्रसन्नप्रेङ्खोलनाप्रयोगमुचितस्थानकृतकांस्यतालमकठोरतारस्वरम्, आकर्षदिव हृदयम्, अभिषिञ्चदिवामृतेन श्रवणेन्द्रियम्, अस्तं नयदिवान्यविषयसंधानम्, अनुच्चप्रपञ्चितपञ्चमं विपञ्चीस्वरसंदर्भितमभूत्तत्किमपि गीतम् ॥

वंशी बजाने वाले वंशी के मुख से निकले हुए गान्धार और पञ्चम राग के स्थानक दिखाये। कहीं मध्यम स्वर, कहीं उचित स्थान पर झाल द्वारा ताल देने के कारण कोमल उच्च स्वर वाली वीणा के स्वर से मिश्रित सामान्य पञ्चम स्वर का वह अत्यन्त मनोहर गीत हृदय को मानो खींच सा रहा था। अमृत से श्रोत्रेन्द्रिय को सींच सा रहा था। अन्य विषय के चिन्तन को समाप्त सा कर रहा था।

यत्र—

प्रसरति रणरणकरसः कुण्ठयति हठेन चित्तमुत्कण्ठा।
स्मरति स्मरोऽपि धनुषः प्रगुणीकृतनिशितबाणस्य ॥४३॥

जिसमें—

ऐसे मनोहर संगीत के कारण जब रणरणक (उत्कण्ठा) रस फैल रहा था और चित्त को हठात् खिन्न बनाता चला जा रहा था। काम भी अपनी सजी हुई प्रत्यञ्चा एवं तीखे बाण वाले धनुष का स्मरण करने लगा ॥ ४३ ॥

एवंविधे च व्यतिकरे वैतालिकः पपाठ—

'सकलविषयवृत्तीर्मुद्रयन्निन्द्रियाणां
हृदि विदधदवस्थां कांचिदुन्मादिनीं च ।
ध्वनिरनुगतवीणानिक्वणः कोमलोऽयं
जयति मदनबाणः पञ्चमः पञ्चमस्य ॥ ४४ ॥

सकलेति ॥ पञ्चमस्य रागस्य ध्वनिर्जयति कथंभूतः । पञ्चमः पञ्चानां पूरणो मदनबाण ॥ ४४ ॥

ऐसे अवसर पर वैतालिक ने पढ़ा—समस्त इन्द्रियों की विषय-प्रवृत्ति को रोकती हुई, हृदय मे कोई उन्मादक स्थिति उत्पन्न करती हुई वीणा के स्वर से मिश्रित कामदेव के पञ्चम बाण स्वरूप पञ्चम स्वर की यह कोमल ध्वनि अपूर्व है ॥ ४४ ॥

अपि च—

प्रियविरहविषादस्यौषधं प्रोषितानां
विविधविधुरचिन्ताभ्रान्तिविश्रान्तिहेतु ।
अयममृततरङ्गः कर्णयोः केन सृष्टो
मधुररसनिधानं निःस्वनः पञ्चमस्य ॥ ४५ ॥

प्रियेति ॥ अत्र पञ्चमस्येत्याख्या । न तु पञ्चानां पूरणस्येति स्फुटरसार्थः ॥४५॥

जिनके पति परदेश चले गये हैं ऐसी वियुक्त कान्ताओं के प्रिय वियोग से होने वाले क्लेश की दवा, वियोगजन्य विभिन्न चिन्ताओं और भ्रान्तियों की स्थिति में आराम देने वाली, कानों के लिये अमृत-लहरी, मधुर रस का निकेतन, पञ्चम स्वर की इस ध्वनि का निर्माण किसने किया ॥ ४५ ॥

अपि च—

अयं हि प्रथमो रागः समस्तजनरञ्जने ।
यस्य नास्ति द्वितीयोऽपि स कथं पञ्चमोऽभवत्' ॥४६॥

अयमिति ॥ प्रथमः प्रधानभूत आद्य । द्वितीय. समानो द्वयोः पूरणश्च । स कथं पञ्चानां च पूरणोऽयं च पञ्चम इति संज्ञा ॥ ४६ ॥

समस्त लोगों का मनोरञ्जन करने वाला यह पहला राग जिसका दूसरा कोई भी नहीं है पाँचवा कैसे हो गया ? ॥ ४६ ॥

[ जो अपनी उत्कृष्टता के कारण इतना महान् है कि उसके बाद की दूसरी श्रेणी में रखने के लिये भी कोई राग नहीं है वह पञ्चम कैसे हो जायगा ? विरोध । पञ्चम स्वर इतना सुन्दर राग है कि उसमें किसी दूसरे की

तुलना ही नहीं है इसीलिये वह अद्वितीय है। पञ्चम का अर्थ योग्यता-क्रम से पञ्चम श्रेणी नहीं है। परिहार ॥ ४६ ॥

इति विविधमुदञ्चत्पञ्चमोद्गारगर्भं-
पठति मधुरकण्ठे धाम्नि वैतालिकेऽस्मिन्।
अपहरति च चित्तं किन्नरद्वन्द्वगीते
सुखमय इव निद्रानिस्पृहो लोक आसीत् ॥ ४७ ॥

इतीति। परब्रह्मालोकममममयमनुभावितसान्द्रानन्दमय इव। रहस्यं हि तत्र परब्रह्मास्वादमोदं इव पूर्वाचार्यैर्व्याख्यातम्। सुखमय इव निद्रानिमीलित इवेषु भयग्रापीवशान्द्रो योऽय। अथवा सुखमयः मविडानिमीलित इवेर्गीवशान्द्रो निषक्ते ॥ ४७ ॥

इस प्रकार कई तरह से पञ्चम स्वर के प्रति उद्गार प्रकट करता हुआ मधुर स्वर में वैतालिक बोल रहा था। किन्नर-युगल का गीत लोगों का चित्त आकृष्ट कर रहा था। सुखमयता के कारण लोग निद्रा के प्रति निःस्पृह हो गये थे ॥ ४७ ॥

एवमनवरतमारोहावरोहमूर्च्छनामाह्लिते गीतामृतस्रोतसि निमग्नमनसि कठोरितोत्कण्ठे रणरणकारम्भभाजि राजनि 'रजनि' किं न विरमसि। दिवस, किं नाविर्भवसि। अध्वन् किं न स्तोकतां व्रजसि। कुण्डिननगर, किं न नेदीयो भवसि। श्रम, किमन्तरायोऽसि। विधे, किमुत्क्षिप्य न मां तत्र नयसि' इत्यनेकधा चिन्तयति स किन्नरयुवा प्रक्रमोचितश्लेषमिदमवादीत् ॥

उतार-चढ़ाव से पूर्ण मूर्च्छनाओं की लहरों में राजा का मन तरङ्गित हो रहा था, गीत की अमृतधारा में गोता लगा रहा था। उत्कण्ठा से कठोर हो गया था और उत्सुकता के वेग में भर गया था। "रात, क्यों न समाप्त हो जाती हो? दिन क्यों न प्रकट हो जाते हो? रास्ता, क्यों नहीं कम हो जाते? कुण्डिन नगर, क्यों नहीं समीप आ जाते? श्रम, क्यों प्रतिबन्धक बनते हो? दैव, क्यों न मुझे फेंक कर वहाँ पहुँचा देते?" इस तरह सोच ही रहा था कि किन्नर-युवक प्रसङ्गानुकूल इस श्लोक को बोला—

"वर्धमानोल्लसद्रागा सुजातिमृदुपाणिका।
दमयन्ती च गीतिश्च कस्य नो हृदयंगमा ॥ ४८ ॥

वर्धमानेति॥ वर्धमानो वर्धिष्णुः। न तु हीयमानः। उल्लसन् रागोऽनुरागो यस्याम्। सुष्ठु शोभना जातिर्यस्या यस्याः। पाणिः करः॥ पक्षे वर्धमाने ताल

विशेषे उन्नयन् राग श्रीरागादिर्यत्र। जातयो नन्द्यन्तीप्रभृतय । पाणय सम-पाण्यादय ॥४८॥

उन्नतिशील अनुरागबहुल, क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न कोमलकरों वाली दमयन्ती तथा वर्धमान ताल, श्री आदि राग, नन्दयन्ती आदि जाति, समपाणि आदि पाणियों वाली यह गीति किसके लिये हृदयस्पर्शी नहीं हैं ? ॥ ४८ ॥

[ गीतिपक्ष म वर्धमान, राग, जाति एव पाणिका शब्द पारिभाषिक हैं। सगीत क इन विभिन्न तत्त्वा से युक्त यह गीति और अनुराग आदि विभिन्न स्पृहणीय गुणो मे अलङ्कृत दमयन्ती किसके लिये प्रिय नहीं हो सकती ? ॥ ४८ ॥ ]

अपिच—

साप्यनेककलोपेता साप्यलङ्कारधारिणी।
सापि हृद्यस्वरालापा किन्त्वसाधारणा तव ॥ ४९ ॥

सेति ॥ कला विज्ञानकौशलम् । अलङ्कार आभरणम् । स्वर शब्द । आलापा मिथोभाषणम् । गीतिपक्षे 'धनाकेनावकृष्टिश्च विरलाङ्गुलिना च या। आवाप इति विज्ञेया कलाविद्भिस्तु सा कला' इत्यावापाद्य सप्त कला । अलङ्कारा उपमारूपकाद्य । स्वरा षड्जाद्य सप्त। आलाप आलप्ति । पर किं तु दमयन्ती असाधारणा अनन्यविषयत्वादेकाश्रया। गीतिस्तु साधारणा जाति साधारणा चेति ॥ ४९ ॥

और भी ( बहुत सी साधारणताये ( समानतायें ) इस गीति म और दमयन्ती म हैं। जैसे— )

यह भी अनेक कलाओं से विभूषित है यह भी अनेक अलङ्कारों को धारण करती है, उसकी भी बात और स्वर हृदयस्पर्शी है, किन्तु तुम्हारे ही लिये होने के कारण वह असाधारण है ॥ ४९ ॥

[ गीति पक्ष —गीति म आवाप आदि सात कलाय होती हैं। उपमा, रूपक आदि अलङ्कार होते हैं। आलाप ( दीर्घस्वर ) होते हैं।

दमयन्ती पक्ष —दमयन्ती म भी चित्र विज्ञान आदि कुशलतामूलक कलाय हैं। कटक कुण्डल आदि अलङ्कारों को यह भी धारण करती है। उसके भी आलाप ( सलाप ) मधुर हैं।

इतने अश तक तो दमयन्ती और गीति मे समानता है किन्तु गीति स्वर साधारण है।

किसी भी स्वर म गीति का प्रयोग किया जा सकता है। किसी भी जाति म उसका प्रयोग किया जा सकता है। दमयन्ती असाधारण है क्योंकि वह नल मात्र के लिये है, और किसी के लिये नहीं ॥ ४९ ॥ ]

अपि च—

संगीतका त्वदौत्सुक्यात्त्वां स्मरन्ती समूर्च्छना ।
किं तु तस्यास्त्वयि स्वामिँल्लयभङ्गो न दृश्यते' ॥ ५० ॥

सङ्गीतेति ॥ त्वय्यौत्सुक्यं त्वदौत्सुक्यं तस्माद्धेतोः । सम्यक् गीतं यशांसि यस्याः । इति सर्वत्र त्वद्गुणा गीयन्त इति भावः । तथा त्वां स्मरन्ती सह मूर्च्छया वर्तते इति समोहा ॥ गीतिस्तु सङ्गतं गीतं स्वरगुणदूषणग्रामश्रुतिस्थितिमूर्च्छनालक्षणं यस्याः । तथा 'स्वरः सम्मूर्च्छितो यत्र रागतां प्रतिपद्यते । मूर्च्छनामिति तां प्राहुर्मुनयो ग्रामसम्भवाम्' । सा चैकविंशतिविधा । यदुक्तम्-'सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः' इति यथोक्तया सह समूर्च्छना । इत्येतावता दमयन्ती गीत्योः साम्यमुक्तम् । अधुना तु भेदं निरूपयति—किन्त्विति ॥ लयस्तत्परता । द्रुतमध्यविलम्बितलक्षणश्च ॥ ५० ॥

प्रसिद्ध कीर्तिवाली ( वह दमयन्ती ) तुम में उत्सुकता के कारण तुम्हें याद करती करती मूर्च्छित हो जाती है किन्तु स्वामिन्, तुम में उसकी तत्परता नष्ट नहीं होती ॥ ५० ॥

[ यहाँ भी दमयन्ती और गीति में कुछ समानता दिखाकर कुछ असमानता भी दिखाई गयी है, जिसमें दमयन्ती की उत्कृष्टता व्यक्त हो रही है ।

दमयन्ती पक्ष—संगीत का :—सुन्दर गीत ( कीर्ति ) वाली है । समूर्च्छना—तुम्हें याद करती करती मूर्च्छित हो जाती है ।

गीतिपक्ष—संगीत का स्वर, गुण, दूषण, ग्राम आदि लक्षणों से युक्त है । समूर्च्छना =१ मूर्च्छनाओं से विशिष्ट है । संगीतकत्व और समूर्च्छनात्व रूपक समानता दोनों में है । विषमता यही है कि गीति में द्रुत, मध्य, विलम्बित आदि लय का भङ्ग होता है किन्तु दमयन्ती में लय ( तत्परता और तल्लीनता ) का अभाव नहीं है ॥ ५० ॥ ]

एवमुक्तवति किन्नरेश्वरे किमप्यलीककोपकुटिलल्लोलदभ्रूवलया-वलितकंधरमवलोक्य किन्नरी वक्तुमारभत ॥

किन्नर पति के ऐसा कहने पर कुछ मिथ्या कोप के कारण भ्रूपङ्क्तियों को चंचल बनाती हुई गर्दन घुमा कर बोलना शुरू की ।

'सुन्दरक' मा मैवं वादीः ॥

'सुन्दरक ऐसा न कहो ।"

गुञ्जाक्षी घनवार्वृद्ध्याः सुवाचः काकलीस्वरा ।
दमयन्त्याः कथं गीतिः सादृश्यमवगाहते ॥ ५१ ॥

शुष्केति ॥ शुष्कमवक्रमङ्गमवयवो यस्या । कु ईषत् कलोऽस्यामिति (गौरादित्वान्ङीषि) काकलि निषादसंज्ञ स्वरो यस्या । वैसादृश्यपक्षे शुष्कमनार्द्रम् । काकरी श्लेष्मवैगुण्याद् द्विधामून स्वरः ॥ ५१ ॥

शुष्काङ्गी (कृश अङ्गो वाली), सुगठित तथा आकर्षक अवयवो वाली, सुन्दर वाणी और मधुर स्वर वाली दमयन्ती की समानता गीति कैसे धारण कर सकती है ? ॥ ५१ ॥

[ गीति पक्ष—गीति शुष्काङ्गी (नीरस स्वरूप वाली) है। यद्यपि वह कही सरस भी होती है फिर भी कोई कोई गीति नीरस भी हो जाती है।

दमयन्ती तो आद्यन्त अशुष्क है। गीति काकलीस्वर (खर-खर स्वर वाली) है। गाने वाले को कफ वगैरह आ गया तो स्वर बिगड जायगा अतः उसमे खरखरापन का आना स्वाभाविक है।

दमयन्ती पक्ष—इस पक्ष मे शुष्काङ्गी का शुष्क शब्द कृश अर्थ का बाधक है। कृशाङ्गी होना नायिका के लिये गुण की बात है। काकलीस्वरा (मधुर स्वर वाली) ॥ ५१ ॥ ]

अपि च—

गीतेर्ग्रामाः किल द्विधा सा तु ग्रामसहस्रभाक् ।
कूटतानघना गीतिः कथं तस्याः समा भवेत् ॥ ५२ ॥

गीतेरिति ॥ षड्जमध्यमगान्धाराख्यो ग्रामा । गान्धारस्य स्वर्गविषयत्वाद् द्वावेवेति द्विधा । ग्राम खेटक च । कूटतानाः पञ्चविंशत । तैर्घना । दमयन्ती तु न कपटविस्तारबहुला ॥ ५२ ॥

गीति के तो दो ही तीन ग्राम होते है, उसके तो सहस्र ग्राम है। कूट, तान, और घन वाली गीति उस (दमयन्ती) के समान कैसे हो सकती है ? ॥ ५२ ॥

( गीति मे षड्ज, मध्यम और गान्धार तीन ग्राम होते है। गान्धार को यदि केवल स्वर्ग मे ही प्रयोज्य माना जाय तो दो ही बच जाते है। इसी लिये द्विधा शब्द का प्रयोग किया गया है। पैंतिस कूट तान होते है। अत एव गीति कूटतानघना (कूटतान से भरी हुई) है। दमयन्ती कूट (छल) के तान (विस्तार) के घन (बहुलता) से रहित है। उसमे छल प्रपञ्च की बहुलता नही है। अत दमयन्ती और गीति मे कोई तुलना नही है ॥ ५२ ॥

किं चान्यत्—

ज्वरितेव बहुलङ्घनप्रयोगप्रकाशितमूर्च्छना बहुलकम्पा च, उन्मत्तेव बहुभाषा बहुताला च, वेश्येव बहुगा बहुदत्तरागा च, भटवीव बहुककुभभेदा बहुलनिषादस्थानका च गीतिरियम् ॥

ज्वरितेत्यादि ॥ लङ्घनमुद्ग्राहितादधिकोच्चारणम् । पक्षे लङ्घनं शोषणम् । अनशनमिति यावत् । प्रयोगे उच्चारणे प्रकाशिता मूर्च्छना उच्चमन्द्रादिका यस्याम् । पक्षे प्रकृष्टा योगा क्वाथादयः । मूर्च्छना मोहः । कम्पोऽलङ्कृतं स्वरकम्पं च चलनम् । उन्मत्तेति । भैरवीप्रभृतयः षट्त्रिंशद्भाषा । तालश्चच्चत्पुटादिः । उन्मत्ता च बहु भाषते तालिकाश्च दत्ते । वेश्येवेति । रागः श्रीरागादिः । तथा बहुलढक्कनामा रागो यस्याम् । वेश्या तु बहुषु रागोऽस्या इति बह्वासक्तिः । प्रभूतढक्कारगामिनी च । ढक्काशब्दोपलक्षिता क्रीडया करोहतिः ढक्का । यमे- प्रत्यर्पयद्दृढः । अटवीति ॥ ककुभो ध्वनिविशेषः । निषादः स्वरविशेषः । स्थानकं मन्द्रमध्यमतारलक्षणम् । अटवीपक्षे ककुभोऽर्जुनवृक्षः । निषादाः शबराः । स्थानकान्यालवाला शिविरसन्निवेशाश्च । एवं ज्वरिताद्युपमानप्रतिपादितदोषा गीतिः कथंकारमिव दमयन्तीसमा ॥

ज्वरग्रस्त स्त्री की तरह गीति अत्यधिक उच्चारण द्वारा मूर्च्छनाओं को प्रकाशित करती है, बहुत कम्प व्यक्त करती है। पगली स्त्री की तरह विविध ढंग की उक्तियां और तालों से युक्त होती है। वेश्या की तरह बहुगा ( बहुत गान वाली ) तथा विविध रागों वाली होती है। जंगल की तरह बहुत ककुभ ( ध्वनि ) युक्त, निषाद ( स्वर ) और स्थानक ( मन्द, मध्यम, तार आदि स्थानकों वाली ) होती है।

[ ज्वरित स्त्री पक्ष :—ज्वर से पीड़ित स्त्री बहु + लङ्घन + प्रकाशित + मूर्च्छना होती है। बहु ( अधिक ) लङ्घन ( उपवास ) प्रयोग ( करने ) से दुर्बल होकर प्रकाशित मूर्च्छना ( मूच्छित हुआ करती ) है। अत्यधिक उपवास के कारण मूर्च्छा व्यक्त करती है।

बहुलकम्पा :—ज्वरावेग में आकर शरीर को कंपाती रहती है।

गीति पक्ष :—बहुलं + घन + प्रयोग + प्रकाशित + मूर्च्छना बहुत अधिक उच्चारण द्वारा विभिन्न मूर्च्छनाओं को व्यक्त करती है। बहुलकम्पा :—स्वर तथा आलाप के कारण विविध कम्पनों से युक्त होती है। गाते समय लोग जोर से उच्चारण करते हैं जिससे विभिन्न मूर्च्छनायें व्यक्त होती हैं और आलाप लेते समय स्वरों में उतार-चढ़ाव के अवसर पर कम्पन भी होता है। कम्प एक स्वर भी होता है।

उन्मत्त स्त्री पक्ष—पगली स्त्री बहुभाषा ( बहुत कुछ अनावश्यक ढंग से बड़बड़ाती रहती ) है। बहुताला ( पागलपन के मारे कभी ताली बजाती है या ताल गरजाती ) है।

गीति पक्ष :—बहुभाषा :—गीति, भैरवी आदि छत्तिस भाषाओं से समन्वित होती है। बहुताला—चच्चत्पुट आदि तालों से मण्डित होती है।

वेश्या पक्ष—बहुगा—वेश्या बहुतो के पास जाती है। बहुदृष्टरागा—उसका अनुराग बहुतो के प्रति देखा जाता है।

गीति पक्ष—बहुगा—बहुत गान युक्त होती है। बहु+इष्ट+रागा—श्री आदि विविध राग उसमे पाये गये हैं या देखे गये हैं।

अटवी पक्ष —बहु+ककुभभेदा —जङ्गल म विविध प्रकार के ककुभ ( अर्जुन वृक्ष ) पाये जाते हैं। बहुलनिषादस्थानका = बहुत से निषाद ( किरात ) और स्थानक ( अलवाल ( थाले ) और कुटीर ) से जगल भरे रहते हैं।

गीति पक्ष .—बहुककुभभेदा—विविध ककुभ ( ध्वनियो ) के भेद से युक्त। बहुल + निषाद + स्थानका—बहुत निषाद ( स्वर ) और मन्द्रमध्यम, तार आदि सागीतिक तत्वो से युक्त। जो ज्वरित स्त्री की तरह क्षीण है, पागल की तरह बुद्धिहीन है, अटवी की तरह अव्यवस्थित है ऐसी गीति स्वस्थ, बुद्धिमती और व्यवस्थित दमयन्ती के समान कैसे हो सकती है ? ]

तद्वरमिदमुच्यताम्—

वेदविद्योपमा देवी मनोहरपदक्रमा।
उद्द्योतिता पुराणाङ्गमन्त्रब्राह्मणशिक्षया ॥ ५३ ॥

वेदेति ॥ पदक्रम पदन्यास । पुराण जीर्णं वपुर्येषाम्। तथा मन्त्रप्रधानब्राह्मणानां पुरोध मन्त्रीणां च शिक्षयोपदेशेनोद्द्योतिता। वेदविद्या तु पदक्रमाभ्यामभिधीयते। पुराणाना मार्कण्डेयादीनाम्। अङ्गानां शिक्षाकल्पनादीनाम्। मन्त्र ब्राह्मणस्य ग्रन्थविशेषस्य शिक्षयाऽभ्यासेन भूष्यते। अन्त पुरे हि वृद्धा एवाधिक्रियन्ते। यदुक्तम्—'आशीतिकाश्च पुरुषा पञ्चाशत्काश्च योषित। क्षुन्ते रन्तःपुराणां सौविदल्लाधिकाश्च ये' ॥ ५३ ॥

अच्छा हो यदि यह कहा जाय—

पुराने अवयवो वाले, मन्त्र ( मन्त्रणा ) मे प्रधान स्थान रखने वाले वृद्ध ब्राह्मणो की शिक्षा से उद्भासित, मनोहर ढंग से पदविन्यास करने वाली देवी ( दमयन्ती ) वेदविद्या की तरह है ॥ ५३ ॥

[ वेदविद्या पक्ष .—वेदविद्या मनोहर पद-क्रमा होती है । उसका स्वाध्याय पदपाठ और क्रमपाठ के माध्यम से किया जाता है । वेदपाठ के एकादश प्रकार होते हैं—संहितापाठ, पदपाठ, क्रमपाठ, चर्चा, श्रावक, चर्चक ( क्रमचर्चक ) श्रवणोपार, क्रमपार, घट (क्रमघट), जटा ( क्रमजट ), दण्ड ( क्रमदण्ड ) । पुराणाङ्गमन्त्र ब्राह्मणशिक्षया उद्भासित रहती है । मार्कण्डेय, भागवत आदि पुराणो, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प आदि अङ्गो और मन्त्र ब्राह्मण ग्रन्थों से उज्ज्वल है । देवी दमयन्ती भी

पुरानाङ्ग मन्त्र ब्राह्मण जिसका उद्भासित है। पुराने अङ्गों वाले सचिवालय के मुख्य ब्राह्मणों द्वारा प्रशिक्षित, मनोहर-पदक्रमा ( सुन्दर पद-विन्यास करने वाली ) है। दमयन्ती के शिक्षक वृद्ध ब्राह्मण थे। इन ब्राह्मणों का कार्य मन्त्रणा देना भी था। पुरोहित आदि उच्च कोटि के लोग उसके शिक्षक थे। वेद विद्या की तरह उसका स्वरूप स्थिर है ॥ ५३ ॥ ]

किं त्वियमेकपथा, सा तु शतपथा' इत्येवमनेकविधवक्रोक्तिविशेषैरभिनन्दयति दमयन्तीं किन्नरमिथुने, भूतभूयिष्ठायां विभावर्याम्, सुरसद्म इवादृश्यमानमानुषे निशीथे, स्थगितवति भृङ्गभासि तमसि भुवनम्, अनन्तरमवसरपाठकः पपाठ ॥

किन्त्विति। इयं दमयन्ती एकमार्गा। वेदविद्या तु शतशतपथाख्यग्रन्था। भूयिष्ठं भूता अतिक्रान्ता, भूतभूयिष्ठा। आहिताग्न्यादित्वात्। निशीथे तमोऽतिशयान्मानुषादर्शनम्। सुराणां मनुष्ये च स्वभावात् ॥

किन्तु यह तो एकपथा ( एक नय-मार्ग पर चलने वाली ) है। वह ( वेदविद्या ) तो शतपथा ( सैकड़ों मार्ग देखी है या शतपथ ग्रन्थ के अनुसार देखी गयी ) है। इस तरह अनेक प्रकार की वक्रोक्तियों से दमयन्ती के किन्नर-मिथुन विनोद कर रहे थे तब तक काफी रात बीत चली। देव-समूह सदृश रात्रि में मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते थे। भ्रमर सदृश कान्ति वाला अन्धकार संसार को आच्छादित कर चुका था। ऐसे समय में अवसर-पाठक ने पढ़ा—,

[ यहाँ देवसद्म से रात्रि की तुलना की गयी है। देवसद्म अदृश्यमान मानुष होता है। देवताओं के समूह में मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते। रात्रि भी अदृश्यमान-मानुष है। अन्धकार की अतिशयता में उसमें भी मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते। ]

'उपरम रमणीयात्किन्नरद्वन्द्वगीता-
दभिभवति निशीथो नाथ नेत्राणि पश्य।
मदनवशविलोलल्लोचनाम्भोरुहाणां
मिलतु कुलवधूनां सेवको लोक एषः ॥ ५४ ॥

"महाराज ! देखिये, रात्रि नेत्रों को परास्त कर रही है। किन्नर-युगल के मनोहर गीत से विराम ग्रहण कीजिये जिससे कि काम के वशीभूत चञ्चल नेत्र कमलों वाली कुलवधुओं का यह सेवक समूह ( उनसे ) मिल सके ॥ ५४ ॥

[ परिजन अपनी प्रियाओं के साथ वार्ता कर रहे थे। राजा जब तक जा रहे थे तब तक उनका जाना और उनकी सेवा में रहना आवश्यक था। रात काफी जा चुकी थी परिजनों की कान्ताएँ उनकी प्रतीक्षा में थीं। इसी लिये

अवसर-पाठक राजा को विश्राम करने के लिये कह रहा है। राजा के विश्राम करने पर ही परिजनों को अपनी प्रियाओं से मिलने का अवसर मिलेगा। सेवक शब्द यहाँ शुद्ध प्रेमी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कुलाङ्गनाओं के साथ मिलन का प्रसङ्ग है। अत सेवक पद ज्यादा औचित्यपूर्ण है॥ ५४॥

अपि च—

शतगुणपरिपाट्या पर्यटन्नन्तराले
कमलकुवलयानामर्धरात्रेऽपि खिन्नः।
उपनदि दयितायाः क्वापि शब्दं निशम्य
भ्रमति पुलिनपृष्ठे चक्रवच्चक्रवाकः॥ ५५॥

दुःखी चकवाक आधी रात में भी नीलकमलों के बीच सैकड़ों तरह से घूमता हुआ नदी के किनारे कहीं प्रिया के शब्द को सुनकर तट पर (बेचैन होकर) चक्र की तरह नाच रहा है।" ॥ ५५॥

अथ यथाप्रियं प्रेषितपरिजनो रजनिशेषमतिवाहयितुमनुरूपं निरूप्य किंनरमिथुनस्य शयनमासन्ननिद्रागृहे हंसपिच्छच्छायाच्छप्रच्छदपटाच्छादितहंसतूलतल्पमभजत्॥

यह सुनकर, परिजनों को अपनी-अपनी आकाङ्क्षित जगह पर भेजकर रात्रि के अवशिष्ट भाग को बिताने के लिये समीपवर्ती निद्रागृह के पास किन्नर-युगल को अनुकूल शय्या देकर राजा स्वयं हंस पक्ष की कान्ति जैसी कान्ति वाली निर्मल चादर से आच्छादित हंस सदृश, रुई वाली शय्या पर लेटा।

तत्र च दमयन्त्यनुरक्तोऽयमितीर्ष्ययेवानायान्त्यां निद्रायां द्रोणीद्रुमान्तरालसुप्तोत्थितविविधविहगविरुतानि विनिद्रवनदेवतापठ्यमानप्राभातिकपुण्यकीर्तनानीवाकर्णयन्ननेककालप्रणालिकापर्यायेण पर्यस्तेऽस्तगिरिमस्तके मुक्तास्तबकितनीलवितानपट इव तारातिमिरपटले, पट्टांशुकवैजयन्तीष्विव भविष्यति दिनकरोदयोत्सवे नभस्तलमलंकुर्वतीषु पूर्वस्यां दिशि प्रभातप्रभावल्लरीषु, वल्लकीक्वणरमणीये श्रयति श्रवणपथमीषदुन्मिषत्कमलमुकुलमुपमुक्तमधुकरमन्द्रध्वनौ, ध्वस्तनिद्रेण प्रभातोचितपड्जानुविद्धशुद्धभाषामालपतानेन किंनरमिथुनेन गीयमानमिमं श्लोकमशृणोत्॥

तत्रेति॥ द्रोण्यां द्रुमास्तेषामन्तराले द्रोणीद्रुमान्तरालम्। मध्ये निम्न प्रान्तयोश्चोन्नतरतरुश्रेणिविराजितो नौसदृशः पर्वतादिभूभागो द्रोणी। यदाह मुकुटताडितकनाटके बाण—'आशा मोषितदिग्गजा इव गुहाः प्रध्वस्तसिंहा इव, द्रोण्यः कृत-

महाद्रुमा इव सुवः प्रोल्लासशैला इव । विश्रान्ताः क्षपकालरिक्तमकलङ्कैटोत्यकर्षा दृशां, ज्ञाताः पीनमहारया' कुहरतेर्दैवस्य शून्याः समाः' ॥ यया प्रणालिकया काल इयानिति ज्ञायते, सा काष्ठप्रणालिका ताम्रमयघटिका। अथवा प्रकृष्टा नाडिकैव दम्पत्योरैक्ये प्रणालिका। नाडिका कालविशेष । तथा च 'अहोरात्रं च विद्वद्भिः कथ्यते षष्टिनाडिकम्'। यथा च—'स्नात्वा तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता वारोऽङ्गराजस्वसुर्द्यूते रात्रिरियं जिता कमलया देवी प्रसाद्याद्य च। इत्यन्तःपुरसुन्दरीः प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते, देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थितं नाडिकाः'।' अन्यदपि प्रणालिकया जलपद्धत्या परिच्छिद्यते। ताराणां मुक्ता, तिमिरपटलस्य नीलविनालपट इत्यर्थः ॥

"यह दमयन्ती न अनुरक्त है।" मानो इस ईर्ष्या से निद्रा नहीं आ रही थी। नौका सदृश आकृति वाली (ऊँची-नीची) पर्वतीय भूमि के पेड़ों के बीच सो कर उठे हुए पक्षियों का कलरव जो हुई वनदेवता द्वारा पढ़े जा रहे प्रातःकालीन पवित्र कीर्तन की तरह सुन रहा था। समय गति के क्रम से तारे और अन्धकार अस्ताचल के मस्तक पर मुक्ता के गुच्छों से युक्त नीले तम्बू के वस्त्र की तरह बिखरे थे। भविष्य में होने वाले सूर्योदयोत्सव के उपलक्ष्य में आकाश को अलंकृत करती हुई पूर्व दिशा की प्रातःकालीन कान्तिलताएँ चिक्कण वस्त्र से बनी हुई पताका की तरह लग रही थीं। थोड़ी-थोड़ी चिटकती हुई कमल कलिका के मुख से निकले हुए भ्रमरों की गम्भीर ध्वनि वीणा की झङ्कृति की तरह लग रही थी। प्रातः काल के अनुकूल षड्ज ध्वनि युक्त शुद्ध भाषा में किन्नर-युगल द्वारा गाये जाते हुए इस श्लोक को सुना—

'धुतरजनिविरामोन्मीलदम्भोजराजि-
स्त्वनुतुहिनतुषारान्द्विगरन्गन्धवाहः ।
स्खलितकलभकुम्भभ्रमभ्रान्तिमुद्राटितेषु
स्खलति निधुवनान्तश्रान्तकान्ताकुचेषु ॥ ५६ ॥

"पवन ने रात के अन्त में खिलती हुई कमल-पंक्ति को हिला दिया है। छोटे-छोटे ओस के बिन्दुओं को बरस रहा है और रतिक्रीडा के अन्त में थकी हुई कान्ताओं के स्तनों पर जो हाथी के बच्चे के कुम्भस्थल की भ्रान्ति उत्पन्न कर दे रहे हैं, स्खलित हो रहा है" ॥ ५६ ॥

तदनु पुनः प्रभातप्रहतप्रयाणभेरीरवविनिद्रितस्यापूरयतः समविषमवनविभागानुत्कल्लोलजलनिधेरिव चलत सैन्यसमूहस्य कलकलमाकर्णयन्नुत्थाय कृतोचिताचारश्चारुचर्चितचन्द्रचूडचरणश्चटुलखुरचारीप्रचारेणाडम्बरिततान्डवस्य खण्डपरशोः पदलीलामिवाभ्यस्यता स्फुरद्घुरघुरायमाणघोणाप्रस्खलत्खलीनवशविगलित-

यद्बहललालाजलप्लवेन वनभुवि फेनिलजलनिधिमिवाकारयता जात्यतर-तुरगसैन्येन परिवृतः पूर्वप्रस्थानस्थित्या प्रतस्थे ॥

इसके बाद पुन: प्रातःकाल बजाये गये प्रस्थानसूचक नगाडे की आवाज से जगे हुए, वन के ऊँचे-नीचे स्थलों को भरते हुए, कल्लोलपूर्ण समुद्र की तरह उमडते हुए सैन्य समूह के कलकल स्वर को सुनकर जगा और दैनिक कार्य किया। भगवान् शंकर का अच्छी तरह पूजन किया। खुर की विशिष्ट गति से उछलते हुए, मानो ताण्डवनृत्य करते हुए भगवान् शंकर की पद-लीला का अनुकरण करते हुए, फडफडाती हुई तथा घुर-घुर ध्वनि करती हुई नासिका के अग्रभाग से खिसकते हुए लगाम धारण करने के कारण गिरते हुए लार की जलधारा से मानो वनस्थली पर फेनिल जलनिधि का आह्वान करते हुए उत्तम कोटि के घोडों वाले सैन्य के साथ पूर्व प्रस्थान के अनुसार पुन: चल पडा।

स्थपुटस्थलीस्थितं स्थूलमेकमग्रमग्रे राजा गजग्रामण्यमचलीस्य पुष्कराक्षमभाषत ॥

राजा सामने की ओर एक ऊँची-नीची अव्यवस्थित जगह पर चुपचाप ठहरे हुए एक मोटे हाथी को देखकर पुष्कराक्ष से कहा—

'भद्र—

सालानकमनालानमत्युन्नतमनुल्लतम् ।
दन्तयन्तमदन्तं च पश्यैनमचलं गजम् ॥ ५७ ॥

सालेति ॥ अलीनां समूह आलं तदेव प्रयाणकस्थानपटहस्तेन सह। मदविधुरगजे भृङ्गाः समीपीभवन्ति। तेन च मत्तो ज्ञायत इति भावः। तथा अनालान बन्धस्थानाग्निरर्गलस्तम्भम्। तथातीवोन्नतमुच्चम्। तथा नास्ति उल्लता प्रेरणा यस्येति स्वच्छन्दचरमित्यर्थः। यद्वा अनुल्लेत्यामन्त्रणम्। तमिति गजविशेषणम्। दन्तवन्तं दन्तुरम्। अदन्त तृणादिकमदन्तं। अचलं गिरिभिं गजं पश्येति सम्बन्धः। अथवा सालांस्तरूनदन्तम्। तथा अक्रमकुत्सितम्। सर्वलक्षणपरिपूर्णम्। तच 'उच्चै कुम्भ—' इत्यादिना वक्ष्यति। अत्र 'क्रिम्' चेये। शेषं पूर्ववत् ॥५७॥

"भद्र, भ्रमरसमूह रूप नगाडे से युक्त, शृङ्खलारहित, प्रेरणाविहीन, अत्यन्त उन्नत, दाँतों से युक्त (वृक्षादि को) खाते हुए इस पहाडी हाथी को देखो ॥ ५७ ॥

[ सालानकम् —सह = स + आल + आनक = सालानकम्। अलि ( भ्रमर ) के समूह को आल कहते हैं। आनक का अर्थ नगाडा है। आल ( भ्रमर समूह ) और आनक (नगाडे) से सहित जो होगा वह सालानक कहलायेगा। गजमद का

आस्वादन करने के लिये भ्रमरों का समूह कुम्भस्थल पर भनभना रहा है। अतः भ्रमर ही मानक 'नगाड़े' का काम कर दे रहे हैं। राजकीय हाथियों के कुम्भ पर युद्ध के समय नगाड़ा रखकर बजाया जाता है। यह जंगली हाथी है। इस पर नगाड़े का काम भ्रमर ही करते हैं।

अनालानम्—आलान (सिक्कड़) रहित। जंगली हाथी है इसलिये इसमें सिक्कड़ नहीं है। अत्युन्नतम् (अत्यन्त उच्च) है अनुन्ने। तम् (उसे) देखो। नुन्न का अर्थ है। प्रेरित। अनुन्न का अर्थ है अप्रेरित। अथवा अनुन्नत है। अर्थात् अकड़ कर नहीं खड़ा है। साधारण एवं स्वाभाविक स्थिति में खड़ा है। दन्तवन्तम् (दाँतवाले) अदन्तम् (खाते हुए) अग + जम् (अग (पर्वत) से उत्पन्न होने वाले) गजम् (हाथी) को देखो। परिहार पक्ष के सभी अर्थ ये ही हैं। आपाततः विरोध की प्रतीति यहाँ होती है। सानानक है फिर भी अनालान है। अत्युन्नत है फिर भी अनुन्नत है। दन्तवान् है फिर भी अदन्त है। अगज है फिर भी गज है ॥ ५७ ॥ ]

अयं हि मन्मथविलासेषु परं वैदग्ध्यमवलम्बते ॥

कामक्रीडा में यह अत्यन्त निपुण है।

तथाहि—

मृदुकरपरिरम्भारम्भरोमाञ्चितायाः
सरसकिसलयाग्रसद्योपार्पणेन।
मदमुकुलितचक्षुश्चाटुकारी करीन्द्रः
शिथिलयति रिरंसुः केलिकोपं प्रियायाः ॥ ५८ ॥

क्योंकि—

रतिच्छा से आँखों को निमीलित कर चाटुकारिता करने वाला यह गजेन्द्र सरस तथा नवीन पत्तों के अग्रभाग का कवल देकर अपने कोमल कर (सुंड) के आलिङ्गन से रोमाञ्चयुक्त प्रिया के कोप को रमण की इच्छा से शिथिल कर रहा है ॥ ५८ ॥

अपिच—

उपनयति करे करेणुकायाः किसलयमङ्गमनङ्गसङ्गताङ्गः।
स्पृशति च चलदक्षिपक्ष्मलेखं मुखमखरेण करेण रेणुदिग्धम् ॥५९॥

कामयुक्त अङ्गवाला (यह हाथी) हथिनी के कर (सुंड) में कोमल पत्र खण्ड दे रहा है। चंचल पक्ष्म-पंक्तियों से अलंकृत नेत्र वाले उसके धूलि धूसरित मुख को अपने कोमल कर (सुंड) से छू रहा है ॥ ५९ ॥

अथवा विवेकपूर्वव्यवहारविचारेष्वमी मानुषेभ्यः स्तोकमेवाव-हीयन्ते ॥

( ऐसा प्रतीत होता है कि ) विवेकपूर्ण व्यवहार और विचार में मनुष्य की अपेक्षा ये थोड़ा ही कम होते हैं।

तथाहि—

श्रूयते पुरा किल नारायणनाभ्यम्भोरुहकुहरकुटीमधिशयानस्य वेदविद्यां निगदतो भगवतः पितामहस्य बृहद्रथन्तरविकीर्णभासमानानि सामानि गायतः सामस्तोभरसनिष्यन्दादुदपद्यन्तैरावतसुप्रतीककुमुदवामनाञ्जनप्रभृतयोऽष्टौ दिग्गजेन्द्राः ॥

' श्रूयत इति ॥ सामस्तोभरसनिष्यन्दाद्विति । सामनि स्तोम आलापितस्तमात् सरय स्वेदस्य निष्यन्द स्रावस्तत इत्यर्थ । स्तोकरसपाठे तु रस आसक्ति । निष्यन्द स्वेदः ॥

सुना जाता है कि पुराने जमाने में जब नारायण के नाभिकमल की कुटी में लेटकर ब्रह्मा वेद गा रहे थे। बृहद्रथन्तर के फुटकल सुन्दर सामों को गाते समय सामस्तोम के रसबिन्दु से ऐरावत, सुप्रतीक, कुमुद, वामन, अञ्जन आदि आठ दिग्गजेन्द्र उत्पन्न हुए।

तेभ्योऽभवन्भद्रमन्द्रमृगसंकीर्णजातयो गिरिचरनदीचरोभयचारिणः करिणः ॥

उनसे भद्र, मन्द्र और मृग नामक पर्वत में घूमने वाली, नदी पर चरने वाली और पर्वत तथा नदी दोनों पर भ्रमण करने वाली क्रमश संकीर्ण जातियाँ उत्पन्न हुईं।

प्रसिद्धं चैतत् । 'सामजा गजाः' इति ॥

यह प्रसिद्ध है कि हाथी साम से उत्पन्न हुए है।

केचित्पुनरन्यथा कथयन्ति—

कुछ लोग दूसरी तरह कहते हैं—

किल सकलसुरासुरकरपरिवर्त्यमानमन्दरमन्थानमथितदुग्धाम्भोनिधेरजनि जनितजगद्विस्मयो लक्ष्मीमृगाङ्कसुरभिसुरद्रुमधन्वन्तरिकौस्तुभोच्चैःश्रवसां सहभूः शशधरकरकान्तिरैरावत । तत्प्रसूतिरियमशेषवनान्यलंकरोतीति ॥

समस्त देवों और दानवों के हाथों से घुमाये जाते हुऐ मन्दराचल रूप मन्थदण्ड से क्षीर सागर के मथने पर संसार को आश्चर्य में डाल देने वाला

चन्द्र की कान्ति सदृश शुभ्र ऐरावत लक्ष्मी, चन्द्रमा, कामधेनु, कल्पवृक्ष, धन्वन्तरि, कौस्तुभ तथा उच्चैःश्रवा के साथ ही उत्पन्न हुआ। उसी की सन्तान समस्त वनों को अलङ्कृत कर रही है।

तदेष भद्रजातिर्भविष्यति।

यह तो भद्रजाति का होगा, क्योंकि—

तथाहि—

उच्चैःकुम्भः कपिशदशनो बन्धुरस्कन्धसंधिः
स्निग्धाताम्रद्युतिनखमणिर्लम्बवृत्तोरुहस्तः।
शूरः सततमदपरिमलस्पर्शिदानोदकोऽय
भद्रः सान्द्रद्रुमगिरिसरित्तीरचारी गजेन्द्रः ॥ ६० ॥

कुम्भस्थल ऊँचे हैं, दाँत पीले हैं, कन्धा और ओठ मनोहर हैं, नख मणि की तरह लाल और चिकने हैं, हस्त सूँड़ गोल है, सूँड़ विशाल है, मदजल सप्तच्छद के मकरन्द की गन्ध से स्पर्श करता है, घने पेड़, पहाड़ और नदियों के तट पर विहार करने वाला, यह वीर गजेन्द्र बड़ा ही भद्र है ॥ ६० ॥

तन्मोदनामयम्, अनुरागिणोर्दम्पत्योः क्रीडारसविघातः कृतो न श्रेयान्' इत्यभिधाय, हतहृदयः, स्वैरं रममाणमृगमिथुनविलासैः उत्कण्ठितपुलकः कुसुमितकाननानिलैरुत्कण्ठ्यमानः, क्षपणिर्घ्रपोपान्तपादपवलयवल्लकेलिकिलकिलकेकारवैर्विनोद्यमानः समीपचरसेवकसुमापितैश्च, सममसमं च, निम्नगाप्रमनिम्नगारं च प्रायविषमप्रायविषमं च, सश्वापदमश्वापदं च, सपादपमपादपं च, निष्पदस्कन्धमुल्लङ्घ्य, 'देव, विलोक्यतामिह विषमविषाणि पन्नगकुलानि भोगिगहनं च, इह शरासनकरम्याणि वनानि पापर्द्धिकपुलिन्दवृन्दं च, इह बहुसुखानि वारणद्वन्द्वानि रत्नाकरस्थलं च, इह सुमधुराणि फलानि कीचकवनं च, इहामोदिनिम्बकुसुम्भि कुसुमानि सरित्तीरं च, इह सत्यभावनयानि दग्धारण्यानि मुनिमण्डलं च' इति विविधवनप्रदेशान्दर्शयतः पुष्कराक्षस्य विचित्रवचनोर्मीर्भावयन् नमेगातिक्रम्य शिखरपरम्परां परैरमहा सहावलमनतार ॥

टिप्पणी। उच्चैःकुम्भ इत्याद्यभिधायकेन तेनैव करिणा हृतहृदयो मृगमिथुनविलासादिभिः पुलकाङ्कितेन ईदृशा दिग्वनमतिक्रम्य 'देव, वीक्ष्यताम् इह विषयकन्दे इदमिदमिति वनप्रदेशान्दर्शयता पुष्कराक्षस्य वक्रोक्तीर्भावयन्निक्रान्तशिखरपरम्परा' सहमयात्। केडये किलतीति केलिकिल ('इयुपच' इति क) क्रीडापात्रम्।

केलिकिलानां केकानुकारप्रवृत्तानां च केकारवैर्विनोद्यमानः। सह मया धिया समं सधीकम्। असम विषमम्। न समोऽस्येति कृत्वा उत्कृष्ट वा। निम्नगा नदी त्रायत इति क। तथा अनिम्नमुच्च यात्र मूर्तिर्यस्य। ग्रावभिर्दृषद्भिर्विषमम्। अग्रे अव-विषमसमम्। अवेति नञर्थे। श्वापदं हिंस्रपशु। अश्वानामपदमभूमिम्। समनिर्जलो हि देशोऽश्वोयः। अयं च ग्रावविषयो निम्नगाधारश्च। सह पादपैर्वृक्षैः। तथा अपादान् गूढपद पातीत्यपादपम्। शून्ये हि सर्पादिप्राचुर्यम्। अथवा अतिवैषम्या-त्सचरतो पदान् न पातीत्यपादपम्। इह विपेनि॥ विषम विषं येषु पन्नगकुलेषु। द्रोणीगहनेषु तु विषमा विषाणिनो दन्तिन शृङ्गिणा वा शम्बरादयो यत्र। इह शरेति॥ शरेण मुञ्जेन असनेन बीजकवृक्षेण च कर्बुराणि शबलानि। पुलिन्दवृन्दं दारासन धनु करे यस्य। तथा बाणा सन्त्यस्येति बाणि सशरम। इह बेति॥ बहु सुखं येषा तानि बहुसुखानि। स्थल तु बहु विपुलम्। तथा सुष्ठु मानिराकरो यत्र। बहुशाद्र वैपुल्येऽपि। इह सुमेति॥ सुष्ठु मधुराणि वन तु सुष्ठु मधु यत्र तासुमधु। तथा रणन्त्यवश्यं राणि। सच्छिद्रा हि वंशा वायुवशात्क्वणन्तीति। इहामविति॥ आमोदिता सुरभिता विश्वाः सर्वा ककुभो दिशो यैः। तीरं तु आमोदिना हर्षिता यय पक्षिण श्वका शुन मंजुर्वा वृका कुम्भिनश्च गजा यत्र। आमोदो हर्षेऽपि। यद्विश्वप्रकाश—'आमोदो गन्धहर्षयो।' यदा तु विश्वा शुण्ठी कुम्भी च वल्लीविशेष। तदा बहुव्रीहौ 'शेषात्'—इति कब्दुर्वार'। साहश्यवृत्ते शुभ। सज्ञाप्रतिकृत्यो कन्। इह सेति॥ सती शोभना प्रभा कान्तिस्तया वर्ज्यानि रहितान्यरण्यानि सुनिमण्डल तु साप्रभावम्'। तथा ध्यानमस्यास्तीति ध्यानि॥

अच्छा, यह करे आनन्द का अनुभव। अनुरागी दम्पतियों के क्रीडारस में विघ्न डालना अच्छा नहीं।" यह कह कर विह्वल हो उठा। स्वच्छन्द विहार करते हुए मृगदम्पतियों के विलास ( दर्शन ) से रोमाञ्चित हो गया। पुष्पित काननों की हवा से काँप उठा। गिरते हुए झरनों के समीप वाले पेड़ों के नीचे क्रीडापात्र, मयूरों की ध्वनियों और समीपवर्ती सेवकों के सुभाषितों से मनो-विनोद करता हुआ सम ( शोभा-सम्पन्न ) एवं विषम ( ऊँचे नीचे ) निम्नगात्र ( नदियों की रक्षा करने वाले ) ग्राम-विषम ( चट्टानों के कारण विषम ) और अग्रवा-विषम ( आगे कुछ दूर सम ) सश्वापद ( हिंसक जन्तुओं से युक्त ) और अश्वापद ( अश्वों के न चलने योग्य ) सपादप ( वृक्षों से युक्त ) और अपादप ( पादरहितों ( सर्पों ) की रक्षा करने वाले ) विन्ध्य स्कन्ध को पार कर, "देव, देखिये यहाँ भयङ्कर विषवाले सर्पों व जन्तु हैं और यह वनी पर्वत भूमि बड़े-बड़े शृङ्गों वाले मृगों से अलङ्कृत है। यहाँ शर और असन वृक्षों से वन चितकबरे रंग का हो गया है और व्याधों का समूह धनुष तथा बाणों से युक्त है। यहाँ किरात दम्पतियाँ बहुत सुखी हैं और रत्नाकर का स्थान भी बहुत सुन्दर खानि ( खजाने से युक्त ) है। यहाँ सुन्दर मीठे फल हैं और कीचक वन सुन्दर मधु से युक्त है तथा राणि ( ध्वनियुक्त ) है। ये फूल समस्त

दिशाओं को सुगन्धित कर दिये हैं और इस नदी-तट के पक्षी, भेड़िये और हाथी प्रसन्न हैं। वन की आग से जला हुआ यह जङ्गल सुन्दर कान्ति से शून्य है और यह मुनिसमूह कान्तिमान् तथा ध्यानमग्न है।" इस तरह वन के विविध भागों को दिखाते हुए युवराज की श्लेषपूर्ण बातों पर विचार करता हुआ उन के विविध चोटियों को पार कर शत्रुओं के लिये असह्य सह्याचल नामके पर्वत पर उतरा।

[ विषम विषाणि से लेकर मुनिमण्डलम् तक अधिकांश स्थलों पर लिङ्ग-श्लेष और वचन श्लेष दोनों हैं। कहीं सामान्य श्लेष भी है।

विन्ध्य स्कन्ध सम है और विषम है। विरोध। सम ( मा ( लक्ष्मी ) से युक्त है इस लिए सम ) है। विषम ( ऊँचा-नीचा ) है। परिहार।

निम्न गात्र है और अनिम्न गात्र है। विरोध। निम्नगा (नदियों ) का त्राण ( रक्षा ) करने वाला है अतः निम्नगा + त्र है और बहुत उच्च ( अनिम्न ) शरीर ( गात्र ) वाला है इस लिये अनिम्न + गात्र है। परिहार

ग्राव + विषम है फिर भी अग्राव + विषम है। विरोध। ग्राव + विषम (पत्थरों के कारण ऊँचा नीचा) है और अग्राव + विषम (आगे कुछ दूर पर शुद्ध जमीन है और कुछ ऊँची नीची भी) है। परिहार। सश्वापद है फिर भी असश्वापद है। विरोध। श्वापद (हिंसक जन्तुओं) से युक्त है और बहुत ऊँचा नीचा होने के कारण अश्वों के चलने योग्य नहीं है।। परिहार।

सपादप है फिर भी अपादप है। विरोध। सपादप ( पादपों से युक्त ) है और अपादप इस लिये है कि अपाद ( पदविहीन ( सर्पों ) की रक्षा करता है। विन्ध्य स्कन्ध की अन्धकारबहुल गुफाओं में सर्प मजे में रह रहे हैं। परिहार।

विषम, विषाणि से लेकर मुनि-मण्डलम् तक लिङ्ग श्लेष और वचन श्लेष हैं।

विषमविषाणि—जब यह पन्नग कुल का विशेषण है तो इसका विग्रह है—विषम है विष जिनका। अर्थात् पन्नग कुल अत्यन्त विषधर हैं। जब यह द्रोणी गहनम् का विशेषण है तो एकवचन है और पन्नगकुलानि के साथ बहुवचन है।

द्रोणी + गहनम्—नौका की आकृति वाली, चारों तरफ ऊँची और बीच में गहरी पथरीली या पहाड़ी जमीन को द्रोणी कहा गया है। द्रोणी का गहन स्थल विषमविषाणि है। विषम ( बड़े-बड़े ) विषाणी ( शृङ्ग वाले जानवर ) जिस द्रोणी गहन में रहते वह विषम विषाणि है। विषमविषाणिन् शब्द के नपुंसक लिङ्ग प्रथमा का एकवचन है।

शरासनकरम्बाणि—यह पद भी वनानि और पार्पद्धिक-पुलिन्द-वृन्दम् दोनों पक्षों में लगेगा।

वन पक्ष वन शर और असन नामक वृक्षों से करम्ब ( कर्बुरित रंग का ) हो गया है।

पुलिन्द-वृन्द पक्ष—इस पक्ष में शरासनकरम् एक पद है और बाणि एक पद है। दोनों पार्पद्धिक-पुलिन्द वृन्दम् के विशेषण है। शरासन ( धनुष् ) जिसके कर में है वह वृन्द शरासनकरम् हुआ। बाण हैं जिनके पास वे बाणि हुए। बाणिन् शब्द के नपुंसक लिंग प्रथमा का एकवचन बाणि है।

बहु + सुखानि—यह पद शबर-द्वन्द्व और रत्नाकर स्थल दोनों में लगेगा। शबर द्वन्द्व—बहुत हैं सुख जिनको वे बहुसुखानि हैं। बहु सुख शब्द का नपुंसक, प्रथमा, बहुवचन। रत्नाकरपक्ष—बहुत से सुन्दर खानि ( खजाना ) है जिसमें वह बहुसुखानि है। इस पक्ष का बहुसुखानि नपुंसक लिंग के प्रथमा का एकवचन है।

सुमधुराणि—फल पक्ष में—पूर्ण मधुर अर्थ है। कीचक वन पक्ष—यहां सुमधु और राणि पृथक्-पृथक् पद है। दोनों ही पद न० प्र० एकवचन है। सुन्दर है मधु जिस में वह सुमधु है। रणन ( ध्वनन ) कार्य सम्पादित होता है जिस से वह राणि कहलाता है। राणिन् शब्द का न० प्र० एकवचन। छिद्र युक्त बांसों के वन को कीचक वन कहते हैं। बांस के वन में मधुमक्खियां मधु का छत्ता लगाती हैं। बांस के छिद्रों में जब हवा का आगमन निर्गमन होता है तो उनसे ध्वनि निकलती है।

आमोदित-विश्वककुम्भि —कुसुम पक्ष—आमोदित ( सुगन्धित ) कर दिया है विश्व (समस्त ) ककुभ् ( दिशाओं ) को जिन फूलों ने। आमोदित-विश्वककुभ् शब्द के नपुंसक लिङ्ग प्रथमा का बहुवचन रूप है।

सरित्तीर पक्ष—प्रसन्न हैं वि ( पक्षी ), श्वक ( जंगली कुत्ते = भेड़िये ) और कुम्भी ( हाथी ) जिस नदी तट पर वह वि + श्वक + कुम्भि कहलाता है। यह नपुंसक प्रथमा का एकवचन है।

सत्प्रभावन्ध्यानि —अरण्यपक्ष—सत्प्रभा ( सुन्दर कान्ति ) से वन्ध्य ( शून्य ) जगत में जिस भाग में आग लग जाती है वह भाग कान्तिहीन हो जाता है। मुनिमण्डल पक्ष में सत्प्रभावन् एक पद है और ध्यानि दूसरा पद है। अर्थात् मुनि लोग सत्प्रभावन् ( सुन्दर कान्ति से युक्त ) हैं और ध्यानि ( ध्यानमग्न ) हैं।]

**रमणीयतया स्निग्धतया च पुनः परिवर्तितमुखो विलोक्य विन्ध्य-दक्षिणमेखलाशिखरश्रेणीपादपान् पुष्कराक्षमभाषत ॥**

'भद्र, दुस्त्यजाः खल्वमी विन्ध्यतटीतरवः ॥

रमणीयता और कोमलता के कारण पुनः मुख फेर कर विन्ध्याचल के दक्षिणी तट शिखर समूह के वृक्षों को देख कर पुष्कराक्ष से बोला—कल्याणि, ये विन्ध्यातट के पेड बडी कठिनाई से छोडे जा सकते हैं।

तथाहि—

आवासाः कुसुमायुधस्य शबरीसंकेतलीलागृहाः
पुष्पामोदमिलन्मधुव्रतवधूझङ्काररुद्धाध्वगाः ।
सुस्निग्धा प्रियबान्धवा इव दृशो दूरीभवन्तश्चिरात्
कस्यैते न दहन्ति हन्त हृदयं विन्ध्याचलस्य द्रुमाः ॥ ६१ ॥

क्योंकि—

किरात-कान्ताओं के संकेत वाले विलास गृह काम के घर हैं। पुष्पगन्ध में मिलती हुई भ्रमरवधुओं की झङ्कृति से पथिक रुक जा रहे हैं। चिरकाल के लिये आंखों से दूर हो रहे प्रिय बन्धु की तरह विन्ध्याचल के ये पेड किसके हृदय को व्यथित नहीं कर देते ? ॥ ६१ ॥

अपि च—

भ्राम्यद्भृङ्गभरावनम्रकुसुमश्च्योतन्मधूद्गन्धिषु
च्छायावत्सु तलेषु पान्थनिचया विश्रम्य गेहेष्विव ।
निर्यन्निर्झरवारिवारिततृषस्तृप्यन्ति येषां फलै-
स्ते चन्दन्तु फलन्तु यान्तु च परामभ्युन्नतिं पादपाः ॥ ६२ ॥

और—

घूमते हुए भ्रमरों के भार से नवे हुए फूलों से मधु टपकने वाले, उत्कृष्ट गन्ध एवं छाया युक्त पेडों के नीचे घर की तरह विश्राम करते हुए पथिकों के समूह बहते हुए झरने के जल से प्यास बुझाकर जिन के फलों से तृप्ति का अनुभव करते हैं वे वृक्ष प्रसन्न रहें, फलें और अनुपम उन्नति प्राप्त करें ॥६२॥

अपि च—

यत्र न फलितास्तरवो विकासिसरसीरुहा सरस्यो वा ।
न च सज्जनाः स देशो गच्छतु निधनं श्मशानसमः ॥ ६३ ॥

यत्र नेति । देशश्मशानयोः समतायामनिञ्जनत्वं हेतुः ॥ ६३ ॥

और—

जहाँ फले हुए पेड नहीं हैं, खिले हुए कमलों की बावलियाँ नहीं हैं और जहाँ सज्जन नहीं हैं, वह श्मशान सदृश स्थान नष्ट हो जाय ॥ ६३ ॥

तत्कथय कदा पुनरिमां विन्ध्यवनवीथीं विचित्रपत्त्रलकुचां दमयन्तीमिव निर्विघ्नमलोकयिष्यामः ॥

तत्कथयेति ॥ विचित्रपत्त्रा लकुचास्तरवो यस्याम् । दमयन्ती तु विविधपत्त्रवल्ली युक्तस्तनी । पत्त्रं लाति इति के पत्त्रली ॥

तो कहिये, पुन कब विचित्र + पत्त्रल + कुचा (विविध पत्र रचना युक्त स्तनो वाली ) दमयन्ती की तरह विचित्र + पत्र + लकुचा ( सुन्दर पत्तो वाले लकुच वृक्षों से युक्त ) इस विन्ध्याटवी को निर्विघ्नतापूर्वक देख सकेंगे ?

तथाहि—

पीनोन्नमद्घनपयोधरभारभुग्न-
मध्यप्रदेशरुचिमद्वलीलतायाः ।
उत्कण्ठितोऽस्मि चलदेणदृशः प्रियाया-
स्तस्याश्च पर्वतभुवो वनवीथिकायाः ॥ ६४ ॥

पीनोन्नेति ॥ कठिनस्तनभरेण भुग्ने नम्रे उदरे रुचि मदलन्ते धारयन्ति इत्यपि तथोक्ता वलय एव लता यस्याः । वली उदररेखा । तथा चलतामेणानामिव दृशौ यस्या । वनवीथीपक्षे पयोधरो मेघ । रुचिमती तेजस्विनी लवली नाम्नी लता यथा । चलदेणानां दृक् दर्शनं यस्याम् ॥ ६४ ॥

स्थूल, उच्च, तथा घने स्तनों के भार से कुछ नवे हुए उदर भाग में कान्ति दीप्त वलीलता ( पेटी ) वाली, चचल हरिण नेत्र सदृश नेत्र वाली उस प्रिया के लिये और इस पर्वत में उत्पन्न होने वाली वनवीथियो के लिये उत्कण्ठित हूँ ॥ ६४ ॥

[प्रिया के सभी विशेषण वनवीथिका पक्ष मे भी लगते हैं। वनवीथी पक्ष— जहाँ पीन ( बडे बडे उमडते हुए घने बादलो से युक्त मध्य भाग मे कान्तिमयी लवली की लता हैं और जहाँ चलते हुए हरिण देखे जाते हैं। दमयन्ती पक्ष अनुवाद भाग मे देखें ॥ ६४ ॥ ]

अपि च—

सानूनां सानूनां विलोक्य रमणीयतां च सानूनाम् ।
सालवने सालवने विहरिष्यति सह मयाऽत्र कदा ॥ ६५ ॥

सानूनामिति ॥ सानूना तटानां सम्बन्धिनो ये मानवो मार्गास्तेषां रमणीयताम् अनूना परिपूर्णां विलोक्य अलवनेन सह यत् सालानां सर्जतरूणां वनं तस्मिन्मया मम कदा सा विहरिष्यति । अत्र प्राच्य. सानुशब्दस्तटार्थोऽप्यश्वार्थं । यद्विश्व —'सानु शृंगे बुधे पथायां पल्लवे वने'। यदि वा 'णु स्तवने' आनवनमान् प्रशंसा तया सह वर्तन्त इति सानूनि येषां स्तुत्यानामित्यर्थ ॥ ६५ ॥

तट वाले मार्गों की अनन्य रमणीयता को देखकर न कटे हुए इस सानु वन में मेरे साथ वह कब विहार करेगी ॥ ६५ ॥

[सानूनाम् ( तटवाले ) सानूनाम् (मार्गों की) अनन्याम् ( अनन्य ) रमणीयताम् ( रमणीयता को ) देख कर अच्छिन्ने ( न कटे हुए ) सानुवने ( इस सानु नामक वृक्षों के वन में ) सा ( वह ) मेरे साथ कब विहार करेगी ? यहाँ अच्छिन्ने का अर्थ "न कटा हुआ" है। छिदन का अर्थ है कटना। न छेदन = अच्छेदन और अच्छन्न सहित साच्छन्न। अर्थात् जिस कांटा छुआ नहीं गया है। प्रथम सानु शब्द तट का वाचक है और द्वितीय सानु शब्द मार्ग का। 'सानु प्रस्थे शुभे मार्गे पल्लवे दशने वने।' विश्व ॥ ६५ ॥]

सखे सखेदा इव वयम्, तत्कथय कियद्दूरेऽद्यापि स विदर्भविषय, यत्र ब्रह्माण्डशुक्तिसंपुटमध्यमुक्ताफलगुलिकया तयालङ्कृतं तत्कुण्डिनं नगरम्' इत्यभिदधाने निषधनाथे वैदर्भालापैरनुबन्धितोक्तिः पुष्कराक्षोऽप्यभाषत ॥

'देव, प्राप्ता ननु वयम् ॥

सख इति ॥ ब्रह्माण्डमेव शुक्तिसंपुटः। तस्य मध्ये मुक्ताफलगुलिका मध्यमुक्ताफलम्। गुलिकाकारत्वात्। प्राप्ताः स्थूलवृत्ता वयम् ॥

मित्र, हम लोग थक से गये हैं। तो बताओ, अभी वह विदर्भ देश जहाँ ब्रह्माण्ड रूप शुक्ति-सम्पुट ( सीप ) में शुद्ध मुक्तामणि रूप उस दमयन्ती द्वारा अलंकृत वह कुण्डिन नाम का नगर है, कितनी दूर है ?" ऐसा कहने पर नल-दन ( प्रेमबहुल आलङ्कारिक ) बातों से संबद्ध बातें करता हुआ पुष्कराक्ष भी बोला—"देव हम लोग पहुँच गये।"

इदं हि—

> वीरपुरुषं तदेतद्वरदातटनामकं महाराष्ट्रम् ।
> दक्षिणसरस्वती सा वहति विदर्भा नदी यत्र ॥ ६६ ॥

वीर पुरुषों से युक्त वरदा के तट पर यह महाराष्ट्र देश है जहाँ दक्षिण ( देश ) की सरस्वती विदर्भा नदी बहती है ॥ ६६ ॥

[ महाराष्ट्र में वरदा और विदर्भा नाम की दो नदियाँ हैं। दक्षिण पूर्व में बहती हुई विदर्भा नदी गोदावरी में गिरती है ॥ ६६ ॥

इहाकरभया सिंहलद्वीपभुवा सदृशी, बहुदया त्यागिजनतया तुल्या सन्नद्धनया मुनिखातकूपपञ्जननिक्षेपकुम्भिकया समाना, प्रजा ॥

इहेति। न करात्राजदेयांशाद्भयं यस्यां साऽकरभया। भुवा तु न करभा यस्यामिति करभरहितया तया बह्वी दया यस्यां सा बहुदया। त्यागिनां जनतया

तु बहु ददातीति बहुदा तया बहुदया। जनानां समूहो जनता। 'ग्रामजन इति समूहे तल्'। समृद्धो नयो यस्यां सा समृद्धनया। कुम्भिकया तु सह मृत् मृत्तिकोपेतं धनं यस्यां तया समृद्धनया॥

यहाँ की प्रजा सिंहल द्वीप की तरह अ+कर+भया (करके भय से मुक्त) हैं। बहुत देने वाली उदार जनता की तरह बहु+दया (बहुत दया से युक्त) है। कृपण लोगो द्वारा पृथ्वी मे गाड कर रक्खी जाने वाली मिट्टी से युक्त और धन से भरी हुई कुम्भिका की तरह समृद्ध + नया (न्यायसम्पन्न) है।

[प्रजा अकरभया है। उसे कर का भय नहीं है। राजा की ओर से कर की छूट दे दी गयी है। सिंहल द्वीप में करभ (हाथी) नहीं होते हैं। जहाँ करभ नहीं हो वहाँ की भूमि अकरभा कहलाती है। अकरभा शब्द के तृतीया का एक वचन अकरभया है। बहुदया—प्रजा बहुत दया युक्त है। बह्वी दया यस्या असौ बहुदया प्रजा। बहुत देने वाली जनता बहुदा कहलाती है। बहुदा शब्द की तृतीया का एक वचन बहुदया है।

समृद्धनया—प्रजा समृद्ध (सम्पन्न) नय (नीति) वाली है। मिट्टी में गडी हुई कृपण की धनभरी कुम्भिका भी समृद्धना है। मृत् (मिट्टी) से सहित पदार्थ समृत् है। समृत् धन है जिसमें वह है समृद्धना। समृद्धना शब्द की तृतीया का एक वचन है समृद्धनया। कृपण लोग अपने धन को मिट्टी के नीचे घडे में बन्द कर रखते हैं। इस अनुच्छेद मे उपमान कोटि के शब्द प्रथमान्त हैं। शब्दो का आकृति-साम्य ही साधारण धर्म है जैसे सिंहल द्वीप की भूमि से भी अकरभया इस आनुपूर्वी का अन्वय है और प्रजा से भी। समृद्धनया और बहुदया की भी यही स्थिति है।]

इह समकरन्दानि कमलवनानि राजराजन्यचक्रं च, इह बहुधामानि नगराणि लोकहृदयं च, इह सारम्भाणि कृपाणकुलानि दारूपकप्रेक्षणं च, इह बहुरूपाणि जनमनांसि प्रजापालबलं च इह महाधिमाणि ग्रामपुरपत्तनानि मेषगोष्ठं च॥

इहेति॥ सह मकरन्देन वनानि। राजन्यचक्रं तु सह करो राजांशो यस्य। तथा दानमस्यास्तीति दानि। इह नेति॥ बहूनि धामानि गृहाणि येषु। हृदयं च बहुधा अनेकधा मानोऽस्यास्तीति मानि। इह नेति॥ सह आरम्भैरुपक्रमैः कुलानि। प्रेक्षणकं तु सारमुत्कृष्टम्। तथा भाणो रूपकविशेषः सोऽस्यास्तीति भाणि। यदाह धनिक —'भाणस्तु धूर्तचरितं कृतं स्वेन परेण वा।। 'यज्ञोपवर्णवेदेको निपुणः पण्डितो विटः'। इह नेति॥ बह्वी कृपा येषु तानि। बलं च बहु। तथा कृपाणः खड्गोऽस्यास्तीति। इह नेति॥ महान्तो विमा येषु। गोष्ठं तु महान्तोऽवयो मेण्ढास्ते एव प्राणिनो बलवन्तो यत्र॥

यहाँ कमलवन परागपूर्ण है। सामन्त राजाओं का वर्ग समान कर (मालगुजारी) लगाता है और दान देता है। नगर बहुत भवनों से युक्त है और लोगों का हृदय बहुधा मानी है। तलवारें हमेशा तैयार रहती हैं। नाटक प्रकरण आदि का मस्तक दशरूपक दर्शन उत्कृष्ट भाण नामक रूपक से युक्त है। प्रजा की रक्षा करने वाली सेना बहुकृपाणों से युक्त है और जनता के मन में कृपा भरी है। ग्राम, नगर और राजधानियाँ महाब्राह्मणों से युक्त हैं और मेष-गोष्ठ (भेड़ों के रहने वाले स्थान) बड़े-बड़े बलवान् भेड़ों से युक्त हैं।

[समकरप्रदानि-कमलवनानि के साथ तो इस का "परागपूर्ण या मकरन्द सहित" अर्थ है। राजराजन्य पक्ष में यहाँ दो पद हो जाते हैं। समकरम् और दानि। राजसमूह अपनी-अपनी प्रजा पर समान ही कर लगाता है। ऐसा नहीं कि कोई क्रूर राजा अपनी सुख-सुविधा के लिये प्रजा पर अधिक कर लगा देता हो। समानः करः यस्य तद् समानकरम् राजराजन्यम्।

दानि—यह भी राजराजन्य का विशेषण है। राजसमूह दान देने वाला है इस लिये उसे दानि कहा गया है। पुंल्लिङ्गरूप तो इसका दानी होगा। किन्तु नपुंसकलिङ्गान्त राजन्य शब्द का विशेषण होने के कारण दानि हो गया। दानिन् शब्द का नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एकवचन है।

बहुधामानि—बहुत है धाम (भवन) जिन नगर में उन्हें बहुधामानि नगराणि कहा गया है।

लोकहृदय पक्ष में बहुधा और मानि पृथक्-पृथक् पद हैं। लोगों का हृदय बहुधा मनस्वी है। मानिन् शब्द की नपुंसकलिङ्गान्त प्रथमा का एक-वचन है।

सारम्भाणि—कृपाण-कुल पक्ष में यह पद नपुंसक, प्रथमा का बहुवचन है। कृपाणसमूह सदा सारम्भ (सयत्न या तैयार) रहता है। दशरूपक प्रेक्षा-पक्ष में सारम् और भाणि पृथक्-पृथक् पद हैं। रूपक के दस भेद होते हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अङ्क और ईहामृग। इसी लिये इन्हें दशरूपक कहा जाता है। सारम् (उत्कृष्ट) भाणि (भाण नामक रूपक से युक्त) दशरूपक दर्शन है। लोग भाण नामक रूपक को बहुत अधिक पसन्द करते हैं। भाणिन् शब्द का न० प्र०.एक-वचन है।

बहुकृपाणि—जब यह जनमनांसि का विशेषण है तब तो बहुकृप शब्द का नपुंसकलिङ्गान्त प्रथमा बहुवचन है। जनसामान्य के मन में बहुत कृपा है। जब यह प्रजापालबलम् का विशेषण बनता है तो बहुकृपाणिन् शब्द का

नपुंसकलिङ्गान्त प्रथमा एकवचन है। प्रजा की रक्षा करने वाली सेना के पास पर्याप्त कृपाण हैं। उस समय नगरों में पहरा देने वाली पुलिस तलवार लेकर पहरा देती थी।

महाविप्राणि—ग्राम, नगर और पत्तन महाब्राह्मणों से युक्त हैं। इस पक्ष में न० प्र० बहुवचन है। ब्राह्मण शब्द के पूर्व महत् शब्द का प्रयोग बहुत पहले अच्छा माना जाता था। बाद में चल कर इसके अर्थ की अवनति हो गयी। महाब्राह्मण का अनुत्तम ब्राह्मण अर्थ हो गया। मेषणीव पक्ष में यह शब्द न० प्र० एकवचन है। महा + अवि + प्राणि (बड़े-बड़े भेड़ रूप प्राणी जिसमें रहते) हैं, भेड़शाला में बड़े बड़े भेड़ पाले गये हैं।]

इयं च गगनवीथीव पूर्वोत्तराफाल्गुनीराशिवायूपयुक्ता ब्राह्मणप्रदानभूमिः ॥

इय चेति ॥ पूर्वस्यामुत्तरस्यां चाफल्गु सारमुदकं नीरं यस्याम्। तथा शिवा कल्याणी। तथा यूपैर्यज्ञकीलैर्युक्ता। गगनवीथी तु पूर्वा उत्तरा फल्गुन्यो राशयो मेषाद्या वायुः पवनस्तैरुपयुज्यमानोपयोगीकृता ॥

राजा द्वारा ब्राह्मणों के लिये दी गयी यह भूमि आकाश मार्ग की तरह पूर्व और उत्तर में अफल्गु (पर्याप्त) जल से भरी है। शिवा (कल्याणकारिणी) है। यूप (यज्ञस्तम्भों) से युक्त है, आकाशवीथी पूर्वा, उत्तरा, फल्गुनी नक्षत्रों (मेष, वृष आदि) राशियों और वायु के उपयोग में लायी जाती है। [पूर्वोत्तरा फल्गुनी राशिवायूपयुक्तात्मरूप साधारण धर्म आकाशवीथी और ब्रह्मभूमि दोनों में है।]

इतश्च—

आरूढैता शिखरिसदृशान्ग्राममध्योच्चकूटा-
नन्योन्यांसप्रणिहितभुजाः संगताः कौतुकेन।
प्रेक्षावेशादचिचलदृशो योषितः पामराणां
पश्यन्त्यस्त्वां निभृततनवो लेप्यलीलां वहन्ति ॥ ६७ ॥

आरुह्येति ॥ शिखरी गिरिः। कूटा अवस्रोतकाः प्रेक्षायामवलोकने आवेश आग्रहः। पामराः प्राकृतजनाः ॥ ६७ ॥

इधर—

गाँव के बीच पर्वत सदृश ऊँचे स्थानों पर चढ़कर ग्रामीणों की स्त्रियाँ एक दूसरे के कन्धे पर हाथ रखकर कौतूहल से इकट्ठी होकर, देखने की उत्कट उत्सुकता से निर्निमेष दृष्टि से तुम्हें देखती हुई निश्चल शरीर होकर चित्र बना रही हैं ॥ ६७ ॥

किं चान्यत्—

नृप चलसि यथा यथा त्वमस्मिन्नपि वदनानि तथा तथा चलन्ति ।
तरलितनयनानि पामरीणां पवननिवर्तितपङ्कजोपमानि ॥ ६८ ॥

और दूसरी बात यह कि—जैसे जैसे आप इस स्थान की ओर बढ़ते हैं वैसे वैसे हवा से कम्पित कमल सदृश चञ्चल नेत्र वाले इन स्त्रियों के मुख भी चलते हैं ॥ ६८ ॥

[ राजा ज्यों ज्यों उनकी दृष्टि के समीप जाता है त्यों त्यों उनकी स्वच्छन्द विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ कहती सुनती, चित्र बनाती सौन्दर्य विशेष का दीदार करती हुई ग्रामवधुओं के नेत्र और मुख क्रियाशील हैं ॥ ६८ ॥]

अपि च—

उत्कम्पाद्गलितांशुकेषु गमनादत्यन्तमुच्छ्वासिषु
प्रोत्तुङ्गस्तनमण्डलेषु विलुठद्घर्मावलीदामसु ।
आसां स्वेदिषु दृश्यते मृगदृशां संक्रान्तबिम्बो भवा-
नालिङ्गन्निव गोपिकाः कृतबहुप्राकाम्यरूपो हरिः ॥ ६९ ॥

उत्कम्पादेति ॥ अंशुकानां स्वेदितं च स्तनमण्डलस्य निरावरणत्वेन नृपप्रतिबिम्बस्य सङ्क्रमे हेतुः । प्राकाम्यं महासिद्धिविशेषः । प्राकाम्येन रूपाणि प्राकाम्यरूपाणि । कृतानि बहूनि प्राकाम्यरूपाणि येन ॥ ६९ ॥

कम्पन के कारण इनके वस्त्र नीचे गिर गये हैं, वेग के कारण लम्बी लम्बी श्वास ले रही हैं, हिलते हुए पसीने की मालाओं वाले स्वेद बिन्दु युक्त इनके स्तनमण्डलों पर आपका प्रतिबिम्ब पड़ गया है । (ऐसी स्थिति में) विविध रूप धारण कर गोपियों का आलिङ्गन करते हुए हरि की तरह आप लग रहे हैं ॥ ६९ ॥

[ जितनी गोपियाँ होती थीं हरि उतने शरीर धारण कर उनके साथ विलास करते थे । सभी नारियों के स्तनमण्डल पर राजा का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है अतः ऐसा लगता है कि राजा भी हरि की तरह कई शरीर धारण कर प्रत्येक अङ्गना से मिल रहा है ॥ ६९ ॥

अहो नु खल्वाश्चर्यमिदमेनासां तथाविधनेपथ्यनिरपेक्षाप्युन्मादयति यूनो मनो युवतीनां यौवनश्रीः ॥

अहो न्विति ॥ तथाविधमुदारं हारकुण्डलादिरूपं नेपथ्यम् ॥

ओह, यह निश्चय ही आश्चर्य की बात है कि उस तरह के विशिष्ट वस्त्र और अलङ्कार की अपेक्षा न करती हुई युवतियों की शोभा युवकों का मन हर ले रही है ।

तथाहि—

माल्यं मूर्धनि कर्णिकारकलिकाः पिष्टातकं चन्दनं
मुक्तादाम गले च काचमणयो लाक्षामयाः कङ्कणाः ।
रागोऽङ्गेषु हरिद्रया नयनयोरत्युल्बणं कज्जलं
वेषोऽयं विरसस्तथापि हृदयं ग्राम्या हरन्ति स्त्रियः ॥ ७१ ॥

माल्यमिति ॥ हरिद्रा तण्डुलचूर्णम् । पिष्टातक विलेपनम् ॥ ७० ॥

श्यो कि:—

कर्णिकार की कलियाँ ही इनके सिर की माला हैं। चूर्णित किया हुआ उबटन ही इनका चन्दन है, गले मे काच की मणियाँ ही मोती की माला हैं। आँखो मे ज्यादा ज्यादा काजल है। इनका वेष तो नीरस है फिर भी ये ( ग्राम्यवधुएँ ) चित्त को आकृष्ट कर ले रही है ॥ ७० ॥

इतश्च—

कन्दलितकन्दविशेषाः कर्कशकर्कटिका विशालकालिङ्गाः कूष्माण्डमण्डितमण्डपाः सुवृत्तवृन्ताकाः सुहस्तितहस्तिकर्णपुनर्नवाः स्थूलमूलकाः पिण्डितपलाण्डवो वास्तूकवास्तुभूतभूतलाः संजीवितजीवन्तिकाः सर्षपराजिकाराजिराजिताः सरित्सारिणीसारिवारिसेचनसुकुमारपल्लवितविविधशाकाः शाकवाटिकाः ॥

कन्दलितेति ॥ शाकवाटिका । इहस्मिन्नेति ॥ इस्त कन्दलोद्भेदः संजातोऽस्येति । तारकादित्वादितच् । हस्तिकर्णं पुनर्नवा च वल्लीभेदौ । वास्तूकेन शाकविशेषेण वस्तुभूतं प्रधानं भूतलं यासु । राजिकानां राजसर्षपाणां राज्या राजिता ॥

इधर—

तरकारी की वाटिका मे कन्द अङ्कुरित हुए है, कर्कश ककडी लगी हुई है। ये बडे बडे कलिङ्ग ( Cucumber ) के पौधे लगे हुए हैं। कूष्माण्ड की लता से यह मण्डप अलङ्कृत है। ये गोल भटे हैं। पुनर्नवा और एरण्ड अङ्कुरित हुए हैं। जड मे मोटे मोटे गोल प्याज हैं। बथुआ के साग से यहाँ का भूतल महत्वपूर्ण हो गया है। जीवन्तिका ( गिलोय ) के पौधे हरे भरे हैं। सरसो की क्यारियाँ सुन्दर लग रही हैं। नदी की नहरों से उत्तम सिचाई के कारण विविध प्रकार की तरकारियाँ उगी हुई हैं।

इतश्च—

विकसन्मुचुकुन्दानन्दिनो मकरन्दस्यन्दिसुन्दरसिन्दुवाराः पामरीसंकेतनिकेतकेतकीवनाः कम्राम्रातकाः कुड्मलितकङ्कोलफलाः कोरकितकुरण्टकाः पल्लवितवल्लीकाः फुल्लन्मल्लिकोल्लासिनः सुजान-

जातयो विचित्रशतपत्रिकास्ताण्डवितपाण्डुपिण्डितागुरुकरवीर-वीरुधो दृश्यमानसर्वर्तुपुष्पाः पुष्पायुधावासा आरामाः ॥

इधर—

ये बगीचे खिलते हुए मुचुकुन्द के कारण आनन्दप्रद हैं। यहाँ सुन्दर सिन्दुवार का मकरन्द चू रहा है। यह पामर-युवतियों का संकेत-स्थान, केवड़े का जंगल है। ये सुन्दर आम्रातक हैं। कङ्कोल-फल में कलियाँ आ गयी हैं। कुरबक भी कुड्मलित हो गये हैं। खिली हुई मल्लिका से उल्लास व्यक्त हो रहा है। यहाँ सुन्दर जाति पुष्प हैं। विचित्र वचा कुसुम हैं। पीले तथा सुडौल शीशम और करवीर वृक्षों की लताएँ हिल रही हैं। सभी ऋतुओं के फूल दिखाई पड़ते हैं। ये उद्यान कामदेव के निकेतन हैं।

इतश्च—

नातिदूरे दक्षिणदिशि दृशं निवेशयतु देवः ॥

और इधर—

थोड़ी दूर पर दक्षिण की ओर श्रीमान् अपनी दृष्टि लगायें।

एतास्ताः परिपक्वशालिकलमाः सुस्वादुदीर्घेक्षवो
यत्प्रान्तस्थहरित्तृणस्थलचलत्पीनाङ्गगोमण्डलाः ।
दृश्यन्ते पुरतः सरोरुहवनभ्राजिष्णुनीराशयाः
प्रान्तोद्यद्विविचित्रपत्रिनिचयाः सस्यस्थलीभूमयः ॥ ७१ ॥

एता इति ॥ विचित्रपत्त्रिणो विविधपक्षिणः ॥ ७१ ॥

ये वे अन्न के खेत हैं जहाँ पके हुए शालिधान लगे हैं, मीठे-मीठे बड़े बड़े इक्षुदण्ड ( ईख ) हैं। पर्वतीय तराई की हरी घासों के बीच हृष्ट-पुष्ट गायों का समूह चर रहा है। आगे कमल वनों से सुशोभित जलाशय दिखाई पड़ रहे हैं। किनारे ( मेड़ों ) पर विविध पक्षियों का समूह चल रहा है ॥ ७१ ॥

अपिच—

स्व:सौन्दर्यविडम्बि कुण्डिनमिदं सैषा विदर्भा नदी
सा चेयं वरदा स चायमनयोः पुण्याम्भसोः सङ्गमः ।
अस्यैवोन्मदहंसहारिणि तटं सेनास्थिति कल्प्यतां
यस्मिन्मत्तकरीन्द्रकुम्भकषणक्रीडासहाः पादपाः ॥ ७२ ॥

सौन्दर्य में स्वर्ग की विडम्बना करने वाला यह कुण्डिन नगर है। यही वह वरदा नदी है और यही वह विदर्भा है। यही इन दोनों पवित्र जल वाली नदियों का सङ्गम है। मदकल हंसों से मनोहर इसी के तट पर सेना का

पड़ाव रक्खा जाय जहाँ के पेड़ मतवाले गजेन्द्रों के कुम्भस्थल की खुजलाहट रूप क्रीडा को सह सकते हैं ॥ ७२ ॥

एवमनेकधा दर्शनीयप्रदेशप्रकाशनव्याजेन विनोदलीलां पल्लवयति पुष्कराक्षे, 'प्राप्ताः कुण्डिनपुरम्' इत्युच्छ्वसितहृदयो निषधेश्वरः परमपरितोषपारितोषिकप्रदानपूर्वमिदमवादीत् ॥

इस तरह अनेक प्रकार से दर्शनीय स्थलों की व्याख्या के बहाने पुष्कराक्ष के उत्तम मनोविनोद करते रहने पर "हम लोग कुण्डिनपुर पहुँच गये।" इस उक्ति से प्रसन्न होकर राजा नल बड़े सन्तोष के साथ पारितोषिक देता हुआ बोला—

'भद्र, भवत सौकुमार्यमाधुर्यमधुविथ्रमसंदर्भितभङ्गश्लेषगर्भाभिर्गीर्भिराक्षिप्तमनसामस्माकमविदितखेद इव, अदृष्टविषमविभाग इव, अनुत्पादितस्वेदलव इव, अर्धगव्यूतिमात्रदेशोऽतिक्रान्त क्रीडाविहारभूमिसमो महानपि मार्गः। समुचितश्चायं सेनानिवेशस्य सरित्सङ्गमोपकण्ठवनविभागः ॥

"कल्याणित्! आपकी कोमल, मधुर एवं मधुमय प्रसंग-सहित भङ्गश्लेषगर्भित वाणी से हम लोगों का मन आकृष्ट था। अतः इतने महान् मार्ग को जो अब एक ही कोस बाकी है, बिना थकान का अनुभव किये, ऊँची नीची जगहों के विभागों को बिना देखे, बिना पसीनों के कणों के उत्पन्न हुए, पार कर गये। नदी संगम के समीपवर्ती वन का यह स्थान सेना के ठहरने के लिये उपयुक्त है।

तथा हि—

इह भवतु निवासः सैनिकानामिहापि
श्रमतरलतुरंगग्रासयोग्या तृणाली।
इह हि कवलयन्तः पल्लवान्वारणेन्द्रा
विदधतु तरुखण्डे गण्डकण्डूयनानि ॥ ७३ ॥

अतः—

सैनिक लोग यहाँ विश्राम करें। यहाँ भी श्रम से थके हुए घोड़ों के खाने लायक घास है। यहाँ पर पल्लवों को खाते हुए गजेन्द्र पेड़ों के तनों में कपोलों की खुजलाहट मिटावें ॥ ७३ ॥

इतश्चात्यन्तमनोहरतयास्माकमासनयोग्या: सरित्सङ्गमोत्सङ्गभूमयः॥

इधर नदी-संगम के मध्यवर्ती स्थान अत्यन्त मनोहर होने के कारण हम लोगों को बैठने योग्य हैं।

तथा हि—

अपसृताम्बुतरङ्गितसैकता निचुलमण्डपनृत्तशिखण्डिकाः ।
कुररसारसहंसनिषेविताः पुलकयन्ति न कं पुलिनश्रियः ॥७४॥

क्योंकि—

पानी के हट जाने के कारण तरङ्ग की आकृति वाली बालुका की रेखायें बन गयी हैं। निचुलकुञ्जों में मयूर नाचते हैं। कुरर, सारस और हंसों से सेवित यह तट की शोभा किसको रोमाञ्चित नहीं कर देती ॥ ७४ ॥

[ पानी में जैसे ऊँची नीची लहर आती हैं। पानी हट जाने पर तरङ्गों की रेखायें शुष्क तटमण्डल पर चिरकाल तक दिखायी पड़ती रहती हैं ॥७४॥ ]

इत्यभिधाय 'भद्र, यथाक्रममकृतान्योन्यसम्बाधकलहम्, अनुपद्रुततीर्थायतनम्, अलुण्ठितासन्नोद्यानम्, अच्छिन्नचैत्यद्रुमम्, अविच्छिन्नकमलवनं निवेशय सेनाम्' इति सेनापतिमादिदेश ।

सोऽपि यथादिष्टमनुतिष्ठन्निदमवादीत् ॥

ब्रू-च्चैत्यद्रुमेति ॥ चैत्या ग्रामप्रदेशप्रसिद्धवृक्षाः ॥

यह कह कर, "भद्र, बिना एक दूसरे संघर्ष से कलह किये, बिना तीर्थ-गृहों में किसी तरह का उपद्रव किये, समीपवर्ती उद्यान को बिना लूटे, पवित्र स्थल के पेड़ों को बिना काटे तथा कमल वन को बिना हानि पहुँचाये सेना को ठहराओ।" यह सेनापति को आज्ञा दिया।

'भजत बलसमूहाः खर्वदूर्वास्थलानि
स्थविरशुकविशीर्यत्पक्षपिच्छच्छवीनि ।
उपनदि मृदुवीचीवायुनाऽन्दोलितानां
कुसुमितलतिकानामन्तरालेष्वमूनि ॥ ७५ ॥

भजतेति ॥ यद्यपि पक्षपिच्छयोरभिधानकृता न भेदः प्रत्यपादि तथापि महद्वैषान्तरम्। यतः पक्षशब्देन पक्षती एव। पिच्छशब्देन तद्रोमाभिधीयते ॥ ७५ ॥

वह भी आज्ञानुसार कार्य करता हुआ बोला—

नदी के पास कोमल तरङ्गों की हवा से कम्पित, खिली हुई लताओं के बीच, वृद्ध सुग्गों के खसते हुए पंखों के अंश की कान्ति सदृश कान्ति वाले, छटी हुई दूर्वाघास से युक्त इस स्थान पर सैनिक वर्ग ठहरे ॥ ७५ ॥

अपि च—

स्मरविहरणवेदीं षट्पदापानशालां
तटमनु वनमालां सस्मया मास्म भाङ्क्षुः ।

कमलवनविहारानन्तरं यत्र तैस्तै-
र्मदनमदविनोदैरासते राजहंसाः ॥ ७६ ॥

स्मरेति ॥ तटवन्विति ॥ तट लक्ष्यीकृत्य । ससमया. सगर्वा मन्तो भवन्तो वन-माली मा स्म भाङ्क्षु । अन्यत्सकलं भङ्गनिषेधकारणम् । आसते इति बहु-वचनान्तम् ॥ ७६ ॥

तट के पास की यह वनश्रेणी कामदेव की विहरण-भूमि है। भ्रमरों की मधुशाला है। कमल वन मे विहार कर लेने के बाद राजहंस यहाँ काममद के विनोद के साथ ठहरते हैं। अहंकार के मारे आपलोग इसे नष्ट न करें ॥ ७६ ॥

अपि च—

सुरसदननिवासं सैनिका मास्म कुर्वन्-
सरिति मुनिकुटीनां भङ्गमुल्लुण्ठनं वा।
इह निषधनृपाज्ञा तस्य यः क्वापि कोऽपि
फलममुषि तरुखण्डे खण्डनं वा करोति' ॥ ७६ ॥

और—

जो कोई कहीं भी थकावट मिटाने वाले पेड़ो के तनो को काटता है उन सबके लिये निषधराज की यह आज्ञा है कि देवमन्दिरो मे सैनिक निवास न करें और नदी तट पर बने हुए मुनि-कुटीरो को तोड़ने और लूटने का कार्य न करें ॥ ७७ ॥

[ तम्बू वगैरह तानने के लिये लकड़ी की आवश्यकता होती है। इसी लिये सैनिक पेड़ो की लकड़ियो को काट रहे हैं। राजा सोचता है कि सैनिक मुनियो के कुटीरों को उजाड़ कर वहीं से लकड़ी आदि सामान लेकर तम्बु न तानने लगें या शिविर बनाने के आलस्य से देवमन्दिरो मे जाकर न ठहर जायँ। सैनिक जहाँ ठहरते थे वहाँ के आस पास के लोगो को बहुत कष्ट देते थे। राजा इसी आशंका से उन्हे मना करता है। प्राचीन भारत मे मन्दिर इतने विशाल आकार के होते थे कि उसमे बड़ी बड़ी सेनायें भी विश्राम कर सकती थीं ॥ ७७ ॥ ]

एवमनुशासति वल्लानि वहूनि बहुधा वाहुके, तत्क्षणादुत्तम्भितैः प्रेङ्खत्पताकापटपल्लवविराजितैः प्रयाणयोग्ययन्त्रचित्रशालागृहैः सञ्चारिणि गन्धर्वनगर इव रमणीये, हरिततोरणैरुड्डीनशुकावलीमय इव, गैरिकारक्तोन्नमितपटकुटीभिरुन्नत्फुल्लकिंशुकमय इव, श्वेतांशुक-मण्डपैश्च ताण्डवितवृहत्पुण्डरीकखण्डमय इव, जाते सरित्सङ्गसन्निधि

शिबिरसंनिवेशे, क्रमेणाक्रान्तसकलदिङ्मुखेषु निषधेश्वरागमनवार्तानिवेदनदूतेष्विव विदर्भराजधानीधामनिर्गतेषु बहलसैन्यधूलिपटलेषु, रसति विपक्षक्षितिपालकर्णपुटीकटुनि नवजलधरध्वनितगम्भीरे तत्कालप्रहतशङ्खसहप्रयाणझल्लरीझांकृते, स्वयंवरायातसमस्तराजन्यचक्रकर्णकर्तरीषु पठ्यमानासु सानन्दवन्दारुवन्दिवृन्दारकवृन्देनोच्चैर्नलनाममालासु, क्षणादेवोत्तम्भितशातकुम्भस्तम्भभवने मृदुमसृणास्तरणभाजि जात्यवैडूर्यपर्यन्तपर्यङ्किकायां सुखनिषण्णे राजनि, सुस्थिते च परिजने, नातिदूरवर्तिनि कुण्डिने दण्डपाशिकस्योच्चैर्वागुदतिष्ठत् ॥

स्रग्धरा ॥ सग्धार्विम्यत्र यदि स्रुत्रयं ॥

इस तरह बाहुक (सेनापति) ने सैनिकों को बहुत प्रकार से अनुशासित किया। नदी-संगम की भूमि पर शिविर बनाया गया। तत्काल खड़ी की गयी फहराती हुई पताका के वस्त्र-पल्लवों और अकृत्रिम यन्त्रनिर्मित चित्रशाला-गृहों के कारण वह गन्धर्वनगर सदृश सुन्दर लग रहा था। ऊँचे तोरणों के कारण उसकी शुक-पंक्ति से बना हुआ सा लगता था। गैरिक और लालवर्ण की उठायी हुई कुटियों से खिला हुआ किंशुकमय प्रतीत होता था। श्वेत वस्त्रों से बनाये हुए मण्डपों से खिला हुआ विशाल कमल-वन सदृश प्रतीत होता था।

क्रम से पर्याप्त सैनिकों के (पैर से उठा हुआ) धूलि समूह समस्त दिशाओं में आक्रमण करता हुआ नल के आगमन की वार्ता की सूचना देने वाले दूतों की तरह विदर्भ राजधानी के घरों में घुस गया। विपक्ष राजाओं की कर्ण-कुटी में कटु लगने वाली नवीन मेघ के गर्जन सदृश गम्भीर, तत्काल बजाये गये शंख के साथ प्रयाण की सूचना देने वाली झाल की झनकार बज उठी। स्वयम्बर में आये हुए समस्त राजसमूह के कानों में चाकू की तरह प्रतीत होने वाली नल की नाममाला को स्तुति करने वाले बन्दियों का मुख्य वर्ग पढ़ने लगा। शीघ्र ही उठाये गये स्वर्ण-निर्मित खम्भों वाले भवन में कोमल एवं स्निग्ध बिस्तर से युक्त, उत्तम वैदूर्य मणि से खचित पाटियों वाले पलंग पर राजा के बैठ जाने पर, परिजनों के सुस्थिर हो जाने पर कुण्डिन नगर के थोड़ी ही दूर पर दण्डपाशिक की उच्च ध्वनि उठी—

'सिच्यन्तां राजमार्गाः कलशमुखगलच्चन्दनाम्भश्छटाभि
रम्भाः प्रेङ्खत्पताकाः कुसुमपरिकरस्तोरणाङ्काः क्रियन्ताम्।
स्थाप्यन्तां पूर्णकुम्भाः प्रतिनगरगृहं प्राङ्गणे धान्यमिश्रैः
सिद्धार्थैः स्वस्तिकालीलिखत नरपतिर्नैषधः प्राप्त एषः॥३८॥

"कलश के मुख से गिरते हुए चन्दन जल की धारा से राजमार्ग सींचे जायँ। खम्भों पर झण्डे फहरा दिये जाँय। प्रत्येक घर के आँगन में धान्यों (जव, अक्षत, आदि सप्त धान्यों) से युक्त सफेद सरसों से भरे हुए कलश रक्खे जाँय। स्वस्तिक चिह्न लिखे जाँय क्योंकि निषध देश के सम्राट् (महाराज नल) आ गये ॥ ७८ ॥

अपिच—

स्रक्काञ्च्यश्चन्दनार्द्रस्तनकलशयुगामुक्तमुक्तावलीकाः
पात्राण्यादाय दूर्वादलदधिकुसुमोन्मिश्रसिद्धार्थभाञ्जि।
सोत्तंसा हंसपिच्छच्छविवसनभृतो वर्तिताश्चर्यचर्या
नार्यो निर्यान्तु तूर्यध्वनिलयललितं गीतमुच्चारयन्त्यः ॥७६॥

स्रगाञ्च्येति ॥ आमुक्त योजितम् ॥ ७९ ॥

करधनी पहन कर, चन्दन से आर्द्र स्तन-कलश-युगल पर मुक्ता की मालायें लटका कर, दूर्वा दल, दही और पुष्प से मिश्रित सफेद सरसों से युक्त पात्रों को लेकर, भूषणों से मण्डित होकर, हंस पक्ष की कान्तिसदृश वस्त्रों को पहन कर, आश्चर्यजनक सजावट के साथ वाद्य-ध्वनि और लय से ललित गीतों को गाती हुई नारियां निकलें ॥ ७९ ॥

अपिच—

अपि भवत कृतार्थाः पौरनार्यश्चिरेण
भजतु निषधनाथश्चक्षुषां गोचरं वः।
ध्रुवमयमवतीर्णः स्वर्गलोकान्नहो
हरचरणसरोजद्वन्द्वलब्धप्रसादः ॥ ८० ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-
सरोजाङ्कायां षष्ठ उच्छ्वासः ॥ ६ ॥

---

इति विषमपदप्रकाशमेन दमजनया तनुते स्म चण्डपालः।
शिशुमतिलनिकाविकासचैत्रं चतुरमतिस्फुटमिति भावचित्रम् ॥ १ ॥
इति श्रीचण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे षष्ठ उच्छ्वासः समाप्तः ॥

---

और—

पुराङ्गनाएँ कृतार्थ हों। निषध-सम्राट् (नल) आप लोगों की आँखों के सामने चिरकाल तक रहें। निश्चित ही ये भगवान् शङ्कर के चरण कमल युगल का आशीर्वाद प्राप्त कर कामदेव का अवतार बनकर आये हैं॥ ८०॥

[भगवान् शंकर की प्रसन्नता के बिना कामदेव साग नहीं हो सकता, अनङ्ग ही रहेगा। नल शरीरधारी कामदेव का अवतार है। नल रूप में कामदेव तब अवतीर्ण हुआ है तब उसने भगवान् शङ्कर का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया है। शरीरधारी काम की उपपत्ति के लिये शिव जी के आशीर्वाद की योजना अत्यन्त भव्य है॥ ८०॥]

षष्ठ उच्छ्वास समाप्त।



# सप्तम उच्छ्वासः

एवमविश्रान्तमतितारस्वरेण पुरः पौरपुरंध्रिमण्डलान्युद्दण्डयतो दण्डपाशिकस्य फलकलमाकर्णयत्यास्थानस्थिते राजनि, प्रविश्य प्रणामप्रेङ्खोलितगलकन्दलावलम्बितजाम्बूनदस्थूलशृङ्खलास्फालितवक्षःस्थलः स्थविरवयाः सवेषः प्रतीहारः सविनयमुक्तवान् ॥

एवमिति ॥ उद्दण्डयतो गाढमुत्साहयतः । दण्डपाशिकस्तलार । दण्डपाशोऽस्यास्तीति । 'अत इनिठनौ' इति ठन् । जाम्बूनदस्य कनकस्य स्थूला शृङ्खला आभरणविशेष ॥

इस प्रकार निरन्तर उच्च स्वर से नगर के वधूमण्डल को जोर से उत्साहित करते हुए दण्डपाशिक की कलकल ध्वनि को राजा सुन रहा था, इतने ही में एक अपने पद के अनुकूल वेष धारण किया हुआ वृद्ध प्रतीहार जिसके प्रणाम के लिये आगे बढे हुए ग्रीवाङ्कुर से लटकती हुई सोने की सिकरी वक्ष स्थल से टकरा रही थी, विनयपूर्वक बोला—

देव, धृतमाङ्गल्यफल्पवेषा पुष्पफलाक्षतपूर्णस्वर्णपात्रपाणयः पुरःस्थिता अधीयाना ब्राह्मणाः कुण्डिनपुरपौराः पुरंध्रयश्च देवदर्शनार्थितया द्वारि सेवावसरमनुपालयन्ति ॥

देवेति ॥ एतो माङ्गल्ये कल्पो रचो वेषो मण्डन यै. ॥

"श्रीमन्, मङ्गलवेष धारण किये हुए, हाथो में फूल, फल और अक्षत से पूर्ण स्वर्णपात्रो को लिये हुए, सामने की ओर स्थित (मङ्गलगान) पढते हुए ब्राह्मण, कुण्डिनपुर के नागरिक और नगर वधुएँ अपने दर्शन के निमित्त द्वार पर सेवा की प्रतीक्षा कर रही हैं।

कथयन्ति चैवमदूरे विदर्भेश्वरोऽपि देवं द्रष्टुमायाति ॥

लोग कहते है कि विदर्भ-पति भी आप को देखने के लिये समीप में ही आ रहे हैं।

लग्न इव श्रूयते च शङ्खस्वनविदर्भितो विदर्भोपकण्ठे पठद्वन्दिवृन्दकोलाहल ॥

विदर्भ के पास शङ्ख ध्वनि से युक्त वन्दीजन समूह कोलाहल (एक दूसरे से मिश्रित सा) सुनायी पड रहा है।

'तदादिशतु देवो यथाकर्त्तव्यम्' इत्यभिधाय स्थिते तस्मिन् 'भद्रभूते, त्वरितं प्रवेशय विदर्भाधिपस्य परिजनं स्वयमपि तदर्धपथमनुसर' इति नलो दौवारिकमादिदेश ॥

भद्रेति ॥ भद्रभूतिरिति द्वास्थस्य नाम । तस्य चामन्त्रणम् ॥

अतः कर्त्तव्यमार्ग को श्रीमान् आदिष्ट करें।" यह कह कर उसके रुक जाने पर, 'भद्रभूति, विदर्भपति के परिजनों को शीघ्र लाओ और स्वयं भी उनके आधे रास्ते में जा कर अगवानी करो।" नल ने दौवारिक को यह आदेश दिया।

सोऽपि–'यथाज्ञापयति देवः' इत्यभिधाय यथादिष्टमकरोत् ॥

अनन्तरमनतिचिरादितस्ततो दोधूयमानचारुचामरकलापपवननर्तितकर्णकुवलयः वल्गुवल्गनोत्प्लवनलङ्घनलास्यलीलापदैः पथि प्लवमानमिव तरलतुरंगमधिरूढः कनककलशशिखरैरेकदेशस्फुरितविद्युत्स्तबकैरकाण्डाडम्बरितमेघमण्डलैरिव मायूरातपत्रखण्डैराच्छादितगगनान्तरालः, शस्त्रोद्वहनकिणाङ्कितकठोरकण्ठोपकण्ठैः कठिनप्रकोष्ठलुठल्लोहवलयैरूर्ध्वबद्धोद्भटजूटकैरलककुटिलमौलिभिरर्धोरुकपरिधानैर्निशातकुन्तपाणिभिरभिनवस्त्वरितपातिभिः पत्तिभिरनुगम्यमानः, मनाङ्मृदुमृदङ्गध्वनिकरम्बिते कोमलकांस्यतालशालिनि वांशिकवाद्यमानवंशनिस्वने दत्तकर्णः, कर्णिकारगौराङ्गोऽङ्गयष्ट्या नातिदूरेऽप्यदृश्यत भीमभूमिपालः ॥

अनन्तरमिति ॥ वल्गु मनोहरं विक्रममागता । वल्गनमुच्चैर्विलङ्घनम् । लङ्घनं फाला । लास्यं नृत्यभूमिः । तेषु लीलापदैः प्लवमानं तरन्तमिव । आमनःस्थैर्यमानुद्धानमुत्प्लवात् । मायूरातपत्रमयूराणां मेघमण्डलानि, सौवर्णकलशानां विद्युत्स्तबक उपमानम् ॥ कठिनेति ॥ राजपुत्रा हि प्रकोष्ठे मणिकूर्परान्तरे शस्त्रीय लोहवलयानि धारयन्ति । जूटकः केशबन्धविशेषः । अलकाः कुटिलाः करालाः सदाल वाड्गौद्रा मौलयः सघनकेशा येषाम् । अर्धं ऊरु प्रमाणमस्य तदर्धोरुकम् । येन वाससा कटीप्रभृति अर्धोरुपर्यन्तमाच्छाद्यते ॥

वह भी, "श्रीमान् की जैसी आज्ञा" यह कह कर आज्ञानुसार कार्य किया।

इसके बाद शीघ्र ही आगन के थोड़ी दूर पर कर्णिकार सदृश शरीर वाले महाराज भीम दिखायी पड़े। इधर उधर पुनः पुनः घुमाये जाते हुए चवरमण्डल की हवा में उनके कानों में लगे हुए कमल नाच उठे थे। एक चंचल अश्व पर जो अपने अत्यधिक उमंग, उछाल एवं छलांगों के कारण थिरकते हुए पैरों से आकाश में तैरता हुआ सा प्रतीत होता था, बैठे थे। स्वर्ण-

कलश के शिखरो के भाग से चमकते हुए विशुद्ध गुच्छों से युक्त असमय मे ही मडराते हुए मेघ मण्डल की तरह मयूर-पङ्ख-निर्मित छातों से आकाश का एक भाग ढक गया था। चारों तरफ से उमडते हुए सैनिक जिनके कठोर कन्धों पर शस्त्रों के ढोने के चिह्न बन गये थे, कठोर कलाइयों मे लोहे के कङ्कण लगे थे, विशाल जटाजूटों को ऊपर की ओर उठाकर बांधे हुए थे, बालों के कारण उनके सिर बड़े भयङ्कर प्रतीत होते थे, आधे ऊरुभाग तक ही वस्त्र पहने हुए थे, हाथ मे तीक्ष्ण भाले लिये हुए थे, खूब जल्दी-जल्दी चल रहे थे, उनका अनुगमन कर रहे थे। मन्द तथा कोमल मृदङ्गध्वनि से मिश्रित झाल के मधुर ताल मे सुशोभित वंशीवादक द्वारा बजाये जा रहे वेणु की ध्वनि मे कान लगाये थे।

ततश्च चामरग्राहिणीहस्तपल्लवमवलम्ब्यमान सहेलमुत्थाय प्रथममुत्थितेन संभ्रमवशावरिगतवक्षःस्थलावलम्बितकुसुमदाम्ना विसर्पिकर्पूरकुङ्कुममिलन्मृगमदामोदेन त्वरितसंपातपतत्पटवास पांसुना सामन्तचक्रेण परिकरित कतिपयपदानि निषधेश्वरस्तदभिमुखमगात् ॥

ततश्चेति ॥ पटवासो वास:सुरभीकरणद्रव्यम्। परिकरितः परिवारितः ॥

तदनन्तर चवरधारिणी सेविका के कर-पल्लव के सहारे उठ कर निषधपति अपने सामन्त राजाओ, जो उससे भी पहले (अपने आसनो से) उठ खड़े हुए थे, शीघ्रता से उठने के कारण जिनके वक्ष स्थल पर लटकती हुई मालायें हिल रही थी, कपूर, और कुङ्कुम से मिश्रित कस्तूरी की गन्ध जिनके शरीर से फैल रही थी, जल्दी जल्दी चलने के कारण पावडर की धूलि झर रही थी, के साथ उनके सम्मुख कुछ कदम आगे बढ़ा।

सोऽपि सत्वरोपसृतस्य ताम्बूलप्रसेविकावाहिनः पुरुषस्य स्कन्धमवष्टभ्य दूरादेव तुरंगपृष्ठादवातरत् ॥

सोऽपीति ॥ चर्मनिर्मित पर्णपूगाद्याधारं प्रसेविका स्थगिकेति ख्याति. ॥

वह भी शीघ्रतापूर्वक दौड कर आये हुए ताम्बूलपात्र ले चलने वाले सेवक के कन्धे पर हाथ देकर दूर ही से (इन्हें देखकर) घोड़े की पीठ से उतर गये।

एवमन्योन्यनयनसंपातस्मितावनौ समकालमीषन्नमितमौलिमण्डलौ समसमयप्रसारितभुजौ सरभसमाश्लेषवशविदीर्यमाणहारावलीगलन्मुक्ताफलच्छलेनाङ्गेष्वमान्तमिव प्रथमप्रेमामृतनिष्यन्दिविन्दुविसरमुद्गिरन्तावन्योन्यमाशिश्लिषतु. ॥

एक दूसरे पर एक दूसरे की दृष्टि पड़ी। मुँह पर मुस्कराहट आयी। एक ही समय दोनो के सिर झुके। एक ही समय हाथो को फैलाकर शीघ्रता-पूर्वक आलिङ्गन करने के कारण भग्न हुई हारपंक्तियो के गिरते हुए मुक्ताफलो के बहाने अंगों मे न अटते हुए प्रगाढ स्नेह सुधा के चूते हुए बिन्दुओ को प्रवाहित करते हुए एक दूसरे का आलिङ्गन किये।

[रत्न की माला दोनों ही राजे पहने हुए थे। मिलन के समय एक दूसरे के वक्षःस्थल की रगड़ से मालाओं की लड़ियाँ भग्न हो गयीं। उनकी एक एक मुक्तायें बिखर गयीं। वे बिखरी हुई अलग-अलग मुक्तायें ऐसी लग रही थी मानो स्नेह सुधा के प्रवाह से जब दोनो के हृदय भर गये तो मुक्ताम्प से बाहर उनकी बूंदें छिटक रही थीं।]

तथाविधे च व्यतिकरे, प्रपये प्रेक्षकाणां दक्षिणोत्तरदिक्पालयोर्धर्मराजधनदयोरिव समागमे महाप्रयनोत्सवो हर्षोत्कर्षकलकलश्च ॥

उसी समय दक्षिण और उत्तर दिशा के स्वामी धर्मराज और कुबेर के मिलन की तरह (दक्षिण दिशा के सम्राट् भीम और उत्तर के चक्रवर्ती नल के मिलन मे) दर्शकों के नेत्रों को बड़ा आनन्द हुआ और आनन्द के मारे कलकल ध्वनि गूँज उठी।

तदनु पुनः प्रधावितप्रतीहारोपनीतम्, अतिविचित्रत्रिभङ्गिभङ्गोत्कीर्णकर्णाटिकारूपरमणीयस्तम्भिकावष्टम्भम्, अजृम्भमाणमाणिक्यमकरमुखमुक्तमौक्तिकसरविराजितम्, अपूर्वकर्मनिर्मितमध्यभालावलीकीर्णमुत्तालं तुङ्गम्, उच्चकाञ्चनसिंहासनद्वितयमुभौ भेजतु ॥

तदनिति ॥ सिंहासनादौ छत्रधनस्तम्भिकासु पश्चिमभागे त्रिभङ्गिभङ्गेन स्थानकविशेष विन्येन स्त्रीरूपमुत्कीर्यते। मौक्तिकसरो मुक्ताहार। व्याल सिंहादिहिंस्र श्वापदम्। तदावली काष्ठादिनिर्मिता शोभार्थं क्रियते ॥

इसके बाद दौड़कर प्रतीहार द्वारा लाये गये दो ऊँचे स्वर्ण निर्मित सिंहासनो पर बैठ गये। उन (सिंहासनो) के उपरिभागीय स्तम्भो पर कर्णाटक-सुन्दरियो के आकर्षक एवं अत्यन्त विचित्र त्रिभङ्गी चित्र खुदे हुए थे। जंभाई लेते हुए मकर के मुख से लटकती हुई मोती की माला (के चित्र) से मण्डित थे। अग्रभाग मे अपूर्व कलाकारिता के साथ बनायी गयी सुन्दर हिंसक जन्तुओं की श्रेणी से अलङ्कृत था।

अन्योन्यकुशलप्रश्नसुखालापव्यतिकरविरामे च विदर्भेश्वरो निषधनाथमवादीत् ॥

तदनन्तर एक दूसरे के कुशल-प्रश्नविषयक सुखमय वार्तालाप से विराम ले लेने पर विदर्भराज नल से बोले।

'अद्यास्मत्कुलसंतति सुकृतिनी धन्याद्य दिग्दक्षिणा
पुण्यप्राप्यसमागमातिथिजना जाता कृतार्था श्रिय।
श्लाघ्यं जन्म च जीवितं च निजमप्यद्यैव मन्यामहे
यत्रास्मत्सुकृतोदयेन महता यूयं गृहानागता ॥ १ ॥

अद्येति ॥ पुण्यै प्राप्य समागमो येषां तथोक्ता अतिथिजना यासु। श्रियां हेन देव फलम्। यदतिथय सत्क्रियन्ते ॥ १ ॥

आज हमारे वश की प्रजा पुण्य पूर्ण हो गयी है, दक्षिण दिशा धन्य हो गयी है, पुण्य से प्राप्त होने वाले अतिथि जन का समागम प्राप्त कर राजलक्ष्मी कृतकृत्य हो गयी है, हम भी अपने जन्म और जीवन को आज ही प्रशंसनीय समझते है जब हमारे महान् पुण्योदय से आप लोग हमारे घर पधारे हैं ॥ १ ॥

इत प्रभृति च—

आ ब्रह्मावधिविस्तरत्कविगिरो गीर्वाणकर्णातिथे
कीर्तेः पूर्णकलेन्दुसुन्दररुचो यास्याम्यहं पात्रताम्।
किं चाप्यजनितफलमोऽप्ययमभूत्ताकण्ठतृप्तस्य मे
युष्मत्सङ्गसुधामृतेन सफल संसारचक्रभ्रम' ॥ २ ॥

आब्रह्मेति ॥ कविवर्ण्याया स्वर्गताया इन्दुशुभ्राया कीर्तेः पात्रमहम् ॥ २ ॥

आज से—

ब्रह्मलोक तक फैलने वाली कविवाणी का विषय, देवताओ के कानो के अतिथि, पूर्णचन्द्र की सुन्दर कान्ति सदृश कीर्ति का पात्र बन जाऊँगा दुख देने वाला भी यह ससार चक्र का मेरा भ्रमण आप लोगो के मिलन-रूप सुधामृत से मुझे पूर्णत तृप्त कर सफल हो गया ॥ २ ॥

[ मैं आज ऐसी कीर्ति का पात्र बन गया जो ब्रह्मलोक तक फैली रहेगी। कवि लोग उसकी व्यापकता का वर्णन मर्त्यलोक तक ही न कर ब्रह्मलोक तक करेगे। "हमारी कीर्ति ब्रह्मलोक तक फैली है' इस बात को कविलोग सादर स्वीकार करेंगे। देवताओ के कान म हमारी कीर्ति अतिथि की तरह सम्मानित होगी। वह उतनी ही शुभ्र एव तृप्ति कर होगी जितनी चन्द्रिका। संसार म दुख तो होता है किन्तु अमृत जैसा कोई रसायन मिल जाय तो दुख नष्ट हो जाता है। आप लोगो का अतिथिरूप मे मिलन एक तरह का अमृत है। इसे पाकर ससार भ्रमणमूलक क्लेश सफल हो गया। यदि इस ससार म नहीं आया होता तो आप लोगो जैसे अतिथि कैसे उपलब्ध होते ॥२॥ ]

इत्यभिधाय प्रगुणं प्रणयस्य, अनुगुणं गुणवतां, अनुकूलं कुलक्रमस्य, योग्यं भाग्योदयस्य, सदृशं देशकालस्य, समानं मानोत्सवसंततेः, सरूपं रूपसंपदाम्, उचितमाचारस्यातिथेयमगर्वः कुर्वन्, दुर्वारवैरिवारणान्वारणान्, वायुवेगांस्तुरगान्, समुल्लसितांशुमञ्जरीजालजनितेन्द्रचापचक्रभ्रममप्रमाणं माणिक्यम्, एकत्र ग्रथिततारा-प्रकरानुकारान्हारान्, उज्ज्वलभांसि वासांसि सलावण्याः पण्यनारीश्च स्वयमुपढौकयांचकार ॥

इत्यभिधायेति ॥ (अतिथे) तस्य राज्ञोऽप्येवं सदातिथेयं कुर्वन्सीमभूपो वारणादिकमुपढौकयांचकार । वारणा निषेधका गजाश्च ॥

यह कह कर प्रेम के अनुकूल, गुणों के अनुरूप, वंशपरम्परा के योग्य, भाग्योदय के उपयुक्त, देश-काल सदृश, सम्मान तथा उत्सव परम्परा के समान, रूपसम्पत्ति के सदृश और आचार-परम्परा के उचित गर्वरहित होकर अतिथि सत्कार कर अदम्य शत्रुओं को निवारित कर देने वाले हाथियों, वायु के वेग को भी नीचा दिखा देनेवाले घोड़ों, विच्छुरित हो रही किरणमञ्जरी-समूह से इन्द्रधनुष की भ्रान्ति उत्पन्न कर देनेवाली अतुल मणिराशि, एक जगह पिरोये गये तारकों का अनुकरण करने वाले हार, उज्ज्वल कान्ति वाले वस्त्र और सुन्दरी वारविलासिनियों को स्वयम् उपहार में दिये।

प्रथमसमागमेऽप्यप्रमेयप्रेमारम्भसमुल्लसितहृदयः पुनः सोत्कर्षहर्षोद्भेदगद्गदाक्षरमिदमवादीत्—

प्रथम मिलन में भी अतुल प्रेम-प्रकर्ष से प्रसन्न होकर अतिशय आनन्द भरी वाणी में बोले—

आसेतोः कपिकीर्तिलाञ्छितशिखरादाराच्च विन्ध्याचले-
रा पूर्वापरसिन्धुसीमविषयस्त्वन्मुद्रया मुद्र्यताम् ।
अद्यास्मद्गृहमागतस्य भवतो जाता विधेया वयं
स्वीकारः क्रियतां किमन्यदपरं प्राणेषु कार्येषु च ॥ ३ ॥

आसेतोरिति ॥ कपिकीर्तिलाञ्छितानि शिखराणि यस्येति सेतुविशेषणम् । सेतोः कीर्तिः कृतत्वात् ॥ ३ ॥

कपियों की कीर्ति को प्रकट करने वाले शिखरों से युक्त (समुद्र के) सेतु से लेकर विन्ध्याचल के पास तक और पूर्व एवं पश्चिम के तट-प्रदेश तुम्हारे शासन में शासित हों। आज हमारे घर आये हुए आपके हम सभी आज्ञाकारी बन गये। अधिक क्या कहूँ—मेरे प्राणों और अर्थों पर भी आप अपना स्वामित्व स्वीकार करें ॥ ३ ॥

[ मेनु का विशेषण कपि कीर्तनाङ्कुशिखर दिया गया है । भगवान् राम द्वारा बधवाया गया समुद्र का सेतुबन्ध कपियों ( बन्दरों ) की कीर्ति का प्रतीक है। नल और नील दो बन्दर थे। उन्हें वर मिला था कि यदि वे अपने हाथ से किसी पत्थर का छू देंगे तो वह पानी पर तैरने लगेगा। इन्हीं दो बन्दरों के हाथ से स्पृष्ट पत्थरों का सेतु बना था। अत यह कहा जा सकता है कि सेतु कपियों की कीर्ति का प्रतीक है॥ ३॥ ]

एवमुपबृंहयति प्रेम, प्रकाशयति प्रियंवदताम्, उद्योतयत्युदारताम्, दर्शयत्यादरम्, आविर्भावयति सर्वभावम् । भीमभूभुजि नलोऽपि 'सरलस्वभाव. स्वच्छार्द्रहृदयोऽयं महानुभाव' इति चिन्तयन् "अलमलमरिविलासप्रसर्वस्वोपनयनेन, भवद्दर्शनमेवास्माकमिह सार्णवसुवर्णपूर्णवसुमतीलाभादपि परमो लाभ. । नहि प्रियतमदर्शनसुखाद्वित्तलाभसुखमतिरिच्यते । न च भवद्विभवेऽप्यस्माकं परस्वबुद्धिर्नापि भवच्छरीरेऽप्यनात्मभाव । किंचान्यदेवंविधसूक्तसूनृतामृतार्मभिरानन्दयताम्मन्मनो महानुभावेन किंन कृतमभिहितं वा प्रणयोचितम्" इति ब्रुवाणस्तं बहु मानयामास ॥

इस तरह प्रेम को बढाते हुए, मधुर भाषिता को प्रकट करते हुए, उदारता प्रकाशित करते हुए, समस्त भावों को प्रकट करते हुए राजा भीम को देखकर नल भी, ये महानुभाव बडे सरल स्वभाव तथा स्वच्छन्द एव सरस हृदय के हैं।" यह सोचता हुआ, "रहने दिया जाय, सर्वस्व समर्पण की आवश्यकता नहीं, आप के दर्शन ही समुद्र सहित सुवर्ण भरी पृथ्वी लाभ से भी अधिक लाभप्रद हैं। अतिशय प्रियव्यक्ति के दर्शन सुख की अपेक्षा वित्तलाभ अधिक सुखप्रद नहीं होता । आप की सम्पत्ति म मुझे परधन की बुद्धि नहीं है। आप के शरीर म भी मेरी अनात्मभावना नहीं है। इस तरह के सुभाषितों तथा सत्य एव माधुरी भरी वाणी से हमारे चित्त को आनन्दित करते हुए आपने प्रेम के अनुकूल क्या नहीं किया और क्या नहीं कहा ?' यह कहता हुआ उन्हें बहुत सम्मानित किया।

एवंविधे च व्यतिकरे वैतालिक. प्रस्तुतमपाठीत् ॥

ऐसे अवसर पर वैतालिक प्रासङ्गिक तथ्ययुक्त पद्य पढा—

'आपूर्वापरदक्षिणोत्तरककुप्पर्यन्तवेलावनर
दाणां मौलिषु मालिकामिव नृपा कुर्वन्तु दीर्घायुषो. ।
वहास्तम्बविलम्बिकीर्तिलयोर्विस्तारिलक्ष्मीकयो
रन्योन्यस्य दिनानि यान्तु युवयो. स्नेहेन सौख्येन च ॥४॥

आपूर्वेति। ब्रह्मस्तम्बो ब्रह्माण्डम् ॥ ४ ॥

पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं की समुद्र तट पर्यन्त भूमि के राजे आप दोनों की आज्ञा को माला की तरह शिरोधार्य करें। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आप लोगों की कीर्ति फैले। राजलक्ष्मी व्यापकता प्राप्त करे। परस्पर प्रेम और ऐश्वर्य के साथ आप लोगों के दिन व्यतीत हों ॥ ४ ॥

**एवमनुपक्रमाविरुद्धविदग्धालापकेलिया परस्परमादधानतुहिनशिलाशकलाकारकर्पूरपारीपरिकरितताम्बूलार्पणप्रणयेन च परितुष्टपरिजनपरिहासगोष्ठ्या च किमप्यभिनवम्, किमपि पुरातनम्, किमप्युत्पाद्यम्, किमपि यथावस्थितं जल्पाकजनजल्पितं भावयन्तौ तस्थतुः स्थवीयसीं वेलाम् ॥**

एवमिति। आदधानमर्पयन्तं तुहिनं हिमं तस्य शिलाशकलं तदाकारस्य कर्पूरस्य पारी शकलं तया परिकरितस्य सम्बद्धस्य ताम्बूलस्यार्पणप्रणयेन। अतिशयेन स्थूला स्थवीयसी। 'स्थूलदूर-' इत्यादिना सिद्धम् ॥

इस तरह प्रसङ्गानुकूल वैदग्ध्यपूर्ण वाग्विनोद करते हुए एक दूसरे को न गले हुए हिमशिला-खण्ड सदृश कर्पूर खण्ड मिश्रित ताम्बूल समर्पण द्वारा प्रेम प्रदर्शन किये।

सन्तुष्ट परिजनों की परिहास-गोष्ठी में कुछ नवीन, कुछ प्राचीन, कुछ कल्पित, कुछ वास्तविक, कुछ तथाकथित लोगों द्वारा कही हुई बातों की चर्चा में बहुत देर तक बैठे रहे।

**अनन्तरमनुसरति मध्यभागमम्बरस्यांशुमालिनि नलः 'स्वगृहानलंकुर्वन्तु भवन्तः' इति प्रश्रयेण विदर्भेश्वरं विससर्ज ॥**

इसके बाद जब भगवान् सूर्य आकाश के मध्य भाग की ओर जा रहे थे नल, "अपने आवास को श्रीमान् अलङ्कृत करें।" इस तरह कहता हुआ बड़ी नम्रता से विदर्भपति को विदा किया।

**गते च तस्मिन् 'अहो वात्सल्यम्, अहो परमौदार्यम्, अहो लोकवृत्तकौशलम्, अहो वाग्विभववैदग्ध्यम्, अहो प्रश्रयोऽस्य विदर्भराजस्य' इति तद्गुणप्रवणाः कथाः कुर्वन्नाप्तजनपरिजनेन सह मुहूर्तमिवासांचक्रे ॥**

उनके चले जाने पर, "ओह विदर्भपति का कैसा वात्सल्य है, कैसी उदारता है, लोक-वृत्तान्त में कितनी कुशलता है, वाणी और सम्पत्ति की कितनी प्रगाढ़ता है और कैसी नम्रता है।" इस तरह अपने प्रामाणिक

परिजनों के साथ उन्ही की गुणसम्बन्धी परिजनो की चर्चा करता हुआ कुछ समय तक बैठा रहा।

चिन्तितवांश्च—

'अनुगुणघटनेन यद्यपीयं भवति हि हस्तगतेव कार्यसिद्धिः ।
भयतरलभुजंगवक्रवृत्तेस्तदपि न विश्वसिमो वयं विधातुः ॥ ५ ॥

अन्विति ॥ अनुगुणानामनुकूलाना घटनेन संयोजनेन हि स्फुटं सिद्धिर्हस्तगतेव भवति । भयेन तरलो लोल. । तरलत्वं चात्र वक्रतातिशयहेतु ॥ ५ ॥

अनुकूल घटनाओ के कारण यद्यपि कार्य की सफलता हस्तगत की तरह प्रतीत हो रही है, फिर भी डरे हुए सर्प की तरह टेढे व्यवहार वाले दैव पर हमें विश्वास नहीं होता ॥ ५ ॥

तथाहि—

अङ्गाः कङ्ककलिङ्गवङ्गमगधाः राजेऽप्यमी पार्थिवा
दिक्पालाश्च मरुत्पतिप्रभृतयः कन्यार्थिनः संगता ।
नो विद्मः कथमेष्यतीह घटना कार्यं यतस्तत्क्षणा-
च्चानाभङ्गिभिरिन्द्रजालसदृशं दैवं हि निर्मीयते ॥ ६ ॥

अङ्ग, कङ्क, कलिङ्ग, वङ्ग और मगध वे ये राजे और इन्द्र आदि दिक्पाल उस कन्या के लिये इकट्ठे हुए हैं। ऐसी स्थिति म पता नहीं यह कार्य कैसे होगा, क्योंकि दैव विभिन्न वक्रताओ से तत्काल ही इन्द्रजाल की तरह आश्चर्य-जनक कार्य कर दिखाता है ॥ ६ ॥

अथवा—

का नाम तत्र चिन्ता प्रभवति पुरुषस्य पौरुषं यत्र ।
वाङ्मनसयोरविषये विधौ च चिन्तान्तरं किमिह' ॥ ७ ॥

का नामेति ॥ यत्र कार्ये पुरुषस्य पौरुषं भवति तत्र का चिन्ता, नैश्चिन्त्यर्थ. । विधौ दैवे पुनर्वाङ्मनसयोरगोचरे किं चिन्तान्तरम्, तदेव प्रमाणमित्यर्थ. । अन्तरशब्दो विशेषार्थ । उभयथापि चिन्ता न कार्येति भाव । वाक् च मनश्च वाङ्मनसे । 'अचतुर-'इति सूत्रेण सिद्धम् ॥ ७ ॥

अथवा—

जहाँ पुरुष का पौरुष कार्य कर सकता है उस विषय मे चिन्ता की क्या बात है और वाणी तथा मन के अविषय दैव मे क्या चिन्ता करनी है ? ॥ ७ ॥

[ जहाँ तक पौरुष कार्य करता है मैं सर्वथा सफल रहूँगा । पुरुषार्थ-सम्बन्धी सफलता की ओर तो थोडी भी चिन्ता नहीं करनी है । भाग्य

सम्पन्न होने वाले कार्य की ओर भी चिन्ता नहीं करनी है, क्योंकि उसमें पुरुषार्थ का कोई हाथ नहीं रहता। वह अकस्मात् ही सिद्ध होता है। तात्पर्य यह कि किसी भी तरह चिन्ता की बात नहीं करनी है ॥ ७ ॥ ]

एवमनेकचिन्तासङ्गभाजि भूभुजि, भुजबलशालिषु विसर्जितेषु सेवकसामन्तेषु, विरलीकृते परितः परिजने, परिहासपेशलालापातिजनगोष्ठीप्रक्रमेण निक्रान्ते स्तोकसमये, भूरिभव्याभरणाम्बररमणीयरूपाः, काश्चिदार्द्रकन्तुरफलहस्ता, काश्चित्कक्षावलम्बितताम्बूलीपत्रपिण्डकरण्डकाः काश्चिद्ग्रथितपट्टांशुकपटलिकापाणयः, काश्चित्काश्मीरकरम्बितकस्तूरिकामोदामन्दचन्दनभाञ्जि भाजनानि भजमाना, काश्चिदनेकनालिकेरजम्बीरबीजपूरकपूरितपात्रीपाणयः काश्चिदनेकखण्डखाद्यविशेषानमूल्यमाङ्गल्यमाल्याभरणानि च सकौतुकमादाय दमयन्त्या प्रहिताः प्रथमप्रबोधितप्रतीहारसूचिताः प्रविविशुरन्युब्जा कुब्जिका वामनिकाश्च ॥

पत्रेति ॥ भाजनानि पात्राणि नालिकेरजम्बीरबीजपूराणि तैः पूरिता या पात्री सा पाणौ यासाम् । बीजं शुष्कफलम् । न्युब्जा अधोमुख्यः पश्चान्नम्रा । विस्मयेनोर्ध्ववदना इति भावः । एतच्च कुब्जिकादीनां विशेषणम् ॥

इस तरह राजा विविध तर्क-वितर्क में मग्न था। पराक्रमी सेवक सामन्त-राजे चले जा चुके थे, सब ओर से परिजन लोग कम हो चुके थे। परिहासपूर्ण मधुर वाग्विनोद करने वाले वरिष्ठ जनों की गोष्ठी में कुछ समय बिता रहा था, जब तक पर्याप्त सुन्दर भूषण एवं वस्त्र से रमणीय कान्ति वाली, हाथों में नाना कनुक फल ली हुई, कोई ताम्बूल-पत्र की पोटली से भरा हुआ डब्बा बगल में लटकायी हुई, कोई हाथ में बन्द सिल्क वस्त्र की पोटली ली हुई, कोई कश्मीर की कस्तूरी-मिश्रित पूर्ण गन्धयुक्त चन्दनों से भरी हुई पटियाँ ली हुई, कोई नाना नारियल तथा नारंगी की फाँकियों से भरी हुई थालियों को ली हुई, कोई अनेक मधुर भोज्य पदार्थों तथा बहुमूल्य माङ्गलिक मालाओं और आभूषणों को कौतुकपूर्वक ली हुई, दमयन्ती द्वारा भेजी गयी (उत्कण्ठा के मारे) ऊपर की ओर मुँह उठायी हुई कुबडी और नाटी दूतियाँ सबसे पहले जाग्रत प्रहरी द्वारा (उनके आगमन की सूचना देकर) भीतर की ओर ले जायी गयीं।

प्रविश्य च सविस्मयाः स्मररूपातिशायिनं नरपतिमवलोक्य 'साधु भोः स्वामिनि, साधु! स्थानेऽभिनिविष्टासि, योग्ये जाताग्रहासि, पात्रे जातस्पृहासि, लप्स्यसे जन्मफलम्, अवाप्स्यसि स्त्रीस्वभाव-

भाग्यम्, अनुभविष्यसि यौवनसुखानि, मानयिष्यसि संसारफलमहोत्सवम्। अहो वन्दनीया सा कापि पुरुषरत्नाकरकुक्षिर्जननी, यस्यां सकलसंसारनरहारावलीमध्यमहानायकोऽयमुत्पन्नः' इत्यवधारयन्त्यो मनाङ्नामितमौलिदोलितसीमन्तमुक्ताफला' 'स्वामिन्नयमस्मदीयः प्रणामः, अन्यापि कापि काचित्प्रणमति' इत्यभिधाय स्मयमानवदनकमलाः सलीलमवनिपालं प्रणेमुः ॥

भीतर आकर काम सौन्दर्य को भी जीत लेने वाले राजा को आश्चर्य के साथ देख कर, "वाह! स्वामिनी वाह! उचित स्थान में प्रवृत्त हो, योग्य वस्तु के लिये आग्रह की हो, पात्र में दिल लगायी हो, जन्मफल प्राप्त करोगी, स्त्री स्वभाव के सौभाग्य को प्राप्त करोगी, यौवन सुख का अनुभव प्राप्त करोगी, संसार के सुखमय महोत्सवों को मनाओगी, अहो, वह पुरुषरत्नं की निधिरूप उदरवाली, अलौकसामान्य माता वन्दनीय है जिसमें समस्त संसार की मानव माला के मध्य मणि ( सुमेरु ) सदृश महानायक जन्म लिया है।" यह सोचती हुई, नम्र होने के कारण सिर के मध्य भाग में लगे हुए कम्पित मणियों वाली वे दूतियां लीलापूर्वक राजा को प्रणाम की।

अन्योन्यकृतसंबोधनाश्च सहर्षमिदमवोचन् ॥

एक दूसरे को सम्बोधन करती हुई बड़ी खुशी के साथ बोलीं—

हंहो हंसि चकोरि चन्द्रवदने चन्द्रप्रभे चन्दने
चम्पे चङ्गि लवङ्गि गौरि कलिके कक्कोलिके मालति।
एत प्राप्नुत जन्मजीवितफलं लावण्यलक्ष्मीनिधौ
सौभाग्यामृतनिर्झरे नरपतौ निर्वान्तु नेत्राणि च ॥ ८॥

हंहो इति ॥ हंहो इति संबोधने। एत आगच्छत ॥ ८॥

ओ हंसी, चकोरी, चन्द्रवदना, चन्द्रप्रभा, चन्दना, चम्पा, चङ्गी, लवङ्गी, गौरी, कलिका, कक्कोलिका, मालती, आओ, जन्म फल प्राप्त करो, सौभाग्यरूप अमृत के लिये देवता तथा सौन्दर्य के सागर, इस नरपति में आप लोगों की आंख शान्त हों ॥ ८॥

अपि च—

कुन्दे सुन्दरि चन्द्रि नन्दनि दले दिष्ट्याद्य वर्धामहे
देव्याः सोऽयमनङ्गसुन्दरवपुः प्राणेश्वरः प्राप्तवान्।
तस्याः संप्रति यत्स्तने कृशतनोः क्रीडावने दाहिना
दीर्घश्वाससमर्द्धिरग्निपदवीं यन्ति ते पल्लवाः ॥ ९॥

न्द इव ॥ चन्द्रकान्ताद्याद्रादार्याद्रौतादिवा ह्रीय। वर्षामह इति हर्षाति-शयोक्तिः ॥ ९ ॥

और—

श्री कुन्दा सुन्दरी, भद्रा, नन्दनी, आज सौभाग्य से हमलोग बड़ रही हैं क्योंकि कामदेव से भी अधिक सुन्दर देह यह देवी के प्राणप्रिय प्राप्त हुए हैं, जिनके लिये इस समय दुर्बल शरीर वाली इस (दमयन्ती) के अंगों से भी अधिक उष्ण लम्बे श्वासों की हवा से वे पल्लव भी मलिन हो गये हैं ॥ ९ ॥

अपि च—

य श्रुत्यैव मनोमरालशावका येया घूर्णोन्मादया
नीयन्ते गृहदीर्घिकातटतरुच्छायासु वासरा ।
प्रातः शोणसरोजपत्रनयनो निःश्वासमालिनी
भ्रान्यन्नेत्रपतत्रिविश्रमनगः सोऽयं नलो नैषधः ॥ १० ॥

द न्दैर। नेत्रान्दव पतत्रि पक्षि ग्रमपा विश्रामनग ॥ १० ॥

और—

जिन्हें सुन कर ही उन्मादपूर्ण कामासक्त मन वाली देवी घर की बावली के तटवर्ती पेड़ों की छाया में दिन व्यतीत कर रही है वही यह लाल कमल दल सदृश नेत्र वाले समस्त सुन्दरियों के घूमते हुए नयन-विहङ्गों के विश्राम वृक्ष निषधपति नल हैं ॥ १० ॥

[सुन्दरियों के नेत्रों का विश्राम स्थल नल हैं जैसे घूमते हुए पक्षियों के विश्राम स्थल पेड़ हुआ करते हैं। महाराज नल समस्त रमणी-नेत्र विहङ्गों के विश्राम वृक्ष हैं ॥ १० ]

एवमन्योन्यमभिधाय समीपमुपसृतास्ताः क्षितिपतिस्त्वनुराग तरङ्गतरत्तारकेण सादरं दूरोत्क्षिप्तपक्ष्मणा चक्षुषा सन्तोषपुञ्जमञ्जूषिका इव, आनन्दकन्दलीरिव, अमृतपङ्कपुञ्जिका इव, मधुमासविकसितसह-कारमञ्जरीरिव, दमयन्तीप्रेषिताः सस्पृहमवलोकयन् 'इत एव कुशलं तत्रभवतीनाम्, उपविशत, गृहीत ताम्बूलम् आवेदयत भवत्स्वामिनी संदेशम्,' इति ससंभ्रमं समापयामास ॥

एवम् । एवं परस्परमभिधाय समीपं गताः प्रेमोर्मिचञ्चत्कनीनिकेन सादरं दूरोत्क्षिप्तपक्ष्मणा चक्षुषा सस्पृहमवलोकयन् क्षितिपतिः ससंभ्रमं 'इत एव—' इत्याद्यालपत् ॥ सन्तोषपुञ्जमञ्जूषिका इत्यादि तासां विशेषणानि ॥

इस तरह एक दूसरे के साथ बातें कर समीप में आयी हुई, दमयन्ती द्वारा प्रेषित उन दूतियों को राजा प्रेम-तरङ्ग में तैरती हुई कनीनिका वाले

तथा ऊपर उठे हुए पलकों वाले, नेत्रों से सन्तोष राशि की पेटी की तरह, आनन्द के अङ्कुर की तरह, अमृत से सनी हुई मिट्टी की पुत्तलिका की तरह, वसन्त की खिली हुई आम्र मञ्जरी की तरह उत्कण्ठापूर्वक देखता हुआ, "आइये इधर, कुशल हो आप लोगों का, बैठिये, पान लीजिये, अपनी स्वामिनी का सन्देश कहिये।" इस तरह उत्सुकता के मारे घबड़ाया हुआ सा बातें किया।

ताश्च "महानयं प्रसादः" इति ब्रुवाणाः समुपविश्य 'राजाधिराज, राजीवदलदीर्घाक्षी क्षेमवार्त्तां पृच्छति न नाम देवस्याध्वने धर्मांशुधर्मोर्मिनिर्मितः कोऽपि खेदः समपद्यत, न वा समविषममार्गलङ्घनश्रमेण क्वापि परिमाथिनी परिजनस्य ग्लानिरभूत्, बहूनि दिनानि देवेनाध्वनि विलम्बितम्। इदं च तया प्राणेश्वरस्य प्रियं प्राभृतं प्रहितम्, इदमुक्तम्, इदमेकान्तसंदिष्टम्, इदं प्रकाशप्रश्रयापलीलायितम्, इति राजानमञ्जसा जजल्पुः।

ताश्चेति॥ मनागेति। देवस्य, अध्वने शरीरे न नामेत्यभ्युपगमगर्भायां पृच्छायाम्। न वेति पक्षान्तरगर्भायाम्॥

वे भी, "बड़ी कृपा है।" यह कहती हुई बैठ कर, "महाराज, कमलदल सदृश विशाल नेत्रों वाली (दमयन्ती) आप का कुशल-समाचार पूछ रही हैं। क्या भगवान् सूर्य की किरण-लहरी से कोई क्लेश तो नहीं हुआ? ऊँची नीची जमीन को लाँघने के परिश्रम से परिजनों को कोई अतिशय कष्ट तो नहीं हुआ? रास्ते में आप बहुत दिन लगाये। उन्होंने आप के लिये यह प्रिय उपहार भेजा है। यह उनका गुप्त सन्देश है। यह उनकी प्रत्यक्ष, नम्रतापूर्ण आलाप लीलायें हैं।" इस तरह राजा के साथ सरलतापूर्वक बातें कीं।

सोऽपि स्मरव्यापारकोरकिताभिः शृङ्गाररससेकपल्लविताभिर्मुग्धस्मितांशुमञ्जरिताभिरमृतच्छटाभिरिव वाग्भिः किमपि सरलाभिः, किमपि नर्मोक्तिकुटिलाभिः, किमपि कथयन् किमपि पृच्छन्, किमपि संदिशन्, अनुजल्पमनुजल्पितम्, अनुहासमनुहसितम्, अनुसुभाषितमनुसुभाषितम्, अनुप्रियमनुप्रीतम्, प्रसादप्रदानोद्दीपितोद्दामानुरागास्ताः कुर्वन्नतिचिरमिव गोष्ठीलौल्यादवतस्थे॥

सोऽपीति॥ नल एवमेव कुर्वन् गोष्ठीविलासेनास्थात्। जल्पितमनुलक्ष्यीकृत्य जल्पितं कुर्वन्। ता उद्दीपितानुरागाः कुर्वन् इत्येव कुर्वन्नुभयत्रापि संबध्यते। 'अनुजल्पमनुजल्पितम्' इति यदा क्वचित्पाठः, तदा अनुजल्पितमिति क्रियाविशेषणम्। अनुगतं जल्पितं यत्रेति। अनु जल्पमित्यादिषु तु अनुयोगे द्वितीया॥

वह भी कामव्यापार से कुतूहलित, शृंगार रस के सिञ्चन से पल्लवित, मनोहर मुस्कान की छटा से मञ्जरित, अमृत के छींटे सदृश वाणी से कुछ सीधे एवं कुछ नम्रतापूर्ण उक्ति-वक्रता से कुछ पूछता हुआ, कुछ सन्देश देता हुआ, बात में बात मिलाता हुआ, हँसी पर हँसी करता हुआ, सुभाषित पर सुभाषित कहता हुआ, प्रियों के अनुकूल प्रसन्नता व्यक्त करता हुआ, प्रसन्नता प्रदर्शन द्वारा उन सबों को पूर्णतः अनुरक्त करता हुआ देर तक गोष्ठी में मनोविनोद करता रहा।

'अहो नु खल्वस्य नरपतेः, अनवलीढं शीलम्, अनाहार्यमौदार्यम्, अवञ्चनं वचनम्, अदैन्यं दानम्, अस्मयं स्मितम्, अविचारगोचरं गाम्भीर्यम्, इति भावयन्त्यस्ताश्च कांचिदुचितविनोदव्यतिवाह्य वेलाम्, अनुभूय किमपि गोष्ठीसुखम्, आरच्य च किंचिदिव दमयन्तीविनोदविलासव्यतिकरम् 'आज्ञापयतु देवोऽस्मानागमनाय, भवद्वार्तामृतपानार्थिनी देवी त्वरिताऽस्मत्प्रत्यावृत्तिमपेक्षमाणा तिष्ठति' इत्यभिधायानुमता यथागतमगच्छन् ॥

"अहो इस राजा का स्वभाव अस्मीच्छा शून्य है, उदारता अकृत्रिम है, वाणी में वञ्चना का नितान्त अभाव है। दान में दैन्य नहीं है, मुस्कुराहट में अहंकार नहीं है, गाम्भीर्य अत्यन्त स्पष्ट है।" इस तरह सोचती हुई वे भी उचित विनोद के साथ कुछ समय बिता कर, कुछ गोष्ठी सुख का अनुभव कर, कुछ दमयन्ती के विलास प्रसंग की चर्चा कर, "आज्ञा दें श्रीमान् जाने के लिये क्योंकि आप के वार्तामृत पान के लिये उत्कण्ठित देवी शीघ्र ही हम लोगों के लौटने की प्रतीक्षा कर रही हैं।" यह कह राजा की अनुमति से यथास्थान चली गयीं।

गतासु च तासु, प्रगल्भं प्रज्ञायाम्, अचपलं वाचि, कुशलं कलासु, निपुणं नीतौ, सप्रतिभं सभायाम्, आश्चर्यभूतमाहूय पर्वतकनामानं वामनकमुपायनीकृत्य कर्कन्धूफलस्थूलोज्ज्वलमुक्तावलीमुख्यनव्यभूषणांशुकादिसंमानादरपरितोषितेन पुष्कराक्षपुरःसरं किंनरमिथुनेन सह दमयन्तीं प्रति प्रेषयामास ॥

उन सबों के चले जाने पर बोलने में प्रवीण, कलाओं में कुशल, नीति में निपुण, सभा में प्रतिभासम्पन्न, आश्चर्यजनक पर्वतक नामक बौने को बुलाकर उसे उपहार रूप में समर्पित कर, कर्कन्धु बेर (फल) सदृश बड़े-बड़े चमकदार मोतियों के हार आदि मुख्य एवं अन्य भूषणों तथा दिव्य वस्त्रों को सम्मान पूर्वक देकर आदर से उन्हें सन्तुष्ट कर पुष्कराक्षसहित किन्नर-मिथुन के साथ दमयन्ती के पास भेज दिया।

स्वयं च शाङ्खिकमुखमरुत्पूर्यमाणशङ्खस्वनविमिश्रभांकारिमध्याह्न-भेरीरवेण निर्यद्वेलाविलासिनीचरणाभरणरणन्मणिनूपुरझंकारेण च निवेद्यमाने मध्याह्नसमये माध्याह्निककरणायोदतिष्ठत् ॥

स्वयं भी शङ्खवादक के मुख की हवा से भरे हुए शङ्ख की ध्वनि के अतिरिक्त गम्भीर ध्वनि करने वाले नगाडे की ध्वनि से और जाती हुई वाराङ्गनाओ के चरणो के अलङ्कार, नूपुरो की झंकृति से मध्याह्नकाल समझ कर तत्कालीन कृत्य करने के लिये उठा।

क्रमेण च निःसृते समस्तसेवकजने, विश्रान्ततूर्यतालगीतासु निर्यातनर्तकीविरहखेदादिव मूकीभूतासु, नृत्यशालासु निःशब्दतया सुप्तास्विवाधिकारककुटीषु, शून्यतया मध्याह्नतन्द्रीमूर्च्छितेष्विव समस्तमण्डपेषु, संक्रान्तसेवाविलासिनीचरणकुङ्कुमपदपङ्क्तितया विकीर्णविकसितरक्तारविन्द इव प्रकाशमाने राजभवनाङ्गणे, घनं ध्वनन्तीषु भोजनावसरशङ्खकाहलासु, प्रधावमानेषु प्रत्यास्वादकजनेषु परिमृज्यमानास्वतिथिसत्रशालासु, सज्जीक्रियमाणेष्वग्राशनब्राह्मणेषु, प्रवेश्यमानासु गोग्रासयोग्यासु कपिलासु पुण्यगवीषु प्रक्षाल्यमानेषु वायसबलिस्तम्भशिखरफलकेषु, वहिर्दीयमानेषु, दीनानाथभिक्षुकभैक्ष्यपिण्डेषु, समुपलिप्यमानासु भोजनस्थानवेदीषु संचार्यमाणेषु चकोरपञ्जरेषु, निवेद्यमाननैवेद्यासु पूज्यराज्याधिदेवतासु वैश्वदेवाहुतिगन्धवाहिनि वहति विविधान्नपाकपरिमलमनोहरे महानसमरुति, निर्वर्तितमज्जनादिक्रियाकलापे भजति भोजनभुवं भूभुजि, वहिः सूपकारकलकलः समुल्ललास ॥

क्रमेणेति ॥ महानसं पाकस्थानम् ॥

क्रम से सभी सेवक चले गये। वाद्य, ताल और गीत बन्द हो गये। नर्तकियाँ चली गयी। उनकी विरहव्यथा से मानो नृत्यशालायें मौन हो गयी। निःशब्दता के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि अधिकारियो के कुटीर सो गये थे। शून्यता के कारण ऐसा लगता था कि सभी भवन मध्याह्नकालीन निद्रा मे मूर्च्छित हो रहे थे। राज-भवन के प्राङ्गण मे सेवा मे लगी हुई रमणिओ के चरण कुङ्कुम के चिह्न विखरे हुए लाल कमल की तरह चमक रहे थे। भोजन काल के शङ्ख और काहल जोर से बज रहे थे। विभिन्न स्वादिष्ट तत्त्वो के बनाने वाले पाचक इधर उधर दौड रहे थे। अतिथि-भोजनालय धोये जा रहे थे। सबसे पहले भोजन करने वाले ब्राह्मण तैयार किये जा रहे थे। गोग्रास देने योग्य कपिल रंग की पवित्र गायें लायी जा रही थी। काकवलि देने के लिये

स्तम्भो के ऊपर चमर धोये जा रहे थे। बाहर दीन, अनाथ और भिक्षुकों को भोजन पिण्ड दिये जा रहे थे। भोजन स्थान की वेदियाँ लिपी जा रही थीं। चकारो के पिंजड़े घुमाये जा रहे थे।

राज्य की पूज्य अधिदेवताओं को नैवेद्य समर्पित किया जा रहा था। वैश्य देव के लिये दी हुई आहुति के गन्ध को ढोने वाली विविध पक्वान्नों की गन्ध से मनोहर पाकशाला की हवा बह रही थी। स्नानादि समस्त क्रियाओं से निवृत्त होकर राजा भोजन-स्थल पर आया त्यों ही पाचकवृन्द की कलकल ध्वनि हुई।

> 'आज्यं भक्ष्यमभिन्नकुन्दकलिकाकल्पश्च शाल्योदनो
> धूपामोदमनोहरा शिखरिणी स्वादूनि शाकानि च।
> पेयास्वाद्यकल्यलेह्यसकलं नानाविधं भुज्यतां
> भैम्यं भीममहानृपस्य सुतया संप्रेषितं सैनिका ॥ ११ ॥

आज्यमिति ॥ अभिन्नकुन्दकलिकया कल्पत उपमीयत इति। यावत्। कल्पन्तात् 'अचो यत्' इति सूत्रेण यत्। कचित्तु पक्वसंपन्न पठन्ति ॥ ११ ॥

सैनिको! महाराज भीम की कन्या द्वारा भेजे गये पक्वान्न घृत, अविकसित कुन्द की कलिका सदृश भात, धूप की गन्ध से मनोहर, मसाले युक्त दही, स्वादिष्ट तरकारियाँ, पीने, चखने, खाने और चाटने लायक विविध भोज्य को आप लोग खायें ॥ ११ ॥

अहो नु पाश्चात्यो मत्स्यमांसविरहितमुदीच्यप्रतीच्यप्राच्यजनाः प्रियमपि भोक्तुमेव न जानन्ति ॥

विरलः खलु दाक्षिणात्येषु मांसाशनव्यवहारः ॥

तदाकर्ण्यतां भो नैषधाः ॥

ओह, ये उत्तर, पश्चिम और पूर्व के लोग जिन्हें सक्तु बहुत प्रिय है, मछली और मांस से रहित भोजन ही करना नहीं जानते।

दक्षिण के लोगों में मांस खाने का व्यवहार बहुत कम है।

निषधवासियो, सुनो—

> 'आज्यप्राज्यपयानकूरकवलैर्मन्दां विधाय क्षुधां
> चानुजीनरसमंस्कृतो नु दानकैरिसो रसः पीयताम्।
> समारस्पृष्टपयोयतेमनरसानास्वाद्य किंचित्तत
> स्निग्धस्तम्यदधिद्रोण सरसः शाल्योदनो भुज्यताम् ॥१२॥

आज्येति ॥ 'रसोऽनाथस्कस्थैव त्रिगन्धं च त्रिजातकम्। तदेव मरिचैर्युक्तं चतुर्जातकमुच्यते' तेन संस्कृतं कृष्णगुरुप्रान्तावनुजीनकसाहृतः। सरट

सुनिष्पन्नदीर्घतण्डुलशाकञ्च । अतिक्लिन्नतादिदोषरहितञ्च । दधिद्रवो वस्त्र-गालित दधि ॥ १२ ॥

पर्याप्त घी मे बने हुए मद्य और कुर नामक चावल के भात से भूख शान्त कर इलायची, नागकेसर और मिर्च से युक्त ईख का रस पीजिये। विविध मसालो से स्वादिष्ट तरकारियो के रस का कुछ आस्वादन कर चिकने तथा गाढे श्रीखण्ड से भात को सरस कर खाइये" ॥ १२ ॥

राजा तु प्रतीहार 'विनिश्चीयतां किमयं बहि: कलकलव्यतिकर.' इत्यभिधाय तत्कालयोग्यपरिजनपरिवृतो भोक्तुमुपाविशत् ॥

त्वरितं च गत्वागतश्च स प्रतीहारो विज्ञापयांबभूव ॥

'देव, दमयन्त्या प्रहिता सूपकारा: सैन्यजनम्, आब्राह्मणान्त्यज-गोपालकम्, आकरितुरगवाहनम्, आसामन्तनियुक्तकम्' आस्वाद्यै-र्न्नेस्तैरन्नविशेषैर्भोजयन्ति ॥

राजा तो, "प्रतीहार, देखो यह बाहर क्या कोलाहल हुआ है ?" यह कह कर स्वय भोजन करने बैठ गया।

प्रतीहार शीघ्र ही गया और लौट कर बताया।

"राजन्, दमयन्ती द्वारा भेजे गये पाचक सैनिको, ब्राह्मणो, अन्त्यजो, गोपालको, हाथी, घोडे आदि वाहनो, सामन्तों तथा कर्मचारियो को उन उन सुन्दर भोज्य पदार्थों से तृप्त कर रहे हैं।

लक्ष्न सर्वतो दृश्यन्ते पर्वता: पक्वान्नस्य, राशय: शाल्योदनस्य, स्तूपा: सूपस्य, निर्झरा: सर्पिष:, सिन्धवो मधुन:, निकारा: शर्क-राया:, स्रोतांसि दधिदुग्धयो:, शैला: शाकानाम्, निपानानि पान-कानाम्, कुल्या: फलरसानाम्, कूटा: कषायाम्ललवणतिक्तमधुरो-पदंशानाम् ॥ एवमकार्पण्यमिच्छया भोजितं सैन्यम् ॥

ये पक्वान्न के पहाड चारो ओर दीख रहे हैं। ये भात की राशियाँ है। ये दाल के ढेर हैं। ये घी के झरने है। ये मधु के सागर हैं। ये चीनी की राशियाँ हैं। ये दूध और दही की धारायें है। ये तरकारियो के ढेर हैं। ये पेय पदार्थों के स्थान हैं। ये फलरसो के प्रवाह हैं। ये कसैले, खट्टे, नमकीन, तीते तथा मधुर अँचारो की राशियाँ हैं। बडी उदारता के साथ सैनिको को इच्छानुसार खिला दिया गया।

अपिच—

भुक्तान्ते घृतदिग्धहस्ततलयोरुद्वर्तनं चन्दनं
पश्चाद्ग्रामरखण्डपाण्डुरदलैस्ताम्बूलदानक्रम: ।

पर्यैकस्य मृणालतन्तुमृदुनी दत्ते ततो वाससी
देव्या किंचिदचिन्त्यमेव भवतः सैन्यातिथेयं कृतम् ॥ १३ ॥

मुखान्त इति । चन्दनाक्तदेहोद्वर्त्तानि नागवल्लीदलानि नागरैर्विदग्धैश्चर्व्यन्ते खण्ड्यन्ते इति नागरखण्डसंज्ञानि ॥ १३ ॥

भोजन के बाद घी से चिकने हाथों पर चन्दन का उबटन देकर नागर-खण्ड से बने हुए पान दिये गये। प्रत्येक को कमल-तन्तु की तरह एक जोड़े कोमल वस्त्र दिये गये। इस तरह देवी ने सैनिकों का अद्भुत सत्कार किया। ॥ १३ ॥

इयं च रसवती देवस्य तथा स्वहस्तपल्लवपरिमलनसंस्कृतैः पाक-विशेषैरलङ्कृत्य स्वमुद्रया मुद्रिता प्रहिता' इत्यभिधाय व्यरंसीत् ॥

इयं चेति ॥ स्वहस्तान्यां परिमलन यथोचितगन्धद्रव्यक्षेपेण सुरभीकरणम् ॥

इसने अपने ही कर पल्लव से विभिन्न सुगन्धित पदार्थों द्वारा संस्कृत (सुगन्धित) विविध भोज्यों को सजाकर उसपर अपनी मुहर लगाकर यह रसोई आप के लिये प्रेषित किया है।" यह कह कर चुप हो गया।

राजा तु मनाक्कम्पितशिराः सस्मितम्—'अहो निरतिशयमुदार-गम्भीरमुचितव्यवहारहारि ललायितं तस्याः स्पृहणीयपरिमलश्चायमपूर्व इव कोऽपि पाकक्रमः ॥

राजा थोड़ा सिर हिलाता हुआ मुस्कराहट के साथ "ओह, उसकी चेष्टायें अत्यधिक उदारता के कारण गम्भीर तथा उचित व्यवहार के कारण मनोहर हैं। हृदयहारी परिमलों से युक्त यह भोज्य सामग्री भी अपूर्व ही है।

तथाहि—

इदमम्लमप्यनम्लास्वादम्, इदमीषत्कषायमपि मधुरतां नीतम्, इदमेकरसमप्यनेकरसीकृतम्, इदमतिमधुरतयाऽमृतमप्यतिशेते. रसव-त्यामपि रसवती विदर्भराजात्मजा' इति विभावयंस्तांस्तया प्रहितान् पाकविशेषानादरेणास्वादयामास ॥

इदमिति ॥ रसवत्यामपि रसवती रसिका रागिणीति यावत्। तात्पर्यवतीति च ॥

क्योंकि—

यह खट्टा होता हुआ भी चखने में खट्टा नहीं लगता, यह थोड़ा कषाय होता हुआ भी मीठापन लिया हुआ है। यह एक रस होता हुआ भी अनेक रसों से पूर्ण कर दिया गया है। अत्यन्त मधुरता के कारण यह अमृत से भी आगे बढ़ता जा रहा है। यह विदर्भपति की कन्या रसोई में भी बहुत

प्रवीणा है।' [redacted] तरह विचार करता हुआ उसके द्वारा भेजे हुए विभिन्न भोज्य द्रव्यों को बड़े आदर से चखा।

चिन्तितवांश्च—

> षड्रसा किल वैद्येषु भरतेऽष्टौ नवापि वा।
> तया तु पद्मपत्राक्ष्या सर्वमेकरसीकृतम् ॥ १४ ॥

षडिति ॥ एकरसीकृतमुत्कृष्टास्वादीकृतम् । चमत्कृतत्वात् । आत्मविषये एकानुरागीकृतं वा। यदनेकरसं तत्कथमेकरसीभवेदिति विरोध पुनरर्थस्तु शब्द उद्भावयति ॥ १४ ॥

और सोचा भी—

आयुर्वेद में छ रस तथा भरत के नाट्यशास्त्र में आठ रस सुने जाते हैं किन्तु उस पद्मनेत्रा ने तो सब रसों को एक रस कर दिया है। ॥ १४ ॥

तथाहि—

> अग्रस्थामिव चेतस. पुर इव व्यालम्बमानां दृशो-
> र्जल्पन्तीमिव रुन्धतीमिव मनाङ् मुग्धं हसन्तीमिव ।
> निद्रामुद्रितलोचना अपि वयं तां विश्वरूपायितां
> पश्यामो बहिरन्तरे निशि दिवा मार्गेषु गेहेषु च ॥ १५ ॥

तथाहीति ॥ अनेनात्मानुभवसभावनाद्वारेणैकरसत्वमेव व्यनक्ति ॥ अग्रस्थामिति ॥ विश्व रूपमस्येति विश्वरूपो हरि ॥ १५ ॥

क्योंकि—

चित्त के आगे स्थित, आँखों के सामने वर्तमान, कुछ कहती हुई, रोकती हुई, मधुरतापूर्वक थोड़ा हँसती हुई, संसार के रूपों में व्याप्त उसे हम निद्रा के कारण आँखों के बन्द हो जाने पर भी घर में मार्ग में, दिन में, रात में, बाहर और भीतर सब जगह देखते हैं" ॥ १५ ॥

एवमवधारयन् अतृप्त इव तथा प्रहितेषु स्वहस्तपक्वपाकरस-विशेषेषु, असन्तुष्टस्तत्कथायाम्, आचम्य,चन्दनागुरुपरिमलेन पाण्डु-रितपाणिपल्लव, लवङ्गकक्कोलकर्पम्भिततताम्बूलमुत्सर्पिकर्पूरपरिमल-मादाय, विकीर्णविविधकुसुमप्रकरहारिणि यक्षकर्दमाच्छच्छटोच्छो-टितपर्यन्तभित्तिभागे लम्बितप्रलम्बजाम्बूनदपद्मदाम्नि धूपधूमामो-दिनि चूर्णितकर्पूररङ्गरेखाभाजि भोजनान्तरमपरेऽपराह्णविनोद-मण्डपे मनाग्विश्रम्य रणरणकाक्रान्तहृदयो दूरदिगन्तालोकनकुतूह-लित सरित्तीरोत्तम्भिताभ्रंलिहसौधस्कन्धभूमिमारुह्य च तस्या-

मूर्ध्नि एव ध्रियमाणमायूरातपत्रयुगलः सलीलालसपदैरितस्ततः परिक्रामन्, नेदीयसि सरित्संगमाम्भसि मध्याह्नसलिलमवगाहन-सुखमनुभूय तीरमुत्तीर्णासु तिमिरशङ्कया कृतदूरचटुलमपोढचक्रवाक-चक्रवालैराकुलमवलोक्यमानासु पुलिनपांसुविहरणविरामे विकलित-विविधवीरुन्धि रोधांसि दन्तीषु दन्तिपंक्तिषु दत्तदृष्टिः, विरलनलिनी-पत्रान्तरालसुप्तोत्थितस्य, किंचिदवाञ्चितचटुलचञ्चोः चरतः चटुल-चञ्चरीकिणि विकचकमलवने राजहंसकुलकलापस्य करिकलभदन्त-दण्डपाण्डुविसखण्डमङ्करकारानाकर्णयन्, अपराह्णमज्जनागताभि: कुण्डिनपुरपुरन्ध्रिभिराश्चर्यरसोर्मिमुषितनिमेषैर्निष्कम्पनीलोत्पलपलाश-लीलायमानैर्नेत्रपुटैरापीयमानमुखेन्दुद्युतिः, दर्शिततरङ्गभङ्गया दूरोच्छलद्बालशफरोच्चलनेन विस्फारितविलोचनया, सरित्संगमसलि-लाधिदेवतयापि विलोक्यमानरूपसंपत्तिरिव, क्षणमविरलचलच्चञ्चरी-कचक्रचुम्बितामुद्घासु क्रीडाकमलसरसीषु, क्षणमुपान्तपङ्क्तीभूत-मञ्जरितसहकारराजिषु स्मरवाजिवाह्यालीषु, क्षणमुत्पतत्पताकापट-पल्लवराजितासु सीमभूपालान्तःपुरप्रासादपङ्क्तिषु, क्षणमवकीर्णकुसुम-रङ्गावलीरम्यासु नगरवीथीषु विश्रान्तविलोचनश्चिरमवतस्थे ॥

मूर्ध्नीति ॥ उत्तम्भितस्य तत्कालारोपितस्य अनुमस्य चित्रवृक्षादयस्याम्रन्नि हमीषदप स्कन्धभूमिमारुह्य तस्याभितस्ततः परिक्रामन्, निकटतरे नदीसङ्गमे-ऽम्भसि पूर्णमज्जनक्रीडासु, तमोभ्रान्त्या चक्रैराकुलमालोक्यमानासु, कृतधूलीस्नानासु, तटीः पातयन्तीषु न्यस्तदृष्टिः, वने चरतो हंसवृन्दस्य विसभङ्गशब्दमशृण्वन्, कुण्डिनस्त्रीभिर्दृश्यमानमुखेन्दुश्री, उच्छलच्छफरीच्छलविलोकिन्या जलदेवतया वीक्ष्यमाणरूपसम्पद्दिव क्वचिदेक सरसीषु क्वच चूताल्लीषु क्वच गृहालीषु क्वचिच्च वीथ्यङ्गणवनपङ्क्तिषु क्वच पुरपद्धतिषु विश्रान्तनेत्रो नलश्चिरमस्थात्। सादरेण नेत्रपानम्। तत्र पत्रपुटैर्दुग्धमिति नेत्रपुटैरापीयमानेत्युक्तम्। कण्टकादिदोषरहितासु तरुराजिराजितासु च भूमिषु वाहवाहना। तथा च—'रम्या समतला लोष्टकील-कण्टकवर्जिता। वाह्यालीभूमिरम्यर्णतरुराजिविराजिता' इति। एतदेव पङ्क्ती-भूते यादिनोक्तम्। हिङ्गुलहरितालादिविचित्रवर्णकवचित्रहेतुत्वात्कुसुमान्येव रङ्गा-वली विचित्रवर्णकुसुममक्ति ॥

इस तरह सोचता हुआ उसके द्वारा भेजे गये और उसी के द्वारा पकाये गये भोज्य रसों से अतृप्त सा ही रह गया। उसकी चर्चा से पेट नहीं भर सका। आचमन किया। चन्दन, अगुरु आदि गन्ध द्रव्यों से पल्लव सदृश हाथों को स्वच्छ कर लवङ्ग और शीतलचीनी मिश्रित पान तथा सुगन्धित कपूर का चूर्ण ग्रहण किया।

इसके बाद अपराह्न के समय एक दूसरे विनोद-मण्डप मे जिसकी भित्ति टगे हुए विविध पुष्पो से मनोहर थी, सुगन्धित पदार्थों के मिश्रण से बनी हुई धारा से धुली हुई थी, स्वर्ण-कमल की मालाये लटकी हुई थी, धूप के धूम की सुगन्धि गमक रही थी, चूर्ण किये हुए कपूर से सफेद चिह्न बने हुए थे, थोडा विश्राम किया।

उस समय उसका हृदय उत्कण्ठा से भर गया था। सुदूर दिशाओ की ओर देखने के लिये मन कुतूहलित हो गया था। अत नदी तट पर बने हुए गगनचुम्बी प्रसाद पर चढा। वहाँ मयूर वंश के दो छाने लगे हुए थे। लीलापूर्वक धीरे-धीरे इधर-उधर घूम रहा था। समीप मे ही नदी सगम के जल मे दोपहर के समय समस्त स्नान-सुखो का अनुभव कर तीर पर निकले हुए हाथियों के यूथो को देखा। उन ( काले हाथियो ) को अन्धकार समझकर दूर से ही चक्कर लगाते हुए चक्रवाक व्याकुलतापूर्वक देख रहे थे। तट की धूलि मे विहार करने के बाद खिले हुए विविध पौधो से युक्त तटस्थली का मर्दन कर रहे थे। कहीं-कहीं पर पाये जाने वाले कमल पत्रो के एकदेश पर सोकर उठे हुए, अपने चन्दन चोंचो को थोडा नीचे किये हुए, चपल भ्रमरो से मण्डित कमलवन मे चरते हुए राजहसो द्वारा तोडे जाते हुए हाथी के बच्चो के दातो की तरह शुभ्र कान्तिवाले कमल दण्डो की ध्वनियाँ सुना। अपराह्न समय मे स्नान के लिये आयी हुई कुण्डिनपुर की वधुएँ आश्चर्य रस की लहरियो मे डूबते हुए पलकशून्य, कम्पनहीन, नील कमलपत्र के विलास को प्रस्तुत करने वाले नेत्रो से उनके मुखचन्द्र की कान्ति को पी रही थी। तरङ्ग रूप भ्रूभङ्गिमा दिखा कर, दूर से उछलती हुई छोटी मछलियों के बहाने आंखो को खोलकर मानो नदी सगम की जलदेवता उनकी रूप-सम्पत्ति को देख रही थी। कुछ समय तक क्रीडा कमल बावलियो को जिनके कमलो को भनभनाते हुए भ्रमरों के जत्थे चूम रहे थे, कुछ क्षणो तक कामदेव के अस्त्रों के विहार के उपयुक्त समीपवर्ती भूमि को जिसमे मञ्जरियो से पूर्ण आम के पेडो की श्रेणियां विराजित थी, कुछ काल तक खिलते हुए पुष्पो के कारण मनोहर, वृक्षो और लताओ के कारण रमणीय गृह वाटिकाओ के समूह को, कुछ क्षणो तक फहफहाती हुई पताकाओ के वस्त्र-पल्लवो से सुशोभित महाराज भीम के अन्त पुर के अट्टालिका-समूह को, कुछ क्षण तक बिखरे हुए फूलो के रङ्गो से मनोहर, नगर की गलियो को देखता हुआ बहुत समय तक वहीं खडा रहा।

चिन्तितवांश्च—

'नोद्याने न तरङ्गिणीपरिसरे नो रम्यहर्म्ये न वा
पुष्प्यत्पुष्करगर्भगुञ्जदलिषु क्रीडातडागेष्वपि ।
वात्याघूर्णितशीर्णपर्णतरला दृष्टिर्मदीयाधुना
लुभ्यल्लुब्धकभीषितेव हरिणी श्रान्तापि विश्राम्यति ॥१६॥

नोद्यानेति ॥ विश्राम्यतीति प्रत्येकं योज्यम् ॥ १६ ॥

सोचा भी—

आंधी के झकोरे में पड़े हुए पत्ते की तरह मेरी दृष्टि थकने पर भी लालची व्याधे से डरी हुई हरिणी की तरह न बगीचे में, न नदी तट पर, न रमणीय कोठे पर, न इन विनोद की बावलियों में जहाँ के खिलते हुए कमलों के कोश में भ्रमर भनभना रहे हैं, विश्राम ले रही है ॥ १६ ॥

[गिरा हुआ पत्ता जैसे चक्करदार हवा में स्थिर नहीं रह पाता वैसे ही उसकी दृष्टि स्थिर नहीं रह पाती थी । थकी हुई हरिणी विश्राम करना चाहती है किन्तु जब लालची व्याधा पीछा करता है तो बिचारी कहीं विश्राम नहीं कर पाती । राजा की दृष्टि के लिये भी कहीं विश्राम का अवसर नहीं था । उद्यान आदि पदार्थ मनोरम होते हैं किन्तु विरह के समय में विनोद के पदार्थ उद्दीपक बन जाते हैं ॥ १६ ॥]

अपि च—

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयो
न चापि प्रध्वंसं व्रजति विहितैः शान्तिकशतैः ।
भ्रमावेशादङ्गे कमपि विदधद्भङ्गमसमं
स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ॥ १७ ॥

न गम्य इति ॥ भ्रम· सन्देह । स चात्र दुमयन्तीलोभविषय· ॥ १७ ॥

यह स्मरापस्मार ( कामरूप मिर्गी नामक रोग ) न मन्त्रों से जाने लायक है, न दवा का विषय है, न सैकड़ों शान्ति-पाठों से हट सकता है । चक्कर में डाल कर अङ्गों में असह्य पीड़ा भर रहा है । आँखों में चक्कर ला देता है और मूर्च्छित कर दे रहा है ॥ १७ ॥

किंचान्यदद्भुतम्—

पौष्पा पञ्चशरा· शरासनमपि ज्याशून्यमिक्षोर्लता
जेतव्यं जगतां त्रयं प्रतिदिनं जेताप्यनङ्गः किल ।
इत्याश्चर्यपरम्परापरघटनया चेतश्चमत्कारयन्
व्यापारः सुतरां विचारपदवीवन्ध्यो विधेर्वन्द्यताम् ॥१८॥

पौष्पा इति॥ अत्र प्रथमोऽपिशब्दः शरासनस्य ज्याशून्यस्य शरादेर्षया द्वितीयश्च जेतुरनङ्गस्य इनिदिनजेतव्यजगात्रयापेक्षया चैपम्यव्यञ्जक ॥ १८॥

और भी आश्चर्य की बात यह है कि—फूल के बने हुए उसके पाँच ही बाण हैं, धनुष भी प्रत्यञ्चा से शून्य है और ईख से बना है, जीतना सपूर्ण संसार है, जीतने वाला अनङ्ग ( अगहीन ) है। इस आश्चर्यपूर्ण पदार्थों की सघटना कर चित्त को चमत्कृत करता हुआ ब्रह्मा का व्यापार अचानक विचार-मार्ग मे उतर नहीं रहा है अत. उसे नमस्कार है॥ १८॥

एवमनेकविधवितर्कतरलितहृदये कुण्डिनगरवीथीविश्रान्तदृष्टि शनैरुद्वेल्लितमल्लिकाक्षपल्लवस्य मृदुनरतरङ्गितसरितः कमलवनवायोः समर्पितवपुषि निषधभूभुजि, भुजगनिर्मोकधवले वसानो वाससी, रणन्मणिकङ्कणैराकूर्परं पूरितप्रकोष्ठ श्रीखण्डपिण्डपाण्डुरिततनुरपूर्व इव पर्वतकः प्रतीहारसूचितः प्रविवेश॥

एवमिति॥ मल्लिकाक्षो हसविशेष। चिरदृष्टस्यापि पर्वतकनाम्नो वामनस्यापूर्वत्वमिह पूर्वमभूषितस्य सम्प्रति पारितोषिकभूषणभूषितत्वाद्वयितोद्धततरना-तात्पर्याद्वा॥

इस तरह विविध प्रकार के तर्क व वितर्क से हृदय तरंगित हो रहा था। कुण्डिनपुर की गलियो मे आँखें विश्राम कर रही थी। कमलवन की हवा मल्लिकाक्ष जाति के हंसो के पखो को धीरे-धीरे कम्पित कर रही थी और नदी को अतिशय कोमलतापूर्वक तरंगित कर रही थी। निषधपति भी इसी में शरीर समर्पित किये हुए थे, तब तक प्रतीहार द्वारा प्रवेश की अनुमति पाकर पर्वतक राजा के पास आया। वह साँप के केंचुल सदृश वस्त्र धारण किया था, बजते हुए मणि-कङ्कण से केहुनी से लेकर कलाई तक का भाग भरा हुआ था। चन्दनपिण्ड के लेप से शरीर शुभ्र हो गया था। अत उसकी अपूर्व शोभा बन गई थी।

प्रविश्य च प्रकटितप्रणयप्रणामः प्रभुणा सविस्मयस्मितहूंकारेणाभिभाषितः स्तोकाकुञ्चितभ्रूसंज्ञया विज्ञापयितुमारेभे॥

भीतर आकर नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। विस्मय से मुस्कराते हुए "हूं" ऐसी ध्वनि करते हुए महाराज द्वारा कुछ कहे जाने पर थोड़ा उठे हुए भौंहो के सकेत से बोलना शुरू किया—

'देव श्रूयताम्। इतो गतवानहम्। अनन्तरमतिशयितस्वर्गोन्मार्गाननेकविधचर्चाचारूणि चत्वराणि विलङ्घ्य, विहितमनः प्रसादान्

प्रासादानवलोकयन्, इतस्ततः सविभ्रमवारविलासिनीलीलाविलासिनी-विकारकूणितकोणेक्षणाक्षिप्तहृदयः, सेवाविरामनिःसरत्सामन्तसंकुलम्, अविरलगलन्मधुमञ्जरीपुञ्जपिञ्जरितसरससहकारवननिकुञ्जपुञ्जित-पुंस्कोकिलकुलकलरवरमणीयोद्यानमालावलयितम्, उपान्तकृतमणि-मन्दुरामन्दिरनिबद्धस्निग्धपोषपोषणोत्कर्षहर्षहेषितराजवल्लभतुरंगमम्, उत्तुङ्ग-शृङ्गसंगतमङ्गलध्वजम्, अङ्गणोत्सङ्गरङ्गत्क्रीडाकुरङ्गविहंगमम्, अमन्दाङ्ग-रक्षिरक्षितकक्षान्तररममाणराजकुमारकम्, अतिसूक्ष्ममुक्ताफलरचित-तरङ्गरम्यरङ्गरेखाराजिराजिताजिरं राजभवनमविशम् ॥

देव श्रुतवानिति मार्गाश्चत्वराणि च विलङ्घ्य, प्रासादानवलोकयन्, इदं राजभवन-मविशमिति सम्बन्ध । कथं? मन्योर्दर्पकन्दर्पमकारादिवार्ताविशाद्यस्त्रावानल-प्रवेशादिलक्षणा चामुण्डापि । मणिमन्दुरेत्यत्र षष्ठीसमास ॥

"महाराज, सुनिये—यहाँ से चलने के बाद स्वर्ग से भी अधिक मनोहर मार्गों तथा वाग्विनोदों के कारण मनोहर चौराहों को पार कर मन को प्रसन्न कर देने वाले राजप्रासादों को देखा। मुस्कुराती हुई वारांगनाओं के वासना-द्योतक टेढ़े कटाक्षों से मेरा हृदय आकृष्ट हो गया। उस राजभवन में मैंने प्रवेश किया, जहाँ सेवा-कार्य की समाप्ति के अवसर पर सामन्त लोग बाहर निकल रहे थे। निरन्तर मधु बरसती हुई मञ्जरियों के कारण पीत रंग वाले सरस आमों के कुञ्जों में बैठ कर गाती हुई कोयल की मधुर कूक के कारण मनोहर उद्यानों की श्रेणियों से घिरा हुआ था। समीप में ही मणिनिर्मित वाजिशाला में बँधे हुए मनोहर, लालन-पालन की उत्कृष्टता के कारण प्रसन्न, राजप्रिय घोड़े हिनहिना रहे थे। ऊँचे शिखरों पर मंगलध्वज लगे हुए थे। आँगन में विनोद-मृग कूद रहे थे। दूसरे कक्ष में विहार करता हुआ राजकुमार अंगरक्षकों द्वारा सुरक्षित था। छोटे-छोटे मुक्ताफलों से बनी हुई तरंगाकृतियों के कारण रमणीय रंगरेखाओं (अल्पनाओं) की पंक्ति से आँगन सुशोभित हो रहा था।

अतिमनोहारिणि यत्र सुपुष्करमालानि क्रीडावापीपयांसि नाग-यूथं च, सारवाणि लीलोद्यानसारसमिथुनानि सेवकवन्दिवृन्दं च, विलम्बितानि काञ्चनकुङ्कुमदामानि गीतं च, अनलसङ्गानि लक्षप्रदीप-वर्तिमुखानि प्रेक्षणकं च ॥

अत्राति ॥ यत्र राजभवने । सुपद्मश्रेणीनि पयांसि । यूथं च सुष्ठु पुष्कर शुण्डाग्रं यस्य तथोक्तम् । आलानमर्गलनस्तम्भोऽस्यास्तीति । तथा सह आरवै सारावाणि । वृन्दं च सारोत्कृष्टा वाणी यस्य तथाविधम् । विशेषेण लम्बायमानीकृतानि ।

गीतं च स्वरकृतविलम्बोपेतं तालोपेतं च। अनन्तेन ज्वालाकलापेन युक्तो दीपानाम्। प्रेक्षणकं च नाट्यमनलसमोजस्वि। उच्चैः स्थाने गीयमानत्वात्। तथा गान सहचारितीति इति। लक्षसंख्यद्रव्यपतीनां हि वेश्मसु यावल्लक्ष दीपाः ज्वाल्यन्ते इति प्रथाति ॥

उस अत्यन्त मनोहर ( राजभवन ) मे विनोदवापियों का जल सुन्दर कमलो की पंक्ति से युक्त है और हाथियो का समूह सुन्दर पुष्कर ( सूंड ) और आलान ( बन्धन ) से युक्त है। विनोद-वाटिका के सारसों के जोडे सारव ( आरव ( ध्वनि ) से युक्त ) हैं। सेवक कवियो का समूह सारवाणि ( तथ्यपूर्ण बात कहने वाला ) है। सुवर्ण और कुङ्कुम की मालायें विलम्बित ( विशेष ढग से लटकाई गई ) हैं और गीत विलम्बि ( मन्थर स्वर वाला ) है तथा तालि ( ताल से युक्त ) है। लाखो विपत्तियो का प्रकाश ज्वालामय है और नाटक ओजस्वी तथा गान युक्त है।

[ यह सम्पूर्ण अनुच्छेद श्लिष्ट है। वापीपय-पक्ष मे—सुपुष्करमाल शब्द का बहुवचन सुपुष्करमालानि है। नागयूथ-पक्ष मे—सुपुष्करम् और आलानि पृथक् पद हैं। अर्थात् नागयूथ ( हाथियो का झुण्ड ) सुन्दर शुण्डवाला है और आलान ( बन्धन ) से युक्त है। सारसमिथुन पक्ष मे—सारावाणि—सारव शब्द के प्रथमा का बहुवचन है। अर्थात् सारसो के जोडे सारव ( कलरव ) से युक्त हैं। आरव ( आवाज ) से युक्त जो होगा उसे सारव कहा जायगा। सेवक कवि वृन्द- पक्ष मे—सारवाणि-नपुसक लिंग प्रथमा का एकवचन है। अर्थात् आश्रित कवियो की वाणी तथ्य से भरी है। काञ्चनकुङ्कुमदामानि का विलम्बितानि विशेषण है। राजभवन को सजाने के लिए मालायें बडी सुन्दरता से लटकायी हुई हैं। गीत पक्ष मे—विलम्बि और तालि अलग-अलग पद हैं। दोनो ही गीत पद के विशेषण हैं। नपुसक लिंग मे प्रथमा के एकवचन हैं। अर्थात् वहाँ गाये जाने वाले गीत दीर्घ आलाप के कारण मन्थर-गति सम्पन्न हैं और ताल स्वर से सयुक्त हैं। प्रदीपो का प्रकाश अनल्पमय ( ज्वालापूर्ण ) है। वर्तिसहस्राणि का अनलमयानि विशेषण है। ऐसा कहा जाता है कि लखपति आदमी के घर एक लाख वत्तिया जलायी जाती हैं। उन लाख वत्तियो का प्रकाश अनल को साथ लिया हुआ है। अर्थात् अनल से सयुक्त है। प्रेक्षणक पक्ष मे—अनलसम् और गानि पृथक् पृथक् पद हैं। प्रेक्षणक ( दृश्य ) अनलस ( ओजस्वी ) है और गानि ( गान से युक्त ) हैं। जो दृश्य दिखाये जाते हैं उनका बडा ओजस्वी प्रभाव लोगो पर पडता है। बीच-बीच मे सगीत की योजना से उसे अधिक रोचक बना दिया जाता है। ]

किं बहुना—

सुस्थितनेजोराशेर्लक्ष्मीजनकस्य रत्ननिलयस्य ।
तस्योपरि प्लवन्ते वारिधेरिव वर्णकाः सर्वे ॥ १९ ॥

सुस्थितेन । तेजो राशिर्वडवानल प्रतापचयश्च । लक्ष्मीर्विष्णुपत्नी शोभा च । तयान्वितस्य तस्य सागरपक्षस्योपरि वर्णकाः स्तोतारः प्लवन्ते तरन्ति । अपरि ... बाह्यमेव वर्णयन्तीति भावः । वारो जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति वारिधिः ॥ १९ ॥

अधिक क्या कहूँ—

वर्णन करने वाले लोग उस तेजस्वी, शोभावर्द्धक, तथा रत्न-सम्पन्न राजा का वर्णन सागर की तरह ऊपर ही ऊपर करते हैं ॥ १९ ॥

[ प्रथम एवं द्वितीय चरण की पदावली श्लिष्ट है । सागरपक्ष—तेजोराशि ( वडवानल ) से युक्त लक्ष्मीजनक ( लक्ष्मी का पिता ), रत्ननिलय ( रत्नों का भवन ) वारिधि सागर, समुद्र को तेजोराशि कहा गया है क्योंकि उसके भीतर ऐसी आग जलती रहती है जो निरन्तर आगत धाराओं से गिरती नदियों के अपार जल को जला डालती है । राजा भी तेजोराशि, लक्ष्मीजनक तथा रत्ननिलय है । अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी है । शोभा संवर्धक या राज्य की आर्थिक उन्नति कराने वाला है । रत्ननिलय है । अर्थात् रत्नों का खजाना है । वर्णन करने वाले लोग उसके गुणों के ऊपर ही ऊपर के अंशों का वर्णन करते हैं । उसकी गहराई में पहुँचना बड़ा कठिन है । वारिधि शब्द समुद्र अर्थ में अधिक प्रसिद्ध है किन्तु वार्धि शब्द भी सागर अर्थ में प्रयुक्त होता है । वार् शब्द जल का वाचक है । वार् ( जल ) जिसमें रक्खा जाय उसे वार्धि कहते हैं ॥ १९ ॥ ]

तत्र चलत्कञ्चुकिसंकुलं पातालमिवान्तःपुरमनन्तालयं प्रविश्य विविधकुसुमसम्पत्संपन्नपुण्यपादपपरिकरिताङ्गणवापीपरिसरचलद्धंसाके चन्द्रशालाशालिनि, शैलूष इवानेकभूमिकाभाजि, धनंजय इव सुभद्रान्विते, कुरुवंशाख्यान इव चारुचित्रविचित्रभित्तिभाजि, तुहिनाचलोच्चकूटायमाने सुधाधवलस्कन्धे धाम्नि गवाक्षजालोच्छलत्सततमतिमती सप्तमभूमिकायाम् इतो मुखवातायने निविष्टाम्, इतो गतागता कुब्जवामनकन्यकासङ्घवार्तान्यनिकरविनोदारम्भिणी सम्भाषयन्तीम्, अनवरतवरललोचनालोकनैर्नीलोत्पलोपहारमिव त्वदधिष्ठितायै दिशे दिशन्तीम्, उत्तरीयांशुकस्याच्छतया दृश्यमानमदनरागवर्णकिणानुकारिकस्तूरिकापङ्कपत्रलताङ्कितकुचकलशश्रियम्, अष्टमी-

शशाङ्कशकलश्रीशोभाभाजि ललाटपट्टे स्मरपरवशत्रिपुरपरिरि 'ममेयं ममेव ममेयम्' इति संहर्षोत्कृतं स्ववर्णानुकारिकनीकारचिह्नमिव कुङ्कुमसृगमदमलयजरसरचितत्रिपुण्ड्ररेखात्रितयमुद्वहन्तीम्, आलोहितेन च त्वद्वार्तामृतपाननालप्रवालप्रणालकेनेव कर्णप्रणयिना बालपल्लवेन विराजितवदनाम्, आसन्नमणिभित्तिदर्पणसंक्रान्तप्रतिबिम्बतया स्वरसगमवाञ्छाकृतसन्तापसंविभागार्थमिव बहून्यात्मरूपाणि सृजन्तीम्, आसन्नवर्तिनीभिर्वीणादिविनोदविदुषीभिः समानवयोवेषाभिः सखीभिः सरस्वतीमिव सकलविद्याधिदेवताभिरुपास्यमानाम्, उन्मिषत्कुसुमाभरणरमणीयाभिश्चामरग्राहिणीभिर्वनदेवताभिरिव शरीरिणीं वसन्तमासश्रियमुपसेव्यमानाम्, अनुलेपनपुष्पपाणिभिः प्रसाधिकाभिर्भवानीमिवानेकनागनायकनारीभिराराध्यमानाम्, इतस्ततो निपतन्मण्डनमणिमयूखमञ्जरीजालच्छलेनामान्तमिव कान्तिरसविसरमुत्सृजन्तीम्, अङ्गोपाङ्गावयवेषु प्रतिबिम्बितैरासन्नचित्रभित्तिरूपकैर्मायाविभिः सुरासुरैरिव विधीयमानाश्लेषाम्, अग्रस्थिते पद्मरागमणिदर्पणे कन्दर्पातुरं रागिणि शशिनीव करुणयार्पितच्छायाम्, अशेषजगज्जिगीषयाशस्त्रशालामिव मन्मथस्य, सङ्केतवसतिमिव समस्तसौन्दर्यगुणानाम्, अधिदेवतामिव सौभाग्यस्य, विपणिमिव लावण्यस्य, शिल्पसर्वस्वपरिणामरेखामिव विधातुः, अनन्तसंसाररोहणैकरत्नकन्दलीं दमयन्तीमद्राक्षम् ॥

तत्र चेति ॥ कञ्चुकिनो महल्लका उरगाश्च । (बहुनिलय शेषनिलय च ।) प्रविश्य ईदृग्विधे धाम्नि गृहे, मत्तमभूद्भिक्तासमवाप्य, तत्र स्थिते इतोमुख एव इस्तादिसङ्केतकथिते एव, वातायने गवाक्षे, निविष्टामासीनां, दमयन्तीमद्राक्षमिति सम्बन्धः । चन्द्रशाला शिरोगृहम् । शैलूषो नटः । भूमिका गृहभूमिः वेषधारणं च । शोभनानि भद्राणि गृहावयवविशेषास्तैरान्विते । पक्षे सुभद्रार्जुनपत्नी । चारुचित्रेण विचित्रा भित्तीर्भजते । अन्यत्र चित्रविचित्रौ शान्तनुसुतौ । तौ च कुरुवंश्या भित्तिभूतौ । तत्कलत्राभ्यामम्बिकाम्बालिकाभ्यां पाण्डुधृतराष्ट्रयोरुत्पादनात् । तथा इन्दुना सहसखे(?)दिवस्य सहयोऽश्वा यत्र तस्मिन् । अष्टमी शशाङ्ककलेति । यष्ट शशिनो हि प्रियं ललाटं भवति । त्रयाणां मदवाजन्तममरं पुरवाश्विपुरया । यथा—'न याचतेऽस्य त्रिगुणं परस्परम्' इत्यत्र त्रयाणां धर्मादीनां गणः । तथा च चन्द्रसिंहकृते चण्डिकाचरिते—'प्रियत्रिवर्गश्रवणम सदा मम' इति । कर्मधारयस्तु सज्ञामामेव । मणिदर्पणलक्षण शशिनि कारुण्यादर्पितप्रतिकृतिमिव पश्य । अवज्ञाता हि रागी म्रियते । संसार रोहणगिरिः, दमयन्ती च रत्नप्ररोहशलाका ॥

घूमते हुए कञ्चुकियों से व्याप्त तथा अनन्त पशुओं से युक्त उस भवन में पाताल की तरह प्रवेश किया ।

[ पाताल लोक कञ्चुकि-संकुल ( सर्पों से संकीर्ण ) रहता है। राजभवन कञ्चुकि-संकुल ( कञ्चुकियों से संकीर्ण ) है। पाताल अनन्तालय ( शेषनाग का भवन ) है। राजभवन अनन्तालय ( अनेक कोठरियों से समन्वित ) है। ]

विभिन्न पुष्प-सम्पत्ति से सम्पन्न पवित्र वृक्षों से घिरी हुई आँगन की बावली के तट पर चक्रवाक घूम रहे थे। ( वह भवन ) चन्द्रशाला ( सर्वोच्च प्रकोष्ठ ) से सुशोभित था। नट जैसे अनेक भूमिका ( विभिन्न पात्रों का वेष ) धारण करता है वैसे वह भवन भी अनेक भूमिका ( मंजिलों ) को धारण करता था। अर्जुन जैसे सुभद्रान्वित ( सुभद्रा नाम की पत्नी से युक्त ) थे वैसे वह भी सुभद्रान्वित ( सुन्दर गृहभागों से युक्त ) था।

कुरुवंश का आख्यान जैसे चारुचित्र + विचित्र + भित्तिभाक् ( सुन्दर चित्र और विचित्र नामक मूल गोत्रों को धारण करने वाली ) है वैसे वह सुन्दर चित्रों के द्वारा विचित्र भित्तियों को धारण कर रहा था। हिमालय के ऊँचे शिखरों की तरह उसके विभिन्न उच्चतम भाग चूने से धवल किये गये थे। उसके सातवें प्रासाद पर जिसकी ध्वजपंक्तियाँ दूर्वा के घोड़ों के साथ विलास कर रही थीं, खिड़की के सामने इधर ही की ओर मुँह कर बैठी हुई दमयन्ती को मैंने देखा।

[ वैदूर्य, धनञ्जय तथा कुरुवंशाख्यान इन तीनों उपमानों के साथ भवन की केवल शाब्दी समानता है। कुरुवंश की भित्ति ( मूल पुरुष ) चित्र और विचित्र थे। इनकी पत्नी का नाम अम्बिका और अम्बालिका था। इन्हीं से पाण्डु और धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए थे। ]

आप के कथा-प्रसङ्ग से विनोद कराती हुई यहाँ से लौटी हुई कुबड़ी और नाटी कन्याओं से बातें कर रही थी। निरन्तर अपने चंचल लोचनों से देखती हुई आप के द्वारा समर्पित दिशा को मानो नीले कमलों का उपहार दे रही थी। वेचक की अत्यन्त निर्मलता के कारण स्तन-कलश की शोभा स्पष्ट दिखायी पड़ रही थी। उस पर लगे हुए कस्तूरी के लेप से निर्मित पत्रों तथा लताओं के चिह्न काम-बाण के आघात-चिह्न की तरह लग रहे थे। उसका ललाट अष्टमी के चन्द्र-खण्ड की तरह शोभा धारण कर रहा था। उस पर कुङ्कुम, कस्तूरी तथा चन्दन के रसों से त्रिपुण्ड्र के चिह्न बने थे। ऐसा प्रतीत होता था कि कामप्रद सत्त्व, रज और तम, इन तीनों पुरुषों ने "यह मेरी है, यह मेरी है" इस तरह की प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अपने स्वीकार-चिह्न के रूप में अपने अपने वर्णों को अङ्कित कर दिये थे।

कानों पर रखे गये लाल ईख के नवीन पल्लवों से उसका मुखमण्डल सुशोभित था। वे बालपल्लव आप के कथामृत पान के लिये मानों कानों से

स्नेह किये हुए थे। समीप की मणिमय भित्तिरूप दर्पण मे दिखाई पड रहे उसके प्रतिबिम्बो मे ऐसा लग रहा था कि आप के मिलन की इच्छा की अपूर्ति से होने वाली वेदना को बाँट देने के लिये कई शरीर धारण की हुई थी। समीप मे रहने वाली, वीणा आदि द्वारा मनोरञ्जन कराने मे निपुण, तथा तुल्य ही अवस्था तथा वेष वाली सखियो द्वारा सेवित की जा रही वह समस्त विद्याओ की अधिदेवताओ से सेवित हो रही सरस्वती की तरह प्रतीत हो रही थी। खिले हुए फूलो के अलङ्कारो से मनोहर, चँवर धारण करने वाली स्त्रियो द्वारा ऐसा लग रहा था कि शरीर धारण की हुई वसन्त काल की लक्ष्मी-सेवित हो रही थी। हाथ मे अङ्गराग और फलों को ली हुई शृङ्गार-करने वाली स्त्रियों से ऐसा प्रतीत होता था कि वह अनेक स्वर्ग-सुन्दरियो द्वारा आराधित होती हुई पार्वती थी। आभूषणो मे जडे हुए मणियो के छिटकते हुए किरणमञ्जरी समूह के बहाने शरीर मे अँटती हुई कान्ति-रस की धारा को छोड रही थी। समीप की भित्ति पर के बनाये गये चित्र उसके निर्मल शरीर पर प्रतिबिम्बित हो रहे थे। अत ऐसा प्रतीत होता था कि मायावी देव और दानव उसका आलिङ्गन कर रहे थे। पद्मरागमणि के दर्पण पर उसकी छाया दिखाई पड रही थी। अत ऐसा प्रतीत होता था कि कामपीडित चन्द्रमा के ऊपर दयावश अपनी छाया समर्पित कर दी थी। कामदेव के विश्व विजय के अस्त्रागार की तरह प्रतीत हो रही थी। समस्त सौन्दर्य-गुणो की सङ्केतस्थली की तरह थी। सौभाग्य की देवी की तरह, सौन्दर्य की दुकान की तरह, ब्रह्मा की सम्पूर्ण शिल्पकला की परिपक्वता के नमूने की तरह, अनन्त संसार रूप रोहण नामक पर्वत की रत्नमयी कन्दली दमयन्ती को मैंने देखा।

[ अनवरत—दमयन्ती की दृष्टि नीलकमल सदृश थी। नल जिस दिशा म बैठा था उस दिशा को भी उसे सम्मान देना था। अत. अपनी दृष्टि रूप कमलावली से उसे सम्मानित कर रही थी। उत्तरीयांशुक उसके वस्त्र का उज्ज्वल अत्यन्त शुभ्र तथा महीन था। अत ढकी हुई भी स्तन-शोभा प्रकट हो जाती थी। स्तनो पर कस्तूरी के लेप से विभिन्न पत्रो तथा लताओं की रचना हुई थी। ऐसा लगता था कि काम अपने बाणों से जो प्रहार किया था उसी के वे चिह्न थे।

स्मरशरशरत्रिपुण्ड्रै—दमयन्ती अपने ललाट पर त्रिपुण्ड्र लगायी थी। त्रिपुण्ड्र की तीनों ही रेखायें तीन रङ्ग की थीं। तीन वस्तुओं से बनी भी थी। एक रेखा कुङ्कुम की थी, दूसरी कस्तूरी की और तीसरी चन्दन की। चन्दन

की रेखा शुभ्र थी अतः वह सत्त्व गुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कुङ्कुम की रेखा लाल थी अतः वह रजोगुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कस्तूरी की रेखा काली थी अतः तमोगुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कवि ने कल्पना किया है कि सत्त्व, रज और तम ये तीनों पुरुष हैं। तीनों ही कह रहे हैं, 'यह हमारी है, यह हमारी है।" तीनों पड़ी रेखायें तीना गुण-पुरुषों की स्वीकृति रेखायें हैं।

नखमणि—दमयन्ती जिस भवन में रह रही थी वह मणि का बना था। उसकी भित्ति में दमयन्ती का चित्र प्रतिबिम्बित होता था। भित्ति के चारों तरफ उसके चित्र दिखाई पड़ते थे। अत ऐसा लगता था कि नलवियोग के दुःख को एक शरीर से वह न सह सकती थी। अत अनेक शरीरों को धारण कर उस दुःख को बाँटना चाह रही थी। दुःख थोड़ा-थोड़ा बाँट दिया जाय तो कम हो जाता है। •

अनेकाङ्गानुप्रवेशु—भवन की भित्तियों पर देवों और दानवों के चित्र बने हुए थे। दमयन्ती के अत्यन्त निर्मल शरीर में वे सभी प्रतिबिम्बित होते थे। अत ऐसा प्रतीत होता था कि मायावी देव और दानव माया द्वारा उसका आलिङ्गन कर रहे थे।

कलाधारितच्छायाम्—मणिमय दर्पण में उसका रूप प्रतिबिम्बित था। वह दर्पण चन्द्रमाण्डल था। ऐसा प्रतीत होता था कि कामपीड़ित चन्द्रमा पर दया कर अपनी छायामात्र समर्पित की थी।

इस अनुच्छेद में कल्पना की बहुलता है। इसमें दमयन्ती के स्वरूप की अपेक्षा उसकी समीप की सामग्री-बाहुल्य का परिचय अधिक मिलता है।]

ईक्षणामृतशलाकामथलोकस्य च तामतिहर्षविस्मयकौतुकोत्तानित-चक्षुश्चिन्तितवानहम् ॥

नेत्रों के लिये अमृतशलाका सदृश उस दमयन्ती को देख कर प्रसन्नता, आश्चर्य और उत्कण्ठा से आँखें उठा कर मैंने सोचा—

इयं हि—

स्मरराजराजधानी मङ्गलवलभी विलासविहगानाम्।
शृङ्गाररङ्गशाला हरति न बाला मनः कस्य ॥ २० ॥

"सम्राट् कामदेव की राजधानी, विलास रूप पक्षियों का मङ्गलमय स्थान और शृङ्गार की रङ्गभूमि यह बाला किसके मन का हरण नहीं करती ॥ २० ॥

[ राजधानी उत्कृष्टतम स्थान में बनायी जाती है। काम तो ऐसा राजा है जिसका शासन पूरे ब्रह्माण्ड में माना जाता है। ब्रह्माण्ड-शासक काम भी अपनी राजधानी दमयन्ती को ही माना है। हाव भाव आदि विलास ही पक्षी है और उन विलास विहगमों का वासस्थान दमयन्ती है। शृङ्गार की तो वह नाट्यशाला है ॥ २० ॥ ]

अपि च—

दग्धो विधिर्विधत्ते न सर्वगुणसुन्दरं जनं कमपि ।
इत्यपवादभयादिव हरिणाक्षी वेधसा विहिता ॥ २१ ॥

दग्ध इति ॥ दग्धशब्दो निन्दार्थे। दग्धो निन्द्यो विधि ( यत ) सर्वगुणपरिपूर्णं कमपि जनं न विधत्ते इति योऽस्मावपवादः। तद्भयादिव 'तेनासौ सुन्दरी विहिता' तेन विधिना अपवादोद्विग्नेन। असाविति साक्षाद्दृष्टा। सुन्दरीति समग्रगुणसौन्दर्ययुक्ता। अनयास्मत्सृष्ट्या सोऽपवादो न भविष्यतीति। 'हरिणाक्षी' इति पाठस्तु अक्षिमात्रसौन्दर्यार्थो न समग्रगुणसुन्दरतां सम्यगुपपादयितुं पारयति निर्बाध ॥ २१ ॥

"दुर्भाग्य विधाता किसी को भी सभी गुणों से सुन्दर नहीं बनाता है" मानो इसी निन्दा के भय से उसने इस सुन्दरी का निर्माण किया ॥ २१ ॥

[ हरिणाक्षी पद यहाँ सुन्दरी इस सामान्य अर्थ का वाचक है, क्योंकि उसके विशेष अर्थ को ही लेने पर दमयन्ती के केवल नेत्रों की ही प्रशंसा समझेगी, कवि तो उसे यहाँ सभी गुणों और सभी अङ्गों से सुन्दर बताने की चेष्टा कर रहा है ॥ २१ ॥ ]

किं चान्यत्—

लावण्यपुण्यपरमाणुदलं तदन्य-
दन्यः स चापि निपुणः खलु कोऽपि वेधाः ।
येनाद्भुता कृतिरियं विहिता विशिष्ट-
कार्येण कारणविशेषगुणोऽनुमेयः ॥ २२ ॥

लावण्येति ॥ येन विरूपमलावण्यदलपाटवेन वेधा दमयन्तीं सृष्टवान्। तद्दलपाटवमन्यत्। वेधाश्च। दलपाटवं वेधाश्च अपविर्माणविलक्षणाविर्भावं। तद्द्वयमपि विशेषयन्नाह—येनेत्यादि ॥ येन दलपाटवेन वेधसा चेति ज्ञेयम्। तत्रार्थे हेतुमाह—विशिष्टेत्यादि ॥ २२ ॥

सौन्दर्य के वे परमाणुदल कुछ दूसरे ही हैं और वह निपुण ब्रह्मा भी कोई दूसरा ही है जिसके द्वारा यह विशेष कृति निर्मित हुई है, क्योंकि विशिष्ट कार्य के ही द्वारा कारण के विशेष गुणों का अनुमान किया जाता है ॥ २२ ॥

[ परमाणु पुञ्ज से ही सृष्टि होती है। जिन परमाणुओं से संसार के लोग बनाये जाते हैं उनकी अपेक्षा कुछ भिन्न ढंग के परमाणुओं से दमयन्ती की सृष्टि हुई है। जो सामान्य ब्रह्मा लोगों की सृष्टि करते हैं उनकी अपेक्षा वह कोई दूसरे ही ब्रह्मा हैं जिन्होंने दमयन्ती की सृष्टि की है। दमयन्ती सबकी अपेक्षा विलक्षण है अतः उनके कारण भी विलक्षण होंगे ॥ २८ ॥ ]

एवं विमर्शयन्तं मामपि मां पुष्कराक्षमुखेनिनमुखिनर्ससंक्रमेण मनाग्वलितकन्धराकन्दलोकम्पितकर्णोत्पलमवलोक्य स्वागतमनन्तरम् 'अहो बहो' कालादमून्मुखमाननदीहर्षोन्मिलितमिव नमस्त्राण्डपिण्डीकृतं कुण्डलम्, अकाण्डाडम्बरितज्वलन्नविकासोल्लस इवायमुल्लसितसंगमोपकण्ठवनविभाग:, चिरात् संपन्ना सलक्षणा दक्षिणा दिगियम्, उन्मीलित इव सह्याद्रि:, अमृतप्रवाहसिक्त इवोज्जीवितोऽयं जन:' इत्यभिधाय 'पर्वतक, कच्चित्कुशली परचलदलदावानलो नल:' इति स्मितमुग्धमधुरया गिरा समलापत ॥

एवमिति ॥ 'दमयाज-' इत्यादिपद्यश्लेषेणैवमूह्यमान पुष्कराक्षेण निवेदित मां 'हे पर्वतक, कच्चित्कुशली परसैन्यदावानलो नल:' इति वचनेन दमयन्ती समभाषत्। दावानलोपमानेनात्मनोऽपि विरहसन्तापहेतुत्व मसूचयत्। मनाग्वलितमित्यवलोकनक्रियाविशेषणम् ॥

इस तरह मैं सोच ही रहा था तब तक वह भी पुष्कराक्ष द्वारा मेरे आगमन की सूचना पाकर यथोचित चेष्टा से अपनी अङ्कुर सदृश गर्दन को थोड़ा घुमाकर सुन्दर देवी। गर्दन को घुमाने के कारण उसके कानों में लगे हुए कर्णपुष्प हिल गये थे। स्वागत के बाद, "वाह! बहुत समय के बाद आज सुन्दर प्रभात हो गया है। अन्धकार की राशि में घिरा हुआ कुण्डिन नगर प्रकाशित सा हो उठा है। नदी-संगम के समीप की वनस्थली असमय में प्रफुल्लित वसन्तोल्लास का उत्सव मना रही है। बहुत दिनों के बाद दक्षिण दिशा शुभ लक्षणा से युक्त हुई है। सह्य पर्वत आ सा गया है। मानो अमृत-धारा में सिक्त होने के कारण मैं पुनः उज्जीवित हो रही हूँ।" यह कह कर, "पर्वतक, शत्रु सैन्यदल के लिये दावानल महाराज, नल कुशलपूर्वक तो हैं न?" इस तरह मुस्कुराती हुई अत्यन्त सुन्दर वाणी में बोली।

अहमपि प्रणम्य यथोचितमनन्तरमनतिदूरितसखीजनोपनीतमासनमध्यास्य देवेन प्रहितानि तान्याभरणोपायनान्युपानैषम् ॥

मैंने भी प्रणाम करने के बाद सखियों द्वारा शीघ्रता से लाये हुए उचित आसन पर बैठ कर आप के भेजे हुए उन भूषणोपहारों को प्रस्तुत किया।

आदरेण तया गृहीतेषु तेषु, बहुमते मयि, प्रक्रान्ते त्वद्गुणग्रहणगोष्ठीव्यतिकरे, नर्मसुधालापलीलयातिक्रामति स्तोककालकलापे, पुष्कराक्षोऽप्यभाषत ॥

सम्मान के साथ उन्होंने उन्हें ग्रहण किया। मुझे भी सम्मानित किया। आप के गुण गान का प्रसङ्ग छिड़ गया। मधुर सुख संवाद गोष्ठी में कुछ समय व्यतीत हो रहा था, तब तक पुष्कराक्ष बोला—

देवि, विज्ञापयामि यद्यभयम् ॥

''देवी यदि आप अभय दें तो सूचित करूँ।

एवमनुश्रुतमस्माभिः 'किल सकलनाकिनायकपुरन्दरपुरःसराः सर्वेऽपि लोकपालास्त्वामभिलषन्तोऽन्तःकरणारण्यलग्नमदनदावानलानलमायान्तमभ्यर्थितवन्तो यथा महानुभावा भवन्ति हि भवादृशाः परोपकारव्रतधर्माणः, तदेव प्रार्थ्यसे स्वप्रयोजननिरपेक्षेण त्वयास्मदर्थे दमयन्ती वरणीया, इति ॥

हम लोगों ने यह सुना है कि समस्त स्वर्गवासियों के नेता, इन्द्र आदि सभी लोकपाल आप को चाह रहे हैं। अपने अन्तःकरण रूप अरण्य में लगे हुए काम-दावानल ( वनाग्नि ) से जलते हुए महाराज नल जब आ रहे थे तो देवताओं ने निवेदन किया—'आप ही जैसे महानुभाव परोपकारव्रत धारण करते हैं। अतः यही निवेदन है कि आप अपने प्रयोजन की अपेक्षा न कर हम लोगों के ही लिये दमयन्ती को चुनें।"

तद्देवि, देवदूतकार्येणागतो निषधेश्वरः ॥ पृच्छतु वा देवी पर्वतकम्' ॥

देवी! अतः ( आप को विदित हो कि ) महाराज निषधेश्वर ( नल ) दूतकार्य [illegible] यहाँ आये हुए हैं। अथवा आप पर्वतक से ही पूछें।"

इति श्रुत्वा पुष्कराक्षभाषितम्, ईषद्विषादविलक्षस्मितस्मेरां दृशं मयि साचि संचारितवती ॥

पुष्कराक्ष की इस बात को सुन कर, विषाद के कारण उदास होकर अत्यन्त स्वल्प खुली हुई आँखों को मेरी ओर थोड़ा घुमायी।

मयापि सवादिते पुष्कराक्षवचने तस्मिन्, आकस्मिककठोरकाष्ठप्रहारव्यथामिवानुभवन्ती, विन्दतु वीणाक्वणो माधुर्यमितीव प्रतिपन्नमौनव्रता, लब्धेनां कर्णोत्पले परभागमितीव मुकुलितनयना,

प्राप्नोतु शोभां मुक्तावली दीप्तिजालमिनीव मुक्तस्मिता, गच्छतु च्छायां कण्ठावलम्बिनी चम्पकमालेयमितीवाङ्गीकृतवैवर्ण्या लभतां लीलाकमलमिदं सौभाग्यमितीवोच्छ्वसितवदना, सा क्षणमभूत् ॥

जब मैंने भी पुष्कराक्ष की उस बात का समर्थन किया तो उसे अचानक कठोर शस्त्र-प्रहार की तरह वेदना का अनुभव हुआ। "वीणा की ध्वनि अब माधुरी धारण करे", मानो इसी सङ्कल्प से उसने मौन धारण कर लिया। "कानों में लगे हुए कमल ही अधिक शोभा प्राप्त करें", मानो इसी से उसने आँख बन्द कर ली। "मुक्ता की माला का किरण-पुञ्ज शोभा का अनुभव करे", मानो इसी लिये मुस्कान छोड़ दिया। "कण्ठ में लटकती हुई चम्पक की माला ही शोभाशील बनी रहे", मानो इसी लिये मलिनता धारण कर लिया। "लीला-कमल ही सौन्दर्य प्राप्त करें", इसी लिये मुख को वेदना-व्यग्र कर लिया। कुछ क्षणों तक उसकी यह स्थिति बनी रही।

[ जब दमयन्ती बोलती थी तो वीणा की ध्वनि उसकी ध्वनि के सामने फीकी लगती थी। जब वह मौन धारण कर लेगी तो वीणा की ही ध्वनि को लोग अधिक मधुर समझेंगे। उसके नेत्रों के समक्ष कमलों की शोभा अत्यन्त न्यून थी। जब उन्हें बन्द कर ली कमल ही शोभाशाली बने। जब वह मुस्कुराती थी। उसकी मुस्कुराहट की कान्ति के समक्ष मणियों की कान्ति फीकी पड़ जाती थी अतः मुस्कुराहट बन्द हो जाने पर मणि ही कान्तिशील रह गये। उसके मलिन हो जाने पर ही चम्पक-माला को शोभा-सम्पन्न माना जा सकता था। वेदना के कारण उसके मुख के विवर्ण हो जाने पर ही लीला कमल को सुन्दर माना जा सकता था।

नल के दीर्घ कार्य-निमित्तक आगमन सुन कर वह अवर्णनीय व्यथा का अनुभव करने लगी। मुख विवर्ण हो गया। आँखें बन्द हो गयीं। वाणी बन्द हो गयी। शरीर हतप्रभ हो गया। ]

तत्र च व्यतिकरे—

विगलितविलासमपरसमाकस्मिकजातभङ्गशृङ्गारम्।
मूकितमिव मूर्च्छितमिव मुकुलितमिव भवनमिदमासीत् ॥ २३ ॥

उसकी यह दशा होने पर—

विलासहीनता, रसशून्यता तथा अकस्मात् शृङ्गार-भङ्ग के कारण वह भवन मूक की तरह, मूर्च्छित की तरह तथा सङ्कुचित की तरह प्रतीत हो रहा था ॥ २३ ॥

राजा तु 'पर्वतक, ततस्ततः' ॥

राजा—पर्वतक, इसके बाद क्या हुआ ?

पर्वतकोऽपि 'देव, श्रूयताम् ॥

पर्वतक—महाराज, सुनिये—

अतः परम्—

ईषन्निःसृतकुन्दकुड्मलसदृग्दन्तप्रभामञ्जरी-
रोचिष्णुस्मितमन्थरां मयि दृशं सञ्चारयन्ती मनाक् ।
उत्स्यन्ती करपङ्कजभृङ्गमधरे बन्धूकबुद्धयागतं
वारंवारमकम्पयत्तरलितस्तोकावतंसं शिरः ॥ २४ ॥

इसके बाद—

स्वल्प निःसृत कुन्द पुष्प की कलिका सदृश दाँतों की कान्ति-मञ्जरी से मनोहर प्रतीत होती हुई, मुस्कुराहट से गम्भीर आँखों को थोड़ा मेरी ओर फेरती हुई, करकमल के भ्रमर का जो जपाकुसुम ( अड़हुल का पुष्प ) समझकर अधरों पर आ गया था, हटाती हुई, कर्ण-पुष्प के स्वल्प कम्पन के साथ शिर को बार-बार कम्पित की ॥ २४ ॥

[ भ्रमर का स्वाभाविक आकर्षण कमल की ओर होता है। दमयन्ती के हाथ को कमल मान कर वह उसके हाथों पर पहले आया था। बाद मे जब हाथ से हटाया गया तो होठों को अड़हुल का फूल समझ कर उस पर बैठ गया। फिर वहाँ से उसे हटाना पड़ा। असु क्षेपणे का शतृप्रत्यान्त रूप अस्यन्ती है ॥ २४ ॥ ]

ततः परम्। वारितवारविलासिनीचाटुवचनक्रमम्, आकस्मिक-विस्मयविस्मृतस्मितविलासम्, अननुलुठिताहतनयननलिनदलदीन-दीर्घेक्षणम्, उष्णासरलश्वासारम्भविषमविषादविच्छायिताननेन्दु-द्युति, तस्याः स्थानकमवलोक्य सखेदं सखीजनेन 'देवि, गरिमनिः-श्वासपवनपरम्परया पर्यस्त इवास्ताचलहस्तावलम्बनमयमाश्रयति भगवान्भानुः, इयं च सौभाग्यशालिनि नले निलीनचित्ताया-स्तव लोकपालपार्थिवप्रार्थनाव्यतिकरमिममाकर्ण्य लज्जितेव पिहितश्रवणा दूरे भवति वासरश्रीः, इमानि निश्चलनिलीनमधुपनिपीयमानगर्भ-मधूनि सङ्कोचयन्ति लोचनानीव कमलानि, संविभागीकृतविषादा इव विलासवयस्याः सरसीसरोरुहिण्यः, इमाश्च 'कथमस्मत्पतयो मनुष्य-कन्यकां कामयन्ते' इतीर्ष्याशोकवशादिव दिशः श्यामायन्ते, तत्प्रेक्ष्य-तामयं पर्वतकः' इत्यभिधीयमाना कथंकथमपि चिन्तान्तरायतिरस्कृता-

स्तनालापभीरुतयावनम्य मुखं समुल्लसदशोकपल्लवानुकारि करतल-मुत्तानीकृत्य मामविस्मरणीयसमानदानावसाने व्यसर्जयत् ॥

व्यसर्जयदिति ॥ तन्व्या स्थानकमवरया। लज्जितेव विहितावदना। श्रवणं नयनं श्रोत्रं च ॥

इसके बाद वाराङ्गनाओं ने चाटुकारिता-पूर्ण वचन-प्रसङ्ग को रोक दी। अचानक आये हुए विस्मय के कारण हास्यविलास को भूल गयी। बहुत अधिक हिमपात से मारे गये नवीन कमलदल की तरह उसकी बड़ी-बड़ी आँखें दैन्य प्रदर्शन करने लगीं। गरम तथा दीर्घ निःश्वासों को संचालित करने वाले अत्यधिक विषाद से मुख की कान्ति मलिन पड़ गयी। उसकी इस स्थिति को देखकर बड़े खेद के साथ सखियाँ बोलीं—

"देवी आपके श्वास-पवन के झोंके से लड़खड़ाते हुए भगवान् सूर्य अपने हाथों (किरणों) से अस्ताचल का अवलम्बन ले रहे हैं। सौभाग्य-शाली नल में अनुरक्त रहने पर भी तुम्हारे सम्बन्ध में लोकपालों की प्रार्थना का प्रसङ्ग सुनकर मानो लज्जा का अनुभव करती हुई यह दिन-लक्ष्मी कानों को बन्द कर दूर चली जा रही है। कम्पहीन, गड़े हुए तथा मधु पीते हुए भ्रमरों से युक्त ये कमल मानो अपनी आँखें बन्द कर रहे हैं। खेल की साथी ये कमलिनियाँ आपके विषाद में भाग ले रही हैं। (मुकुलित होकर खेद व्यक्त कर रही हैं।)

"हमारे पति मनुष्य-कन्या की कामना कर रहे हैं।" मानो इस ईर्ष्या और शोक से ये दिशायें काली पड़ती जा रही हैं। अतः इस पर्वतक को भेज दीजिये।" इतना कही जाने पर किसी किसी तरह चिन्ता की परवशता के कारण वाग्विनोद को छोड़े हुए मुख को कुछ ऊपर उठाकर उल्लासपूर्ण अशोक पल्लव का अनुकरण करने वाले हाथ को उठाकर न भूलने योग्य प्रतिष्ठा देकर मुझे विदा की।

विसर्जितश्च तया तत्कालमाविर्भवद्विषादवशसंपन्नमौनया न पुनः संभाषितोऽस्मि, न वीक्षितोऽस्मि, न पृष्टम्, न संदिष्टं किमपि, केवलं चलन्नेत्रविभागभ्राम्यत्तारया दृष्ट्या समवलोक्य समुत्तानित-करकमलसंज्ञयैव कथमपि संप्रेषितः 'कष्टम्' इति चिन्तयन्नलसाल-सैरसमञ्जसपातिभिः पश्चिममुखैरिव पादैरिहायातवान् ॥

तत्काल उत्पन्न विषाद के कारण मौन हो गयीं। मुझे विदा देते समय न बोलीं न देखीं, न पूछीं और न कुछ सन्देश दी। केवल चञ्चल नेत्रों के एक भाग में तैरती हुई कनीनिका वाली दृष्टि से देखती हुई अपने करकमलों को

उठाकर सकेत से ही किसी तरह भेजी। "बड़े कष्ट की बात है।" यह सोचता हुआ अलसाये हुये तथा असमञ्जस में पड़े हुए पीछे ही की ओर उन्मुख पैरो से यहाँ आया हूँ।

[ यद्यपि मैं इधर की ओर आ रहा था लेकिन वहाँ के दुःख को स्मरण कर मेरे पैर उधर की ही ओर उन्मुख थे। ]

तदेव दमयन्ती देवदूतकार्याङ्गीकरण-व्यतिकरमिममाकर्ण्य परं विषादमापद्यत॥

श्रीमन्, "आप देवताओ के दौत्य कार्य को स्वीकार कर लिये हैं", इस प्रसङ्ग को सुनकर दमयन्ती बहुत दुःखी हो गयी हैं।

अन्यच्च। मन्ये च—

परिम्लानच्छायाविरहितसनिद्रद्रुमवनं
पतत्पङ्क्तीभूतध्वनितशकुनोन्नादितनभः।
वियोगव्याकूतातुपनदि रुदच्चक्रमिथुनं
विषीदन्त्यां देव्यामिदमपि विषण्णं जगदभूत्॥ २५॥

और मैं समझता हूँ—

दुःख मे पड़ी हुई देवी के साथ पूरा संसार ही दुःखी हो गया है। छायाहीन एवं मलिन वृक्षों का वन निद्रित सा हो गया है। नीचे की ओर आते तथा चिल्लाते हुए पंक्तिबद्ध पक्षियों की आवाज से आकाश गुञ्जित हो उठा है। वियोग की व्याकुलता से नदीतटपर चक्रवाकों का जोड़ा रो रहा है॥२५॥

इत्यभिधाय स्थिते पर्वतके तत्कालोचितमिममेवार्थं समर्थयन्न-वसरपाठकः पपाठ॥

यह कह कर पर्वतक के मौन हो जाने पर तत्कालोचित इसी अर्थ को समर्थित करता हुआ अवसरपाठक ने पढ़ा—

'कन्यामन्यानुरक्तां कथममृतभुजो मानुषीं कामयन्ते
तन्वङ्गीः स्मितास्याः स्मरविवशदृशो नाकनारीर्विहाय।
वक्तुं खेदादिवैतद्दिनपतिरधिकं ध्वांक्षयेवाथमग्नः
कोपेनेवारुणांशुः प्रविशति वरुणस्यालयं पश्चिमाब्धिम्॥२६॥

कन्यामन्येति॥ वक्तु खेदात्' इत्यस्योपयोगि 'वरुणस्यालयम्' इति। वाचो हि श्रोतारमपेक्षन्ते॥ २६॥

"कृश शरीर तथा कामातुर नेत्रों वाली मुस्कुराती हुई स्वर्ग की रमणियों को छोड़कर अमृत पान करने वाले देव दूसरे में अनुरक्त मनुष्य-देहधारिणी

कन्या के लिये क्यों लालायित हैं ?" खेद के कारण मानों इस बात को कहने के लिये अधिक लज्जा के कारण नम्र तथा क्रोध के कारण लाल किरणों को धारण किये हुए भगवान् सूर्य वरुण के घर पश्चिम समुद्र में प्रवेश कर रहे हैं ॥ २६ ॥

[ देवताओं की अनुचित कामना से भगवान् सूर्य को अत्यधिक क्लेश हुआ है। क्लेश की बात किसी से कह देने पर कुछ हल्का हो जाता है। इसीलिये वरुण के घर भगवान् सूर्य जा रहे हैं। वरुण भी एक लोकपाल हैं। उन्हें भी समझाना है जिससे वे इस अनुचित कार्य से अपना मुख मोड़ लें ॥ २६ ॥ ]

राजा तु तदाकर्णयन्, शयनीयं सौधशिखरतलाल्लीलापदक्रमचारेण संध्यावन्दनविधिविरामोपविष्टजपद्विजजनसनाथसैकते सरित्सङ्गमे सन्ध्यादिकमकरोत् ॥

राजा ने तो यह सुनते ही प्रासाद के ऊपरी भाग से उतर कर धीरे-धीरे पैदल ही चलकर सन्ध्यावन्दन करने के बाद बैठ कर जप करते हुए ब्राह्मणों से सनाथित उस बालुकामयी भूमिवाले नदी-संगम पर सन्ध्याकालीन दैनिक कृत्य किया।

ततश्च पश्चिमायां दिशि स्फुरति सन्ध्यारागे, रुधिरासवपिपासया कालवेतालमण्डलीव प्रधावमाना, त्रिभि: स्रोतोभि प्रवृत्तया गङ्गया सह संहर्षादिवानेकै: स्रोतसां सवर्गगनतलमिव प्लावयन्ती कालिन्दीव, व्यजृम्भत तिमिरपटलपङ्क्तिः ॥

इसके बाद पश्चिम की ओर सन्ध्या की लालिमा के फैले रहने पर रक्तसुरा की प्यास से दौड़ती हुई काल रूप वेताल-मण्डली की तरह दौड़ती हुई, तीन धाराओं से बहने वाली गङ्गा के साथ मानो प्रतिद्वन्द्विता के कारण अनेक सहस्र धाराओं से आकाश को निमग्न करती हुई यमुना की तरह अन्धकार राशि उन्मिषित हुई।

[ अन्धकार राशि को दो चीजों से तुलित किया गया है। एक है काल वेताल-मण्डली और दूसरी है यमुना। सन्ध्या के समय आकाश लाल हो गया है। अन्धकार-राशि उस लालिमा को पीती जा रही है। अत वह रुधिर की सुरा पीती हुई काल वेताल-मण्डली की तरह लग रही है। वेताल-मण्डली भी काली है और लाल रुधिर आसव को पीती है।

यमुना की धारा नीली होती है। गङ्गा के साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता की कल्पना कवि ने की है। गङ्गा यदि मर्त्यलोक, पाताल तथा आकाश

की तीन धाराओं से अपनी महिमा व्यक्त करती है तो यमुना अपनी धाराओं से सम्पूर्ण गगनमण्डल को ही निमग्न कर अपना प्रभाव दिखा रही है। अन्धकार-राशि रूप यमुना आकाश को आच्छादित कर रही है। ]

अनन्तरं च चन्द्रमसा गर्भिणी पौरन्दरी दिक्केतकीपुष्पपत्र-पाण्डिमानमगमत् ॥

अनन्तरमिति । गर्भिणी हि केतकपत्रवत्पाण्डुतां धत्ते॥

और उसके बाद चन्द्रमा से गर्भित इन्द्र ( पूर्व ) की दिशा केवड़े के फूल के पत्ते की तरह पीली पड़ गयी।

[ संस्कृत साहित्य में इन्द्र को भी बहुधा जार की तरह वर्णित किया गया है। उनकी पूर्व दिशा को भी व्यभिचारिणी के रूप में बहुधा चित्रित किया गया है। कभी वह सूर्य को देखकर रागपूर्ण हो जाती है और कभी चन्द्रमा से गर्भित होकर गर्भिणी नायिका की तरह केतकी-पत्र सदृश रंग धारण कर लेती है। यहाँ तात्पर्य यही है कि चन्द्रमा उदित हो गया है। अन्धकार कुछ मलिन हो गया है। पूर्व की ओर कुछ प्रकाश की आभा लक्षित होने लगी है।]

उल्ललास च चण्डतरमारुतान्दोलितोदयाद्रिद्रुमकुसुमकिञ्जल्क-रेणुराजिरिव कपिशा शशाङ्कद्युतिः ॥

प्रचण्ड वायु के झोंकें से कम्पित उदयाचल के वृक्षों के पुष्पराग के धूलि-समूह की तरह चन्द्रमा की कपिश रंग वाली कान्ति उल्लसित हुई।

अथ क्रमेण पूर्वपयोधिपुलिनाद्राजहंस इव गगनमन्दाकिनीमुच्च-लितः केसरिकिशोर इवोदयगिरिगुहागह्वरात्तिमिरकरियूथपपृष्ठलग्नः, स्फटिकमयः पूर्णकुम्भ इव जगद्विजयप्रस्थानस्थितस्य मङ्गलाय मकर-केतोः केनापि सज्जीकृतः, श्रीखण्डपिण्ड इव मण्डनाय महेन्द्रदिशा-हस्ततलेनोपलालितः, शल्लकिकापुष्पस्तवक इव गगनश्रिया श्रवणे संयोजितः, कुम्भ इवैकः प्राचीवनविहारिसुरकरीन्द्रस्य प्रकटतां गतः, वासरविरामवल्लीमुल्लूय कन्द इवोद्धृतो निशाशबरिकया, पाण्डु-पुष्पाक्षतगुञ्जापुञ्ज इव सिद्धवधूभिरुदयाचलचतुष्पथे विरचितः, गण्डशैल इव कैलासशिखराल्लुठित्वागतः, सीमन्तमौक्तिकमिव पूर्व-दिङ्मुखस्य, सितातपत्रमिव पूर्वाशाधिपतेः पुरन्दरस्य, क्रीडामौक्तिक-कन्दुक इव कालकुमारस्य क्षीरडिण्डीरपिण्डसदृशो दृष्टिपथमव-ततार तारापतिः ॥

कंरेणुः। वनगहने हि विचरतः करिणः प्रायेणैक एव कुम्भस्थलविभागो दृश्यते। पाण्डुगुञ्जा हि मङ्गलाय स्युः। उदयाचलचत्वरकुसुमैः सोमागमनसूचना। क्रीडार्थं मौक्तिककन्दुकः ॥

इसके बाद क्रम से पूर्व समुद्र के तट से आकाश गंगा की ओर प्रस्थित राजहंस की तरह, उदयाचल की गुफाओं से निकल कर अन्धकार रूप हाथियों के यूथ के पीछे लगे हुए सिंह के बच्चे की तरह सम्पूर्ण विश्व की विजय के लिये प्रस्थित कामदेव के मङ्गल के लिये किसी के द्वारा सजाये गये स्फटिक मणि के बने हुए पूर्णकलश की तरह, इन्द्र दिशा (पूर्व) के हाथ के आलिङ्गन से उन्मानित अलङ्कार के लिये लिये गये चन्दन के गोले की तरह, आकाश-लक्ष्मी द्वारा पहने गये चक्षिका नामक फूल के गुच्छे की तरह, पूर्व दिशा रूप जङ्गल में विहार करने वाले देव गजेन्द्र ऐरावत के एक कुम्भस्थल की तरह स्पष्ट, दिवावसान रूप लता को काट कर रात्रि रूप किरातिनी द्वारा निकाले गये कन्द की तरह, सिद्ध वधुओं द्वारा उदयाचल के चौराहे पर रक्खे गये पीले पुष्प, अक्षत तथा गुञ्जों की राशि की तरह, कैलास की चोटी से उतर कर आये हुए गण्डशैल की तरह, पूर्वदिशा के मुख के सीमन्त मौक्तिक (शिरोभूषण) की तरह, दूध के फेन गोले की तरह चन्द्रमा दृष्टि-पथ में उतरे।

[यहाँ उदयकालीन चन्द्रमा के बहुत से उपमान दिये गये हैं। चन्द्रमा अपनी सफेदी के कारण राजहंस की तरह लगता था। पूर्व दिशा में उदित होकर शुभ्र आकाश की ओर बढ़ रहा है अतः पूर्व समुद्र से चलकर आकाश गंगा की ओर सम्मुख राजहंस की तरह लगता है। सिंह का बच्चा जैसे काले हाथियों को खदेड़ता है वैसे नवोदित चन्द्र अन्धकार को खदेड़ रहा है।]

तदनु च—

मदनमिति युवानं यौवराज्येऽभिषिञ्चन्
कनकुमुदविकासी भासयन्दिङ्मुखानि।
इममममृततरङ्गैः प्लावयञ्जीवलोकं
गगनमवजगाहे मन्दमन्दं मृगाङ्कः ॥ २७ ॥

मदनमिति ॥ यौवराज्याभिषेकाद्यनेककार्यव्यग्रतया मन्दमन्दावगाहः ॥ २७ ॥

और इसके बाद—

मदन युवक को युवराज-पद पर अभिषिक्त करता हुआ, कुमुदों को विकसित कर दिशाओं को उद्भासित करता हुआ, सम्पूर्ण जीवलोक को अमृत लहरों में नहलाता हुआ चन्द्रमा धीरे-धीरे आकाश का अवगाहन कर रहा था ॥ २७ ॥

तदनन्तरम्, आप्लावितमिव मुक्तमर्यादेन दुग्धवार्धिना, सिक्तभूभागाङ्गणमिवामन्दचन्दनाम्बुच्छटाभि, विलिप्तदिग्भित्तिकमिव सान्द्रसुधापङ्कपिण्डितैः, पूरितमिवोत्सर्पिकर्पूरपांसुवृष्ट्या, प्रविष्टमिव स्फाटिकमणिमहामन्दिरोदरदरीम्, उत्प्लवमानमिव द्रवीभूततुहिनाचलमहाप्लवेन, भुवनमासीत् ॥

तत्पश्चात् अपनी सीमा से बाहर तक उमडते हुए दुग्ध सागर द्वारा डुबाये गये की तरह, पर्याप्त चन्दन मिश्रित जल के छीटे से सीचे गये भूभागवाले आँगन की तरह, गाढे चूने के पङ्क के लोने से लेपी गयी दिग्भित्तियो की तरह, सुगन्धित कर्पूर धूलि की वृष्टि मे भरे गये की तरह, स्फटिक मणि के बने हुए विशाल भवन के मध्यभाग की तरह, पिघले हुए हिमालय की विशाल बाढ से डूबते हुए की तरह संसार हो गया था।

[ चन्द्रोदय होने पर पूरा ससार सफेद-सफेद दिखायी पड रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि दुग्ध सागर अपनी सीमा से बाहर आकर समूचे ससार को निमग्न कर रहा था। इसीलिये तो सारी चीजें सफेद दिखायी पडती थी। ऐसा लगता था कि गाढे चन्दन के लोने बनाकर समस्त दिशाओ की भित्तियो को लीप ( लेप ) दिया गया था। साधारण चूने के पानी से उतनी शुभ्रता नही आ सकती थी। अत. चूने के पङ्किल गोले से लेप लगाने की बात कही गयी है। ऐसा प्रतीत होता था कि ससार कपूर की धूलि की वृष्टि से भर दिया गया था। स्फटिक मणि के बने हुए विशाल भवन से तात्पर्य है आधुनिक सभागृह ( Hall ) से। केवल स्फटिक से ही बने हुए विशाल भवन का भीतरी भाग जैसा शुभ्र दीखता है उसी तरह ससार दीखता था। ससार की शुभ्रता को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि हिमालय के बर्फ के गलने से बाढ आ गयी हो। हिमालय जैसा शुभ्र दीखता है वैसा ही दृश्य पूर्ण ससार का हो गया था। ]

ततश्च —

कैलासायितमद्रिभिर्विटपिभि· श्वेतानपत्रायितं
मृत्पङ्केन दधीयितं जलनिधौ दुग्धायितं वारिभि· ।
मुक्ताहारलतायितं व्रततिभि· शङ्खायितं श्रीफलैः
श्वेतद्वीपजनायितं जनपदैर्जाते शशाङ्कोदये ॥ २८ ॥

थोडी देर के बाद—

चन्द्रमा के पूर्णत. उदित हो जाने पर सभी पर्वत कैलाश गिरि की तरह लगने लगे। वृक्ष श्वेत छाते की तरह लग रहे थे। मिट्टी के पङ्क दही की तरह

लगने लगे। समुद्र का जल दूध की तरह प्रतीत होने लगा। लतायें मुक्ता की माला की तरह दीखने लगीं। बेल के फल शङ्ख की तरह लगने लगे। ग्राम और नगर श्वेत द्वीप सदृश प्रतीत होने लगे ॥ २८ ॥

[ चन्द्र किरणों की अतिशय शुभ्रता से पूरा का पूरा संसार शुभ्र दीखता था ॥ २८ ॥ ]

अपिच—

सर्वेऽपि पक्षिणो हंसाः सर्वेऽप्यैरावता गजाः।
जाताश्चन्द्रांशुभिः सर्वे रौप्यपुञ्जा शिलोच्चया ॥ २९ ॥

और भी विचित्र दृश्य हुए थे—

चन्द्रमा की किरणों से सभी पक्षी हंस हो गये थे। सभी हाथी ऐरावत हो गय थे। सभी चट्टानों की राशियां चांदी की राशि बन गयी थीं ॥ २९ ॥

अपिच—

सुधापङ्कोपलिप्तेव घटेव स्फटिकोपलैः।
विलीनहिमदिग्धेव मेदिनी ज्योत्स्नया कृता ॥ ३० ॥

और भी आश्चर्य यह हुआ कि—

चन्द्र रश्मियों के कारण ऐसा लगता था कि पृथ्वी चूने के पङ्क से लेप दी गयी थी, स्फटिक पत्थर से जड़ दी गयी थी अथवा जमे हुए बर्फ से व्याप्त हो गई थी ॥ ३० ॥

अपिच—

सौधस्कन्धतलानि दीपपटलैः कम्पेन पाण्डुध्वजा·
हंसाः पक्षविधूननेन मृदुना निद्रान्तनादेन च।
लक्ष्यन्ते कुमुदानि षट्पदरुतैरुत्सर्पिगन्धेन च
क्षुभ्यत्क्षीरपयोधिपूरसदृशे जाते शशाङ्कोदये ॥ ३१ ॥

[ जो पदार्थ स्वभावतः श्वेत थे उन्हें तो पहचानना कठिन हो गया। उनके रंग से तो उन्हें नहीं पहचाना जा सकता था। उनके भीतर कुछ विशेष गुण थे जिनके कारण वे किसी किसी तरह पहचाने जा सकते थे— ]

उमड़ते हुए क्षीरसागर की तरह चन्द्रमा के उदित हो जाने पर अट्टालिकायें दीप समूह के कारण, सफेद पताकायें कम्पन के कारण, हंस पंखों की फड़फड़ाहट तथा निद्रा के अन्त में की गयी कोमल ध्वनि के कारण, भ्रमरों की गुनगुनाहट तथा फैलने वाली गन्ध के कारण कुमुद पहचाने जा रहे थे ॥ ३१ ॥

[ चन्द्रमा की शुभ्र किरणों में समस्त श्वेत पदार्थ विलीन हो गये थे। चूने से पुते हुए मकानों पर यदि टिमटिमाते दीपक नहीं होते तो उन्हें समझना

कठिन था। सफेद पताकायें यदि फड़फड़ाती नहीं तो उनका ज्ञान करना मुश्किल था। हंस यदि पंख नहीं फड़फड़ाते और बोलते नहीं तो उन्हें भी समझना असम्भव था। गुन-गुनाते हुए भ्रमरों और फैलती हुई गन्ध के कारण कुमुद पहचाने जाते थे ॥ ३१ ॥]

तथाविधे च चन्द्रोदयप्रपञ्चे हठादुत्कण्ठयाभिभूयमानो निषधनाथश्चिन्तयांचकार ॥

चन्द्रोदय द्वारा ऐसा प्रपञ्च खड़ा कर देने पर बलात् उत्कण्ठा से पराजित होते हुए निषध सम्राट् ने सोचा—

'इतश्चन्द्रः सान्द्रान्किरति किरणानग्निपरुषान्
इतोऽपि प्रोन्मीलत्कुमुदवनवायुर्विलसति।
इतः कादम्बानां ध्वनितमपि निद्रालसदृशा-
मसह्यः सर्वोऽयं मनसिजमहिम्नः परिकर ॥ ३२ ॥

इधर से चन्द्रमा अपनी अग्नि सदृश तीव्र तथा घनी किरणें फेंक रहा है। इधर से खिलते हुए कुमुद वन की मन्द-मन्द हवा भी बह रही है। इधर निद्रा से अलसाई हुई आँखों वाले हंसों की ध्वनि असह्य हो रही है। ये सब महाराज काम की महिमा बताने वाली सामग्रियाँ हैं ॥ ३२ ॥

अपि च—

इतो मकरकेतनः किरति दुर्निवारः शरा-
नितोऽपि धयमाकुलाः कुलिशपाणिदत्ताज्ञया।
तदेतदतिसङ्कटं यदिह कैश्चिदुक्तं जनै-
रितो विषमदुस्तटी भयमितो महाव्याघ्रतः ॥ ३३ ॥

इधर से दुर्वार कामदेव बाणों को फेंक रहा है और इधर से वज्रपाणि इन्द्र द्वारा दी गयी आज्ञा के कारण व्याकुलता छायी हुई है। यह अत्यन्त सकट की स्थिति है। मेरी वही स्थिति है जैसी लोग कहते हैं—इधर भयङ्कर किनारा और उधर महाव्याघ्र से भय ॥ ३३ ॥

तदिदानीं किमिह कर्तव्यम्, कथं वा हास्येमाप्यचन्ध्यवचसामलङ्घनीयः खल्वादेशो लोकपालानाम्' इति चिन्तयन्नेकाकी पद्भ्यामेव विनिर्गत्य निजनिकेतनात्समन्तादापतद्भिः शशाङ्ककिरणजालै परिजनैरिव परिदर्शितवर्त्मा कैश्चित्कालर्लवैः कैलासकूटायमानाट्टालकाभोगभव्यं भीमभूपालभवनमवाप्य कन्यान्तःपुरं पुरंदरवरप्रदानाददृश्यमानरूपः प्रासादपालकैः प्रविवेश ॥

तो इस समय क्या करना चाहिये, अव्यर्थ वाणी वाले लोकपालों की आज्ञाओं का उल्लंघन हँसी में भी नहीं करना चाहिये। यह सोचता हुआ अकेला पैदल ही अपने घर से निकल कर चारों तरफ बिखरते हुए चन्द्रमा के रश्मिपुञ्ज द्वारा नौकरों की तरह मार्ग-निर्देशन पाता हुआ थोड़े ही क्षण में कैलास पर्वत के शिखरों की तरह ऊँचे प्रासादों के विस्तार से मनोहर राजा भीम के भवन को पाकर इन्द्र के वर प्रदान की महिमा से प्रासाद रक्षकों ( प्रहरियों ) द्वारा न देखा जाता हुआ कन्या-निवास गृह में प्रविष्ट हुआ।

[ परिजन जैसे स्वामी को चारों तरफ से घेरे रहते हैं, उनकी सुरक्षा का ध्यान रखते हैं और उन्हें मार्ग निर्देशन भी करते हैं वैसे ही चारों ओर से विकीर्ण होने वाली चन्द्र-किरणें रात में नल का मार्ग-निर्देशन सा कर रही थीं।

प्रविश्य च दूरादभिमुखागतेनानवरतदह्यमानकृष्णागुरुधूपधूमवर्त्तिनर्तकेन यक्षकर्दमाम्बुसिक्तसौधस्कन्धसन्धिसंचारिणा गन्धवाहेन कृताभ्युत्थान इव, परिक्रम्य स्तोकमन्तरम् 'इत इतो देवी वर्त्तते' इति गीतगोष्ठीस्थितसखीगीतहुंकारेणाहूयमान इव, यत्रास्ते दमयन्ती तत्सौधपृष्ठमारूढवान् ॥

प्रविश्य चेति॥ कर्पूरकस्तूरिकादीनां चोदो यक्षकर्दमः॥

जब वह वहाँ प्रविष्ट हुआ तो निरन्तर जलती हुई अगर बत्ती को नचाता हुआ पर्याप्त कस्तूरी तथा कपूर आदि के चूर्ण से मिश्रित जल से सींचे गये महलों पर भ्रमण करता हुआ, दूर से सामने की ओर आता हुआ पवन मानो उठ कर स्वागत कर रहा था। घूमता हुआ थोड़ा और भीतर की ओर गया तो गीत गोष्ठी में बैठी हुई सखियों की गीत ध्वनियाँ "इधर देवी हैं, इधर देवी हैं" मानो यह कह कर उन्हें बुला रही थीं। ( अनुमान लगाता हुआ ) उस महल पर गया जहाँ दमयन्ती रहती थी।

आरुह्य च मनाग्व्यवहितोऽनुपलक्ष्यमाण इव, वेणुवीणाकणानुसारिणा कोमलकाकलीप्रायेण किंनरीप्रमुखसखीनां गीतेन विनोद्यमानाम्, अलकवल्लरीमध्यनिवेशिततारानुकारिमौक्तिकेन कज्जलकलङ्कितनयनोत्पलपक्ष्मपालिना मुखेन सचन्द्रगगनस्पर्धया भूतलमपि पूर्णोदितेन्दुमण्डलमिवापादयन्तीम्, उच्चकुचमण्डलविलोलया सस्मरसतर्पिग्रहगणपङ्क्त्येव हारलतया कृतकण्ठकन्दलाश्लेषाम्, ईषत्कपोलपालिं परामृशता चाटुकारेण वसन्तसमयप्रहितदूतेनेव कर्णलग्नेन कुसुममञ्जरीद्विर्नीयेन बालपल्लवेन विराजितवदनाम्, अच्छाच्छै

कस्तूरिकापङ्कपत्रभङ्गैर्भुजङ्गैरिव लावण्यामृतरक्षागतैरलंकृतभव्यभुजशिखराम्, आसन्नभुवि विकीर्णैः पाण्डुपुष्पप्रकरैर्गगनादवतीर्य रूपालोकनकुतूहलिभिर्नक्षत्रैरिव परिवृताम्,

आरुह्य चेति ॥ ईषत्कलोऽस्यास्तीति कान्ती। 'निषाद कान्तलीसरो द्विश्रुत्युत्कर्षणाद्भवेत्'। कज्जलेन कलङ्किता कलङ्क इवाचरितवती नयनोत्पलपक्ष्मपालियंत्र। कलङ्क इवाचरति रमेस्याच रे क्विचिनष्ठे ॥ अच्छेति ॥ अमृतं हि भुजगै रक्ष्यते।

वहाँ जाकर थोडी ओट मे खडा हुआ जिससे कोई देख न सके। शुभ्र कान्ति से मण्डित, स्फटिक मणि से निर्मित, एक पर्य्यङ्क पर सोयी हुई दमयन्ती को देखा। किन्नर कुल मे उत्पन्न प्रमुख सखियो की वशी तथा वीणा की ध्वनि का अनुसरण करने वाले प्रायः मधुर कालीन स्वर वाले गीतो से उसका मनोविनोद किया जा रहा था। केशलता के बीच रखा गया मौक्तिक तारा का अनुकरण कर रहा था। नेत्र कमल मे अञ्जन लगा हुआ था। अत अपने मुख द्वारा चन्द्र सहित आकाश की प्रतिद्वन्द्विता मे भूतल को भी मानो पूर्णचन्द्र मण्डल से युक्त कर रही थी। सकाम सप्तर्षि ग्रहो की पङ्क्ति की तरह उच्च स्तन-मण्डल पर (लोटती हुई) चञ्चल हारलता उसके गले मे लिपटी हुई थी। कपोल स्थल को थोडा छूने हुए वसन्त समय द्वारा भेजे गये चाटुकार दूत की तरह कानो मे लगी हुई पुष्पमञ्जरी से नवीन पल्लव से उसका मुख सुशोभित था। कस्तूरी के लेप से निर्मित पत्र-रचनाओ से अलङ्कृत उसकी सुन्दर भुजाओ के अग्रभाग ऐसे लगते थे मानो वे सौन्दर्यरूप अमृत की रक्षा करने के लिये आये हुए सर्पों से मण्डित हो। समीप की भूमि पर बिखरे हुए सफेद पुष्पो के समूह मे ऐसा लगता था कि सौन्दर्य की छटा देखने की उत्कण्ठा से आकाश से आये हुए तारो द्वारा घिरी हुई थी।

[ आकाश चन्द्रमा से युक्त होता है। नीलिमा से व्याप्त होता है। तारे उगे हुए होते हैं। दमयन्ती के बालो के बीच मे रक्खे मोती तारे सदृश लगते है। उसके बाल आकाश लक्ष्मी की नीलिमा को सम्पादित कर रहे हैं। मुख चन्द्र का कार्य कर रहा है। आँखो के अञ्जन चन्द्रगत कलङ्क का कार्य कर रहे है। अत दमयन्ती जैसी नायिका को पाकर भूतल भी आकाश की तरह सचन्द्र हो गया है।

हारलता—मोती का हार पहने हुई थी। वह गले से लटकता हुआ स्तन मण्डल तक आया था। ऐसा प्रतीत होता था कि कामव्यथा से पीडित सप्तर्षि ग्रहो की पङ्क्ति ही उसके स्तनो पर लोटती हुई गले से लिपटी थी।

वसन्तसमयप्रहितदूतेन—वह कानो मे पुष्पमञ्जरी युक्त नवीन पल्लव पहने थी अत ऐसा प्रतीत होता था कि वसन्त द्वारा भेजा गया चाटुकार

दूत ही उनके कानों के पास जा कर मन्त्रणा करता था और उसके कपोलों का स्पर्श भी कर रहा था।

पत्रभङ्गभुजङ्गैः—कस्तूरी के लेप से खूब सुन्दर-सुन्दर छोटे-मोटे पत्रों की आकृतियाँ उसकी भुजाओं पर बनी थीं, अतः ऐसा प्रतीत होता था कि सौन्दर्य सुधा की रक्षा करने के लिये पत्र-रचना के रूप में सर्प ही आये हुए थे। सौन्दर्य सुधा का पान कोई दूसरा न कर ले इसलिये सर्पों को वहाँ बैठा दिया गया था।

नक्षत्रैः—वह जहाँ बैठी थी वहाँ कुछ सफेद पुष्प बिखरे हुए थे उनसे ऐसा प्रतीत होता था कि उसके सौन्दर्य को देखने के लिये आकाश से तारे ही उतरे हुए थे।]

**ऊरुनितम्बमण्डलस्पर्शसुखलम्पटतया नीवीप्रान्तपुञ्जिततरङ्गं क्षीरोदमिव वहन्तीं घनमसृणपाण्डु नेत्रपट्टं परिदधानाम्, 'अहमेव त्वया स्वयंवरे वरणीयः' इत्यर्थिनया पादलग्नेन शेषोरगेणेव रौप्यनूपुरवलयेन विराजितवामचरणपल्लवाम्,**

निर्मल, शुभ्र तथा चमकीला रेशमी वस्त्र पहने हुई थी। ऐसा लगता था कि जङ्घों और नितम्ब-मण्डल के सुख स्पर्श के लोभ में नीवी के चारों तरफ अपनी तरङ्गों को समेटे हुए दुग्ध-सागर का जल ही वस्त्र रूप में परिणत हो गया था। "मैं ही स्वयंवर में तुम्हारे द्वारा चुना जाऊँ," इस तरह प्रार्थना करते हुए पैर में लगे शेष नाग की तरह चाँदी के नूपुर से उस का पल्लव सदृश बायाँ पैर सुशोभित था।

[एक तरह के अत्यन्त चमकीले वस्त्र को 'नेत्र' कहते हैं। दमयन्ती इसी कोटि का एक वस्त्र पहने हुई थी। चारों तरफ से चुन देकर उसने नीवी के पास उस चमकीले वस्त्र का एक गुच्छा जैसा बना लिया था। वह वस्त्र क्षीर सागर के जल की तरह था और नीवी वाला सिकुड़ा हुआ वस्त्र फेन की तरह था। क्षीर सागर का जल ही मानो ऊरु तथा नितम्ब मण्डल के सुखमय स्पर्श के निमित्त वस्त्र का रूप धारण कर आया हुआ था।

वह अपने बायें पैर में नूपुर पहने हुई थी। उससे कुछ मधुर ध्वनि अभिव्यक्त होती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि नूपुर के बहाने शेष नाग ही उसके पैरों में पड़ कर प्रार्थना कर रहे थे कि स्वयंवर में वह उन्हें ही चुने।]

**विविधविलासवर्तिकाभिरिवाकारिताम्, अमृतद्रवचूर्णकैरिव चित्रितावयवाम्, आनन्दकन्दलैरिव घटिताम्, मोहनमणिशिलाया-मिवोत्कीर्णाम्, शृङ्गारदारुणीवोत्कुट्टिताम्, वशीकरणपरमाणुभिरिव**

विनिर्मिताम्, मदनमृत्पिण्डेनेव निष्पादिताम्, वज्रलेपपुत्रिकामिव दृशोः, आकर्षणमणिशलाकामिव हृदयस्य, जीवनौषधिमिवानुरागस्य, जयपताकामिव मदनस्य, बहलचन्दनाम्बुच्छटार्द्रितभुवि विकीर्णसुरभिपरिमलमिलन्मधुकररवानुमेयपाण्डुरपुष्पप्रकरे मसृणसितसुधाबन्धपिच्छले सौधस्कन्धे ज्योत्स्नामृतस्पर्शसुखमनुभवन्तीम्, अच्छांशुस्फटिकमणिपर्यङ्किकाङ्कभाजं दमयन्तीमलब्धनिद्रामद्राक्षीत् ॥

विविधविलासवर्त्तिकाभिश्चकूर्चिकाभिस्ताभिराकारितामालिखिताम्। आकारशब्दश्चाकारलिखन्तावित्यपि सिद्धम् ॥

वह विलासमय भावो को खींचनेवाली कूचियो से बनाये गये चित्र की तरह प्रतीत होती थी। अमृत रस के बिन्दुओ से मानों उसके अंग बने थे। आनन्द के अङ्कुरो से उसकी रचना की गयी थी। मोहन-मणि की चट्टान पर खुदी हुई सी प्रतीत होती थी। शृङ्गार-काष्ठ पर मढ़ी हुई सी लगती थी। वश करने वाले परमाणुओ से मानो निर्मित थी। काम मृत्तिका के पिण्ड से निर्मित की गयी सी लगती थी। आंखो के लिये वज्र की बनी पुतलिका थी। हृदय के लिये आकर्षण मणि से बनी हुई शलाका थी। प्रेम को अनुप्राणित करने वाली ओषधि थी। कामदेव की विजय-ध्वजा थी। उसके यहां की भूमि पर्याप्त चन्दन मिश्रित जल से सिक्त थी। चिकने एवं सफेद चूने के लेप से पिच्छिल बने हुए महल पर जहां बिखरे हुए सफेद फूलो का समूह पराग के लिये गुनगुनाते हुए भ्रमरो के ही द्वारा पहचाना जा सकता था, किरण-सुधा के स्पर्श सुख का अनुभव कर रही थी।

तां चावलोक्य विचिन्तितवान् ॥

उसे देख कर सोचा—

'अहो स्थानेऽभिनिवेशो लोकपालानाम्। अशेषसुखनिधानाय को न स्पृहयति ॥

उचित स्थल पर लोकपालो की प्रवृत्ति हुई है। समस्त सुखो के मूल को कौन नहीं चाहता।

मन्ये च।

विस्फारिततारेक्षणैरिमामेव पश्यन्नयमाकाशः सग्रहोऽभूत् ॥

विस्फारितेति ॥ तारा नक्षत्राणि कनीनिका च। ग्रहा सूर्यादयो भूताद्यभिनिवेशाश्च ॥

और मालूम होता है कि—

फैलायी गयी कनीनिका वाली आंखों से इसी को देखता हुआ यह आकाश सग्रह हो गया है।

[ जिसे ग्रह ( भूत प्रेत ) पकड लेते हैं उसकी मन स्थिति ठीक नहीं रहती। दमयन्ती के मादक रूप को आँखें खोल कर देखता हुआ आकाश सग्रह हो गया है। उसको ग्रह ने पकड लिया है। आकाश में प्राणित्व आरोपित कर तद्गत समानता के आधार पर उसके पागलपन का आभास कराया गया है। वस्तुत आकाश इस अर्थ में सग्रह है कि वह सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों से युक्त है। सूर्यादि ग्रह से सहित होने के कारण सग्रह कहलाता है। यहाँ का तार शब्द तारा और कनीनिका दोनो अर्थों का उपस्थापक है। ]

अयं च चन्द्रश्चन्दनपाण्डुभिः करैरिमामेव परामृशन्मदनानलदाहमयीं व्रणलेखां कलङ्कच्छलेन हृदयेनोद्वहति ॥

आह ! यह चन्द्रमा भी अपनी चन्दन सदृश सफेद किरणों से इसी को छूता हुआ काम की आग से जल कर घाव के चिह्न को कलङ्क के बहाने हृदय मे धारण करता है।

अयमपि समीपोद्यानमारुतोऽस्याः समर्पितकुसुमगन्धः शनैरुत्तरीयांशुकमाक्षिपन्मदनातुरस्खलत्पदं पतति ॥

मदनेति ॥ अन्योऽपि स्मरातुर कुसुमगन्धं कस्तूरिकादि चार्पयन्मन्दाक्षाकर्षणपरः शिथिलस्खलति ॥

समीपवर्ती उपवन का यह पवन भी फूलों की गन्ध देकर धीरे से इसके अञ्चल को उडाता हुआ काम-पीडित होकर टेढे-टेढे गिर रहा है।

सर्वथा जितं मनुष्यलोकेन, यत्रैवंविधमचिन्त्यम्, अनालोचनगोचरम्, अप्रतिमरूपम्, अद्भुतम्, अमूल्यमुदपद्यत स्त्रीरत्नम् ॥

सब प्रकार से विजयी है यह मनुष्य लोक जहाँ इस तरह का अचिन्त्य, अश्रुत, अदृष्ट, अनुपम, अद्भुत तथा अमूल्य स्त्रीरत्न उत्पन्न हुआ है। -

धातः प्रजापते, परिणतशिल्पोऽसि। संसार, सनाथोऽसि। मदन, महोत्सववानसि। चक्षुः, कृतार्थमसि। हृदय, पूर्णमनोरथमसि। दूरागमनश्रम, सफलोऽसि ॥

ध. प्रजेति ॥ 'संसार' इत्यादीनि प्रत्येकं संबोधनानि ॥

ब्रह्मन् ! तुम्हारी कला निखर गयी है। संसार ! सनाथ हो गये हो। काम ! महोत्सव सम्पन्न हो गये। नेत्र ! सफल हो गये हो। हृदय ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो चुका है। दूर से आने के कारण होने वाले श्रम ! तुम भी सफल हो गये।

सकलयुवजनमनोमधुकराकृष्टिकुसुमितलतिके निजनयननिर्जित-राजीवे जीव चिरम् ॥

ओ समस्त युवकों के चित्त भ्रमर को खींच लेने वाली पुष्पलता ! अपने नयनों से कमलों को भी जीत लेने वाली ! तुम चिरकाल तक जीओ।

तथाहि—

लक्ष्मीं विभ्राजयोः कांचिच्चञ्चद्भ्रूभङ्गभागयोः ।
बलिं यामो वयं तन्वि तवाब्जसदृशोदृशोः ॥ ३४ ॥

लक्ष्मीमिति ॥ हे तन्वि, तव नेत्रयोर्वयं बलिं याम उपहारीभवाम इति परमप्रीतिवशाँ लोकोक्तिः । अब्जानि लक्ष्मीं बिभ्रति । तथा भ्रूरेव भङ्गस्तरङ्ग: स भाग एकदेशे ययोः । यदा तु 'चञ्चद्भ्रमभङ्गसङ्गयोः' इति पाठः तदा भ्रुवावेव भृङ्गौ तयोः सङ्गो यत्र ॥ ३४ ॥

क्योंकि—

कृशाङ्गी ! तुम्हारे अलौकिक शोभा धारण किये हुए चञ्चल एवं वक्र भौंहों वाले कमल सदृश नेत्रों पर हम अपने आपको न्योछावर करते हैं ॥ ३४ ॥

अपि च—

किंनरवदनविनिर्गतपञ्चमगीतामृते श्रुतिं श्रयति ।
हरति हरिणीदृशो दृक् सालसवलिता च लुलिता च ॥३५॥

किंनरेति ॥ अत एव हरिणीदृक्, अत एव गीतानुरागलक्षणं हरिणी हेवाक-मनुसरति ॥ ३५ ॥

किन्नरों के मुख से निकले हुए पञ्चम स्वर वाले गीतामृत के कानों में जाते रहने पर हरिणाक्षी की आलस्य पूर्वक घुमायी गयी चञ्चल आंख मन को आकृष्ट कर ले रही है ॥ ३५ ॥

इत्यनेकविधानि चिन्तयन्मृदुलीलापदैरागत्य गीतगोष्ठीस्थितस्य 'कोऽयम्'इति विस्मयविस्फारितलोचनस्य संभ्रमवतः सखीसार्थकस्य मध्यमविशत् ॥

इस तरह अनेक प्रकार की बातें सोचता हुआ कोमल विलास पूर्ण गति से चलकर गीत-गोष्ठी में बैठे हुए 'यह कौन है' इस आश्चर्य के मारे खुले हुए नेत्रों वाले, घबड़ाहट में पड़े हुए सखी समूह के बीच प्रवेश किया।

प्रविष्टे च तस्मिन्, आकस्मिकविस्मयेन विस्फारितानि, भयेन भ्रमितानि, कौतुकेनोत्तानितानि, व्रीडया वलितानि, मुदा मिलद्राल-

पक्ष्माणि, स्मराकूतेन विलुलितानि, दिदृक्षारसेनानिमिषाणि, दृष्टिसंघट्टनेन मुकुलितानि, विलासेन मिलितानि चिरं चक्षूंषि बिभ्राणाः किमपि चलितासनम्, उत्कम्पितहृदयम्, अपसरद्धैर्यम्, अधगलत्स्वेदसलिलम्, उत्पुलकिताङ्गम्, अनङ्गभङ्गुरम्, अवलोकितान्योन्यमुखमवतस्थिरे तदभिमुखा सख्यः ॥

उसके प्रवेश करने पर अप्रत्याशित आश्चर्य से विकसित, भय से भ्रान्त, उत्कण्ठा से तरलित, लज्जा से मुकुलित, प्रसन्नता से मिलते हुए पलकों वाली, कामोन्मुखता से चञ्चल, दर्शनोत्सुकता के आवेश से निर्निमेष, दृष्टि-संघर्ष से झेंपी हुई और विलास से मिली हुई आँखों को चिरकाल तक धारण करती हुई कामव्यग्र सखियाँ एक दूसरे का मुख देखती हुई उसके सामने स्थित थीं। आसन से हिल चुकी थीं। हृदय काँप गया था। धैर्य भाग चला था। पसीने का जल बह निकला था। अङ्गों में रोमाञ्च हो आया था।

दमयन्त्यपि 'देवी, वर्धयामो वर्धयामः कोऽपि कस्याश्चिज्जीवितेश्वरोऽयमत्रैवागतो दृश्यते' इति हर्षोत्कर्षगद्गदगिरं, गीतमुत्सृज्य ससंभ्रमोत्थितकुब्जवामनकन्यकानां मृदुकरतलतालिकाकलितकलकलेन मनाग्विलासवलितमुखी तदभिमुखमवलोक्य शय्यातलादुदचलत् ॥

"देवी, हम लोग सफल हैं, सफल हैं। किसी सुन्दरी का कोई प्राणेश्वर यहीं आया हुआ दीखता है" इस प्रसन्नता की उत्कृष्टता से गद्गदवाणी बोलती हुई, गीत छोड कर शीघ्रता से उठी हुई कुबड़ी तथा नाटी कन्याओं की कोमल एवं मधुर करतल ध्वनि से दमयन्ती भी विलास के साथ मुखमण्डल को थोड़ा नम्र करती हुई उन्हें सामने देखकर शय्यातल से उठ चली।

'आः कुतोऽस्यानेकप्राकाररक्षकरक्षिते पक्षिणामपि दुष्प्रवेशे विशेषतो रजन्यां कन्यान्तःपुरे प्रवेशः' इत्यद्भुतरसावेशस्तिमितेन किंचित्संचारितेन चक्षुषा पुनः पुनर्नलमवलोक्य विस्मयश्चकार ॥

"आह! अनेक चहारदिवारियों तथा रक्षकों से रक्षित पक्षियों के लिये भी दुष्प्रवेश, विशेषतः कन्याओं के इस निवास गृह में रात को कैसे इसका प्रवेश हुआ" इस अद्भुत रस के आवेश में स्तब्ध एवं स्वल्प सञ्चारित आँखों से नल को बार-बार देखकर सोची—

धन्या काप्युपराधिताद्रितनया यस्यास्त्वमाह्लादयन्
मुक्ताहार इव प्रसारितभुजः कण्ठे विलोठिष्यसि ।

धातस्तात तथापि धन्यममुना सृष्टेन मन्ये श्रमं
मातर्मेदिनि वन्द्यसे किमपरं यस्यास्त्वयायं पतिः" ॥ ३६ ॥

धन्या वेति ॥ मातृशब्दं जननीपर्यायमपि स्त्रियः सपत्न्यादिष्वपि प्रणयसंबोधने प्रयुञ्जते इति नले भूपतावपर्यायिन्या दमयन्त्या 'मातर्मेदिनि' इति सम्बोधनं न दुष्टम् । अन्यथा सपत्नीं प्रति मातरित्यामन्त्रणमनुचितम् ॥ ३६ ॥

पर्वत-पुत्री पार्वती की आराधना की हुई वह युवती भाग्यशालिनी है जिसके गले में मुक्ता की माला सदृश अपनी भुजाओं को फैला कर प्रसन्न होते हुए तुम आलिङ्गन करोगे। तात ब्रह्मा, इसे बनाने के कारण आप के परिश्रम को मैं धन्य मानती हूँ। अधिक क्या कहूँ, माता पृथ्वी, तुम भी वन्दनीय हो जिसका यह पति है ॥ ३६ ॥

एवं चिन्तयन्त्येव तत्कालमाकूतकौतुकहर्षभयाद्यनेकरसपरम्परापरावर्तितनयनोत्पला लज्जावनमितमुखी विधेयविवेकवैकल्यमभजत ॥

इस तरह सोचती हुई एक ही समय अभिप्राय, उत्सुकता, हर्ष, भय, आदि अनेक रसों की धारा में नेत्रों को फेरती हुई लज्जा के मारे मुख नीचे की ओर कर कर्तव्य विषय के विचार में विकल हो गयी।

नलोऽपि 'विहङ्गचातुरिके, भवत्स्वामिन्या किमेवंविधः समाचारः, यदभ्यागतजनेन सह स्वागतालापमात्रेणापि न क्रियते व्यवहारः' इति तस्याः समीपवर्तिनीं पूर्वपरिचितां किंनरीमभाषत ॥

नल भी, "विहङ्गचातुरिका, तुम्हारी स्वामिनी का ऐसा आचार है कि अतिथिजन के साथ स्वागत-भाषण से भी व्यवहार नहीं करतीं" इस तरह दमयन्ती के समीप रहने वाली विहङ्गचातुरिका नामक किन्नरी से बोला।

सापि ससंभ्रमप्रणामपूर्वमिदमवादीत्—

वह भी शीघ्र ही प्रणाम-पूर्वक बोली—

'किञ्चित्कम्पितपाणिकङ्कणरवैः पृष्टं ननु स्वागतं
व्रीडानम्रमुखाब्जया चरणयोर्न्यस्ते च नेत्रोत्पले।
द्वारस्थस्तनयुग्ममङ्गलघटे दत्तः प्रवेशो हृदि
स्वामिन्किं न तवातिथेः समुचितं सख्याः तयाऽनुष्ठितम् ॥३७॥

स्वामिन्, धीरे से हिले हुए हाथ के कङ्कण की ध्वनि से स्वागत प्रश्न पूछा। लज्जा से मुख कमल को नम्र की हुई चरणों पर नेत्र-पुष्प रक्खीं। उस हृदय में स्थान दी जिसके द्वार पर मङ्गल-कलश के रूप में स्तन-युगल

न्वित है। अतः आप जैसे अतिथि के लिये मेरी इस सखी ने क्या नहीं किया ? ॥ ३७ ॥

तदितः ससंभ्रमोत्थितयानया समर्पितामिदमुज्ज्वलमणिपर्यङ्किका पृष्ठमधितिष्ठतु देवः ॥

अच्छा, यहाँ से घबड़ाहट के साथ उठी हुई इस के द्वारा समर्पित इस मणिमय उज्ज्वल आसन पर आप बैठें।

'त्वमपि देवि, विद्रुममणिपर्यङ्किकामिमामदूरवर्तिनीमध्यास्स्व ॥
देवी, आप भी इस समीप स्थित विद्रुम मणि निर्मित पल्ङ्ग पर बैठें।

भवतु च भवतो: परमुखेन श्रुतान्योन्यस्वरूपयोरिदानीमान्नानुभवेन नयननिर्वृति, फलन्तु मनोरथाः सखीनाम्' इति ॥

दूसरों के ही मुख से एक दूसरे के स्वरूप के सम्बन्ध में आप लोग सुने हैं। इस समय आत्मानुभव से आप दोनों को आँखें आनन्द का अनुभव प्राप्त करें और सखियों का मनोरथ सफल हो।

तथाभिहितौ तौ सर्वसखीजनसज्जीकृतपरामृष्टयोः स्फटिकप्रवाल-पर्यङ्किकयोरुत्सङ्गभागं भेजतुः ॥

ऐसा कहने पर सभी सखियों द्वारा शीघ्रता से पोंछे गये स्फटिक एवं विद्रुम मणि निर्मित आसनों के बीच बैठ गये।

ततश्च तौ—

हर्षाद्बाष्पचिते, भयात्तरलिते, विस्फारिते विस्मया-
दौत्सुक्यात्स्तिमिते, स्मरादिलुलिते, संकोचिते लज्जया।
रूपालोकनकौतुकेन रभसादन्योन्यवक्त्राम्बुजे
किंचित्साचि च संमुखं च नयने संचारयामासतु ॥ ३८॥

इसके बाद दोनों—

सौन्दर्यछटा को देखने की उत्सुकता से शीघ्रतापूर्वक एक दूसरे के मुख कमल पर आनन्दाश्रु से व्याप्त, भय से चञ्चल, आश्चर्य से विकसित, काम से तरल, उत्सुकता से स्तब्ध तथा लज्जा से सकुचित नेत्रों को कुछ सम्मुख और कुछ नीचे की ओर सञ्चालित किये ॥ ३८ ॥

[ देखने की उत्सुकता से सामने की ओर देखते हैं किन्तु प्रथम परिचय की स्थिति में लज्जा के कारण दृष्टि नीचे की ओर मुड़ जाती है ॥ ३८ ॥ ]

तत्र च व्यतिकरे—

अन्त. केवलमुल्लसन्ति न पुनर्वाचां तु ये गोचरा
येषां नो भरतादयोऽपि कवयः कर्तुं विवेकं क्षमाः ।
लज्जामन्थरयो परस्परमिलद्दृष्टिप्रपाते तयो-
स्ते सर्वे समकालमेव हृदये केऽप्याविरासन्रसाः ॥ ३९ ॥

लज्जा से शिथिल उन दोनो का एक दूसरे पर दृष्टिपात होने पर वे सभी रस एक ही बार हृदय में उमड पडे जो केवल भीतर सरङ्कित ही होते हैं वाणी के विषय नहीं बनते और जिन्हें भरत आदि महान् कवि भी वर्णित करने में असमर्थ रहते हैं ॥ ३९ ॥

अपि च । तत्र च व्यतिकरे—

कर्णान्तकृष्टचलमण्डलीकृतचापचक्र-
श्चञ्चद्गुणस्खलनजर्जरितप्रकोष्ठः ।
लक्ष्यद्वयेऽपि युगपद्विशिखान्विमुञ्चन्
संधानसत्वरकरः श्रमवान् स्मरोऽभूत् ॥ ४० ॥

कामदेव ने कानो तक खीचने के कारण धनुष को गोल बना दिया था। कडी प्रत्यञ्चा के सघर्षण से मणिबन्ध जीर्ण हो गया था। प्रत्यञ्चा पर बाणो को आरोपित करने में उसके हाथ बडी शीघ्रता कर रहे थे। अत वह उस समय बडा श्रमशील हो गया था ॥ ४० ॥

अनन्तरमासन्नसखीवचनेन स्वयमर्घदानोद्यतां ताम् "अलमलमुत्पलाक्षि, प्रयासेन । न खल्वसि पात्रं परिजातमञ्जरी जरठपवनप्रेङ्खोलनायासं सहते' इति दमयन्तीमभिधाय तस्याः स्वादुदुर्लभसूक्तिसुधासेककोमलालापपण्डिताभि' सखीभि' सह परिमितपरिहासेन, किमपि जल्पन्, किमपि हसन्, किमपि हासयन्, मुहूर्तमिथासांचके ॥

इसके बाद शिष्ट सखियो के कहने पर स्वय अर्घ देने के लिये तत्पर उस (दमयन्ती) से "कमल नेत्रे, रहने दें, प्रयास न करें, आप परिश्रम की पात्र नहीं हैं। पारिजात की मञ्जरी आँधी के झोके को नहीं सहती।" यह कहकर स्वादु एव दुर्लभ सूक्ति सुधा से सिक्त मधुमय वाग्विनोद की विदुषी उन सखियो के साथ कुछ कहता हुआ, हँसता हुआ, हँसाता हुआ कुछ समय तक बैठा।

चिन्तितवांश्च—

लीलाताण्डवितभ्रुवोः स्मरभरभ्रान्तोल्लसत्तारयो-
रन्तर्मौक्तिकमालिकाधवलयोर्मुग्धस्मितस्मेरयो' ।

किंचित्साचिदृशोः स्तवानिलचलन्नीलोत्पलस्पर्धयो-
कल्लोलैरिव याति पक्ष्मलदृशः कान्तिर्मदीये मुखे ॥ ४१ ॥

लोलेति ॥ ऊर्मिलैर्वीचि तरङ्गैः स्फुरति ॥ ४१ ॥

और सोचा भी—

चञ्चल नेत्रोंवाली दमयन्ती के विलास से नाचती हुई भौंहों वाले, काम-भार के कारण चञ्चल उन्मादपूर्ण कनीनिकाओं से अलंकृत, भीतर मोती की कान्ति की तरह धवल, मधुर मुस्कुराहट से विकसित, पवन-कम्पित नील-कमलों से स्पर्धा करने वाले नजरा भरे नयनों की कान्ति मेरे मुख पर तरङ्गित हो रही है ॥ ४१ ॥

अपि च—

दरमुकुलितनेत्रप्रान्तपर्यस्ततारं
तव तरुणि सलज्जं सस्मितं सस्मरं च ।
क्षणमभिमुखवक्त्रे विस्मयस्मेरदृष्टौ
मयि चलति चलत्कं वीक्षितं मा निरौत्सीः ॥ ४२ ॥

दरेति ॥ तवाभिमुखवक्त्रे मयि एवं गुणविशिष्टं वीक्षितं चलत्कं चलद् मा निरौत्सीः ॥ ४२ ॥

तरुणी, सामने की ओर मुख किये हुए आश्चर्य से विकसित दृष्टि वाले मुझ पर स्वल्प संकुचित नेत्रों के एक भाग में कनीनिकाओं को फेंकती हुई, लज्जायुक्त, सकाम एवं मुस्कुराहट भरी आती हुई अपनी दृष्टि को मत रोको ॥ ४२ ॥

[ मैं तुम्हारे सामने स्थित हूँ। तुम्हारा सौन्दर्य देख कर आश्चर्य के मारे मेरी आँखें विकसित हो उठी हैं। प्रथम परिचय की स्थिति में मेरे सम्मुख यद्यपि तुम साफ तथा स्पष्ट नहीं देख पाती हो फिर भी जिस किसी तरह तुम्हारी जो दृष्टि मेरी ओर आ रही है उसे रोको नहीं ॥ ४२ ॥ ]

किञ्चान्यदपरमिदमाशास्महे—

लावण्यामृतदीर्घिका कुलगृहं सौभाग्यसौन्दर्ययो-
स्त्रैलोक्याकररत्नकन्दलिरियं जीव्यात्सहस्रं समाः ।
लोकालोकनकौतुकाय बहुना शिल्पश्रमेणादरा-
न्नन्ये यां विधिना विधाय विहितं सृष्टेर्ध्वजारोपणम् ॥ ४३ ॥

लावण्येति ॥ आलोकनाय कौतुकमालोकनकौतुकम् । लोकस्यालोकनकौतुकम् । तेन पश्यतु लोको, द्रष्टव्यदर्शनात् दृष्टिफलमाप्नोत्वित्यर्थः ॥ ४३ ॥

अधिक क्या, मेरी यही शुभ कामना है कि—यह सौन्दर्य-सुधा की बावली, सौभाग्य और सुन्दरता का कुलभवन तथा त्रैलोक्य समुद्र की रत्नलता सहस्रों वर्ष की आयु प्राप्त करे। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने लोगों के दृष्टि-कौतूहल के लिये कलात्मक श्रम से आदरपूर्वक इसे बना कर अपने रचना-कौशल का ध्वजारोपण किया है ॥ ४३ ॥

[ विजयी जिस सीमा तक पहुँचता है वहाँ अपनी ध्वजा आरोपित कर देता है। लोगों की आँखों को तृप्त करने वाली दमयन्ती का निर्माण कर ब्रह्मा ने अपनी कला या शिल्प-कौशल का सर्वोत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत कर ध्वजारोपण किया है अर्थात् उसने यह सिद्ध किया है कि उसके भीतर दमयन्ती जैसी अलोक सामान्य-सुन्दरी के निर्माण की क्षमता है ॥ ४३ ॥ ]

अहो आश्चर्यम्—

रङ्गत्यङ्गे कुरङ्गाक्ष्याश्चक्षुर्मे यत्र यत्र तु।
दृश्यते तत्र तत्रैव बलाद्बाणकरः स्मरः ॥ ४४ ॥

रङ्गेति ॥ तु पुनरर्थे। किं पुन यत्र यत्राङ्गे चक्षूरङ्गति तस्य साधिष्ठानत्वात्। स्मरबाणबाधा प्राप्यते ॥ ४४ ॥

ओह! आश्चर्य है—

इस हरिणाक्षी की आँखें मेरे अङ्गों पर जहाँ-जहाँ जाती है वहाँ वहाँ बलात्कार कामदेव हाथों मे बाण लिये हुए दिखाई पड़ता है ॥ ४४ ॥

तत्कथमियमन्यार्थे प्रार्थ्यते तद्गच्छतामयं परप्रेष्यभावः ॥

तत्कथमिति ॥ अन्येषामिन्द्रादीनामर्थेऽन्यार्थे ॥

तो क्यों इसे दूसरों के लिये माँगूँ? दूर जाय दूसरो का दौत्य-कार्य।

यतः। तिरयति स्वातन्त्र्यसुखम्, अभिमुखयति पारवश्यक्लेशम्, आमन्त्रयति तिरस्कारम्, आदरयति दैन्यम्, आह्वयति लघिमानम्, आवाहयति हास्यवादम्, समानयत्यौचित्यभङ्गम्, अङ्गीकारयति कार्पण्यम्, अपहस्तयति वस्तुभावम्, पुरुषस्य ॥

यत इति ॥ आङ्पूर्वस्य वहतेः करोत्यर्थत्वादावाहयति कारयतीत्यर्थः ॥

यह मनुष्य के स्वातन्त्र्य-सुख को ओझल कर देता है। परतन्त्रतामूलक दुःख को सामने ला देता है। तिरस्कार को आमन्त्रण देता है। दीनता को आदर देता [redacted]। लघुता को बुलाता है। उपहास कराता है। औचित्यभङ्ग को सम्मानित कराता है। कायरता को अङ्गीकार कराता है और वास्तविक भाव को छुड़ा देता है।

तथाहि—

सोच्छ्वासं मरणं निरग्निदहनं निःशृङ्खलं बन्धनं
निष्पङ्कं मलिनं विनैव नरकं सैषा महायातना।
सेवासंजनितं जनस्य सुधियो धिक्पारवश्यं यतः
पञ्चानां मविशेषमेनदपरं षष्ठं महापातकम् ॥ ४५ ॥

अत:—

बुद्धिमान् आदमी की सेवामूलक परतन्त्रता को धिक्कार है, क्योंकि यह श्वास रहते ही मरण है, अग्नि के बिना ही जलन है, बिना बेड़ियों का बन्धन है, बिना कीचड़ का मल है, बिना नरक की महायातना है, पांच महापातकों के अतिरिक्त यह एक विशेष तरह का छठा महापातक है ॥ ४५ ॥

[ पराधीनता और मृत्यु में यही अन्तर है कि मृत्यु हो जाने पर श्वास नहीं चलती और पराधीनता में श्वास चलती है। जलन आग से होती है किन्तु पराधीनता की स्थिति में बिना आग के ही जलन होने लगती है। शृङ्खलाओं से बन्धन लगाये जाते हैं किन्तु पराधीनता में बिना शृङ्खला लगाये ही बन्धन लगा रहता है। कीचड़ से मलिनता उत्पन्न होती है किन्तु यह बिना कीचड़ के ही मलिनता उत्पन्न कर देता है।

उत्कृष्ट पाप के कारण आदमी नरक की महत्तर यातनायें सहता है। परतन्त्रता भी एक उसी तरह की यातना है जैसी नरकों में सही जाती है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन तथा इन कार्यों के करने वाले लोगों के साथ सम्पर्क, ये महापातक कहलाते हैं। इन कार्यों को करने वाले लोगों को महायातनायें सहनी पड़ती है। मुझ ( नल ) को महायातना सहनी पड़ रही है और मैं इन प्रसिद्ध महापातकों में से कोई एक भी नहीं किया हूँ। इस से यह ज्ञात होता है कि परतन्त्रता भी एक महापातक ही है जिसके कारण मैं इतना कष्ट झेल रहा हूँ ॥ ४५ ॥ ]

किं चान्यत्—

प्रस्तुतस्य विरोधेन ग्राम्यः सर्वोऽप्युपक्रमः।
वीणायां वाद्यमानायां वेदोद्गारो न रोचते ॥ ४६ ॥

प्रस्तुतेति ॥ उभयानुरूपौचित्यादन्यार्थस्य प्रस्तुतत्वम् ॥ ४६ ॥

दूसरी बात यह है कि—

प्रसङ्गप्राप्त वस्तु से प्रतिकूल होने के कारण ये सब यत्न अनुचित हैं, क्योंकि वीणा के बजते रहने पर वेदध्वनि अच्छी नहीं लगती ॥ ४६ ॥

[ लोकपालों की आज्ञा के अनुसार दौत्यकार्य करना एक पुण्यात्मक कार्य है। यह उतना ही पवित्र है जितना वेदोद्गार किन्तु दमयन्ती के मधुमय अनुराग के समक्ष दौत्यकार्य अच्छा नहीं लगता। वीणा की मधुर ध्वनि के सामने पवित्र होता हुआ भी वेदोद्गार अच्छा नहीं लगता ॥ ४६ ॥ ].

तत्किमिदानीमिदमुच्यते। लोलाक्षि, लोकपालास्त्वामस्मन्मुखेन वृण्वन्ति इति प्रस्तुतानुरागभङ्ग, तदादेशोऽपह्नूयते स्वामिन्यन्यथा कथ्यते श्रेयःस्खलनम्, यथावृत्तमेवाख्यायते स्वार्थहानि, तद्वरमस्तु स्वार्थविघातो न तु विश्वस्तदेवतावञ्चनापातकम्' इति चिन्तयन्नशेषमपि तस्यै पुरन्दरादेशं सप्रपञ्चमाचचक्षे ॥

अच्छा तो, इस समय क्या यह कहूँ, यदि कहता हूँ कि 'हे चञ्चलनयने, लोकपाल हमारे माध्यम से तुम्हें चुनते हैं॥" तो इससे प्रेम में अन्तर पड़ेगा। यदि उनकी आज्ञा को छिपाता हूँ या इन्द्र आदि के सम्बन्ध में कुछ दूसरे ढंग से कहता हूँ तो कल्याण-मार्ग से गिरना होगा। जो स्थिति है यदि वैसा ही कहता हूँ तो स्वार्थ की हानि होगी। ऐसी स्थिति में स्वार्थ का विनाश ही अच्छा है, विश्वास किये हुए देवों को वञ्चित कर पाप लेना अच्छा नहीं।" यह सोचता हुआ इन्द्र की अशेष आज्ञा को सप्रपञ्च सुना दिया।

सापि स्तोकस्मितस्निग्धनम्रमुखी 'हं हे प्रियंवदिके, प्रियासमजीवितयाम्बया तातेन च मध्याह्ने समाहूय किमुक्तासि किं शिक्षितासि। न नाम बालेयम्, अविनीतेयम्, आग्रहग्रहग्रस्तेयम्, इति केनापि कर्णेजपेन तातस्य हृदयाद् दूरीकृताहम्। वन्द्याः खलु गुरवो देवाश्च बिभेमि तेभ्योऽहम्' इति प्रियंवदिकाख्यया सख्या सार्धमन्यालापमकरोत् ॥

सापीति ॥ स्तोकेत्यादिना अथिनेऽपि लोकपालाग्रायवशा, नलं प्रत्यनुरागाग्रह व्याख्यालापव्याजेन दमयन्ती प्रतिपादितवती। न नामेति वितर्के। 'किं दूरीकृताहम्' इति वितर्के।

कुछ मुस्कुराहट, स्नेह एवं नम्रतापूर्ण मुख वाली वह ( दमयन्ती ) भी, "अजी प्रियम्वदिका, मेरे प्रिय एवं प्राणस्वरूप माता तथा पिता जी ने दोपहर को बुलाकर तुम से क्या कहा है? क्या सिखाया है? "यह लड़की नहीं है, उद्दण्ड है, आग्रह के कारण हठी है।" यह कह कर किसी निन्दक द्वारा पिता जी के हृदय से क्या दूर की गयी हूँ? गुरुजन तथा देव वन्दनीय हैं। मैं उनसे डरती हूँ।" इस तरह प्रियम्वदिका नामक सखी के साथ दूसरी बातें करने लगी।

[ सम्भव है, देवों के वैभव तथा महिमा पर आकृष्ट होकर गुरुजन ( माता पिता ) यही अनुमति दें कि वह देवों में से ही किसी को पति चुने। इस विरुद्ध अनुमति की सम्भावना से गुरुजनों से डरती हूँ। देव लोग तो उसके अनुराग के बीच कण्टक ही बन रहे हैं। अतः इन लोगों में डरना तो स्वाभाविक ही है। ]

नलोऽपि 'मदिराक्षि, मदयति मदिरा, तरलयति तारुण्यम्, अन्धयति धनम्, उत्पथयति मन्मथः, विरूपयति रूपाभिमानः, खर्वयति गर्वः'। सर्वजनकप्रसिद्धमेतत्। किंतु त्वमिदमसत्यतामानैषीः। व्यभिचरतु तथाङ्गे सर्वमेतत्। नहि शशिनि वह्निः, अमृते च विषाङ्कुरः संभवति। तदिमं देवादेशं मावज्ञासीः। सर्वथा प्रभवन्ति प्राणिनाममी लोकपालाः। तत्रापि विशेषतः सकलत्रिदशाधिपतिरखिलसुरकिरीटमणिमयूखमालार्चितचरणारविन्दः पुरन्दरो देवः। तद् वृणु कमप्यमीषाममृतभुजां मध्ये। मा त्यज स्वर्गसुखानि। अभूमिरसि मर्त्यलोकस्तोकसुखानाम्' इति पुनस्तामभ्यधात्॥

नल भी, "मदिरानयने, मदिरा उन्मत्त कर देती है। यौवन चंचल बना देता है। धन अन्धा बना देता है। काम पथभ्रष्ट कर देता है। सौन्दर्य का अभिमान मर्यादा बदल देता है। अहंकार उद्दण्ड बना देता है। यह बात सब लोगों में प्रसिद्ध है, किन्तु आप इसे सत्य न होने दें। आपके अङ्गों में यह सब व्यभिचरित हो जाय। चन्द्रमा में आग नहीं होती। अमृत में विष के अङ्कुर की सम्भावना नहीं की जाती। अतः आप देवों की आज्ञा की अवहेलना नहीं करें। ये लोकपाल सब तरह से प्राणियों के प्रभु बने रहते हैं। उसमें भी विशेषतः समस्त देवताओं के स्वामी महाराज इन्द्र जिनका चरणकमल सभी देवताओं की मुकुटमणि की किरणमाला से पूजित होता है। अतः इन अमृतभोजी देवताओं में से किसी को चुनिये। स्वर्ग-सुख न छोड़िये। मृत्युलोक के सीमित सुखों की आप पात्र नहीं हैं।" इस तरह पुनः उनने कहा।

एवंविधे च व्यतिकरे दमयन्त्या पुनरुक्तमिमं अत्यमरण्यकरिण्येवारुन्तुदमङ्कुशमसहमानया मनाक्चलिते शिरसि, स्तोकोत्कम्पिते मनसि, मुक्ते नि सहनिश्वासमरुति, पर्यस्तिते चक्षुषि, विवर्णतामानीते वदनारविन्दे, प्रस्तावपण्डिता प्रियंवदिका प्राह॥

ऐसे प्रसङ्ग में पुनः कही हुई इस बात को अत्यन्त क्लेश देने वाले अङ्कुश को न सहती हुई जंगली हथिनी की तरह दमयन्ती सिर को कुछ कम्पित

की, मन को म्लान की, असहनीयता व्यक्त करनेवाले निःश्वासो को छोडने लगी, आँखो को तरेरने लगी, मुखकमल पर मलिनता छा गयी, तब विचारनिपुण प्रियम्वदिका बोली—

'देव, श्रुतं श्रोतव्यम्, अवधारितो देवादेशः। किं तु न स्वतन्त्रेयम्, ईश्वरेच्छया प्रवृत्तिनिवृत्तयो यत प्राणिनाम्, अनालोचनगोचरश्चाय- मनुरागोऽङ्गनाजनस्य ॥

"महाराज, सुन लिया जो सुनना था। देवों का आदेश समझ लिया, किन्तु यह स्वतन्त्र नहीं है। प्राणियो की प्रवृत्ति और निवृत्ति ईश्वर की इच्छा से होती है। रमणी जनों का अनुराग विचारपूर्वक नहीं चलता।

तथाहि—

तीव्रतपनतापप्रियाम्भोजिनी न सहते स्तोकमप्यमृतमुचो रुचः श्चन्द्रस्य, परिम्लायति मालतीमालिका सलिलसेकेन ॥

क्योंकि—

सूर्य के तीव्र ताप से स्नेह रखने वाली कमलिनी अमृतवर्षी चन्द्रमा की कान्तियो को थोडा भी नहीं सहती और मालती की माला जल का सिञ्चन प्राप्त कर म्लान हो जाती है।

प्रसिद्धं चैतत्—

भवति हृदयहारी क्वापि कस्यापि कश्चिन्न
न खलु गुणविशेषः प्रेमबन्धप्रयोगे।
किसलयति वनान्ते कोकिलालापरम्ये
विकसति न वसन्ते मालती कोऽत्र हेतुः ॥ ४७ ॥

यह प्रसिद्ध भी है—

अनुराग विषयक व्यवहार में कोई गुणविशेष कारण नहीं होता। कहीं भी कोई किसी के चित्त का हरण करने वाला बन जाता है। कोकिल ध्वनि से रमणीय वसन्त काल मे सम्पूर्ण वन जब नवीन पत्र धारण करता है तब मालती नहीं विकसित होती। इसमे क्या कारण है? ॥ ४७ ॥

[ यद्यपि वसन्त बडा मनोहर होता है फिर भी वह मालती को नहीं अच्छा लगता है। लोकपाल बहुत वैभवशाली हैं फिर भी मेरी सखी को वे अच्छे नहीं लगते ॥ ४७ ॥ ]

एकमनेकविधोपाख्याननिपुणया तत्कालोचितम्, अनुच्चस्मित- सुधास्निग्धम्, अविरुद्धम्, परिमितपरिहाससुन्दरम्, अनुबृंहिता-

नुरागम्, उचितचाटुचटुलम्, अशाठ्यम्, अकठोरम्, अनुज्झित-प्रियम्, प्रियंवदिकया सहालपाल्प जल्पन् 'अयुक्तमिह कन्यान्तःपुरे चिरं स्थातुम्' इति चिन्तयन्नापृच्छ्य दमयन्तीं नलः पर्यङ्किकापृष्ठादुदतिष्ठत्॥

इस तरह अनेक ढंग के दृष्टान्तपूर्ण प्रवचन में निपुण प्रियम्वदिका के साथ समयोचित, हास्य-सुधा से स्निग्ध, संगत, परिमित परिहास से मनोहर, बढ़े हुए अनुराग के अनुकूल, उचित चाटुकारिता [redacted] सुन्दर, शठता से शून्य, कठोरता से विहीन, प्रियता से अहीन, थोड़ी बातें करता हुआ, "कन्याओं के निवासगृह में चिरकाल तक ठहरना अच्छा नहीं है।" यह सोचता हुआ दमयन्ती का सादर कुशल प्रश्न पूछ कर नल आसन से उठ खड़ा हुआ।

प्रथमोत्थितया च तया लज्जावनम्रवदनारविन्दया सह सखी-कदम्बकेन द्वित्राणि पदान्यनुगम्यमानो विहसन् 'अलमलमायासेन, स्थीयतां सुखम्' इत्यभिधाय स्वगृहानयासीत्।

पहले उठी हुई, लज्जा के कारण नम्र मुखवाली उस (दमयन्ती) तथा सखीमण्डल के साथ दो-तीन कदम चल कर हँसता हुआ, "रहने दीजिये, अब कष्ट न करें, ठहरें यहीं सुखपूर्वक।" यह कह कर अपने आवास की ओर चला आया।

गत्वा च शिरीषकुसुमदाममृदुनि शय्यातले निषण्णश्चिन्तया-ञ्चकार।

जाकर शिरीषपुष्प की माला सदृश कोमल शय्या पर बैठकर चिन्ता-मग्न स्थिति में सोचने लगा—

> हर्षोद्गुरपुलकं विकासि रभसादुत्तानितं कौतुका-
> च्छृङ्गारादलसं, भयात्तरलदृक् नम्रं च लज्जाभरात्।
> तस्यास्तन्नवसंगमे मृगदृशो द्रक्ष्येत भूयोऽपि किं
> किंचित्काञ्चनगौरगण्डगलितस्वेदाम्बुरम्यं मुखम्॥ ४८॥

मृगाक्षी का उस नवीन मिलन के अवसर पर प्रसन्नता से रोमाञ्चित, शीघ्रता से विकसित, कौतुक से उन्नत, शृङ्गार-भाव से सालस, भय से चञ्चल नेत्रों वाला, लज्जा के भार से नम्र, सुवर्ण सदृश गोरे कपोल [redacted] निकले हुए स्वेद-बिन्दुओं के कारण रमणीय मुख क्या फिर दिखाई पड़ेगा?॥ ४८॥

अपि च—

> अपसरति न चक्षुषो मृगाक्षी
> रजनिरियं च न याति नैति निद्रा।

प्रहरति मदनोऽपि दुःखितानां
वत बहुशोऽभिमुखीभवन्त्यपायाः ॥ ४९ ॥

वह मृगाक्षी आँखों से दूर नहीं होती है, नींद भी नहीं आ रही है और यह रात भी नहीं बीत रही है। यह कामदेव भी प्रहार करने लगा है। खेद की बात है कि दुःखियों के विनाश की बहुत सी सामग्रियाँ सामने आती जा रही हैं ॥ ४९ ॥

इति विविधवितर्कवेशविध्वस्तनिद्रः
सजलजडिम मीलत्पक्ष्म चक्षुर्दधानः ।
हरचरणसरोजद्वन्द्वमाधाय चित्ते
नृपतिरपि विदग्धः स त्रियामामनैषीत् ॥ ५० ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-
सरोजाङ्कायां सप्तम उच्छ्वासः ॥ ७ ॥

---

इति विषमपदप्रकाशमेत दमयन्त्यास्तनुते स्म चण्डपालः ।
शिशुमतिकलिकाविकासचैत्रं चतुरमतिः कुटभित्तिचारचित्रम् ॥
श्रीप्राग्वाटकुलाब्धिवृद्धिविधुः श्रीमान् यशोराज इत्यार्यो
यस्य पिता प्रबन्धसुकवि श्रीचण्डसिंहोऽग्रज ।
श्रीशारदाव्रतसिद्धये गुरुरपि श्रीलूणिगः शुद्धधी
सोऽकार्षीद्दमयन्त्युदारविवृतिं श्रीचण्डपालः कृती ॥

इति श्रीचण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे सप्तम उच्छ्वासः समाप्तः ॥-

---

इस तरह विभिन्न वितर्कों के आवेश से निद्रा भग हो गयी। आँखें जड़ जैसी होकर आँसू से भर गयीं। पलक बन्द हो गये।—ऐसी स्थिति में भगवान् शङ्कर के चरणकमलयुगल में चित्त लगाकर उस सहृदय सम्राट् ने रात व्यतीत की ॥ ५० ॥

सप्तम उच्छ्वास समाप्त

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः ।

---

# श्लोकानुक्रमणिका

| उ. | मूलानि | श्लोक. | उ | मूलानि | श्लो |
|---|---|---|---|---|---|
| ७ | नोद्याने न तरङ्गिणी | १६ | १ | भिन्दन्दन्द | ४५ |
| १ | नो नेत्राञ्जलिना | १२ | ७ | भुक्तान्ते घन- | १३ |
| २ | पटलमलिकुलाना- | ४ | ५ | भूपालामन्त्रणे | २२ |
| ५ | पद्मान्यातपवारणानि | ७२ | १ | भूमयो वहिरन्त- | ३१ |
| ७ | परिम्लानच्छाया | ७५ | ३ | भोगान्तो याङ्गचौली- | ३२ |
| २ | परिहरति पयो | २९ | ५ | भ्रमकर | ६३ |
| १ | पर्णं कर्णपुटायितै- | ४१ | २ | भ्राम्यद्द्विरेफाणि | ५ |
| ६ | पर्वतभेदि पवित्रं | २९ | ६ | भ्राम्यद्भृङ्गभरा- | ६२ |
| ५ | पश्यैता- करिकुम्भ | ३८ | ५ | मज्जत्कुञ्जर | ३६ |
| ७ | पाण्डुपङ्कजसलील- | १४ | ४ | मण्डलीकृतकोदण्ड- | ३ |
| ६ | पीनोन्नमदन | ६४ | ७ | मदनमतिसुवानं | २७ |
| १ | पुनरपि तद्भिज्ञा | ६४ | ५ | मध्ये त्रिवली | ६७ |
| ५ | पूर्वापरपयोराशि- | ८० | ५ | मन्द मन्दरमन्दिरेषु | ३२ |
| ५ | पूर्वाह्ण विहितोद्यमा | ७४ | ५ | मन्दायते दिनमिह | ६४ |
| ७ | पौष्पाः पञ्चशरा | १८ | ६ | महावराहाङ्गविनि- | ३० |
| ३ | प्रभासयोनिविद्यात- | २४ | ५ | मातङ्गन्तिकपोल | ३४ |
| १ | प्रमदाः कान्तिहारिण्यो | ४ | ५ | मांसलतुङ्ग- | ४५ |
| ६ | प्रसरति रणरणकरस- | ४३ | ६ | मार्त्य मूर्धनि | ४० |
| ५ | प्रसूनकमलगर्भ | ८ | १ | मित्र च मन्त्री च | २८ |
| ७ | प्रस्तुतस्य विरोधेन | ४६ | २ | मुक्तादाममनोरथेन | १० |
| ४ | प्राप्य सैव भवे- | १ | ६ | मुक्तात्वे ध्यमाण | २७ |
| २ | प्रावृषं शरद् | ३ | ३ | मुग्धस्निग्ध- | ६ |
| ६ | प्रियविरहविपा- | ४५ | २ | मुग्धा दुग्धधिया | ३६ |
| ५ | प्रेमप्रपञ्च | ११ | ३ | मुग्धायाः शिशुना | ३० |
| ५ | बकवृतनिनद् | ४१ | ५ | मुहुरधिवसता | ४२ |
| २ | बाणकरवीरदमनक- | १७ | ६ | मृगेषु मैत्री | १८ |
| ५ | बालोन्मील | ३९ | ६ | मृदुकपरिरम्भा- | ५८ |
| ४ | बिभर्ति यो धूर्जन- | १८ | ७ | य शृण्वेव मनोभवा- | १० |
| २ | बिभ्रते हरिणीं | ३१ | ६ | यत्र न फलिता- | ६३ |
| १ | ब्रह्मण्योऽपि | ४१ | ३ | यथा चित्तं तथा | १५ |
| १ | भङ्गश्लेषकथाबन्ध | २२ | ५ | यथेयमाकृति- | २६ |
| ६ | भजन चलसमूहा | ४५ | ३ | यथावदादर्शं | १७ |
| ५ | भवति यदि सहस्य | १ | ६ | यथेतस्याः सकृदपि | १७ |
| ७ | भवति हृदयहारी | ४७ | ४ | या स्कन्दस्य जवाद् | ३७ |
| १ | भवन्ति फाल्गुने | २७ | ६ | यास्यस्ताचलमन्य- | २ |
| ६ | भानोः सुता | १५ | १ | ये कुन्दधवलप- | ३५ |